राष्ट्रीय नवजागरण
और
हिन्दी पत्रकारिता
[1851—1900 ई०]

प्रबंध-सार

[अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० [हिन्दी]
उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]

1987

हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़-202001

निर्देशक :
प्रो० (डा०) रवीन्द्र भ्रमर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

शोध कर्त्री :
मीरा रानी
एम० ए० एम० फिल०

प्रबंध-सार

"राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता"

(1851 - 1900 ई0)

भारतीय इतिहास में "नवजागरण" (रेनेसाँ) आधुनिक युग का उषा काल है। इस "जागरणकाल" (लगभग उत्तर उन्नीसवी शती) में ही परतंत्र भारत में राष्ट्रीय अस्मिता, क्रांतिकारी चिंतन, नवीन वैचारिक मनोभूमि, वैज्ञानिक तर्क प्रज्ञा एवं राष्ट्रीय साहित्य-भाषा का अंकुरण और पल्लवन हुआ जिसका प्रमुख माध्यम बनी थी- तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता।

"रेनेसाँ काल" में पत्रकारिता के समक्ष सबसे अहम् चुनौती "राष्ट्रीय-उद्बोधन" की थी। सन् 1857 के प्रथम स्वातंत्र्य समर के क्रूरतापूर्वक दमन से भारतीयों की कमर टूट चुकी थी। उनमें उस युग के अपराजेय ब्रिटिश साम्राज्य की प्रचंड तूर्य-शक्ति के समक्ष न सीधे आँख उठा कर देखने का साहस शेष बचा था, न शक्ति-सामर्थ्य। ऐसे आतंक और हताशा के परिवेश में अंग्रेजों के चंगुल से भारत को मुक्ति दिलाने का कोई आंदोलन चलाना संभव नहीं रह गया था बल्कि सबसे पहले यह आवश्यक हो गया था कि कूपमण्डूक, पिछियाते भारतीयों को अज्ञान, सुषुप्ति और पतन के गर्त से निकाल कर उनमें राष्ट्रीय गरिमा, नव-आस्था और नव-आशा के दीप पुनः प्रज्वलित किये जाय। उन्हें गुलामी की मानसिकता से उबार कर राष्ट्रीय स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए तीव्र आकांक्षा और दृढ़ संकल्प जागृत किया जाय किन्तु सदियों से दमित, निराश भारतीय जनता की स्थगित आस्था, जंग खायी कुंठित संवेदना में नव-धड़कन और नव-चेतना जागृत करने का कार्य सागर में ज्वार-भाटे को उठाने जैसा कठिन था। किसी हताश राष्ट्र के अंतस्तल में तूफान, सजगता और जिजीविषा जगाने के लिए ऐसे त्वरित उपादानों की आवश्यकता होती है जो राष्ट्रीय ज्वलंत समस्याओं को उन्हीं की भाषा में निरंतर वाद-विवाद, लेखन द्वारा संप्रेषित करें ताकि वे जनता के अचेतन का एक

हिस्सा बन जाय । इस राष्ट्रीय दायित्व को तत्कालीन ओजस्वी पत्र और पत्रकारों ने निष्ठापूर्वक पूर्ण कर नव-युग और नव-भारत के निर्माण में अविस्मरणीय भूमिका निभायी थी । तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ जागृत होती राष्ट्रीय नव-चेतना और ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति विद्रोह की प्रामाणिक दस्तावेज हैं । अतः भारतीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता के अंतः संबंध, परस्पर प्रभाव और प्रदेय अल्पज्ञात होने पर भी महत्वपूर्ण और विशेष अध्ययन के योग्य हैं ।

भारतीय नवजागरण यूरोपीय रेनेसाँ की अर्थ संगति और तर्ज के आधार पर गढ़ा गया है । अतः यूरोपीय तथा भारतीय रेनेसाँ-धारा को समग्र-संयुक्त में विवेचित करना अधिक समीचीन होगा ।

यूरोपीय और भारतीय रेनेसाँ-काल आधुनिकता के उदय और मध्ययुगीन चिंतन के अवसान के सूचक हैं । इस काल में मानव-जीवन-जगत् संबंधी मूलभूत अवधारणाओं में आमूल परिवर्तन हुए । मध्ययुग से भिन्न नवीन व्यावसायिक पद्धति, भौतिकवादी दृष्टि, इहलौकिक दर्शन एवं स्वाधीन व्यक्तिवादी चेतना से एक नव-युग, नव-मानव और नव-दृष्टिकोण का सूत्रपात हुआ । प्रजातंत्रीय नवचेतना, आधुनिक राष्ट्रीयता, तार्किक दृष्टि, स्वदेशी भाषाओं के विकास, पुरातन ज्ञान-साहित्य-संस्कृति की पुनर्स्थापना एवं प्रेस-मुद्रण-पत्रकारिता जन माध्यमों आदि से एक अभूतपूर्व जन-जागृति और वैचारिक क्रांति का विस्तार हुआ जिसने सम्पूर्ण यूरोप और भारत के क्रमिक आधुनिक विकास को संभव बना दिया था। ये काल पूँजीवादी मध्यवर्गीय-संस्कृति के उदय और सामंती मूल्यों के अवसान के द्योतक भी हैं । इस युग में विश्व की आधिकारिक शक्तियों धर्म, चर्च, राजा तथा ईश्वर की महत्ता कम करने की भी कोशिश की गई ।

यूरोपीय एवं रेनेसाँ के ऐतिहासिक संदर्भों, आदर्शों, उद्देश्यों, प्रेरक तत्त्वों आदि में आधारभूत अंतर था ।

अंग्रेजी "रेनेसाँ" मूलतः लेटिन के "रेनासोर" से व्युत्पन्न है, जिसका शाब्दार्थ "पुनर्जन्म" है । आधुनिक संदर्भ में "रेनेसाँ" शब्द का प्रयोग संभवतः बात्साक ने 1829 में किया । प्रारंभिक यूरोपीय इतिहासकार इस मौलिक-

सांस्कृतिक रेनेसाँ-आंदोलन को लेटिन-ग्रीक कला और साहित्य की पुनर्स्थापना मात्र मानते थे जो 14वीं शती में इटली से पेट्रार्क, बोकासियों आदि मानववादियों द्वारा प्रारंभ हुआ और 16 शती तक सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया था। "रेनेसाँ" की आधुनिक अवधारणा की परिपक्वता 19वीं शती के इतिहास चिंतकों माइकलेट, जेकोब बुर्कहर्ट, साइमंड आदि ने दी। उनके अनुसार "रेनेसाँ" ऐतिहासिक-आर्थिक प्रक्रियाओं का क्रमिक विकास मात्र है। यह ("रेनेसाँ") मध्य और आधुनिक युग के बीच का संक्रांति काल (Transition Period) है। इस काल (लगभग 1300-1600ई0) में जीवन के आर्थिक-आधारों, समाज के मूल ढाँचे और राज्य-व्यवस्था में दूरगामी परिवर्तन हुए तथा मध्ययुग से भिन्न समस्त मानवीय ज्ञान-संपदा, सर्जनात्मक कला शक्तियों और बहुमुखी वैज्ञानिक उपलब्धियों का अंकुरण हुआ।

भारतीय नवजागरण यूरोपीय सभ्यता, धर्म और ब्रिटिश शासन के राजनीतिक प्रभुत्व के घात-प्रतिघात से उत्पन्न वैचारिक जन-आंदोलन था। रामधारी सिंह दिनकर के अनुसार यह मानवतावादी आंदोलन वस्तुतः सत्यों का पुनर्जन्म था। इसे राष्ट्रीयता के भावों का उर्वरण-काल भी कह सकते हैं। सार रूप में "नव-जागरण" स्वाधीन वैचारिक क्रांति की ओर अग्रसर होने वाली प्रक्रिया है जो विचार-अनुभूति, संस्कार-विवेक, नवीन-पुरातन के द्वन्द्व से मूर्त होती है। 19वीं शती की भारतीय नवजागरण-धारा आधुनिकता, भारतीयता और राष्ट्रीयता के अणुओं से निर्मित एक ऐसी उत्ताल तरंग थी जो सम्पूर्ण देश-जाति, भाषा-साहित्य आदि को अपने तीव्र प्रवाह में बहाकर ले गयी थी जिसने नव-जागृति के चमत्कारिक जल से जनमानस को आपादमस्तक भिगो कर जीवन का रूप, दृष्टि और भंगिमा ही बदल दी थी। उन्नीसवीं शती की नवजागृति भारत की प्रथम वैचारिक क्रांति नहीं थी बल्कि इससे पूर्व भी भारतीय समाज ने विचित्र संस्कृतियों के संपर्क-द्वन्द्व समन्वय से नव-चेतना का अनुभव किया था। किन्तु इसका राष्ट्रीय व्यापक स्वरूप एवं आधुनिक दृष्टिकोण 19वीं शताब्दी के रेनेसाँ में ही उभरा। राष्ट्रीय नवोत्थान को अनेक स्वदेशी-विदेशी स्रोतों से ताकत मिली थी जिसमें प्राच्य वाङ्मय का अनावरण, अनेक क्षेत्रीय एवं राष्ट्रीय संस्थाएँ और नेतृवर्ग, ब्रह्मसमाज, आर्य समाज, प्रार्थनासमाज, थियोसाफी, रामकृष्ण मिशन आदि सुधार आंदोलन, राष्ट्रीय पत्रकारिता और साहित्य तथा विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय

क्रांतियाँ थीं । वस्तुतः भारतीय रेनेसाँ अंग्रेजों की अंग्रेजी शिक्षा, संस्कृति, प्रशासन की विशिष्ट देन या पोषित संतान नहीं था बल्कि यह भारतीय दर्शन-मनीषा के पुनरुत्थान, विश्व में हुई क्रांतियों तथा बौद्धिक भारतीय चिंतन का निचोड़ तथा पाश्चात्य-प्राच्य धर्म-संस्कृति-स्वार्थों के द्वन्द्व की परिणति था ।

यूरोप का रेनेसाँ नवीन आर्थिक परिवेश एवं अदम्य ऐतिहासिक गत्यात्मकता की उपज था जबकि भारतीय नवजागरण यूरोपीय सभ्यता, ईसा-धर्म-नीति एवं साम्राज्यवादी ब्रिटिश औपनिवेशिक-अर्थव्यवस्था आदि की चुनौतियों का प्रत्युत्तर था । यूरोप में धर्म-चर्च के संकीर्ण दायरों को लांघ कर रचनात्मक क्रियात्मक ज्ञान-विज्ञान को विकास का आधार बनाया गया, वहीं भारत में धर्म-दर्शन-आध्यात्मिकता की युगानुकूल पुनर्व्याख्या करके नवजागृति का सोपान बनाया गया । अतः भारतीय नवजागरण की आत्मा यूरोप के समान केवल इन्द्रियजनित अनुभवों और बौद्धिक जागरूकता से ही स्पंदित नहीं थी, वह आध्यात्मिकता, सुधार आंदोलनों, विगत ज्ञान वैभव एवं आधुनिकता का पुंजीभूत रूप थी । यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के पराधीन नहीं थे अतः रेनेसाँ के सुप्रभात के साथ उनके कलात्मक, वैज्ञानिक, औद्योगिक-वाणिज्यिक विकास को पराकाष्ठा पर पहुँचाने के लिए मुक्त द्वार खुल गया था, वहीं अंग्रेजी शासकों और भारतीय जनता की राष्ट्रीयता भिन्न होने से साम्राज्यवादी अर्थतंत्र के अत्यधिक आर्थिक दोहन और पराधीनता के विध्वंसक अभिशाप ने भारत के आधुनिकीकरण और स्वाभाविक प्रगति में बहुत रोड़े अटकाये। प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में निजभाषा, निज संस्कृति, निज उत्पादन, निज अस्मिता और स्वराज्य के भाव उदित हुए । भारतीय नवजागरण राष्ट्रीय पहले है, मानवतावादी बाद में । ... यूरोपीय रेनेसाँ आधुनिक और क्रांतिकारी अधिक था, जबकि भारतीय नवजागरण उसी धरती से उपजा राष्ट्रीय उत्थानवादी । अतः दोनों रेनेसाँ की मूलचेतना एक समान होते हुए भी उनके संदर्भ, परिवेश, आदर्श अलग रहे ।

<u>पत्रकारिता : विविध आयाम</u> - पत्रकारिता राष्ट्रीय उद्बोधन और नवनिर्माण का सबसे सशक्त जन-माध्यम है । पत्रकारिता की आधुनिक अवधारणा केवल समाचारों-विचारों के संकलन, संपादन और लिपिबद्ध मुद्रित प्रकाशन-प्रसारण मात्र तक ही सीमित नहीं है, आज यह चाक्षुष-श्रव्य-दृश्य

कला है । आधुनिक जनसंस्थान के प्रमुख अंग-पत्र-पत्रिकाएँ, रेडियो, चलचित्र, दूरदर्शन और विज्ञापन मानव जीवन का अभिन्न हिस्सा और अपरिहार्य आवश्यकता बन चुके हैं । अतः आधुनिक पत्रकारिता-विस्तीर्ण क्षेत्र, विकसित तकनीक, विषय-वैविध्य, सचित्र साजसज्जा युक्त मौखिक, पाठ्य-दृश्य सामग्री इसका वर्तमान परिदृश्य है जो प्रारंभिक 19वीं शती की पत्रकारिता से नितांत भिन्न है ।

पत्रकारिता लोकसेवा को समर्पित एक कला, बौद्धिक साधना, साहित्यिक विधा एवं गौरवपूर्ण वृत्ति है । यह अनदेखी सामयिक घटनाओं एवं इन्द्रियगोचर समाचारों का अभिप्रायपरक निष्पक्ष विवरण ही नहीं, बल्कि समाचारों एवं विचारों में व्याप्त मानवीय अनुभूतियों का संवेदनशील संधान भी है यह जनमत या जनाकांक्षा का निर्माण कर उसे रूप और वाणी देती है । अतः पत्रकारिता अल्प या निश्चित कालावधि में समाचारों, भावों एवं विचारों को समाचारों, आलेखों और सर्जनात्मक विधाओं आदि के द्वारा व्यापक स्तर पर बृहत्तम संप्रेषण की कला है जिसके द्वारा विश्व के समग्र वाङ्मय, लोक-जीवन के परिवर्तन-चक्र, सभ्यता-संस्कृति-राष्ट्रीयता के विविध आयामों तथा ज्ञान-विज्ञान युक्त विचार-शृंखला को समझने और महसूस करने की गहरी निर्लिप्त दृष्टि एवं वैज्ञानिक तर्कप्रज्ञा प्राप्त होती है । पत्रकार केवल वेतनभोगी श्रमजीवी ही नहीं, वह उससे बहुत अधिक समाज के हितों का प्रहरी, जनता का शिक्षक, लोकमत और लोक जागरण का सृष्टा है । वह मूक दुर्बल प्रजा पर हुए अन्याय-अत्याचारों के समक्ष योद्धा है ।

पत्रकारिता की मूल प्रकृति जिज्ञासा-वृत्ति, विश्लेषित करने की प्रवृत्ति और जनानुभूति का सहज सीधी अभिव्यक्ति है । पत्रकारिता वह माध्यम है जिसके द्वारा मानव की मूलभूत जिज्ञासा क्यों, क्या, कैसे, कब, कहाँ आदि प्रश्नों का शमन होता है । प्रकाशन अवधि के आधार पर पत्र-पत्रिकाएँ दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, त्रैमासिक और अनियतकालीन आदि हो सकती हैं ।

पत्रकारिता के आदर्श प्रतिमान जो सभी राष्ट्रों को मान्य हैं, वे सदैव में जनहित के प्रति उत्तरदायित्व, प्रेस की स्वतंत्रता, निर्भीकता, जनता के प्रति ईमानदारी, सत्यता, सटीकता, नैतिकता, निष्पक्षता एवं शिष्टता हैं । श्रेष्ठ पत्रकारिता

के उद्देश्य या कार्य लोक-शिक्षण, लोक रुचि का परिष्कार, ज्ञान-विज्ञान की सीमा का विस्तार, राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र और स्वतंत्रता के लिए संघर्षरत रह कर जन-आंदोलन को नेतृत्व प्रदान करना है। साथ ही श्रेष्ठ वाङ्मय को जन संप्रेषणीय एवं सर्वसुलभ बनाकर जनमानस को अंतर्दृष्टि और तर्क प्रज्ञा प्रदान करना तथा विविध साहित्यिक विधाओं एवं निष्पक्ष आलेखों आदि के द्वारा अन्याय-शोषण के विरुद्ध जनमत का निर्माण और मार्गदर्शन करना आदि भी हैं।

पत्रकारिता और साहित्य के मूल तत्वों, उद्देश्यों एवं कार्यों में कुछ समानता और अंतर भी है। पत्रकार और साहित्यकार दोनों ही जनजीवन से जुड़े समर्पित साधक होते हैं। पत्रकारिता और साहित्य दोनों का मूलाधार संवेदनशील अनुभूति, संभावित सत्य को प्रकट करने वाली कल्पनाशक्ति है। अर्थ चिंतन और लेखन में प्रेषणीयता की शक्ति अपेक्षित होती है। दोनों का मूल उद्देश्य जनसेवा है किन्तु पत्रकारिता सर्जनात्मकता को अल्पतम और साहित्य सघनतम अभिव्यक्ति है। पत्रकारिता में सत्य और यथार्थ का अभिधापरक बेलाग चित्रण होता है जबकि साहित्य का सत्य रस, सौन्दर्य, कल्पना से आच्छादित होकर बिंबों और प्रतीकों के माध्यम से मूर्त्त होता है। साहित्य संवेदनापरक और पत्रकारिता तथ्य प्रधान, निर्वैयक्तिक वैचारिक प्रस्तुतिकरण है।

किन्तु 19वीं शती से ही हिन्दी पत्रकारिता केवल सूचना और प्रचार का माध्यम न होकर शाश्वत साहित्य का प्रकाशन और निर्माण भी करती रही है। हिन्दी के प्रख्यात साहित्यकारों ने पत्रकारिता से किसी न किसी रूप में जुड़े रह कर राष्ट्रीय नवजागरण के अभियान में महत्वपूर्ण हिस्सेदारी निभायी है। इसलिए हिन्दी पत्रकारिता में अनुभूति का अद्भुत पुट है। वह सर्जना के स्तर तक ऊपर उठी है।

प्राचीन भारत में आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं जैसी कोई मुद्रित सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इसका कारण मुद्रण-यंत्रों का अभाव, औद्योगिक पूँजीवादी-व्यवस्था की कमी, संचार-साधनों की न्यूनता एवं पत्रकारिता-विषयक ज्ञान का अभाव था। हिन्दी-संस्कृत वाङ्मय में "समाचार", "पत्र", "पत्रिका" आदि शब्द मिलते हैं,

किन्तु भिन्न अर्थों में । मुगलकाल में भारतीय शासकों को पत्रकार-कला का ज्ञान था। हस्तलिखित समाचार-लेखन और संकलन के पृथक् विभाग और "वाक्यानवीस" आदि अधिकारियों द्वारा राज-दरबारों और राजाओं की गतिविधियों के समाचार प्रेषित किये जाते थे लेकिन उनका लेखन जनहित की दृष्टि से जनता के लिए नहीं होता था। उनको पत्रकारिता का पूर्वज कहा जा सकता है । आधुनिक मुद्रण-कला के आविष्कारक के रूप में गुटेन्बर्ग का नाम लिया जाता है जिसने जर्मनी के मैंज नगर में प्रिंटिंग प्रेस की नींव डाली । भारत में प्रेस की स्थापना (1556) से एक नया युग प्रारंभ हुआ । अनेक ग्रन्थों का प्रकाशन हुआ तथापि 1780 से पूर्व किसी भी भाषा में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन नहीं हो पाया क्योंकि ईस्टइंडिया कंपनी की नीति पत्रकारिता के प्रति स्वतंत्रता-विरोधी थी। सबसे पहला समाचार-पत्र कलकत्ता से 29 जनवरी, 1780 को जेम्स आगस्त हिके द्वारा प्रकाशित किया गया जो प्रेस की स्वाधीनता और दुःसाहस में अग्रणी था । अंग्रेजी पत्रों ने सेंसर के बावजूद भारतीय भाषाओं के लिए नींव और दृष्टि का निर्माण कर दिया था । वस्तुतः राष्ट्रहित से जुड़ी, उसका प्रतिनिधित्व करने वाली देशी भाषाओं की पत्रकारिता के प्रारम्भकर्त्ता राजा राममोहन राय और अन्य प्रबुद्ध भारतीय पत्रकार रहे जिनका दृष्टिकोण स्वदेशपरक राष्ट्रीय नव-निर्माण और जन-जागृति का था । इन्होंने पत्रकारिता को जन-हितों से जोड़कर सती प्रथा, बालविवाह जैसी सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध जनमत तैयार किया और हिन्दू धर्म के कटु आलोचक मिशनरी पत्रों का मुँह तोड़ वैचारिक प्रतिकार किया ।

अंग्रेजी-मिशनरी-उर्दू पत्र-पत्रिकाएँ सरकारी रियायतें और राजकीय संरक्षण पाकर खूब फल फूल रही थीं। हिन्दी की शिक्षा-न्याय-आजीविका में कोई उपयोगिता नहीं रह गयी। ऐसी अवरोधक परिस्थिति में हिन्दी पत्रकारिता का विकास टेढ़ी खीर था । किन्तु 19 वीं शती में हिन्दी-गद्य के प्रचलन, ज्ञानात्मक, पाठ्य एवं धर्म-प्रचार हिन्दी पुस्तकों के प्रकाशन और शिक्षा से हिन्दी को बढ़ावा भी मिला था । फलस्वरूप हिन्दी में 'दिग्दर्शन' (1818) 'गास्पल मैगजीन,' 'समाचार दर्पण,' 'उदन्त मार्त्तण्ड,' 'बंगदूत' आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थी ।

हिन्दी का प्रथम पत्र निर्विवाद रूप से 'उदंत मार्तण्ड' [30 मई, 1826 ई0] माना गया है किन्तु डा0 जॉन हेनरी आनंद के पास "गास्पल मैगजीन" [1820] के आठ पृष्ठ सुरक्षित रखे हैं। अतः "गास्पल मैगजीन" [1820] को प्रथम हिन्दी-पत्र माना जा सकता है।

1820 से 1850 के बीच केवल 11-12 हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। हिन्दी पत्रकारिता की धीमी गति का और अबाध निरंतरता के अभाव के प्रमुख कारणों में राजकीय संरक्षण का अभाव व्यावहारिक हिन्दी गद्य, हिन्दी पाठकों और पत्रकारों की न्यूनता, जनता का निम्न आर्थिक स्तर, अभिरुचि और रुचि का अभाव, औद्योगिक व्यवस्था, संवाद एवं संचार-साधनों का अविकसित होना तथा पत्रकारिता में व्यावसायिक लाभ और ज्ञान का अभाव आदि थे। 'उदन्त मार्तण्ड', 'बंगदूत' से लेकर 'मालवा अखबार', 'बनारस अखबार', 'सुधाकर' आदि प्रारंभिक पत्र जागरण और दृढ़ नीति के अभाव में कोई ठोस स्मरणीय उपलब्धि नहीं प्राप्त कर सके थे क्योंकि न तो उनको खरीदने और पढ़ने वाले पाठक थे और न प्रोत्साहित करने वाले शासक थे। इसलिए अधिकांश पत्र अल्पजीवी रहे। लेकिन उनका महत्व उनके साहसिक प्रयासों, निःस्वार्थ समर्पित निष्ठा में है जिन्होंने पत्रकारिता की परंपरा को उस समय जीवित बनाये रखा जब हिन्दी विरोधी परिवेश में सारा समाज निष्चेष्ट सोया हुआ था।

<u>विवेच्यकालीन पत्रकारिता-</u> उत्तर 19वीं शताब्दी में सम्पूर्ण देश पश्चिमीकरण, वैज्ञानिक संचार एवं संवाद साधनों तथा नवीन सांस्कृतिक-राजनीतिक परिवर्तनों से स्पंदित था। बढ़ती हुई राष्ट्रीय चेतना के साथ हिन्दी पत्रकारिता भी नवआकार और नवराष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण करने लगी थी। प्रारम्भ में हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता एक साथ हिन्दी-उर्दूद्विभाषी पत्रों के रूप में प्रकाशित हुई। अतः धर्म या संप्रदाय के आधार हिन्दी-उर्दू पत्रों का सांप्रदायिक विभाजन नहीं हुआ था किंतु 1857 ई0 के बाद "अंग्रेजों की फूट डालो और शासन करो" नीति ने हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता में अलगाव पैदा कर उनकी राहें अलग कर दी हिन्दी-उर्दू के पृथक् संस्करण निकालने की मनोवृत्ति उभरी। धार्मिक सुधार-आंदोलन और अतीत के समृद्ध वाङ्मय के हिन्दी में अनुवाद की माँग और न्यायालयों में हिन्दी-प्रवेश-आंदोलन ने हिन्दी को लोकप्रिय बनाकर उर्दू से पृथक् निज-अस्मिता निर्माण पर जोर दिया।

हिन्दी पत्रकारिता का तथा राष्ट्रीय स्वरूप पहली बार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा प्रकाशित-संपादित "कविवचन सुधा" (1868) "हरिश्चन्द्र मैगजीन" (1873) और बालाबोधिनी" (1874 में प्रकट हुआ उन्होंने निर्भीक आदर्श पत्रकारिता का उदाहरण सामने रखकर और उसको सहजजातीय स्वरूप प्रदान कर हिन्दी पत्रों में पाठकों की अभिरुचि जागृत की तथा साथ ही शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग को पत्रकारिता क्षेत्र अपनाने के लिए उत्प्रेरित किया। फलस्वरूप सैकड़ों आने-अनजाने पत्रों की बाढ़ आ गयी। जागरण काल में हिन्दी पत्रकारिता के तीव्र विकास का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि 1868 से 1900 के बीच लगभग 350 पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। पत्रकारिता राष्ट्रीय चेतना और जनता के हितों, दुःख-सुख, आशा-आकांक्षा से जुड़ी हिन्दी भाषा और पत्रकारिता को सुस्थिर राष्ट्रीय स्वरूप मिला। पत्रकारिता ने राष्ट्रीय-आंदोलन और विश्व-विशेषज्ञता की ओर कदम बढ़ाया। विवेच्य हिन्दी पत्र साहित्यिक होने के साथ राजनीतिक-सामाजिक-धार्मिक सुधार-जागृति से युक्त सामग्री से आपूरित रहते थे जिनका मूल ध्येय जन-जागृति, जन-सुधार, हिन्दी-हिंदुस्तान की प्रगति था। तत्कालीन तेजस्वी पत्र और पत्रकार न अर्थ-प्राप्ति से जुड़े थे, न पद या यश-प्राप्ति से। इन्होंने पत्रकारिता और रचनात्मक लेखन को व्यवसाय न बनाकर राष्ट्रधर्म के रूप में लिया था। राष्ट्रीय-एकता एवं साहित्य-भाषा पत्रकारिता आदि के उच्चादर्शों के लिए जूझना इनका आदर्श जीवन-विधान है। तत्कालीन हिन्दी-पत्रों की प्रसार-संख्या अत्यन्त अल्प होने पर भी इनका भारतीय जनमत और सरकार पर व्यापक प्रभाव पड़ा था। अधिकांश पत्रों का मूल्य अधिक था। इसका मुख्य कारण राजकीय सहायता का अभाव, मुद्रण-व्यय का अधिक होना, विज्ञापन आय और ग्राहकों की न्यूनता आदि थे। जागरणकालीन पत्र और पत्रकारों के कदम-कदम पर भयंकर प्रत्यूह और आर्थिक बाधाएँ थीं। इन पत्रों के जो थोड़े बहुत ग्राहक बनते, वे भी पैसा न देते। प्रेस-एक्ट का डर अलग से था। इस युग के अधिकतर पत्रों में आकर्षक साज-सज्जा, अशुद्धिरहित मुद्रण पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। इसके कारण आर्थिक अभाव, मुद्रणालयों की जर्जर स्थिति, पत्रों का अल्प वितरण, मुद्रण-कला और तकनीकी का अविकसित होना था। वस्तुतः भारतेन्दुयुगीन

पत्रकारिता केवल विलास या शुद्ध मनोरंजन का साधन न होकर समर्पण पूर्ण राष्ट्रीय दायित्व का द्योतक थी । अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के शीर्षक पैने, चटपटे और सटीक हैं जो युग-चेतना को ध्वनित करते हैं । इनके नीति-वाक्य (मोटो) भी गुरु गंभीर एवं ओजपूर्ण है जो सोद्देश्य राष्ट्रीय-चिंतन के प्रतीक हैं। समवेतरूप में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के प्रमुख स्तंभों में संपादकीय-अग्रलेख एवं टिप्पणियां विविध साहित्यिक विधाएँ, हास्य-व्यंग्यपूर्ण सामग्री, समाचारावली विज्ञापन, लेख और समीक्षा इत्यादि प्रकाशित होते थे । इनकी विषय-सामग्री राजनीति, साहित्य, समाज-धर्म सुधार से समन्वित थी जो सोद्देश्य राष्ट्रीय पत्रकारिता का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती हैं । वस्तुतः तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप दैनिक, साप्ताहिक, मासिक तथा शोधपत्रों का सुनियोजित रूप था जिसमें भारतेन्दु द्विवेदी युग के प्रसिद्ध एवं नवोदित साहित्यकारों और पत्रकारों की रचनाएँ मिलती हैं । अधिकांश साहित्यकारों ने स्वयं अपने-अपने पत्रों का प्रकाशन कर राष्ट्रीय जागरण में हाथ बटाया था । इन पत्रों में भी पर्याप्त संख्या में विज्ञापन प्रकाशित होते थे किन्तु लोक हित के कारण ये हानिप्रद अश्लील विज्ञापनों की भर्त्सना कर विज्ञापन आय को तनिक भी महत्व नहीं देती थी ।

जागरण युग के पत्रों की संपादकीय-सामग्री में राष्ट्रीय स्वर प्रखर है । इस काल में अंतर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय, स्थानीय समस्याओं पर स्वतंत्र सूझ-बूझ भरे अग्रलेख प्रकाशित हुए । संपादकीय अग्रलेखों में राष्ट्रीय एकता, शिक्षा, स्वदेशी, कर-दुर्भिक्ष तथा प्रशासनिक अन्याय संबंधी राष्ट्रीय समस्याएँ मुखरित हुई हैं । सामान्य पाठकों के लिए हास-परिहास युक्त व्यंग्यात्मक अभिधानों चुटकुलों, लटकों आदि के माध्यम से राजनीतिक-सामाजिक जागरण के लिए उत्तेजित किया जाता था । तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों पाठकों के सरस पत्र प्रकाशित हुए क्योंकि पाठक संपादक को अंतरंग मित्र समझ कर उन्हें शिष्टाचार रहित होकर गिला-शिकवा करते थे । हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अधिकांश समाचार अन्य अंग्रेजी और देशी भाषाओं से नकल करके छापे जाते थे लेकिन उनको आकर्षक भंगिमा, साहित्यिक पुट और संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रस्तुत किया जाता था । स्थानीय, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय खेल, पदवी, सामाजिक, राजनीतिक जागरण और आर्थिक सभी प्रकार के समाचारों में जन-जागृति की कौंध लक्षित हो जाती है ।

रचनात्मक एवं ज्ञानात्मक साहित्य : "जागरण काल" आधुनिक ज्ञान एवं सर्जन-शक्ति के वैभव का उद्भव-काल भी था। हिन्दी साहित्य और पत्रकारिता में इसे "भारतेन्दु युग" कहा गया है। भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं के संपादक ओजस्वी पत्रकार होने के साथ मौलिक, बहुमुखी साहित्यकार भी थे। हिन्दी साहित्य की सभी आधुनिक विधाओं-निबंध, उपन्यास, एकांकी, यात्रा-वृत्त इत्यादि और ज्ञानात्मक चिंतन के विविध आयामों का उद्भव और विकास उत्तर 19वीं शती में पत्रकारिता के माध्यम से हुआ। इस काल का अधिकांश साहित्य पृथक् विधा अथवा पुस्तक के रूप में न लिखा जाकर पत्र-पत्रिकाओं के कलेवर और राष्ट्रीय दायित्व की पूर्ति के रूप में रचा गया था। जागरण कालीन पत्रकारिता और उसमें प्रकाशित साहित्यिक विधाएँ केवल राजनीतिक चर्चा और हिन्दी भाषा-प्रचार का माध्यम न होकर भावसंकुल संवेदना, रचनात्मक कलाकारिता और राष्ट्रीय उद्बोधन से परिपूर्ण थीं।

उत्तर 19वीं शती में नवजागरण, पत्रकारिता और साहित्य का अटूट संबंध रहा। तीनों परस्पर विकास में सम्पृक्त और सहोदर रहे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, प्रतापनारायण मिश्र, प्रेमघन, राधाचरण गोस्वामी, अंबिकादत्त व्यास आदि शताधिक संपादकों ने अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हिन्दी खड़ी बोली-आधुनिक गद्य-पद्य और भाषा को जीवंत, आत्मनिर्भर सहज परिष्कृत रूप प्रदान कर उन्हें नयी अर्थवत्ता दी। उन्होंने साहित्य को पुरातन जीर्ण राजदरबारी परंपरा से निकाल कर नवयुग, जनहित और राष्ट्रीय समस्याओं के साथ जोड़ा। वस्तुतः इनके अपनी पत्र-पत्रिकाओं को सरल, लोकप्रिय, वैविध्यपूर्ण बनाने के प्रयास में किये गये स्वच्छन्द मौलिक प्रयोगों और उद्भावनाओं से ही धारा-प्रवाह, अकृत्रिम निर्मल गद्य और आधुनिक गद्य-विधाओं का अंकुरण हुआ था।

नवजागरण युग नाटक, निबंध, कविता इत्यादि की दृष्टि से भी अत्यन्त उर्वर-काल था। पत्रों में प्रकाशित नाटकों के माध्यम से पहली बार साहित्य ने युगीन यथार्थ जीवन के कठोर धरातल का स्पर्श कर राष्ट्रीय चिंतन धारा, आधुनिक बोध और सामाजिक समस्याओं को मंच प्रदान किया। "हिन्दी प्रदीप" "हरिश्चन्द्र

चन्द्रिका", "पियूष प्रवाह", "ब्राह्मण", "आनंद कादंबिनी", "भारतेन्दु" आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित प्रतीकवादी प्रहसनों, हास्य-व्यंग्यात्मक सामाजिक एकांकी, मनोरंजक संवादों तथा ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों ने भद्दे पारसी नाटकों से जनता का ध्यान हटा कर लोक-रंजन के साथ लोक-शिक्षण, लोक-जागरण और लोक-सुधार करने की भी चेष्टा की ।

उत्तर 19वीं शती में नवविकसित औद्योगिकता, भौतिक-यथार्थ जीवन को अंकित करने के लिए समाज-शोधन से युक्त सामाजिक और रोचक जासूसी-तिलस्मी उपन्यासों का सृजन प्रारम्भ हुआ । सच्चरित्रता और नैतिक-सामाजिक सुधार के लिए इन उपन्यासों में सांस्कृतिक विडंबनाओं और राष्ट्रीय प्रश्नों को आदर्शोन्मुख अंदाज में उठाया गया है । अतः जीवन और परिवेश के प्रत्येक पक्ष को मूर्त्त कर इन नैतिक-अनूदित उपन्यासों ने राष्ट्र के ज्वलंत प्रश्नों को अर्द्धशिक्षित मध्यम बुद्धिजीवी तथा महिला, विद्यार्थी और व्यापारी वर्ग तक पहुँचा कर सामाजिक उद्वेलन को उत्तेजना दी थी । प्रेमचंद आदि का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद भी इन्हीं का विकसित रूप प्रतीत होता है ।

भारतेन्दु युग की सबसे जीवंत विधा निबंध का लेखन भी किसी रूढ़ साहित्यिक विधा के रूप में न होकर राष्ट्रीय नवजागृति के उद्देश्य से पाठकों से शिष्टरहित बातचीत के रूप में हुआ था । जागरण युगीन पत्र-पत्रिकाओं में हजारों की संख्या में व्यक्तिनिष्ठ, समीक्षात्मक, मनोवैज्ञानिक एवं हास्य-व्यंग्य प्रधान निबंध पाठकों में राष्ट्रीय भाव जागृत करके उनको आधुनिकता के अंधानुकरण से बचाते हैं । ये मूलतः मनोरंजन उपलब्धि के रूप में न होकर सहज उच्छल आवेग, लोक-दृष्टांतों और राष्ट्रीय नव-चेतना से पूर्ण जीवंत रचनाएँ हैं ।

आधुनिक समालोचना, यात्रावृत्त, रेखाचित्र, कहानी, रिपोर्ताज, जीवनी, आत्मकथा इत्यादि विधाओं का प्रारंभिक रूप भी इन पत्र-पत्रिकाओं में देखा जा सकता है ।

"जागरण युग" कविता के लिए भी एक "संक्रमण युग" था जिसमें नवीन-पुरातन काव्य धाराएँ उद्दाम वेग से बहती हुई दिखायी देती हैं । पत्रिकाओं

में प्रकाशित कविताओं में देश-भक्ति और राज-भक्ति का अन्तर्विरोध दूर तक समानान्तर चला था। तत्कालीन कविता राष्ट्रीय उद्बोधन और सुधार की चेतना से उत्प्रेरित और संचालित है। 1857 के महत्वपूर्ण स्वातंत्र्य-समर में तत्कालीन कवियों का मौन वस्तुतः आतंकयुक्त परिवेश और पृष्ठभूमि के कारण था। सम्भवतः उन्होंने ब्रिटिशराज कोप से बचने के लिए ही वाक्-चातुर्य, निहित-भरी कूटनीति और राज-भक्ति की आड़ लेकर वह सब कुछ कह डाला था जो उस युग में सीधे-सीधे कहना संभव नहीं था। नवजागरण की कविता जीवन, परिवेश और लोक-संवेदना पर आधारित है। जैसा पत्रकार कवियों ने अनुभव किया, भोगा, लोकगीतों में मुखर कर दिया। अतः साहित्य में कला-अभिव्यंजना के स्तर पर कलात्मकता कम है।

नागरण युगीन पत्र और पत्रकारों ने समस्त ज्ञानात्मक अनुशासनों राजनीति, अर्थशास्त्र, इतिहास, भूगोल, गणित, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, शिक्षा, पुरातत्व और भौतिक ज्ञान-विज्ञान की जटिल प्रक्रियाओं और प्रयोगों को वैज्ञानिक शैली और सर्वग्राह्य सुबोध हिन्दी में लेख प्रकाशित कर हिन्दी विरोधियों की इस निराधार भ्रांत धारणा का खंडन किया था कि हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली और सक्षम भाषा का अभाव होने के कारण इसमें विज्ञान-शिक्षण संभव नहीं है। उन्होंने आधुनिक ज्ञान-विज्ञान लेखों के माध्यम से हिन्दी भाषी पाठकों में एक तार्किक दृष्टि और बौद्धिक विचारणा विकसित करने की चेष्टा की जिसका उनमें नितांत अभाव था।

<u>राजनीतिक-उद्बोधन-</u> हिन्दी पत्रकारिता ने राष्ट्रीय जननायक गांधीजी आदि और "राष्ट्रीय कांग्रेस" के आविर्भाव से पूर्व ही राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक जनजागृति फैला कर समाज के अंतस्तल में तूफान ला दिया था। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता की दमन, आर्थिक शोषण नीति, अन्याय-अव्यवस्था के विरुद्ध जनमत तैयार करके तथा राष्ट्रीय एकता, सांप्रदायिक सद्भाव स्वदेशी और स्वायत्त शासन के लिए अभियान चला कर राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की आधार पृष्ठभूमि निर्मित कर दी थी।

भारत में तब राष्ट्रीयता को प्रतीक "राष्ट्रीय कांग्रेस" के जन्म का विचार ह्यूम के मस्तिष्क में देशी भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं के नेटिव प्रेस रिपोर्टों [अंग्रेजी में अनुवादित] को देखकर ही पनपा था। उन्हीं के शब्दों में "मुझे सात बड़ी-बड़ी जिल्दें दिखायी गयीं— उनमें देशी भाषाओं में लिखी गयी किसी तरह की रिपोर्टों या संक्षिप्त अंग्रेजी सारांश दिया गया था। उस वक्त बताया गया था कि तीस हजार से ज्यादा अलग-अलग संवाददाताओं की रिपोर्ट इन जिल्दों में बंधी थी" [रजनीपाम दत्त, आज का भारत, पृष्ठ 125] प्रस्तुत प्रबंध के परिशिष्ट में दी गयी तत्कालीन उन्हीं कुछ नेटिव प्रेस रिपोर्टों की प्रतिलिपियों से अनुमान लगाया जा सकता है कि पत्रकारिता ने राष्ट्रीय नवजागरण की शक्तियों को कितना अधिक विकसित कर दिया था।

मार्गरीटा बार्न्स का यह कथन उचित ही है कि भारतीय पत्रकारिता की कहानी वस्तुतः राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के हजारों अंकों में यदि कोई स्पष्ट विचारधारा उभरती है तो वह उनकी अदम्य राष्ट्रीयता और ब्रिटिश सत्ता के प्रति विद्रोह की भावना है।

राष्ट्र नव-निर्माण और राजनीतिक जागरण की पहली शर्त होती है- राष्ट्र के जनमानस को अंतःशक्तियों और सुप्त-आत्मा को जागृत कर उनमें प्रचण्ड आत्म-गौरव, राष्ट्राभिमान एवं राष्ट्रीय एकता की फौलादी ताकत भर देना। इन लक्ष्यों की पूर्ति के लिए हिन्दी पत्रकारिता ने सबसे पहले देश में ब्रिटिश-विरोधी भावना को उत्तेजना देने के लिए सुनियोजित शोषण-तंत्र और अंग्रेजों की देश-हितैषिता एवं श्रेष्ठता के विषय में फैलायी गयी भ्रांत धारणाओं का खंडन करके बताया कि वणिक वृत्ति वाले अंग्रेज भारतीयों से किसी भी स्तर पर श्रेष्ठ, सभ्य और ईश्वर तुल्य नहीं हैं। अंग्रेज भारत को सभ्य, सुसंस्कृत बनाने अथवा शांति और सुव्यवस्था लाने के लिए नहीं, बल्कि अपने आर्थिक हितों के लिए राज्य कर रहे हैं। उन्होंने ब्रिटिश शासन को भारत की बढ़ती विपन्नता, पिछड़ेपन और नैतिक पतन के लिए जिम्मेदार ठहराया तथा मुगलशासन को अंग्रेजी शासन की तुलना में श्रेष्ठ एवं लोक हितकारी घोषित किया।

हिन्दी पत्रकारिता ने शिक्षा-न्यायालयों, आजीविका, पद, वेतन,

रेल-व्यवस्था एवं इंडियन सिविल सर्विस आदि हर क्षेत्र में व्याप्त। रंगभेद-नीति पर प्रहार किया।उसकी प्रतिक्रियास्वरूप 'इलबर्ट बिल' (1883) जारी करने तथा सिविल सर्विस में भारतीयों के लिए परीक्षा-प्रवेश की आयु बढ़ाने और परीक्षाएँ भारत में ही कराने के लिए जबरदस्त आंदोलन चलाये। उसने लेजिस्लेटिव कौंसिल, संसद आदि में भी भारतीय प्रतिनिधित्व तथा श्रेणियों के बराबर पद, वेतन, सम्मान और निष्पक्ष न्याय की माँग के लिए अभियान छेड़ा।

देश को आर्थिक दोहन से बचाने और स्वावलंबी राष्ट्र बनाने के लिए पत्र-पत्रिकाओं ने विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार कर स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन-उपभोग तथा शिल्प-उद्योग पर जोर देकर राष्ट्र की राजनीतिक धारा को नया मोड़ दिया। उन्होंने सांप्रदायिक सद्भाव और एकता के लिए हिन्दू-मुसलमानों में फूट डालने वाली विभेद-नीति की खुल कर भर्त्सना की। इन पत्रों के हर अंक में बहु विध स्त्रोतों से लिये जा रहे आर्थिक-दोहन, अतिशय कर, मँहगाई, स्वेच्छा-प्रशासन पर तीखा आक्रोश प्रकट किया था।

अतः हिन्दी पत्र और पत्रकारों ने केवल नेताओं, सभा-समितियों के बुद्धि-विलास तक सीमित न रह कर, जनता को विशाल जन-आंदोलन का रूप देने का भार अपने कंधों पर वहन किया था। सक्रिय राजनीति के रंगमंच पर उनकी भूमिका परोक्ष किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण रही। यद्यपि सामान्यतया उनका दृष्टि-कोण उदारवादी रहा किन्तु निराश लोगों में जोश, पश्चिमोन्मुख दास को युवावर्ग को जगाने में वे अग्रणी रहीं।

<u>सांस्कृतिक नवोत्थान-</u> भारत में नवचेतना का उन्मेष धार्मिक-सांस्कृतिक सुधार-आंदोलनों से हुआ। हिन्दी पत्र और पत्रकारों ने सांस्कृतिक-नव-जागृति में धार्मिक-सामाजिक सुधार-आंदोलनों, संस्थाओं एवं समाज सुधारकों के समकक्ष कार्य किया था। उनका संघर्ष और लड़ाई जीवन के सभी स्तरों पर समान रूप से चली थी। वस्तुतः तब जीवन अखण्ड और अविभाज्य था। राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति, पत्रकारिता और साहित्य आदि की रेखाएँ विभिन्न बिंदुओं पर परस्पर स्पर्श करती थी। अतः पत्रकारिता का कार्यक्षेत्र भी धर्म, समाज और राजनीति में समान रूप से नवीनीकरण और पुनर्जागरण का रहा। उस युग

में नव-चेतना बहुकेन्द्रित रूपों में प्रस्फुटित हुई थी। वस्तुतः आर्य समाज, ब्रह्मसमाज, जैनधर्म और मिशनरी पत्रों के द्वारा अपने धर्मों की रक्षा के लिए किये गये वैचारिक धर्म-युद्धों ने घुणाक्षर न्याय से सम्पूर्ण समाज को जगा दिया था। धार्मिक-सामाजिक तथा जातीय सभी पत्र जागरण-यज्ञ के समर्पित साधक थे।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का धर्म और समाज के प्रति दृष्टिकोण उदात्त और बुद्धिवादी रहा। उन्होंने ब्राह्मणों, मठाधीशों, साधु, ढोंगियों की जमकर पोल खोली थी। धर्म-संप्रदाय के झगड़ों को छिछोरापन कहा तथा धार्मिक-सद्भाव और धर्म के युगानुरूप पुनर्मूल्यांकन पर जोर दिया।

सामाजिक नवचेतना- संक्रांति काल में भारतीय समाज विस्फोटक बिंदु पर पहुँच चुका था। पत्रों ने समाज के तेजस्, वर्चस् और ओजस् के जागरण के लिए सामाजिक कुसंस्कारों बाल विवाह, दहेज, विधवा समस्या, अस्पृश्यता, बेगार, रिश्वत, जाति-प्रथा आदि के विरुद्ध आवाज उठायी। उन्होंने लीक से हट कर भारतीयों में पलायनवादी मनोवृत्ति, भाग्योपजीविता और अंधविश्वासों की जड़ काट कर आधुनिक बुद्धिवादी मूल्यों को महत्त्व दिया। पत्रों ने विगत के अनुभवों और अनुभूतियों पर तर्कपूर्ण दृष्टि डाल कर इहलौकिक चिंतन को महत्त्व दिया। नारी-समस्याओं के प्रति उनका रवैया सहानुभूतिपूर्ण और प्रगतिशील रहा।

अतः हिन्दी पत्रकारिता ने समाज को पंगु बना रहे कुसंस्कारों और अंधपरंपराओं को अनावृत्त कर उनसे टक्कर ली। सामाजिक बहिष्कार के डर से वह समाज की दुर्बलताओं पर चोट करने से नहीं रुकी। उसने टूटे-मूल्यहीन समाज की मनोदशा का सजीव चित्रण कर उसे आत्म-विश्लेषण और शोधन के लिए प्रेरित किया। पत्रकारिता की प्रासंगिकता उसकी गहरी जीवन संपृक्ति में है।

राष्ट्रीय नवजागरण का पत्रकारिता को प्रदेय- हिन्दी पत्रकारिता को राष्ट्रीय स्वरूप, जीवंत सार्थकता, लोक व्यापक आधार, आधुनिकता एवं सुसंस्कृतता प्रदान करने का बहुत कुछ श्रेय नवजागरण को दिया जा सकता है। रेनेसाँ काल में पत्रकारिता में कुछ श्रेष्ठ मूल्य स्थापित हुए थे।

साहसिक राष्ट्रीय परंपरा- जागरण काल में पत्रकारिता में व्यावसायिक हथकंडों, सस्ते अश्लील प्रचार-साधनों और प्रलोभनों से हट कर एक ऐसी राष्ट्रीय पत्र और पत्रकारों की अटूट श्रृंखला प्रारंभ हुई जो राजभक्ति और देशभक्ति को दो विपरीत छोर मान कर अंग्रेजी नीतियों की धज्जियाँ उड़ा कर रख देती थी। नव राष्ट्रीय चेतना ने उनमें शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार से टक्कर लेने का साहस और दृढ़ता भर दी थी जिसके कारण दमन-दबाव से घबरा कर उनका स्वर दबा नहीं, उनकी हुंकार में विद्रोह की गूँज गहरी होती गयी थी।

वीरोचित स्वाभिमान युक्त जीवन- पत्र और पत्रिकाओं का केन्द्रीय बिंदु स्वावलंबन और स्वाभिमान के साथ सिर उठाकर जीना, बोलना और स्वाधीनता के लिए जूझना है इनके शब्द-शब्द में छलछलाता हुआ राष्ट्राभिमान, संघर्ष-दमन-विफलता से हट कर मुकाबला करने की शक्ति, मिशनरी स्पिरिट एवं वीरोचित समर्पण के लिए आह्वान है, "देशीय संपादकों,। सावधान। कहीं जेल का नाम सुनकर कर्तव्य -विमूढ़ न हो जाना।--हाकिमों के जिन अन्यायपूर्ण आचरणों से गवर्नमेंट पर सर्वसाधारण की श्रद्धा हो सकती है उसका यथार्थ प्रतिवाद करने में यदि जेल तो क्या द्वीपांतरित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है। क्या इस सामान्य विभीषिका से हम अपना कर्त्तव्य छोड़ बैठें ?"

सत्ता को चुनौती- पत्र-पत्रिकाओं ने ललकार कर चुनौतीपूर्ण भाषा में अंग्रेजी शासन के हर अन्याय, उत्पीड़न और हर गलत कदम के विरुद्ध आवाज उठायी थी। नेटिव प्रेस रिपोर्टों के अध्ययन से यह महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि तत्कालीन पत्रकारिता-सामग्री में कितनी धधकती हुई विद्रोह की आग सुलग रही थी।

मानवतावादी चिंतन- जागरण काल में ईश्वरीय सत्ता और पारलौकिक चिंतन को छोड़कर टूटते-जूझते निराश मानव के संघर्षों, महत्वाकांक्षा और अन्तों को मुखर किया गया। पत्रकारिता सामग्री में भी मानवतावादी अनुभूतियों और संदर्भों को लेकर समझने-समझाने की चेष्टा की गई।

आधुनिकता और अतीत के प्रति सम्मोहन- तत्कालीन पत्रकारिता आधुनिकता की

विसंगति से अछूती रह कर भी अपनी प्रगतिशीलता, यथार्थपरक दृष्टिकोण तथा राष्ट्रीय बोध में नितांत आधुनिक है। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में गौरवपूर्ण सांस्कृतिक विरासत के प्रति भी गहरा लगाव देखने को मिलता है। जागरण के कारण पत्रकारिता में इहलौकिक चिंतन और दृष्टिकोण स्फुरित हुआ। पत्रकारिता में आधुनिकता और परंपरा का स्वस्थ समन्वय और द्वन्द्व विद्यमान है जिसने आधुनिक मानसिकता का अंकुरण किया।

जातीय चिंतन एवं भाषा- 'जागरण काल' में पत्र-पत्रिकाओं में जातीय चिंतन तथा जातीय भाषा हिंदी के लिए एक दृढ़ संकल्प, एक निश्चित नीति तथा एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण का आग्रह दिखायी देता है। नवोत्थान ने पत्रकारिता में स्व धर्म-समाज-भाषा सुधार तथा स्वराष्ट्रोत्थान की प्रबल आकांक्षा जागृत कर दी थी। पत्र-पत्रिकाओं ने निज शिल्प-विद्या-वाणिज्य तथा निज उद्योग आदि को प्रोत्साहन दिया। इन्होंने हिन्दी को अदालतों, दफ्तरों तथा शिक्षा-संस्थाओं में जारी कराने के लिए जबरदस्त आंदोलन छेड़ दिया था।

प्रगतिशील तार्किक दृष्टिकोण- 'जागरण काल' की अधिकांश पत्रकारिता-सामग्री में निष्पक्ष संतुलित दृष्टि से सोचने-विचारने की प्रक्रिया विद्यमान है। पत्रकारों ने प्रामाण्यवाद के विरुद्ध अभियान छेड़ते हुए तर्क और प्रामाणिकता पर जोर दिया। उनमें प्रगतिशील-विश्लेषण तथा परिपक्व चिंतन की विशिष्टता तथा शास्त्रों की पूर्व स्थापित मान्यताओं और विश्वासों का पुनर्मूल्यांकन करने की ललक विद्यमान है।

बौद्धिक यथार्थवादी साहित्य- 'रेनेसाँ काल' में पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य युगीन जीवन की यथार्थ समस्याओं बेकारी, भुखमरी, नारी-जीवन की दुर्दशा आदि से संबद्ध हुआ। तत्कालीन सामाजिक शोषण एवं पाश्चात्य-प्राच्य संस्कृति के दोहरे मापदण्डों को भी सच्चाई के साथ प्रस्तुत किया गया।

कलात्मक साहस और भाषा-सामर्थ्य- नव जागरण ने हिन्दी पत्रकारिता में अद्भुत

कलात्मक साहस और जीवंत अभिव्यंजना शक्ति भर दी थी जिसके बल पर ही भारतेन्दु युग के पत्रकार जनता को प्रभावित और सत्ता को आतंकित करने में सफल हुए थे।

<u>प्रजातांत्रिक श्रेष्ठज्ञान का उन्मुक्त प्रकाशन-</u> भारतीय श्रेष्ठ ज्ञान-वैभव, अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं के उत्कृष्ट ज्ञानात्मक एवं रचनात्मक साहित्य का हिन्दी में अनुवाद प्रकाशित करके हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने इस ज्ञान को सर्वसुलभ बना दिया था। पत्रों में आधुनिक प्रजातांत्रिक मूल्यों और विचारधारा का विकास हुआ।

इस प्रकार नव-जागरण ने हिन्दी पत्रकारिता में स्वाधीनता, मातृभाषा और मातृभूमि के लिए पूर्ण समर्पण की तड़प पैदा कर दी थी। साहित्य और पत्रकारिता के नैतिक, बौद्धिक तथा सौन्दर्य मापदण्डों में बदलाव आया। उसी के प्रभाव से आगामी पत्रकारिता एवं साहित्य में वैज्ञानिकता, बौद्धिक चिंतन तथा लोक-मंगल की भावना को बढ़ावा मिला। राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए सामान्य जनता उद्वेलित-जागृत होकर जन-आंदोलन के रूप में संगठित हुई।

× × ×
× × × × ×

राष्ट्रीय नवजागरण
और
हिन्दी पत्रकारिता
[1851—1900 ई०]

[अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० [हिन्दी]
उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]

1987

हिन्दी विभाग,
अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय,
अलीगढ़-202001

निर्देशक :
प्रो० (डा०) रवीन्द्र भ्रमर
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,

शोध कर्त्री :
मीरा रानी
एम० ए० एम० फिल०

प्राक्कथन

भारत में "राष्ट्रीय नवजागरण" (रेनेसाँ) की अवधारणा उन्नीसवीं शती के राष्ट्रीय - उद्बोधन एवं जातीय मनोभूमि के निर्माण से संबद्ध रही है। "नवजागरण" की उद्दाम लहर ने राष्ट्रीय जीवन के प्रत्येक पहलू-धर्म, राजनीति, साहित्य समाज तथा पत्रकारिता आदि का स्पर्श कर उसकी दिशा ही बदल दी थी। "रेनेसाँ-काल" (लगभग 1851-1900) में नवजागरण, पत्रकारिता और साहित्य की विकास भूमियाँ परस्पर प्रतिबद्ध थीं। यदि पत्रकारिता को राष्ट्रीयता ने प्रेरित किया तो पत्रकारिता ने भी राष्ट्रीयता के विकास के लिये अनुकूल भूमि तैयार की। इस प्रकार राष्ट्रीयता के विकास के साथ पत्रकारिता का भी अपेक्षित विकास हुआ।[1]

"हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से "राष्ट्रीय नवजागरण" (1851-1900 ई०) के शोधात्मक मूल्यांकन के प्रयास अत्यधिक विरल हो रहे हैं। "भारतीय रेनेसाँ" संबंधी अधिकांश शोध कार्य इतिहास, पत्रकारिता, राजनीति आदि अनुशासनों के अन्तर्गत हुए हैं। ये कार्य हिन्दी पत्रकारिता के परिप्रेक्ष्य में नहीं किये गये। अधिकांश अध्येताओं तथा इतिहासकारों ने "राष्ट्रीय नवजागरण" का आंशिक विवेचन अंग्रेजी भाषा में, अंग्रेजी इतिहासों, प्रामाणिक ऐतिहासिक दस्तावेजों अथवा कतिपय अंग्रेजी पत्रों के आधार पर किया है। अतः प्रस्तुत शोध-प्रबंध में शोधकर्ता का यह विनम्र प्रयास रहा है कि हिन्दी-साहित्य-शोध के अन्तर्गत "राष्ट्रीय नवजागरण" में हिन्दी

---

1. डा० कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, पृ० 57

पत्रकारिता की अविस्मरणीय भूमिका तथा हिन्दी पत्रकारिता के पल्लवन में नवजागरण के अवदान का वैज्ञानिक दृष्टि से सैद्धान्तिक मूल्यांकन किया जाय।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में पत्रकारिता विधा को वह गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त नहीं है जो अन्य साहित्यिक विधाओं- कहानी, नाटक कविता, रिपोर्ताज तथा आलोचना आदि को है जबकि आधुनिक हिन्दी साहित्य का जन्म-पोषण और विकास पत्रकारिता की क्रोड़ में हुआ है। प्रस्तुत संदर्भ में डा० रमा सिंह का यह कथन कितना औचित्यपूर्ण है," एक विचित्र सी बात है कि जब हम हिन्दी के साहित्यिक विकास की बात करते हैं तो घिसी-पिटी लीकों में लिखे गये हिन्दी-साहित्य के इतिहास का हवाला देते हैं। कहीं कोई नई दृष्टि नहीं, कहीं अनावृत तथ्यों को जानने की जिज्ञासा नहीं, कहीं साहित्य-सर्जना को उन तथ्यों से जोड़ने का प्रयास नहीं जिनमें युग और परिवेश एक प्रखर वाणी के द्वारा अभिव्यक्त हुआ था। ऐसी ही एक प्रवृत्ति धारा हिन्दी के उन प्रारम्भिक अखबारों और पत्रों में देखने को मिलती है जो सिर्फ कागजों पर छप कर जिये थे।"[1]

आज पत्रकारिता, साहित्य से पृथक्, एक स्वतंत्र अनुशासन, व्यवसाय तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान का रूप ले चुकी है किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के "जागरण युग" में पत्रकारिता और साहित्य परस्पर अभिन्न एवं सहिष्णु धाराएँ थीं। उनकी अंतरंगता एवं संपृक्तता एक ऐतिहासिक यथार्थ रही है। इस संक्रमण-युग की हिन्दी-पत्रकारिता ने आधुनिक हिन्दी साहित्य, राष्ट्रीय-जागरण, स्वाधीनता-आंदोलन और राष्ट्रीय पत्रकारिता को मजबूत आधार-भित्ति, आदर्श प्रतिमान तथा सुस्थिर दिशा प्रदान करने

---

1. कादम्बिनी (मासिक) सितंबर, 1984, पृ० 84

में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

अतः प्रस्तुत विषय की महत्ता और उपयोगिता के आधार पर कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता जैसे ऐतिहासिक अल्प ज्ञात विषय पर हिन्दी साहित्य के अन्तर्गत शोध-कार्य क्यों आवश्यक था, साथ ही यह भी जरूरी था कि साहित्य की उपेक्षित विधा "पत्रकारिता" को सम्मानीय गौरवपूर्ण रूप में पुनः प्रतिष्ठित किया जाए।

राष्ट्रीय नवजागरण और हिन्दी पत्रकारिता के अनुशीलन और अनुसंधान-कार्य में निम्नलिखित विद्वानों का प्रशंसनीय योगदान रहा है-

बाबू राधा कृष्ण दास -	"हिन्दी भाषा के सामयिक पत्रों का इतिहास" [1894]
बाबू बाल मुकुंद गुप्त-	"संवाद पत्रों का इतिहास"[1905 ई0] तथा "बाल मुकुंद गुप्त निबंधावली"
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-	"हिन्दी-साहित्य का इतिहास"
डा0 अम्बी सागर पाण्डेय-	"आधुनिक हिन्दी साहित्य"
श्री रामधारी सिंह दिनकर-	"संस्कृति के चार अध्याय"
डा0राम रतन भटनागर-	"राइज एंड ग्रोथ ऑफ हिन्दी जर्नलिज्म"
डा0राम विलास शर्मा-	"भारतेन्दु-युग"
डा0 कृष्ण बिहारी मिश्र-	कलकत्ते की हिन्दी पत्रकारिता का उद्भव और विकास [शोध प्रबंध] "हिन्दी पत्रकारिता" शोध से प्रकाशित

डा०अंबिका प्रसाद वाजपेयी-	"समाचार पत्रों का इतिहास"
विमला रानी-	"पत्र-पत्रिकाओं का हिन्दी में योगदान" [शोध प्रबंध]
डॉ० वेद प्रताप वैदिक-	"हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम"
केशव नारद-	"प्राचीन और नवीन मध्य प्रदेश में हिन्दी-पत्रकारिता एक शताब्दी" [शोध प्रबंध]
~~राम चमार शर्मा-~~ डा० अर्जुन तिवारी	"स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी पत्रकारिता [पूर्वी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में]
डा० मनोहर प्रभाकर-	"राजस्थान में हिन्दी-पत्रकारिता"

प्रस्तुत विषय के संदर्भ में उपर्युक्त शोध-ग्रंथों का विवेचन करने पर इनके कुछ अभाव सामने आते हैं - पूर्ववर्ती हिन्दी-साहित्य और पत्रकारिता संबंधी इतिहास ग्रंथों का प्रमुख उद्देश्य साहित्य अथवा पत्रकारिता के ऐतिहासिक विकास का अनुशीलन करना था अतः उपर्युक्त विख्यात साहित्यकार तथा पत्रकारों ने भारतेंदु युगीन पत्रकारिता का हिन्दी साहित्य के विकास के परिपार्श्व में ही संक्षिप्त गंभीर विवेचन किया। यही उनका अभीष्ट भी था। डा० कृष्ण बिहारी मिश्र ने अपने शोध प्रबंध "हिन्दी पत्रकारिता में केवल बंगाल से प्रकाशित कुछ हिन्दी पत्रों के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन को विवेचित किया है किन्तु हिन्दी की अन्य प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका को बिल्कुल छोड़ दिया गया है। डा० वेद प्रताप वैदिक द्वारा संपादित वृहद ग्रंथ में केवल एक-दो पैराग्राफ में परोक्ष रूप में राष्ट्रीय आंदोलन में पत्रकारिता की नीति और दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है। अन्य ग्रंथों में भी "भारतीय रेनेसाँ" [1851-1900] का हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से शोधपरक मूल्यांकन नगण्य रहा है।

अतः हिन्दी-साहित्य और पत्रकारिता के पूर्ववर्ती शोधकार्यों में प्रस्तुत विषय के अभाव को देखते हुए प्रस्तुत शोध प्रबंध के औचित्य और महत्व को नकारा नहीं जाना चाहिये ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में सात अध्याय हैं । पहले अध्याय के अन्तर्गत "राष्ट्रीय नवजागरण" [रेनेसाँ] के परंपरागत एवं आधुनिक स्वरूप, यूरोपीय एवं भारतीय रेनेसाँ के संदर्भ में उनके वैशिष्ट्य, प्रवृत्तियों और प्रेरक तत्वों आदि की तापेक्षिक समीक्षा करने की चेष्टा की गई है । भारतीय नवजागरण के विविध स्त्रोतों, सोपानों, प्रेरक शक्तियों की मीमांसा गहराई से की गई है ।

दूसरे अध्याय में, पत्रकारिता के अतीत तथा वर्तमान परिदृश्य, प्रेम, आदर्श प्रतिमान, उद्देश्यों एवं कार्यों का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है । प्रारम्भ से लेकर 1850 ई0 तक की पत्रकारिता के विकास और प्रारंभिक हिन्दी पत्रकारिता का एक संक्षिप्त चित्र रेखांकित किया गया है ।

तीसरे अध्याय में, विवेच्य कालीन [1851-1900] हिन्दी-पत्रकारिता के विविध आयामों तथा विकास का अनुशीलन किया गया है । पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित संपादकीय-सामग्री तथा समाचारों के परिप्रेक्ष्य में राष्ट्रीय जागरण को विश्लेषित किया गया है ।

चौथे अध्याय में, सांस्कृतिक नवोत्थान अर्थात् धार्मिक एवं सामाजिक जागरण के विविध पहलुओं की गहराई से जाँच पड़ताल की गई है ।

पाँचवे अध्याय में, राजनीतिक एवं आर्थिक उद्बोधन में हिन्दी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका और उसके अनुपम योगदान का सारगर्भित प्रामाणिक विवेचन प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है ।

छठे अध्याय में, तत्कालीन पत्रों में प्रकाशित साहित्य की विविध

विधाओं—नाटक, निबंध, कथा, कविता, रिपोर्ताज तथा ज्ञानात्मक साहित्य आदि के माध्यम से राष्ट्रीय नवचेतना को व्याख्यायित किया गया है। उस पराधीन युग के संपादक-साहित्यकार राष्ट्रीय चेतना को किन रूपों में अभिव्यक्त कर सकते थे, कैसे उन्होंने इसे आगे बढ़ाया ? इसको परिलक्षित किया गया है।

सातवें अध्याय में, "भारतीय रेनेसाँ" ने हिन्दी पत्रकारिता को किस रूप में प्रभावित किया ? क्या उसकी मौलिक देन रही ? किस प्रकार उसने हिन्दी पत्रकारिता को राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान किया ? इत्यादि प्रश्नों को तर्क संगत ढंग से उठाकर विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत प्रबंध के "उपसंहार" में, सम्पूर्ण शोध प्रबंध की संरचना, सार एवं उपलब्धियों का आकलन किया गया है परिशिष्ट में राष्ट्रीय अभिलेखागार से प्राप्त पत्रकारिता तथा विषय संबंधी नेटिव प्रेस रिपोर्टों के गुप्त दस्तावेजों की महत्त्वपूर्ण सामग्री और प्रकाशित एवं अप्रकाशित आधार एवं सहायक स्त्रोतों की सूची दी गई है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध में राष्ट्रीय नवजागरण के विविध पहलुओं को विवेचित करने के लिए नई दिल्ली स्थित नेहरू मेमोरियल म्यूजियम एवं लाइब्रेरी में उपलब्ध "हिन्दी प्रदीप", "ब्राह्मण", भारतजीवन", "समय विनोद", "हिके गजट" आदि पत्रों की माइक्रोफिल्म का मूल सामग्री के रूप में उपयोग किया गया है। नई दिल्ली में स्थित राष्ट्रीय अभिलेखागार (National Archives) के गुप्त दस्तावेजों तथा अन्य मूल प्रोसिडिंग्स से पत्रकारिता और नवजागरण संबंधी महत्त्वपूर्ण सामग्री ली गयी है। बनारस की नागरी प्रचारिणी सभा, भारतकला भवन तथा इलाहाबाद-आगरा के पुस्तकालयों आदि में उपलब्ध 19 वीं शताब्दी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं

की संचिकाओं से प्राप्त मौलिक सामग्री को भी विषयानुसार प्रस्तुत किया गया है।

19 वीं शताब्दी की पत्र-पत्रिकाओं के सामग्री संचयन के लिए शोधकर्ता को अनेक स्थानों की यात्रा करनी पड़ी। वस्तुतः हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की पुरातन सामग्री का संचयन बहुत अधिक धन, श्रम और समय की अपेक्षा रखता है। लेखिका को स्वयं प्रबंध को अनेक कमियों का अहसास है तथापि शोध प्रबंध को अधिक तथ्य परक एवं प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत करने का यथा संभव प्रयास किया गया है। इस कठिन कार्य में यदि मेरे पति प्रो० अशोक बत ने अपेक्षित सहयोग प्रदान न किया होता तो इस शोध प्रबंध के पूर्ण करने की कल्पना करना कठिन होता।

प्रस्तुत शोध प्रबंध शोध और समीक्षा दोनों दृष्टि से लिखा गया है। इसमें ऐतिहासिक संदर्भ और दृष्टिकोण की अपेक्षा साहित्यिक पहलू को अधिक उभारा गया है।

प्रारम्भ में मैं उस सर्वशक्तिमान परमेश्वर की महत् कृपा दृष्टि को नमन करना चाहती हूँ जो असंभव कार्यों को भी सहज बना देती है।

वरिष्ठ आचार्य, प्रख्यात कवि और इस शोध प्रबंध के निर्देशक प्रो० [डा०] रवीन्द्र भ्रमर के प्रति श्रद्धावनत हूँ। जिनके निर्देशन तथा ज्ञान-प्रकाश ने प्रस्तुत शोध प्रबंध को दिशा दृष्टि प्रदान की। उन्होंने अनवरत सहयोग देकर सहज आत्मीयता से मेरा मनोबल और उत्साह सदैव बढ़ाये रखा और इस श्रम साध्य कार्य को पूर्ण करने में प्रेरणा और दृष्टि प्रदान की।

प्रस्तुत विषय पर शोध कार्य करने की जो प्रेरणा और अपेक्षित सहयोग प्रो० हुँवर पाल सिंह से मिला उसके लिए मैं उनके प्रति हृदय

मैं आभारी हूँ। अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में इतिहास के विभागाध्यक्ष प्रो० इरफान हबीब, डा० आर० के० द्विवेदी तथा डा० इकबाल हुसैन ने जिस तत्परता तन्मयता देकर जो सहयोग दिया उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। उर्दू विभाग में रीडर श्रीमती संतोष नाथ, उर्दू विभाग के डा० नादिर अली खान तथा पत्रकारिता के विभागाध्यक्ष श्री दुर्रानी साहब के सुझावों के प्रति आभार प्रकट करती हूँ। हिन्दी विभाग के डा० शशिभूषण साहब के सहयोग के प्रति भी कृतज्ञ हूँ। नौगाना आजाद लाइब्रेरी के अधिकारी वर्ग, रज्वी साहब, श्रीमती साहिब, श्रीमती तथा मिस० रशीम अली को धन्यवाद देना चाहती हूँ। नेहरू लाइब्रेरी एवं राष्ट्रीय अभिलेखागार नई दिल्ली के अधिकारियों के प्रति भी आभार प्रकट करती हूँ।

अपने पति प्रो० आलोक धन के अनवरत सहयोग और आत्मीयता को किन शब्दों में वर्णित करूँ। जिठानी कुसुम राजपूत, भाभी शीला प्रकाश, बहन वारु, बहनोई दीप जी, बेटी शिवाक्षा तथा सोनाक्षा द्वारा लाइब्रेरी संकलन में दी गयी अपेक्षित सहायता और स्नेह को भुलाना सम्भव नहीं है। और अन्त में, उन सभी महानुभावों, शुभाकांक्षियों, सहयोगियों तथा संस्थाओं को धन्यवाद देना चाहती हूँ जिनके सहयोग से प्रस्तुत शोध प्रबंध पूरा हो सका। किशोरी डा० रामेश्वर दयाल और शूरवीर सिंह "राघव" की भी आभारी हूँ।

मीरा रानी

विषयानुक्रमणिका

6.1.1 आधुनिक गद्य और गद्य वृत्तों का उदय

2 नाटक

2.1 प्रतीकवादी प्रहसन

2 हास्यव्यंग्य प्रधान एकांकी

3 मनोरंजक संवाद-वार्ता

4 पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटक

3 कथा-साहित्य

3.1 उपन्यास

2 कहानी

4 निबंध

4.1 मनोवैज्ञानिक निबंध

2 आत्म व्यंजक

3 समीक्षात्मक

4 राजनीति-संस्कृति प्रधान

5 समालोचना

5.1 पुस्तकों-पत्रिकाओं की परिचयात्मक समीक्षा

2 आधुनिक विधाओं की निर्णयात्मक समीक्षा

3 साहित्य सिद्धांतों का पुनर्मूल्यांकन

6 रिपोर्ताज आदि

7 यात्रा-वृत्त

8 जीवनी तथा आत्मकथा

9 कविता

6.2 ज्ञानात्मक साहित्य

6.2.1 ज्ञानात्मक लेख एवं निबंध

2 दर्शन धर्म संबंधी लेख

3 विज्ञान संबंधी

19वीं शती के प्रमुख हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों की प्रतिलिपियाँ

	पत्र-पत्रिकाएँ	स्थान	प्रतिलिपि तन्	पृष्ठ
1.	उदन्त मार्तण्ड	कलकत्ता	30 मई, 1826	95
2.	बुद्धि प्रकाश	आगरा	9 मार्च, 1853	111
3.	मालवा अखबार	इन्दौर	17 मई, 1653	101
4.	समाचार सुधावर्षण	कलकत्ता	8 जनवरी, 1856	107
5.	कविवचन सुधा	बनारस	आश्विन 15, सं0 1924	116
6.	हरिश्चन्द्र चन्द्रिका	"	जून, 1874	"
7.	बालाबोधिनी	"	1 जनवरी, 1875	"
8.	मर्यादा परिपाटी समाचार	आगरा	जनवरी, 1872	108
9.	काशी पत्रिका	बनारस	–	125
10.	सभाविनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार	नैनीताल	13 मार्च, 1876	124
11.	हिन्दी प्रदीप	प्रयाग	1 मार्च, 1878	125
12.	बिहार बंधु	पटना	3 मार्च, 1878	127
13.	सारसुधानिधि	कलकत्ता	20 जनवरी, 1879	134
14.	मित्रविलास	लाहौर	4 अक्टूबर, 1880	220
15.	भारतबंधु	अलीगढ़	19 अगस्त, 1881	197
16.	आनन्द कादम्बिनी	मिर्जापुर	भाद्रपद सं0 1938 [1881]	318
17.	प्रिय पत्रिका	बाँकीपुर	फाल्गुन, संवत् 1940 [1883]	180
18.	भारत जीवन	बनारस	3 मार्च, 1884	125
19.	ब्राह्मण	कानपुर	15 जौलाई, 1884	[illegible]
20.	हिन्दी बंगवासी	कलकत्ता	27 जौलाई, 1691	129
21.	सर्वहित	बूँदी	1 मार्च, 1893	127
22.	सज्जनविनोद	आगरा	9 अप्रैल, 1894	108
23.	रसिक पत्रिका	कानपुर	20 अप्रैल, 1898	132
24.	रसिक मित्र	"	25 अप्रैल, 1898	132
25.	सरस्वती	प्रयाग	फरवरी, 1900	133
26.	हिन्दुस्थान	कालाकाँकर	18 नवंबर, 1908	126

1. सन् 1657 का एक इतिहास 315

×:×:×

पहला अध्याय

राष्ट्रीय नवजागरण : परिचय एवं स्वरूप

१- नवजागरण (रेनेसाँ) क्या है ?

२- यूरोपीय और भारतीय नवजागरण : एक तुलनात्मक दृष्टि

३- भारतीय नवजागरण : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1.1 नवजागरण क्या है ?

नवजागरण आधुनिक युग का अरुणोदय है। उषाकाल में सुकोमल प्रकाश रश्मियाँ जिस प्रकार सुषुप्त मानव-सृष्टि के लिए पुनर्जागरण का संदेश लेकर आती हैं, "नवजागरण" का प्रभात काल भी अज्ञानांधकार में सोये राष्ट्रों के जनजीवन में नव-स्फूर्त-चेतना और ज्ञान का अरुणिम आलोक विकीर्ण कर देता है।

1.1.1 हिन्दी में "नवजागरण" के लिए अनेक समानार्थी शब्द "पुनर्जागरण" "पुनरुत्थान", "नवोत्थान", "पुनरुज्जीवन", "नवजीवन", "नवयुग" तथा "नवजागृति" आदि प्रचलित रहे हैं किन्तु आधुनिक संदर्भ में "नवजागरण" का प्रयोग अंग्रेजी के "रेनेसाँ" [Renaissance] शब्द के पर्याय के रूप में रूढ़ हो गया है। "रेनेसाँ" फ्रांसीसी शब्द "रेनायत्रे" [Renaitre] से गृहीत[1] है। मूलतः इन अंग्रेजी-फ्रांसीसी शब्दों की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के "रेनासोर" [Renascor] शब्द से हुई है जिसका इस भाषा में शब्दार्थ - "पुनर्जन्म" या "पुनर्जागरण" [to be born again, rebirth] है। इटेलियन भाषा में भी "रेनेसाँ" को इसी अर्थ में "कला एवं ज्ञान का पुनर्जागरण या रिनेसिमेंटो [Rinascmento] कहा गया है।[2]

---

1. 'The term Renaissance was borrowed from the French language in 1840'- Henry S.Lucas, 'The Renaissance and Reformation', page 3.

2. Encyclopaedia Americana (1966) Volume 23, page 367-B.

संस्कृत भाषा का "जागरण" शब्द "जागृ" धातु में ल्युट प्रत्यय के योग से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ "जागना या निद्रा का अभाव है"।[1]

हिन्दी में भी "जागरण" का सामान्य अर्थ "जागते रहने की अवस्था या भाव है। लाक्षणिक अर्थ में जागरण वह अवस्था है जिसमें किसी जाति देश, समाज आदि को अपनी वास्तविक परिस्थितियों और उनके कारणों का ज्ञान हो जाता है और वह उन्नति और रक्षा के लिए सचेष्ट हो जाता है"।[2]

उपर्युक्त नवजागरण [रेनेसाँ] के अर्थों में "नवजीवन" या "पुनर्जागरण" की व्यंजना प्रधान है। अतः "नवजागरण" मानव या राष्ट्र की आत्मा, मन, मस्तिष्क की चैतन्यावस्था का प्रतीक है। यह मानव-जीवन और विचार जगत की समस्त गतिविधियों में नव-चेतना और नव-जीवन-शक्ति का स्पंदन है।

भारतीय नवजागरण के मूल आशय, प्रवृत्तियों और ऐतिहासिक संदर्भ को गहराई से विश्लेषित करने के लिए सर्वप्रथम यूरोपीय रेनेसाँ-धारा का आकलन करना उपयोगी होगा।

यूरोपीय इतिहास को विवेचित करते हुए प्रायः अधिकांश इतिहासकार समवेत रूप में "रेनेसाँ" को एक विशिष्ट काल [लगभग 1300 से

---

1. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, [तृतीय संस्करण] 1967, पृष्ठ 467
2. मानक हिन्दी कोश दूसरा खंड, पृष्ठ 353

1600 ई0]के मध्य हुआ एक बौद्धिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन मानते हैं। ऐतिहासिक परंपरागत मान्यता है कि यह आंदोलन 14वीं सदी में इटली से "कला और साहित्य की पुनर्स्थापना" के रूप में फ्रांसिस्को पेट्रार्क तथा जियोवानी बोकासियों आदि के द्वारा प्रारम्भ हुआ और पन्द्रहवीं शताब्दी में पूर्णतः फल-फूल कर, यह 16 वीं सदी तक आल्पस पर्वत पार कर सम्पूर्ण यूरोप में फैल गया था।[1]

किन्तु आधुनिक अवधारणा के अनुसार रेनेसाँ उन ऐतिहासिक आर्थिक- सांस्कृतिक प्रक्रियाओं का क्रमिक विकास मात्र है, जिसके पूर्व चिह्न नवीं सदी के कैरोलिंगियन पुनर्जागरण, 10वी शताब्दी के ओटोनियन [Ottonian] पुनर्जागरण तथा पियर अबेलार्ड [1079-1142] पीटर लोम्बार्ड आदि नैयायिकों के तार्किक चिंतन में दृष्टिगोचर होने लगे थे। "रेनेसाँ" के नव-स्वरूप और आधुनिक दृष्टि का पूर्वाभास रोमन सम्राट फेड्रिक द्वितीय [1212-50] की धर्म निरपेक्ष स्वतंत्र दृष्टि, दांते अलीगियरी [1265-1321] कृत "डिवाइन कॉमेडी" की वैयक्तिकता और देशज भाषा, रोजर बेकन के प्रयोगिक दार्शनिक चिंतन तथा गेटो [Giotto] आदि के चित्रों से मिलने लगा था। आधुनिक आर्थिक इतिहास समीक्षक आरमेंडो सपोरी तथा फ्रेड्रिक सी0लेन का भी मत है कि यूरोप में पुनर्जागरण को प्रोत्साहित करने वाली आर्थिक क्रियाएँ प्रस्फुटन 11-12 सदी में क्रूसेड युद्ध के बाद से ही होने लगा था।[2] यूरोप में नागरिक-संस्कृति के विकास,

1. Bush, M.L. Renaissance and Reformation and the Outer World Page 149.

2. Enclopaedia Britannica (Edition 15th) Page 662.

व्यापारिक पूंजीवादी व्यवस्था के आविर्भाव, प्रजातंत्रीय राज्य-व्यवस्था तथा मध्यवर्गीय संस्कृति के उदय आदि के फलस्वरूप पुनर्जागरण की बौद्धिक पृष्ठभूमि निर्मित हुई।

आधुनिक संदर्भ और अर्थ में "रेनेसाँ" शब्द का प्रयोग सम्भवतः पहली बार बाल्याक ने 1829 ई0 में अपनी नाट्य कृति 'Balde sceaus' में किया था[1]। इस शब्द को आधुनिक स्वरूप 19वीं सदी के जूलियस मेशला [Juleus Michelet] जॉन एडिंग्टन साइमंड [1840-93] तथा मुख्यतः येकोब बुर्कहर्ट [Jakob Burckhardt] आदि ने प्रदान कर इसके आधुनिक अध्ययन शोध की नींव रखी।

यूरोप में 15वीं सदी [the quattrocento] के अंत और 16वीं सदी के प्रारम्भ [the cinquecento] तक रेनेसाँ का परंपरागत अर्थ "लेटिन-ग्रीक साहित्य एवं कला के पुनर्जन्म" तक सीमित था और यह विश्वास व्यक्त किया जाता था कि लेटिन-ग्रीक-जीवन तथा ज्ञान ही सच्ची संस्कृति का उद्गम है। किन्तु आधुनिक इतिहासकार रेनेसाँ का अर्थ "ग्रीक-लेटिन साहित्य एवं कला का प्रत्यावर्तन" मात्र ही नहीं करते इसे तो वे रेनेसाँ का केवल एक तथ्य मानते हैं।

2. वस्तुतः रेनेसाँ यूरोपीय समाज के मध्ययुगीन दृष्टिकोण, जनमान्यताओं और चिंतन धारा में आमूल परिवर्तन की वैचारिक प्रक्रिया या आंदोलन था।

---

1. Chamber's Encyclopedia Volume 11, Page 591 .

जॉन एडिंगटन साइमंड के शब्दों में [1]

" रेनेसाँ को यूरोपीय प्रज्ञा के सर्वाङ्ग पूर्ण आंदोलन के अर्थ में समझा जायेगा जो आत्मिक मुक्ति लाने वाला, विवेक और इन्द्रिय ज्ञान के सहज अधिकारों में पुनः विश्वास प्रस्थापित करने वाला, मानव के निवास-स्थान के रूप में इस ग्रह पर विजय प्राप्त करने वाला तथा व्यक्ति और राज्य दोनों के लिए ऐसे सैद्धान्तिक नियमों को निर्माण करने वाला है जिसका स्वरूप मध्य युग के नियमों से भिन्न है।[1]

आज आधुनिक इतिहासकार "रेनेसाँ" को आधुनिक काल और महान मध्ययुग के बीच का संक्रान्ति काल [Transition Period] मात्र मानते हैं। हेनरी एस०लूकस ने इसके आधुनिक अर्थबोध को परिभाषित करते हुए कहा -[2]

"रेनेसाँ, 1300 से 1600 ई० के मध्य में प्राप्त यूरोपीय समाज की उन सांस्कृतिक उपलब्धियों को दर्शाता है जो आधुनिक और मध्ययुग के बीच का संक्रमण काल कहलाता है। इसमें न केवल कला, संगीत साहित्य और विज्ञान के क्षेत्र में महत्तर लक्ष्य प्राप्त किये वरन् जीवन के आर्थिक आधार, समाज के ढाँचे और राज्यों की व्यवस्था में दूरगामी परिवर्तन हुए।"[2]

---

1. 'It will be considered as implying a comprehensive movement of the European intellect and will towards self-emancipation, towards reassertion of the natural rights of the reason and the senses, towards the conquest of this planet as a place of human occupation, and towards the formation of regulative theories both for state and individual differing from those of Medieval Times'- Symonds, J.A., Encyclopedia Britannica (Edition IX) Volume XX Page 38.
2. The term 'Renaissance'-it signifies the cultural achievement of European society between 1300 and 1600 which mark the passage from the Middle Ages to the modern period. These includes not only far reaching changes in the economic bases of life, the structure of society and the organisation of states'. Lucas, S.Henry, 'The Renaissance and the Reformation,' Page 3.

उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट है कि यूरोपीय रेनेसाँ सर्वाङ्ग मानवीय ज्ञान-सम्पदा, सर्जनात्मक कला-शक्तियों एवं बहुमुखी वैज्ञानिक उपलब्धियों का बीजवपन काल था। यह मध्य युग से आधुनिक काल में पदार्पण था।

रेनेसाँ की संक्रमण कालीन संस्कृति में नवीन मौलिक चिंतन और मध्ययुगीन जीवन-मूल्य बहुत दूर तक साथ-साथ चला करते हैं। इसलिए आधुनिक काल के आगमन और मध्ययुग के अवसान के बीच कोई स्पष्ट विभाजक काल-रेखा नहीं खींची जा सकती। वालेस के० फर्गुसन का भी मत है- " रेनेसाँ काल को अव्यवस्थित परिवर्तनों का युग परिभाषित किया जा सकता है जिसमें काफी कुछ अभी भी मध्ययुगीन था, तो काफी कुछ में आधुनिक मान्यताएँ पहचानी जा सकती थी और काफी कुछ अपने आप में विलक्षण था। यह महान मध्ययुग और आधुनिक काल के बीच का सेतु काल है,लेकिन साथ ही यह एक सांस्कृतिक युग था जिसकी अपनी पहचान थी क्योंकि यह काल राजनीतिक, सामाजिक और बौद्धिक उत्तेजनाओं से पूर्ण था।"[1]

उपर्युक्त कथन भारतीय नवजागरण के संदर्भ में भी सटीक एवं सत्य प्रतीत होता है। यूरोप की 14 वीं शताब्दी के समान भारत में

---

1. "So far as it can be defined, the age of the Renaissance was an age of Chaotic changes, in which there was recognizably modern and much also that was peculiar to itself. It bridged the gap between the High Middle Ages and modern times, but it was also a culture period in its own right, filled with a great political, social and intellectual ferment"- Wallace K.Ferguson, A survey of European civilization,(Third Edition) Part one to 1660 Page 323.

19वीं शताब्दी सांस्कृतिक संक्रमण-काल की सदी कही जाती है जिसमें मध्ययुगीन जीवनादर्श तो विद्यमान थे ही, साथ ही इस नव युग में जनमानस नव-चेतना तथा नव- वैचारिक उद्वेलन का अनुभव करने लगा था जिसके फलस्वरूप परंपरागत एवं आधुनिक विचारधारा का अन्तर्द्वन्द्व जीवन, साहित्य, कला एवं पत्रकारिता आदि में प्रतिबिम्बित होने लगा था।

भारतीय विचारकों ने उन्नीसवी शताब्दी से लेकर वर्तमान कालीन भारत के समाजिक-सांस्कृतिक रूपान्तरण, पुनरुत्थान तथा नव विकास को "भारतीय नव-जागरण" के नाम से अभिहित किया है। जैसा कि पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि "नवजागरण" शब्द यूरोपीय 'रेनेसाँ' की तर्ज और अर्थ संगति पर गढ़ा गया है। डा० शिवदान सिंह चौहान ने "राष्ट्रीय नवजागरण" को इसी अर्थ-बोध को लेकर व्याख्यायित किया है -

"राष्ट्रीय जागरण से तात्पर्य अपने राष्ट्रीय अस्तित्व और एकता की साम्राज्य-विरोधी राजनीतिक चेतना या भावना का उत्पन्न हो जाना मात्र नहीं, इससे केवल इतना समझ लेना इसके अर्थ को अत्यन्त संकुचित कर देना है। हमारे राष्ट्रीय जागरण से मिलती-जुलती, किन्तु भिन्न ऐतिहासिक परिस्थितियों में एक धारा यूरोप के देशों में कई एक शताब्दियों पहले ही प्रवाहित हो चुकी है। औपचारिक में इस धारा को रिनेसाँ [Renaissance] कहते हैं जिसका इतिहास में रूढ़ अर्थ "सांस्कृतिक पुनर्जागरण" है।[1]

1. हिन्दी गद्य साहित्य, शिवदान सिंह चौहान, [तृतीय आवृत्ति] 1939 पृष्ठ 32

किन्तु भारतीय नवजागरण को केवल यूरोपीय रेनेसाँ से किये अनूदित अर्थों या उधार ली गई शब्दावली के माध्यम से ही नहीं समझा जाना चाहिए, इसकी जाँच-परख भारतीय साहित्यकारों, दार्शनिक एवं पत्रकारों आदि के स्वदेश परक दृष्टिकोण से भी की जानी चाहिए।

"भारतीय नवजागरण" यूरोपीय सभ्यता और आंग्ल शासन के राजनीतिक-प्रभुत्व के घात-प्रतिघात से उत्पन्न जन-आन्दोलन था। राष्ट्रीय कवि श्री रामधारी सिंह "दिनकर" इसे "नव मानवतावाद" के आंदोलन की संज्ञा देते हैं -

"पुनरुत्थान से मेरा तात्पर्य उस वैचारिक आंदोलन से है जो भारत और यूरोप के सम्पर्क के साथ प्रारम्भ हुआ था और जो कदाचित् आज भी चल रहा है। यह आंदोलन भारत में नयी मानवता के जन्म का आंदोलन है एवं उसके प्रवाह के साथ केवल यूरोपीय विचार ही भारत में नहीं आ रहे हैं बल्कि इस देश के बहुत से प्राचीन विचार भी नवीनता प्राप्त कर रहे हैं। पौराणिक कथाओं पर इस आंदोलन ने नयी आभा बिखेरी है और इसके आलोक में हमारे इतिहास की अनेक घटनाएँ एवं नायक नयी ज्योति से जगमगाने लगे हैं।"[1]

उपर्युक्त कथन में कवि "दिनकर" ने पुरातनता के पुनरुत्थान की ओर संकेत किया है। किन्तु उनका मत है कि पुरातन मूल्यों की पुनर्स्थापना आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में ही होनी चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया "जो

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण पृ0 538।
पुनर्उद्धृत 'प्रज्ञा' अक्टूबर 1970 पृष्ठ 49.

भी व्यक्ति आज के सत्य को अनादृत करके मृतकाल की मरी हुई बातों को दुहराता है, उसे हम पुनर्जागरणवादी या रिवाइवलिस्ट कहते हैं- किन्तु नवोत्थान में भी अतीत की बातें दोहरायी जाती हैं। जब नवोत्थान का समय आता है, जातियों के कुछ पुरातन सत्य दुबारा जन्म लेते हैं। यह पुनर्जागरण नहीं, सत्यों का पुनर्जन्म है।"[1]

अतः नवजागरण की चेतना सांस्कृतिक - राजनीतिक स्वरता की चुनौती जनमानस में जगाकर, उनकी सर्जनात्मक शक्तियों को उभार कर तथा अतीत के ज्ञान-वैभव को मुखर कर नव-युग और नव-मानव को जन्म देती है। "वन्देमातरम्" राष्ट्रीय ओजी पत्रिका के सुविज्ञ संपादक एवं चिंतक श्री अरविंद घोष ने नवजागरण की मूल चेतना को कितनी प्रौढ़ अभिव्यक्ति दी है -

" नवजागरण वस्तुतः पुनर्जन्म है और पुर्वजन्म, न केवल बुद्धि से, न पूर्ण आर्थिक समृद्धि से, न ही नीति या सिद्धांत से या प्रशासनिक परिवर्तन से होता है वह तो नया हृदय प्राप्त करने, त्याग की अग्नि में अपना सर्वस्व होम करने और माँ के गर्भ में पुनः जन्म लेने से होता है।"[2]

---

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 538
2. 'Regeneration is literally rebirth, and rebirth comes by the intellect, not by the fullness of the purse, not by policy, not by change of machinery but getting a new heart, by throwing away all into the fire of sacrifice and being beborn in the mother'- Bande Matram, weekly Edition, April 12, 1908.

भारतीय नवजागरण के संदर्भ में श्री हरिभाऊ उपाध्याय का कथन है -

"नव-निर्माण के माने नई प्रणालियों का जन्म नहीं, बल्कि नवीन मानव या नवीन भारतीय का जन्म था।"[1]

अतः "नवजागरण" की अवधारणा में मानवात्मा, मन-मस्तिष्क, संस्कृति-सभ्यता, भाव-भाषा, जीवन-शैली और जन-दृष्टिकोण में वैचारिक अभिनवीकरण तथा पूर्ण बदलाव का भाव और प्रक्रिया निहित होती है। इसमें नया आत्म-बोध, नया मन, नयी सोच, नयी चिंतन धारा और नयी रचनात्मक दिशाएँ स्वतः प्रस्फुटित होने लगती हैं। जनता की गतानुगतिकता से आबद्ध संकीर्ण मनोभूमि में बौद्धिक उत्क्रान्ति का सूत्रपात होता है। फलस्वरूप जन-मन की जड़ता टूटती है और इस अभिनवीकरण की प्रक्रिया का माध्यम बनते हैं- तत्कालीन पत्रकारिता और साहित्य आदि।

आंग्ल- पराधीन भारतीय इतिहास में 19वीं शती का नवजागरण काल "राष्ट्रीयता" के भावों के उर्वरण का द्योतक भी है। अंततः राष्ट्रीय जीवंत चेतना का अंकुरण ही राष्ट्रीय नवजागरण है। डा० देवराज पथिक की धारणा है -

"वस्तुतः जब कभी भी समाज अथवा राष्ट्र की परंपरागत मूल धारणा निर्बल पड़ जाती है और किसी नई विचारधारा को कोई समाज अथवा राष्ट्र ग्रहण करता है और वह विचारधारा किसी निश्चित लक्ष्य अथवा ध्येय के

---

1. बाबू राव जोशी, भारतीय नवजागरण का इतिहास,(भूमिका भाग) पृष्ठ 1

आलोक में आगे बढ़ती है तो राष्ट्रीयता की भावना जागृत होती है। इसी जागृति को राष्ट्रीय नवजागरण के नाम से संबोधित किया जाता है।[1]

उपर्युक्त यूरोपीय एवं भारतीय स्थापनाओं के परिपार्श्व में कहा जा सकता है कि नवजागरण का अर्थ "काल-चेतना" और "विचार" दोनों अर्थों में किया जाता है। नवजागरण [रेनेसाँ] के अर्थ एवं अवधारणा देश, काल एवं परिवेश के अनुकूल परिवर्तित होते रहे हैं।

संक्षेप में कह सकते हैं कि नवजागरण की प्रक्रिया सर्वव्यापी, बहुमुखी एवं बहुआयामी होती है। इस आधुनिक नवचेतना ने यूरोप और भारतीय जीवन के प्रत्येक अंग, प्रत्येक पहलू और प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित कर उनमें अमूल परिवर्तन किये हैं।

सारतः में नवजागरण स्वाधीन वैचारिक क्रान्ति की ओर अग्रसर होने की एक प्रक्रिया है[2] "नवजागरण" जनमानस की एक विशिष्ट जागरूक स्थिति को उजागर करता है। इस संक्रमणकालीन संस्कृति में नवीन परिवेश के अनुकूल जीवन और जगत को एक सर्वथा नव कोण, नव-चिंतन-बिंदु और नव आधार-संहिता से पुनरावलोकन तथा आत्मावलोकन की क्रिया प्रारम्भ होती है। नवजागरण की सांस्कृतिक चेतना समष्टिगत और व्यष्टि दोनों पक्षों से सुसंबद्ध होती है। "नवजागरण" की सांस्कृतिक जीवन धारा आधुनिकता के अंकुरों से निर्मित एक ऐसी उत्ताल तरंग होती है जो

1. डा०देवराज पथिक, नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना पृष्ठ, 17
2. पुनर्जागरण का अर्थ है-"नवीन आलोक, भविष्य की ओर बढ़ने की एक क्रान्तिकारी प्रेरणा, घिसे-पिटे रीति-रिवाजों की जंजीरों से मुक्ति"- विश्वनाथ नरवणे, माडर्न इंडियन थाट, पृष्ठ 8

देश, जाति-भाषा-सभ्यता और जीवन-पद्धति आदि को अपने तीव्र प्रवाह में बहाकर ले जाती है और जन सामान्य को नव-जागृति के चमत्कारी बल से आप्लावित कर जीवन का रूप ही बदल देती है। यह राष्ट्रीय-चेतना विचार और अनुभूति, पुरातन और आधुनिक चिन्तन धारा के द्वन्द्व से मूर्त्त होती है।

3. आधुनिक रेनेसाँ चिन्तन के घटक तत्व -

आधुनिक रेनेसाँ संस्कृति के आधारभूत लक्षण इस प्रकार हैं[1]-

1. राजव्यवस्था: एक कला : मध्ययुग में शासक ही वसुंधरा पर ईश्वर का प्रतिनिधि शासन कर्ता था। पुनर्जागरण काल में राजनीति में पहली बार कूटनीतिक कला एवं नवीन व्यावसायिक दृष्टिकोण एवं पद्धति [Mercantilism का प्रादुर्भाव हुआ। इस काल में राजनीति की धारणा "प्रकृति या दैवी-सत्ता का एक अंग-मात्र न होकर मानव जाति द्वारा विवेक पूर्ण तार्किक परिगणन की स्व-संभूत उपज थी।"[2] निकोलो मैकियावली [1469-1527] की प्रसिद्ध कृतियाँ " दप्रिंस" तथा "डिसकोर्सेज" में और फ्रांसिस्को गुईसिआर-दिनी [Francesco Guicuardine 1483-1540] की "हिस्ट्री ऑफ इटली" में आधुनिक राजनीतिक कला का सच्चा रूप तथा भाव प्रकट हुआ है।

---

1. स्विस इतिहासकार जेकोब बुर्कहर्ट [Jakob Burckhardt] ने अपनी ऐतिहासिक कृति "द सिविलाइजेशन ऑफ रेनेसाँ इन इटली" [1860] में रेनेसाँ-संस्कृति के लक्षणों पर गहराई से नजर डाली है।
2. ...'Politics is an autonomous product of conscious, rational calculation of Human beings'- Kington M. Robert, Jakob Burckhardt and the Renaissance and 100 years after' Page 7.

इस रेनेसाँ- राजनीति दर्शन में धर्म तथा नैतिकता से राजनीति को पृथक् किया गया तथा स्वार्थ-नीति, भौतिक बल और कूटनीति को राजनीतिक सफलता का मुख्याधार माना गया।

भारत में श्रीयुत की व्यावसायिक राजनीति बहुत कुछ इसी राजनीतिक दर्शन और कूटनीति का प्रतिरूप लगती है।

2. पुरातनता का पुनरुत्थान- यूरोपीय पुनर्जागरण के बौद्धिक पक्ष को मानववाद [Humanism] और जिन्होंने इस पुरातन ग्रीक-रोमन ज्ञान धारा के विकास में अपना जीवन समर्पित कर दिया उन्हें मानवतावादी [Humanists] कहा गया।[1] पेट्रार्क, बोकासियों, पोगियो ब्राचिओलिनी [1380-1459], पोलिजियानो [1404-1454], पिकोडिला मिरन्डोला [1466-1459], इरास्मस आदि मानववादियों के अथक प्रयासों से सहस्त्रों प्राचीन ग्रन्थों के पुनरुद्धार, पुनर्व्याख्या, तुलनात्मक अध्ययन, अनुवाद तथा समीक्षा आदि का महत्वपूर्ण कार्य किया गया। इसमें इटली के समृद्ध व्यापारी वर्ग कोसिमों लोरेंजों मेडिसी आदि ने भी प्राचीन साहित्य की अमूल्य निधियों को भावी पीढ़ी के लिए सुरक्षित रखने में अपना सहयोग एवं संरक्षण प्रदान किया था।

प्राचीन कला की पुनर्स्थापना में चित्रकार माइकेल एंजिलो रापेल, लियोनारडो दा विंची, मूर्तिकार निकोला पिसानो, शिल्पकार जियोवार्टी आदि ने अपने कलात्मक दृष्टिकोण, प्रकृति से तादात्म्य,

---

1. Wallace K. Ferguson, A survery of European Civilization Page 333.

मानवीय अनुभूतियों और शारीरिक सौंदर्य-बोध के भव्य चित्रण में रोमन कला की ही पुनः प्रतिष्ठा की थी ।

इस साहित्यिक कला के पुनरुज्जीवन से पुरातत्व विज्ञान एवं ऐतिहासिक चालोचना विधि का सूत्रपात हुआ । विख्यात प्लेटो आदि के दर्शन, ग्रीक-रोमन साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण के फलस्वरूप कला, साहित्य, शिल्प एवं मानव तथा राष्ट्रीय जीवन में उदार भावना, श्रेष्ठ आदर्शों एवं मूल्य तत्वों का समावेश हुआ ।

भारतीय संदर्भ में भी अतीत के ज्ञान-वैभव पर भविष्य की आधार-शिला रखी गयी । अरविन्द घोष के शब्दों में -"पुनर्जागरण भारतीय आत्मा का एक अपूर्व नवचेतना के रूप में अपने आन्तरिक तथा प्राचीन प्राणों का ही पुनर्जन्म है । यह पूर्ण प्रज्ञा है ।"[1] अतः आधुनिक परिवेश के अनुकूल प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों, संदर्भों से तत्कालीन साहित्य-जीवन से जोड़ा गया ।"भारतीय नवोत्थान का एक प्रधान लक्ष्य अतीत की गहराइयों का अन्वीक्षण था ।"[2]

3. <u>व्यक्तिवाद का विकास</u> : मध्ययुगीन जगत् में मानव की अस्मिता नगण्य थी । उसकी पहचान परिवार, समाज एवं संस्था आदि के रूप में सीमित थी । रेनेसाँ मानव में पहली बार निजत्व पर गर्व करने का तीव्र अहसास उत्पन्न हुआ । "मानव ही सबका मापदण्ड है" । Man is the measure of all things । ग्रीक दार्शनिक पाइथागोरस की इस उक्ति को

1. अरविन्द घोष, दि रेनेसाँ इन इण्डिया, पृ0 68
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0443

सत्य सिद्ध करते हुए "मानव" के प्रति एक नव-दृष्टि और नव-मनोभूमि निर्मित हुई। इस सार्वभौम-मानव के संबंध दैवी - सत्ता के साथ तुलनीय न होकर "मानव से मानव के बीच और मानव से परिवेश" के रूप में संयुक्त हुए। रैनेसाँ- कलाकार का व्यक्तित्व, कला-विषयों से अधिक महत्वपूर्ण हो उठा। जनसामान्य का चिंतन, भावनाएँ एवं कार्य-कलाप धर्मशास्त्रीय बंधनों से मुक्त हुए। उन्होंने पोप के अधिकारों को चुनौती दी।

भारतीय नवजागरण काल में भी संयुक्त परिवार व्यवस्था आदि का विघटन और व्यक्तिवादी मूल्यों का विस्तार होने लगा था।तत्कालीन मानव निज गरिमा और आत्म विश्वास और खोयी अस्मिता पुनः प्राप्त करने में जुटा हुआ था।

(4) जगत और मानव की नव खोज और भूमिका : एक साहसिक रोमांचक चेतना और नवीनता के अहसास ने सम्पूर्ण यूरोप को पकड़ लिया था। यह अहसास इतना गहन एवं टटका था कि इसने संपूर्ण मध्ययुगीन चिंतन को ही भुलता कर चुनौती दी थी। पुनर्जागरण काल के भौगोलिक अन्वेषणों एवं वैज्ञानिक आविष्कारों ने मानव और विश्व संबंधी सम्पूर्ण शास्त्रीय परिकल्पनाओं और धर्म स्वीकृत मान्यताओं को प्रामाणिक रूप में चुनौती दी। ब्रूनो, कोपरनिकस, गैलीलियो, केपलर आदि ने तथा भौतिक, चिकित्सा, रसायन, वनस्पति एवं प्राणि शास्त्र के अन्वेषकों की अभूतपूर्व खोजों ने सम्पूर्ण पारंपरिक पूर्व स्थापित सत्यों पर प्रश्न चिह्न लगा दिये थे। साहसिक, रोमांचक अनवरत भ्रमण ने विश्व

की परिधि को विस्तृत कर दिया। इन आविष्कर्ताओं द्वारा तेरहवीं शती में मेरिनर्स कम्पास और पृथ्वी के गोलाकार होने के सिद्धान्त प्रविष्कृत होने पर अज्ञात देशों की खोज का लम्बा सिलसिला चल पड़ा। बोचेतगो को "केप ऑफ गुडहोप" , कोलम्बस को "वेस्टइंडीज" , अमेरिगो वेस्पुची की "अमेरिका"; वास्गोडिगामा की "भारत" आदि खोजों से ही आगे चल कर पूँजीवादी, औपनिवेशिक व्यवस्था का आविर्भाव और वाणिज्य-व्यवसाय में औद्योगिक क्रान्ति संभव हो पायी।

पुनर्जागरण काल में एक सौन्दर्य -चेतना युक्त सार्वभौम मानव का विकास हुआ। मानव का व्यक्तित्व बहुमुखी हो उठा। इस युग में लौकिक-सौन्दर्य, मानवीय-भंगिमा तथा मानव के चरित्र और अनुभूति के कलात्मक निरपेक्ष प्रस्तुतिकरण को महत्ता दी गयी जिससे रचनात्मक सर्जन अधिक व्यक्तिगत, अधिक मानवीय, अधिक सहज एवं अधिक आनंददायी हो गया। उदाहरण स्वरूप इस युग के साहित्य तथा कला-विषय, उसकी रूपरेखा और स्वरूप यद्यपि अधिकांशतः धार्मिक होते थे, किन्तु कलाकार "मैडोना और बालक" के चित्रण में भी नारी की देह-यष्टि के सौन्दर्य और गरिमा को अधिक मुखर अभिव्यक्ति देते थे, न कि मैडोना के मातृत्व और पवित्र भावों को। रेनेसाँ-कलाकारों ने धार्मिक लौकिक सौन्दर्य के अतिरिक्त मानव के दैनिक कार्यकलापों, ग्रामीण परिवेश का भी यथार्थ चित्रण किया। इनमें लोरेन्जो, फिरन्जेला [Firinzuola]

ब्रेंटो आदि प्रमुख थे। प्राकृतिक भव्यता का मुक्त चित्रण भी यत्र-तत्र मिलने लगा था।[1] नवजागरण काल के भारतीय साहित्य, कला तथा जीवन में भी आमूल परिवर्तन, मौलिकता तथा नवीनता के दर्शन होने लगे थे। इस काल के मानवतावादी सर्जकों ने भी मानवीय पीड़ा, उल्लास और राष्ट्रीय कार्यकलापों को मध्ययुगीन विषयों से अधिक महत्त्व दिया था।

4. <u>नवजागरण काल की सामान्य प्रवृत्तियाँ</u> : यूरोपीय एवं भारतीय नवजागरण काल में दर्शन, भाषा, दृष्टिकोण, संस्कृति एवं राष्ट्रीय जीवन पद्धति में कुछ ऐसे सामान्य गुण तथा प्रवृत्तियाँ परिलक्षित होती है जिनके द्वारा इस नवजागरण काल को मध्ययुग से भिन्न एक स्पष्ट पहचान उभर कर सामने आती है।

1. <u>जीवन के प्रति प्रवृत्तिवादी चिन्तन धारा</u> : मध्ययुगीन मानव जीवन को मोक्ष-प्राप्ति और आत्मा की मुक्ति की तैयारी मात्र मानता था। नवजागरण काल में जीवन और जगत् के प्रति भौतिक वादी जीवन दर्शन और लौकिक विचारधारा का विशेष महत्त्व रहा। रेनेसाँ मानव सांसारिक भोग-आनंद के जीवन-सिद्धान्तों और उपलब्धियों को उत्कंठा पूर्वक अपनाकर, अपने को गौरवान्वित अनुभव करने लगा। उसने भौतिक सम्पदा के समक्ष पारलौकिक स्वर्ग-सुख को तुच्छ माना। मानव जीवन की सार्थकता मोक्ष प्राप्ति न होकर ऐहिक सुखों की प्राप्ति समझी गयी। इस प्रवृत्तिवादी

---

1. Jakob Burckhardt, The Civilization of the Renaissance in Italy 212, 213, 340.

क्रान्तिकारी नवदर्शन ने यूरोप और भारत में बौद्धिक , सांस्कृतिक एवं वैज्ञानिक आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में उत्क्रान्ति ला दी थी। इस नव युग में शिक्षित जन समुदाय आत्मा का हनन किये बिना भी सर्वोच्च ज्ञान का अधिकारी हो सकता था।

चार्ल्स एस0सिमिल्टन का कथन है "यदि किसी एक विशेषता से रेनेसाँ को पहचाना जा सकता है तब मेरा विश्वास है कि वह ब्रह्माण्ड और मानव के संबंध में बदलती अवधारणाएँ हैं।"[1]

"निवृत्तिवाद" भारतीय जीवन-दर्शन और स्वभाव की मूलभूत विशेषता रही है। भारतीय संसार को स्वप्नवत् मानते है और इस जीवन को मोक्ष-प्राप्ति का साधन। किन्तु 19 वीं शती के नव-दर्शन में इह-लौकिक प्रगति को महत्व दे कर प्रवृत्तिवादी दृष्टिकोण को बढ़ावा दिया गया था। दिनकर के शब्दों में -

" असल में उन्नीसवी सदी का नवोत्थान, भारत में प्रवृत्तिवाद का ही अनुपम उत्थान है, राम मोहन, दयानंद, रामकृष्ण, विवेकानंद और लोकमान्य तिलक ने प्रवृत्ति पर इतना अधिक जोर दिया कि सारा हिन्दू दर्शन प्रवृत्ति के उत्स सा दिखने लगा- निवृत्ति की धारा में बहते-बहते हिन्दू एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे थे, जहाँ स्वाधीनता और पराधीनता में कोई अन्तर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था जिसका उत्तर

1. 'If there is any characteristic by which the Renaissance can be recognised it is, I believe, in the changing conception of man's relation to the cosmos".-Charles of S. Simleton, The Idas and Ideals in the North European Renaissance.

देना आवश्यक हो किन्तु उन्नीसवी सदी के बाद से भारतीय साहित्य में क्रान्तिकारी और अन्य विरोधी स्वर बड़े जोर से गूँजने लगे। यह स्पष्ट ही गीता और वेदांत की प्रवृत्तिवादी टीका का परिणाम है।"[1] वस्तुतः प्रवृत्तिवादी चिंतन के प्रसार में तत्कालीन साहित्य, पत्रकारिता जैसे कला माध्यमों ने महत्वपूर्ण भूमिका अदा की थी।

2. तार्किकता एवं संदेहयुक्त जिज्ञासा को महत्व : पुनर्जागृत मानव की मनोवृत्ति और दृष्टि जिज्ञासु एवं विश्लेषणात्मक थी। इसी जिज्ञासा वृत्ति, तार्किक दृष्टिकोण और शंकालु मानसिकता ने हर बंधी-बंधाई मर्यादा के लिए धनुष तोड़े थे। तथा मानव विवेक को निरंतर माँजकर उन्हें नये संस्कार डाले थे। प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों एवं सामाजिक रीति-रिवाजों को आँख मूंद कर नहीं स्वीकार किया गया वरन् तर्क के निकष पर कस कर उनका सूक्ष्म वैज्ञानिक आकलन किया गया। उन्हीं पारंपरिक विश्वासों एवं लेखकों को मान्यता दी गई जिनकी प्रामाणिकता असंदिग्ध थी। उदाहरणार्थ, यूरोप में लोरेंजियस भाला [Lorenzo Valla] 1407-1457 जो समीक्षात्मक ऐतिहासिक पद्धति का वास्तविक जन्मदाता था, ने प्रसिद्ध ऐतिहासिक कृति "डोनेशन ऑफ कन्सटन्टाइन" [Donation of constantine] को ऐतिहासिक एवं भाषिक आधार पर चुनौती दी और संतपाल और सेनेका के बीच तथाकथित पत्राचार को जाली घोषित किया।[2] इसी तार्किक वृत्ति

1. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 444

2. Wallace K. Ferguson, A survey of European Civilization (third Ed. Partone to 1660) Page 334-335.

और संदेहपूर्ण जिज्ञासा ने विज्ञान, ऐतिहासिक आलोचना विधि, आदि हर क्षेत्र में नये मानदण्ड स्थापित किये।

19वीं शताब्दी के भारतीय नवोत्थान ने भी "मनुष्यों में सात्विक शंका की प्रवृत्ति स्फुरितकर दी थी--- इस नवोत्थान से भारत का कायाकल्प हुआ है, धर्म की रूढ़ियां भ्रष्ट गई हैं।"[1] तत्कालीन साहित्य एवं पत्रकारिता में,सनातन धार्मिक-सामाजिक चिंतन को चुनौती देकर पूर्णरूपेण बौद्धिक एवं तार्किक आकलन के सैकड़ों दृष्टान्त मिलते हैं।

3. स्वदेशी भाषाओं का विकास: नवोत्थान काल यूरोपीय एवं भारतीय जन भाषाओं के उन्नयन का युग था। यूरोप में जहाँ पुरातन ग्रीक-रोमन भाषा एवं साहित्य का पठन-पाठन अपनी पराकाष्ठा पर था। उच्चतर साहित्य को इन्हीं भाषाओं में लिखना गौरव पूर्ण माना जाता था। वहीं आश्चर्यजनक रूप में इस काल में इटेलियन, फ्रेंचीसो, स्पेनिश, जर्मन, आदि जनभाषाओं में लोक-साहित्य की सराहनीय अभिवृद्धि हुई। इंग्लैंड में चौसर की "कंटरबरी टैल्स" द्वारा अंग्रेजी जन-बोलियों का विजयन पूर्ण हुआ। इटली में दाँते की "डिवाइन कॉमेडी" स्थानीय मधुर भाषा "टस्कनी" में रचित है। जियोमानी बोकासियों की सजीव कथाएँ "डेकामेरॉन" इटेलियन भाषा में लिखित हैं।फ्रांस के विश्व प्रसिद्ध लेखक सर वैंटीज ने "डॉन क्वक्जोटे" नामक श्रेष्ठ ग्रन्थ स्पेनिश भाषा में लिखा।

---

1. "रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 445

भारत में भी जहाँ "सारा धार्मिक और उच्च धर्म निरपेक्ष ज्ञान संस्कृत में ही निहित था"[1] फारसी देश की राजभाषा के रूप में फल-फूल रही थी किन्तु इस नवयुग में आकर हिन्दी, बंगला, मराठी, गुजराती, कन्नड़, तेलुगु आदि सभी भारतीय जन-भाषाओं में उत्कृष्ट साहित्यिक सर्जन, ज्ञानात्मक लेखन तथा पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ।[2] विभिन्न देशी भाषाओं के गद्य- पद्य के माध्यम से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं आधुनिक-भावबोध को वाणी मिली। भारत की अधिसंख्य जनता देशी भाषा और जनबोलियों से ही परिचित थी। अतः इन स्वदेशी भाषाओं में रचित साहित्य ने जन मानस के ज्ञान-चक्षुओं को खोल कर अज्ञानान्धकार को दूर करने में भरपूर योगदान दिया ।

उन्नीसवीं शती के उत्तरार्द्ध में "हिन्दी भाषा और साहित्य की गतिविधि भी परंपरा छोड़ कर नवदिशोन्मुख हुई।"[3] यद्यपि उसकी

---

1. ओ'मैली (संपादक) माडर्न इंडिया एंड दि वेस्ट (1941) पृष्ठ 134
2. "देश की अन्य प्रमुख भाषाओं (बंगला, गुजराती, मराठी तामिल उर्दू आदि) के गद्य साहित्य की ही तरह हिन्दी का गद्य साहित्य भी हमारे राष्ट्रीय जागरण के युग की पैदावार है।"- शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी गद्य साहित्य, प्रस्तावना पृष्ठ 5
3. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य (1850-1900) (तृतीय संशो०सं०1954) पृष्ठ 94

प्रगति का मार्ग शिक्षा आजीविका और अदालतों की राजाज्ञा प्राप्त भाषाएँ अंग्रेजी और उर्दू अवरुद्ध कर रही थी फिर भी "उस काल में हिन्दी का कुछ साहित्योपयोगी रूप ही नहीं, व्यावहारोपयोगी रूप भी उभरा।"[1]

4. प्रजातंत्रीय नवचेतना एवं राष्ट्रीय अवधारणा का उदय-: "सच्ची अर्थों में राष्ट्रों का उदय मध्ययुग की समाप्ति पर ही हुआ।"[2] अंग्रेजी राज में विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत अधिकारी-विद्वान सर हेनरी कॉटन ने अपनी संस्मरण पुस्तक "इण्डियन एण्ड होम मेमोरीज" में सन् 1860 के आसपास के भारत का चित्र स्मृति-पटल पर लाते हुए लिखा था "देश ऊपरी तौर पर अभी भी पुरातन-मुद्रा धारण किए था। नवभारत अभी भविष्य के गर्भ में था। पूर्व में जागृति का नामोनिशां न था। समुदाय और जातियों में राष्ट्रीयता का कोई विचार नहीं पनप पा था।"[3] अतः भारत में "आधुनिक राष्ट्र"[4] के रूप में जन संगठन की चेतना और एकीकरण के भाव उत्तर उन्नीसवी शताब्दी के नवजागरण काल में उत्पन्न हुए।

"राष्ट्रीयता भारत के लिए नवीन विश्वास था उसके पहले इस देश में यह बात अपरिचित थी।"[45] यद्यपि प्राचीन भारत में भी प्रबुद्ध

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 415
2. ई०एच० कार, उद्धृत ए०आर देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृष्ठ ।
3. Sir Henry Cotton, Indian and Home Memories, Page 63-64
4. ए०आर०देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि पृष्ठ।-2
5. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य का उद्भव एवं विकास, पृ०257

राष्ट्रीयता की प्रामाणिक सामग्री[1] और अनेक उपकरण - देश भक्ति, भौगोलिक एवं सांस्कृतिक अखण्डता, भाषा- धर्म की मूल एकता आदि प्रचुर मात्रा में मिलती है। किन्तु फिर भी 19 वीं शती से पूर्व मध्ययुग में भारतीयों में अपने राष्ट्र के प्रति अविचल, असंदिग्ध निष्ठा एवं पूर्ण समर्पण-भाव का अभाव हो गया था।"धर्म-जाति-निरपेक्ष आधुनिक लोक सत्ता वा राष्ट्रीयता तो उस समय हमारे देश में नहीं थी --- हमारे पास वैयक्तिक सद्गुण थे राष्ट्र-निर्माण व स्वराज्य-निर्माण के लिए आवश्यक सद्गुण बिल्कुल लुप्त हो गये थे।[2] अतः नवजागरण काल से पूर्व आधुनिक रूप में राष्ट्रीयता और प्रजातांत्रिक लोकसत्ता के निर्माण की परिकल्पना भारतीय मेधा नहीं कर पायी थी। निज धर्म, धन, संस्कृति के रक्षा के लिए विदेशी-विधर्मी शासन का संगठित

---

1. (क) "पृथिव्यै समुद्रपर्यन्तया एक राष्ट्र"- तैत्तरीय संहिता 7-5-18
   (ख) "श्री वैराष्ट्रम्"-शतपथ ब्राह्मण - 6-7-3-7
   (ग) "ये मान लेना गलती है कि राष्ट्रवाद की विशिष्ट सामाजिक घटना का उद्गम पश्चिम से हुआ कि यह यथार्थतः एक पश्चिमी वस्तु है।-- पूर्वी मानस मातृभूमि की अवधारणा से ही पूर्णतया अपरिचित था। ये गलत धारणाएँ पूर्व की संस्कृति के बारे में अत्यधिक अज्ञान के कारण हैं।-- हम देखते हैं कि ऋग्वेद के मंत्रों में जो मानव की सर्वप्रथम वाणी हैं, राष्ट्रवाद के सिद्धान्तों का निरूपण विद्यमान है"- राधा कमल मुकर्जी, हिन्दू संस्कृति में राष्ट्रवाद - पृष्ठ 48
2. शंकर दत्तात्रेय जावड़ेकर, आधुनिक भारत पृष्ठ 16-17

होकर अन्त और स्वराष्ट्र पर स्वशासकों द्वारा शासन होना अनिवार्य है, इस राष्ट्रीय चिंतन के अभाव के कारण ही भारतवासी अंग्रेज-सत्ता से धर्म-रक्षण-धन-सत्ता प्राप्ति का झूठा आश्वासन पाकर विदेशी शासन की तन-मन-धन से सहायता करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाते थे जो उनकी राष्ट्र-विरोधी मनोवृत्ति का ही परिचायक हो सकता है।

भारत में पहले से ही ग्राम-पंचायतों के सामुदायिक संगठन, न्याय-व्यवस्था तथा सार्वजनिक पदों की नियुक्ति में प्रजातंत्रात्मक लोक सत्ता के सिद्धांतों और संस्थाओं का अनुरूप देखा जा सकता है।[1] किन्तु नवजागरण से पूर्व भारतीय नागरिकों के मस्तिष्क में ये विचार उभर कर सामने नहीं आये थे कि परंपरागत शासक या राजा को हटा कर जनता भी राज्य क्रान्ति करके लोक नियंत्रित प्रजासत्ता की स्थापना कर सकती है। क्षत्रियों के समान व्यापारी (वैश्य) वर्ग भी अपने प्रतिनिधि वर्ग द्वारा सत्ता-हस्तगत कर कुशलता पूर्वक शासन चला सकते हैं। सम्भवतः यही कारण था कि प्रारम्भ में भारतीयों के मन्ना में ग्रेज व्यापारियों की सत्ता हथियाने की नीयत पर कभी कोई अविश्वास और संदेह उत्पन्न नहीं हुआ क्योंकि वे समझते रहे कि अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी केवल व्यापारी कंपनी है जो भारत में अन्य सौदागरों के समान उदर पोषण निमित्त व्यावसायिक लाभ के लिये आयी है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था के अनुसार उनका विश्वास था कि राज्य-रक्षा क्षत्रियों का धर्म है,

---

1. जवाहर लाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी पृष्ठ 301-302

व्यापारियों का उससे क्या लेना देना। इसी मनोवृत्ति के कारण भारतीय व्यापारी वर्ग और सामान्य जनता स्वदेश रक्षा से सर्वथा असंप्रक्त तथा और उदासीन रहती थी। जबकि इंग्लैंड के व्यापारी वर्ग जो केवल व्यापारी नहीं थे, धीरे-धीरे व्यापार का विस्तार के बहाने परोक्ष रूप में राज्य पर नियन्त्रण करते चले गये। कहा जा सकता है कि 19वीं शती में ही जागरूक होती जनता भारी और व्यापारी वर्ग ने अमेरीका, फ्रांस, इंग्लैंड में हुई जनक्रांतियों और औपनिवेशिक राज के इन नये नीति अनुभवों से प्रजातंत्रात्मक भाव सत्ता का पाठ सीखा। अतः राजनैतिक प्रभु सत्ता एवं प्रादेशिक अखंडता सम्पन्न, आधुनिक राष्ट्र और प्रजातंत्रात्मक भाव का आविर्भाव पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था के विकास के साथ 19वीं शती के नवजागरण काल में हुआ।[1]

5. मुद्रण-संस्कृति का आविर्भाव : इस काल में प्रेस और पत्रकारिता ऐसे चमत्कारिक आविष्कार थे जिन्होंने सम्पूर्ण यूरोप और भारत के तीव्र क्रमिक विकास को सम्भव बना दिया था। इन उन्नत तकनीकी यन्त्रों ने बौद्धिक-सांस्कृतिक आंदोलन, वैज्ञानिक प्रगति, ज्ञान एवं चिंतन की परिधि को एक विस्मयकारी विस्तृत आयाम दिया था[2] एलिजाबेथ आइन्सटाइन को तर्कपूर्ण उचित है -"पन्द्रहवीं शती में हुए इटेलियन पुनर्जागरण

---

1. "पूँजीवादी आर्थिक प्रतिक्रियाओं ने विभिन्न समुदायों को आर्थिक और सामाजिक तौर पर एकताबद्ध कर उनकी जगह राष्ट्रों को जन्म दिया है इन्हीं प्रक्रियाओं ने भारतीय राष्ट्र की भी सृष्टि की है।- ए०आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृष्ठ 22

2. Haynes, J.H.Carlton, Modern Europe to 1870 (Third Edition) 1982 Page 92

से पूर्व भी यूरोप में पुनर्जागरण के अनेक दौर आये थे लेकिन मुद्रण-संस्कृति के माध्यम से जो उपलब्धियाँ इटेलियन रेनेसाँ ने प्राप्त की, वे पहले पुनरुत्थानों में नहीं मिली।[1]

भारतीय नवजागरण के संदर्भ में भी उपर्युक्त कथन सटीक बैठता है। "नव चेतना" के संचार-स्त्रोत भारतीय प्रेस और पत्रकारिता थी जिसने दिग्भ्रमित जनता को गन्तव्य पथ दिखा कर एक राष्ट्रीय आवाज को जन्म दिया। पत्र-पत्रिकाओं में प्रदत्त ज्ञान के द्वारा भारतीयों ने एक अदम्य शक्ति का अनुभव किया। हिन्दी पत्रकारिता ने विदेशी शासन की कूटनीति के दुर्ग को ध्वस्त कर जनमानस में एक अभूतपूर्व जागृति जगा दी थी।

कहा जा सकता है कि नवजागरण और पत्रकारिता परस्पर पूरक थे जिसके गठबंधन से स्वाधीन भारत की पृष्ठ-भूमि निर्मित हुई। यद्यपि 19 वीं शती में पत्रकारिता के प्रमुख अंगों-पत्र-पत्रिकाओं, विज्ञापन रेडियो, चलचित्र दूरदर्शन में केवल पहले दो माध्यमों का ही विस्तार हुआ था तथापि यह अकाट्य सत्य है -"भारतीय जनता के बीच राष्ट्रीय भाव और चेतना के उदय और उत्थान में, उनके राष्ट्रीय आंदोलन के संगठन और विकास, प्रादेशिक साहित्यों और संस्कृतियों की सृष्टि और विभिन्न देशों के साथ बंधुत्व की स्थापना में प्रेस की बहुत बड़ी भूमिका रही है।"[2]

---

1. Elizebeth Eisenstein, Idea and Ideal in the North European Renaissance (Collected Essay, Volume II)

2. ए०आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृष्ठ 189

1.2 <u>यूरोपीय और भारतीय नवजागरण : एक तापेक्षिक दृष्टि :</u> यूरोप और भारत में जिस सर्वांगीण बदलाव और क्रान्तिकारी नव-चेतना को 'नवजागरण' के नाम से अभिहित किया गया है उनमें कुछ सादृश्य रेखांकित किये जा सकते हैं -

- दोनों ही पुनर्जागरण काल आधुनिकता के उदय और मध्ययुगीन चिंतन के अवसान के सूचक हैं।
- इन दोनों से ही वैज्ञानिक युग का शुभारम्भ हुआ, सामंती काल का अन्त हुआ।
- बौद्धिक रूप में विगत साहित्यिक ज्ञान वैभव एवं कला संस्कृति की पुनर्स्थापना हुई।
- इन दोनों ही काल में जीवन-जगत संबंधी मूलभूत अवधारणाओं में मौलिक परिवर्तन हुए। एक नवीन भौतिक वादी दृष्टि, इहलौकिक दर्शन एवं स्वतंत्र व्यक्तिवादी चेतना विकसित हुई।
- प्रेस - मुद्रण- पत्रकारिता जैसे सशक्त जनमाध्यमों द्वारा पुस्तकों, पत्र- पत्रिकाओं एवं अन्य ज्ञानात्मक अनूदित एवं मौलिक सामग्री के प्रकाशन से एक अभूतपूर्व जन-जागृति का संप्रेषण एवं विस्तार हुआ।

- इन "जागरण युगों" ने विश्व की आधिकारिक शक्तियों "धर्म", "चर्च," "राज्य","ईश्वर" आदि को चुनौती देकर उनको पददलित करने की कोशिश की गई । देश में आधुनिक राष्ट्रीयता एवं प्रजातांत्रिक भावों एवं विचारों का सूत्रपात हुआ।

– दोनों का व्यापारिक पूंजीवादी व्यवस्था के जन्म, मध्यवर्गीय संस्कृति के उदय तथा सामंती-जातिवाद के अवमूल्यन के द्योतक हैं। मानव सांस्कृतिक एवं नैतिक जीवन मूल्यों के प्रति अधिक तार्किक एवं विवेकशील हो उठा। नवजागरण की प्रगति सुधारवादी आंदोलनों के रूप में हुई। किन्तु उपर्युक्त सादृश्यों के आधार पर यह धारणा बना लेना उपयुक्त नहीं होगा कि यूरोपीय और भारतीय पुनर्जागरण समान हैं। वस्तुतः इन दोनों की प्रकृति, प्रवृत्ति, परिवेश, प्रेरणास्त्रोत, दर्शन, दृष्टिकोण, आदर्श तथा ऐतिहासिक संदर्भों में मौलिक भिन्नता है जो इनको पृथक् विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं –

यूरोप का पुनर्जागरण वहाँ के पुरातन सांस्कृतिक-साहित्यिक मूल्यों की पुनरुपलब्धि, नवीन आर्थिक परिवेश और ऐतिहासिक क्रियाशीलता की उपज है। उसके घटक तत्वों और राष्ट्रीय तंतुओं का का निर्माण वहाँ की परिवर्तित परिस्थितियों और अदम्य गत्यात्मकता से हुआ। जबकि भारतीय नवजागरण यूरोपीय सभ्यता-संस्कृति, ईसाधर्मनीति एवं अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुतापूर्ण-संघात की परिणति है। वह विदेशी साम्राज्यवाद और यूरोपीय सभ्यता की चुनौती का प्रत्युत्तर है।

यूरोप में "राष्ट्रों के रूप में जनसमुदायों का एकीकरण ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है"[1] जबकि आधुनिक भारत का राष्ट्र के रूप में एकीकरण ऐतिहासिक प्रक्रिया से अधिक यूरोपीय आदर्शों,

---

1. देसाई, ए०आर० , भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठ भूमि, पृष्ठ 22

शिक्षा और सभ्यता के विरुद्ध क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रतिफलन प्रतीत होता है।

भारत में राष्ट्रीय अस्मिता की धारणा यूरोप से इस अर्थ में भिन्न थी यूरोप के देश किसी विदेशी सत्ता के अंतर्गत पराधीन नहीं थे जबकि भारत में अंग्रेजी शासकों और भारतीय जनता की राष्ट्रीयता भिन्न थी। यहाँ पुनर्जागृत राष्ट्रीय भावना भारतीयों में "निज देश, निजी राज्य" या "स्वदेश-स्वराज" के विचार जगाती थी।"उन्हें जातीयता, एक देशीयता और सांस्कृतिक भावनाओं की नींव पर एकत्रित करती थी"।[1] भारतीय नवजागरण की अवधारणा का संबंध वस्तुतः निज भाषा, निज संस्कृति, निज उत्पादन- विनियोग एवं निज राष्ट्र के उन्नयन तथा स्वाधीनता के साथ जुड़ा हुआ था।

यूरोप में,ईसाई धर्म, धर्म आदि के सकल धार्मिक-चिंतन के दायरे को लांघ कर,रचनात्मक एवं क्रियात्मक ज्ञान-विज्ञान की नींव पर यूरोपीय नवनिर्माण के नये आधारों की तलाश जारी थी। भारत में धर्म-दर्शन-आध्यात्मिकता को ही नव-जागृति एवं सांस्कृतिक-सुधार का सोपान एवं आधार बनाने की लालसा रही।

यूरोप से भिन्न भारतीय नवजागरण की आत्मा मुख्यतः अध्यात्मिक थी। "भारतमें राष्ट्र को एक दैवी सत्ता, राष्ट्रीयता

---

1. देसाई, ए०आर०,भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठ भूमि, पृ०82
राममनोहरलोहिया, विशाल भारत, अप्रैल, १९३६ पृष्ठ५०५

को एक आध्यात्मिक आदर्श तथा मातृ भूमि की मुक्ति का एक धर्म-साधन माना है।"[1] भारतीय चिंतक श्री अरविन्द घोष की भी यही धारणा थी "राष्ट्रीयता केवल एक राजनीतिक कार्यक्रम नहीं है। राष्ट्रीयता एक धर्म है जो ईश्वर प्रदत्त है, राष्ट्रीयता एक सिद्धान्त है जिसके अनुसार हमें जीना है।"[2]

अतः भारत में "नवजागरण" यूरोप के समान इन्द्रिय जनित अनुभवों और बौद्धिक जागरूकता से ही स्पंदित नहीं था, वह नवीन आधुनिक चिंतन, धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलन तथा गौरवशाली आध्यात्मिक - शक्तियों का पुंजीभूत रूप था।

यूरोपीय पुनर्जागरण में पुरातन ग्रीक-लैटिन सभ्यता , ज्ञान तथा कला आदि से प्रेरणा ग्रहण की गई थी। भारत में अतीत के श्रेष्ठ मूल्यों, महान वाङ्मय की उपलब्धियों एवं ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों को युगीन यथार्थ के अनुरूप पुनर्स्थापित और पुनर्व्याख्यापित करने का प्रयास किया गया[3] इनका प्रमुख उद्देश्य पराधीन भारतीय जनमानस को आत्मग्लानि, विवशता और यूरोपीय सभ्यता तथा पश्चिमी मानसिकता से उबारना था। कहा जा सकता है कि यूरोपीय रेनेसाँ

---

1. डा०कर्णसिंह, भारतीय राष्ट्रीयता का आधार पृष्ठ 84
2. स्वयं देव, श्री अरविन्द पृ० 6
3. भारतीय चिंतन "अगस्त विगत पन्द्रह शताब्दियों के दर्शन, विज्ञान और संस्कृति की आधुनिक धाराओं के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता आया है" - विश्वनाथ नवखंडे, माडर्न इंडियन थाट,पृ०8

क्रान्तिकारी अधिक था, जबकि भारतीय "नवजागरण" राष्ट्रीय-उत्थानवादी।

यूरोप में संगठित धर्म, ईसा-धर्म और मठवाद से मुक्ति पाने की तीव्र उत्कंठा है। "यूरोप का मध्ययुगीन धर्म, रोमन केथोलिक धर्म समूचे ईसाई संसार सांस्कृतिक एकता का सूत्र था, लेकिन यह सामंतशाही का पोषक था-- सामंती राज्य व्यवस्था को समर्थन प्रदान कर रोमन चर्च राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में अड़चनें खड़ी कर रहा था-- इसलिए यूरोप के देशों में जनता के राष्ट्रीय जागरण ने सामंती धर्म-तंत्र के विरुद्ध धार्मिक संघर्ष का रूप लिया"।[1]

प्रोटेस्टेन्ट धर्म-सुधार के दृष्टि कोण से मौलिक मतों और व्यक्तिगत विवेक का उदय हुआ। ईसाई धर्म ग्रन्थों "बाइबिल" आदि की छान कर समालोचना की जाने लगी।

भारत में धर्म और आध्यात्मिक भावना को ही संगठित नव-जागृत उदात्त मजहब का रूप देने का प्रयास किया गया जिसके स्पष्ट प्रमाण ब्रह्मसमाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज तथा रामकृष्ण मिशन आदि हैं।

यूरोपीय रेनेसाँ में धर्म तथा धर्म सुधार की प्रेरणा और हेतु वहाँ के नये परिवेश, पूँजीवादी अर्थ-तंत्र तथा राष्ट्रीय राज्यों की स्थापना में है। भारत में "नवजागरण" की प्रेरणा परिवर्तित अर्थ तंत्र के साथ-साथ ईसाई धर्म-तंत्र, तथा यूरोपीय कूटनीति से ~~नीति~~ तथा सभ्यता के आक्रमक रूप से लोहा लेने लगे, उससे निज संस्कृति की रक्षा तथा विदेशी दोहन

1. देसाई, आर०, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ०228

से त्राण पाने में है।

यूरोप में धर्म-शक्ति और राष्ट्रीय राज्य-व्यवस्था का संघर्ष है जबकि भारत में यह संघर्ष बहुआयामी और बहुमुखी है। यहाँ एक ओर राष्ट्रवाद और साम्राज्यवाद में टकराव है, दूसरी ओर सांप्रदायिकता और राष्ट्रीयता का संघर्ष है, तीसरी तरफ यूरोपीय सभ्यता और भारतीय संस्कृति के बीच जबर्दस्त तनाव की स्थिति है, चौथी ओर सनातन-परंपरावादी और आधुनिक प्रगतिशील बौद्धिक-शक्तियों के बीच उठता अन्तर्द्वन्द्व है।

यूरोपीय पुनर्जागरण में क्लैसिज्म के पुनरुत्थान के साथ मानववाद की विचारधारा भी पनपी। मानववाद का सिद्धान्त था कि लौकिक मानव और प्रत्यक्ष के ऊपर अलौकिकता, धर्म और वैराग्य को स्थान नहीं मिलना चाहिए।"[1] अतः यूरोपीय देशों में "मानव" को पूरा मान कर धर्म से अधिक मानवीय गरिमा, ज्ञान और व्यक्ति के बहुमुखी विकास और स्वतंत्र चेतना को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया। जबकि भारतीय "मानवतावाद" व्यक्तिवादी कम है, राष्ट्रीय अधिक। वह "राष्ट्रीय" पहले है मानवतावादी बाद में। यहाँ व्यक्ति में "भारतीयता" तथा "राष्ट्रीयता" की गौरव-गरिमा और राष्ट्रीय महत्त्वकांक्षाओं को ही जागृत कर उनका प्रतिरोपण करने का प्रयास किया गया।

यूरोप की इहलौकिकता और मानवतावादी दृष्टिकोण का नाता

---

1. डा० रंग प्रसाद, हिन्दी विश्वकोश [खंड 7] पृष्ठ 24।

प्रोटेस्टेन्ट मतवाद से जुड़ा माना गया था। वहाँ रेनेसाँ आर्थिक-सांस्कृतिक परिवर्तित परिस्थितियों की स्वतः परिणति है। भारतीय नवजागरण में "मानवतावाद" के प्रेरणा-स्त्रोत यूरोपीय ज्ञान, शिक्षा, भारतीय-बोध और सनातन धर्म की पुनर्व्याख्या आदि रहे हैं।

यूरोपीय रेनेसाँ काल से जहाँ समस्त यूरोप का व्यक्तित्व ईसाई संघ, धर्म आदि के पिंजड़े तोड़ कर, बाहर पंख तोल कर मुक्त गति एवं नयी शक्ति से उड़ाने भरने लगा था। रेनेसाँ के नव प्रभात के उदय के साथ यूरोप में आधुनिक क्रान्तिकारी औद्योगिक-वाणिज्यिक समृद्धि, वैज्ञानिक चमत्कारों एवं कलात्मक संस्कृति को पराकाष्ठा पर पहुँचाने के लिए मुक्त द्वार खुल गया था। वहीं भारतीय नवजागरण काल में ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थ-तंत्र के आर्थिक दोहन और औपनिवेशिक अर्थ व्यवस्था के विध्वंसक अभिशाप ने भारत उद्योग, प्रशासन, विज्ञान आदि समूचे क्षेत्रों की स्वाभाविक प्रगति और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में रोड़े अटकाये तथा उसकी सहज ऊर्जाशक्ति और प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया प्रतिक्रिया स्वरूप भारत में नवचेतना का उदय हुआ।

यूरोप में पुनर्जागरण-सुधारवाद-क्रान्ति का ऐतिहासिक क्रम रहा। भारत में धार्मिक सुधार, पुनर्जागरण साथ-साथ कदम से कदम बढ़ा कर राष्ट्रीय स्वाधीनता की मंजिल की ओर उन्मुख हुए। यूरोप का रेनेसाँ मध्ययुगीन प्रवृत्तियों से अलग है। भारत का "नवजागरण" अपनी मनोवृत्ति और प्रकृति में कई दिशाओं में मध्ययुगीन और सामंती है उसका अभिनवीकरण अंशतः ही हो पाया।

यूरोपीय रेनेसाँ में शिक्षा, प्रेस और पत्रकारिता आवश्यकतानुसार रेनेसाँ के नवसर्जित आदर्शों के अनुरूप ढलती रही। भारत में पश्चिमी शिक्षा ज्ञान-विज्ञान और प्रेस ने नवजागरण को प्रभावित कर यूरोपीय आदर्शों के अनुकूल ढालने का प्रयास किया। यहाँ तक कहा गया कि भारतीय नवजागरण यूरोपीय शिक्षा और आधुनिक संस्कृति से संचालित पश्चिमी आदर्शों का प्रसार मात्र है। किन्तु भारतीय पुनर्जागरण की मूल जड़ें भारत की धरती में ही रची-बसी थी पाश्चात्य चिंतन, शिक्षा, तथा प्रेस आदि ने उन जड़ों को पुष्ट करने के लिए खाद-पानी देने का कार्य अवश्य किया।

यूरोप का बुद्धिवादी वर्ग "लेखक क्लास "मानवतावादी, बौद्धिक सर्जनात्मक एवं तार्किक प्रज्ञा से युक्त है। भारत का बुद्धिजीवी एक साथ मानवतावादी राष्ट्रवादी, सामंती, प्रतिक्रियावादी, धार्मिक मध्यम वर्ग है।

यूरोप में 'रेनेसाँ' का मानवी-आदर्श सार्वभौम, बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न, सौन्दर्यबोध युक्त, बौद्धिक तथा अभिजात वर्गीय अतिमानव है। भारत का मानवी-आदर्श राष्ट्रीय-नवोत्थान को समर्पित, जूझता-टूटता, कर्तव्यनिष्ठ, दायित्वपूर्ण ऐसा सत्याग्रही जननायक है जो आधुनिक बोध और भारतीय परंपरा में संतुलन कायम करता रहता है पर समर्थन "भारतीयता" का करता है।

भारतीय मानव भारत और भारतीयता के दायरे तक ही परिसीमित रहता है। वह यूरोप के मानव के समान वे सार्वभौम नहीं है।

आधुनिकता के संदर्भ में यूरोपीय "रेनेसाँ" आधुनिक है। भारतीय "नवजागरण" यूरोपीय विचारकों के आधुनिकता के निकष पर पूर्णतः खरा

नहीं उतरता। भारत में यह "पुनर्जागरण" नहीं वरन् "राष्ट्रीय जागरण" था जिसमें सांस्कृतिक सामाजिक पुनरुत्थान, राजनीतिक उन्मेष, पश्चिमी ज्ञान का मिला-जुला स्वर विद्यमान था।

अतः भारत और यूरोप का इतिहास, परिवेश और संदर्भ अलग रहे। फलस्वरूप राष्ट्रीय नवजागरण पश्चिमी शैलियों से भिन्न रूप में विकसित हुआ। यद्यपि मूल चेतना दोनों की एक समान रही।

1.3. भारतीय नवजागरण : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

1.3.1. "एक ओर राष्ट्र की जीवनधारा में ज्वार भाटे की तरह उत्थान-पतन-पुनरुत्थान का जागरूक क्रम चलता रहता है। विकट अन्धकार के पश्चात् पौ फटती बाल की किरण, मृत होते समाज में उसका पुनर्जीवन, घर छोड़ने-टूटने-बिखरने के साथ सामाजिक लोक विश्वास और चेतना स्फूर्ति की सांस्कृतिक लहर की बार बार भारतीय इतिहास में भी देखा जा सकता है। "कभी हिन्दुस्तानी जिन्दगी की धारा सूख पड़ जाती है, पुरानी संस्थाएँ लोगों के लिए बोझ हो जाती हैं और लोग मानों एक बेचैनी में खो रहते हैं। ---- उन पर एक तरह की बेहोशी छा जाती है किन्तु---- एकाएक एक पुनर्जागृति की लहर उठती है और सभी के हृदय को चमत्कार और बेचैन कर देने वाली होती है।"[1]

उन्नीसवीं शती के "जागरणकाल" में पहले-पहल भारतीय लोक-मानस में जो नव जागृति और अनुपम आत्म-गौरव के भाव उदित हुए थे, वे भारतीय इतिहास में पहले चमत्कारिक क्षण नहीं

१- जवाहरलाल नेहरू- हिन्दुस्तान की कहानी पृ० ५३

है । इसी भूमि को भारतीय समाज ने विभिन्न संस्कृतियों के संपर्क-संघर्ष-समन्वय के फलस्वरूप नवचेतना का अनुभव किया था । श्री रामधारी सिंह दिनकर ने संस्कृति के चार अध्याय में " भारतीय संस्कृति में चार बड़ी क्रान्तियाँ हुई हैं । ----- पहली क्रांति तब हुई, जब आर्य भारतवर्ष आये अथवा जब भारतवर्ष में उनका आदिम जातियों से संपर्क हुआ । ---- आर्य तथा आर्येतर संस्कृतियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी । ----- दूसरी क्रांति तब हुई जब महावीर और गौतम बुद्ध ने उस स्थापित धर्म या संस्कृति के विरुद्ध विद्रोह किया तथा उपनिषदों की चिन्तन धारा को सींच कर वे अपनी मनोवांछित दिशा की ओर ले गये । ----- तीसरी क्रांति उस समय हुई, जब " इस्लाम " विजेताओं के धर्म के रूप भारत पहुँचा और इस देश में हिन्दुत्व के साथ उसका संपर्क हुआ और चौथी क्रांति हमारे अपने समय में हुई, जब भारत में यूरोप का आगमन हुआ और उसके संपर्क में आकर हिन्दुत्व और इस्लाम दोनों ने नवजीवन का अनुभव किया ।[1]

डा० कृष्णनाथ के अनुसार भारतीय संस्कृति में पुनर्जागरण के कम से कम पाँच दौर - १- वैदिक युग २- बौद्ध युग ३- गुप्त युग ४- शंकराचार्य युग ५- अकबर युग आते और छठा गांधी युग आज का है, जब उस सभ्यता ने अपना अभिनवीकरण किया ।[2]

भारत की पूर्वतन सांस्कृतिक क्रांतियों और उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रीय नवजागरण में कुछ मूलभूत अन्तर थे :

१- प्रायः पहली सभी सांस्कृतिक क्रांतियों ने

१- रामधारी सिंह दिनकर- संस्कृति के चार अध्याय पृ० ८ (भूमिका भाग)
२- साधना , दिसम्बर , १९६८ पृ० ३८-३९

भारतीय जीवन-दर्शन, धार्मिक मान्यताओं तथा समाज पर गहरा असर डाला था। हिन्दू भारत के सनातन जीवन-दर्शन की बाहरी बदलने की प्रक्रिया १६ वीं सदी के मध्यकाल में ही प्रारंभ हुई जिसमें आध्यात्म के अधिक भौतिक ज्ञान, विचार के अधिक तार्किक तथा पारलौकिक के अधिक मानवतावादी चिंतन की महत्ता दी गई।

२- आधुनिक विचारकों का मत है कि समाज के मूलभूत नवनिर्माण के आधारभूत तत्व आर्थिक होते हैं। मुगलों की क्रान्तियों ने भारतीय समाज के ऊपरी ढाँचे को ही बदला था। अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत पहली बार पुराने आर्थिक आधार स्तम्भों- आत्म निर्भर ग्राम-व्यवस्था, जमीन का सामुदायिक स्वत्व, कृषि-उद्योग के पारस्परिक सम्बन्ध, पंचायती न्याय-व्यवस्था आदि को समूल नष्ट करके उनके स्थान पर यूरोपवादी औद्योगिक की व्यवस्था स्थापित की गई। "भारत में अंग्रेजों के राजनीतिक प्रभुत्व के विस्तार को दिशा में उठाया गया हर कदम पुरानी सामाजिक-व्यवस्था के विघटन और नए आर्थिक रूपों के उन्मेष को दिशा में ही कदम बढ़ाया था।"[२]

३- भारत में यातायात के नये साधनों की सामूहिक मुद्रण-प्रेस-पत्रकारिता आदि संचार साधनों की सुविधा नहीं मिली थी जबकि उन्नीसवीं सदी के नवोत्थान को इन आधुनिक उन्नत उपादानों के माध्यम से चरमोत्कर्ष और विस्तृत आयाम मिला।

४- आधुनिक काल में "राष्ट्रीयता" और

१- समाज के ढाँचे को बदलने वाले मूल कारण आर्थिक होते हैं, सांस्कृतिक गौण होते हैं।"

- डा० बच्चन सिंह, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० २५

२- ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत पृ० २७

राष्ट्र की चेतना का विकास १९ वीं सदी के नवजागरण से प्रारम्भ हुआ तथा भारत में लोकतन्त्रात्मक आधुनिक प्रणाली की राजनीतिक अवधारणा भी इसी काल में उदित हुई।

५- पहले पुनर्जागृत- काल में जनता का बहुत बड़ा हिस्सा अप्रभावित रह जाता था क्योंकि विचारकों और जनसामान्य के बीच गहरी वर्गीय खाई बनी रहती थी किन्तु राष्ट्रीय नवजागरण से वाम मध्यम- निम्न वर्ग का चेतना भी अछूता नहीं रह पाया था। इसी से उपेक्षित नारी तथा शूद्र वर्ग की पुनर्जागृति - शिक्षा आदि पर भी जोर दिया गया। आत्मोन्नति से अधिक स्वाधीनता तथा राष्ट्रोन्नति को महत्व मिला। अतः १९ वीं सदी के नेताओं का स्वरूप एवं दृष्टिकोण आधुनिक वर्ग में राष्ट्रीय था।

3.2. विविध प्रेरक

राष्ट्रीय नवोत्थान को अनेक स्वदेशी- विदेशी प्रेरणाओं से गहराई और व्यापकता मिली थी। १९ वीं सदी के पूर्वार्द्ध काल में जब निज आस्था तथा निज अस्मिता के टूटने का क्रम जारी था, उन गहन अन्धकार के क्षणों में भी कुछ ऐसे प्रकाशमान पटक थे जिनसे नव जागरण, पुनर्चेतन तथा नवीन विकास होने लगा था। भारतीय चेतना पूर्ण टूटने से बचकर पुनः गरिमा के स्थान लक्ष्य की ओर उन्मुख हो गया था। प्रमुख प्रेरणाओं की भूमिका इस प्रकार रही :

१- प्राचीन गौरव चाटुकारता एवं संस्कृति

भारत की सांस्कृतिक विरासतता के प्रमुख प्रेरक प्राचीन वाङ्मय, प्राचीन दर्शन, सांस्कृतिक- आध्यात्मिक मूल्य तथा गौरव

पूर्ण उन्मादक रहे हैं। आचार्य केशव प्रसाद मिश्र के अनुसार, "" चेतना का आधार राष्ट्र विशेष के अतीत की गहराई होती है जिसमें परंपरा के अधिकांश तत्त्व जीवित रहते हैं। वे तत्त्वतः जब मुखर होते हैं तब उस राष्ट्र की सुप्त शक्ति भागीरथी की भाँति उद्दाम बन कर प्रवाहित होने लगती है।"[1]

१६ वीं शताब्दी में पाश्चात्य एवं प्राच्य अध्येताओं में अंग्रेज विद्वानों के ही नहीं जर्मन, फ्रांसीसी, अमेरिकी तथा भारतीयों ने भी अतीत के आधार ज्ञान के अनावरण, पुनर्मूल्यांकन एवं अनुवाद कार्य में अविस्मरणीय उदाहरणार्थ जर्मन विद्वानों में शीलिंग, काट, जिमर, पिशेल, बोटलिंग, पाउलसन आदि का उपनिषदों पर तथा हुड्राविग, वेबर तथा आर० पिशेल आदि का यजुर्वेद आदि के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। मैक्समूलर ने १८४६ -१८७५ तक सायण भाष्य सहित ऋग्वेद को ६ जिल्दों में संपादित करके प्रकाशित कराया तथा शिक्षोपदेश, मेघदूत, धम्मपद तथा उपनिषद् आदि का अनुवाद कार्य किया। वेबर फर्गुसन १८४३ में अमरावती पुरातत्त्व सामग्री प्रकाश में लाये। बो० बूलर (१८३७-१८९८) ने दशकुमार चरित, विक्रमांकदेव चरित, पंचतंत्र " का संपादन तथा " एनसाइक्लोपीडिया आफ एण्डीक्वीटीज् इंडियन " का प्रणयन किया।

फ्रांसीसी विद्वानों में यूजीन बर्नोफ ने महायान बौद्ध ग्रंथ " सद्धर्म पुण्डरीक " का अनुवाद किया। बोप ने १८१६ में संस्कृत भाषा-विज्ञान, व्याकरणतथा कोश-ग्रंथ का निर्माण किया। लिस्सेन लैसे तथा सर जोंस स्टाक्स ने देवनागरी में उत्कीर्णित शिलालेखों तथा पट्टों की सचित्र भित्तियों की जानकारी उपलब्ध करायी। अमेरिकी प्राच्य विद्या प्रेमी विलियम व्हिटनी (१८२७- १८९४) ने " अथर्व वेद " पर भाष्य

१- अर्जुन तिवारी- स्वातन्त्र्य आन्दोलन और हिन्दी पत्रकारिता (भूमिका भाग)

तैयार किया तथा संस्कृत ग्रामर पर प्रौढ़ ग्रन्थ की रचना की। शेषी ने १८२३ ई० में " इंडियन लाइब्रेरी " पत्रिका निकाली।

जॉन्स विद्वानों में सर विलियम जोन्स ने १८७४ में " एशियाटिक सोसायटी " की स्थापना कर संस्कृत के हस्तलिखित ग्रंथों का पुनरुद्धार कार्य किया। जोन्स ने " अभिज्ञान शाकुन्तलम् " (१८७६) " मनुस्मृति " (१७९२), " ऋतुसंहार " का अंग्रेजी में अनुवाद प्रस्तुत किया। अन्य जॉन्स विद्वानों में हेनरी टामस कोलब्रुक (१७६५-१८३७), कोलब्रुक हैं। मिल्टन आदि ने भारतीय धर्मशास्त्र, ज्योतिष, वैदिक संस्कृति पर शोधपूर्ण लेख लिखे। किन्तु ये सभी कार्य विदेशी भाषाओं में हुए।

भारतीय विद्वानों ने भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में कई श्रेष्ठ ग्रंथों तथा साहित्य का हिन्दी, मराठी, बंगला आदि भाषाओं में भाषान्तर एवं पुनर्व्याख्या प्रकाशित की थी तिलक ने गीता विषयक ग्रंथ " कर्मयोगशास्त्र " में पुनर्व्याख्या प्रकाशित किया। उपर्युक्त महत्त्वपूर्ण प्राच्य विद्या के अनुसंधान- अनुवाद कार्यों से परतन्त्र भारतीयों में नया आत्म विश्वास, शक्ति तथा आत्म गौरव जागा। राष्ट्रीयता को नया आयाम मिला। पणिक्कर के शब्दों में -"" बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक ---- राष्ट्रीयता का एक नया स्वरूप निखरा। ऐसा मुख्यतः यूरोपीय विद्वानों के कार्यों का प्रतिफल था और हिन्दू समझ गये कि उनने संसार के दर्शन में योग दिया है।""[1]

२- राष्ट्रीय संघर्ष एवं नेतृवर्ग

राष्ट्रीय नवचेतना के अंकुर पहले क्षेत्रीय, वर्गीय तथा प्रान्तीय संस्थाओं के रूप

१- पणिक्कर, के०एम०, सर्वे आफ इंडियन हि० पृ० ६६१

में फूटे। प्रारंभिक नव-चेतना फूंकने वाली संस्थाओं बाल्पीय सभा (१८४८) साहित्यिक "सोसाइटी फार दि एक्सीलेरेशन आफ जनरल नालेज" (१८४८) "पेट्रियाटिक एसोसिएशन"[1] (८ फरवरी १८३९) देश-हितैषिणी सभा"[2] (३ अक्टूबर १८४१) आदि द्वारा राष्ट्रीय संस्थाओं- प्रेस की स्वतन्त्रता, सरकारी विभागों में सुधार, धार्मिक, सामाजिक सुधार पर विचार विमर्श होता था। द्वारकानाथ ठाकुर द्वारा स्थापित संगठन को "ब्रिटिश इण्डिया सोसायटी (२० अप्रैल १८४३) जमींदार सभा (१८४८) आदि की स्थापना उच्च मध्यम वर्ग की एक राजनीतिक दायरे बांधने तथा कानून अधिकारों के विषय में सूचनाएं एकत्रित करने के उद्देश्य से हुई थी। ब्रिटिश इण्डिया एसोसिएशन (१८५१) का प्रमुख ध्येय "ब्रिटिश जनता को ब्रिटिश प्रशासन के सम्बन्ध में भारतीय जनता की भावनाओं से अवगत कराना था।[3] दादा भाई नौरोजी तथा फर्दून जी द्वारा प्रारम्भ की गई "बंबई एसोसिएशन" (१८५२), सुरेन्द्र नाथ बनर्जी तथा आनन्द मोहन बोस द्वारा स्थापित "इण्डियन एसोसिएशन" (१८७६) आदि का उद्देश्य राजनीतिक जागरण और शासक- शासितों के मध्य सेतु का कार्य करना था। "इण्डियन एसोसिएशन" के मुख्य पत्र कलकत्ता ने सुझाव दिया था" मुख्य प्रान्तीय शहरों में सार्वजनिक स्थान हों जिनमें भारतीय प्रश्नों पर विचार हो- सारे देश में परिपत्र बांटे जाएं- भारतीय जनता के एकीकृत विचारों और संस्थाओं को एक सूत्र में बांधा जाए और एक मंच पर लाया जाए।[4] "कलियन सुधा" के अनुसार १८८४ ई० तक ४३ स्वदेशीय संस्थाएं जन-जागृति फैला रही थीं।[5]

१- पेट्रियाटिक एसोसिएशन का उद्देश्य यह दिखाना है कि भारत एक राष्ट्र है" - सोसियानेन, ११ फरवरी १८३९

२- नागरिक स्वाधीनता के बढ़े जाने से मुझे उसी प्रकार बढ़ा जाता है जैसे कपड़ा के बढ़े जाने से छाया। संवाद प्रभाकर तथा कलकत्ता अखबार, ६ अक्टूबर १८४१।

३- मुकर्जी डा० ताराचन्द, पूर्व उद्धृत pp० ४६४

इसके अतिरिक्त " पूना सार्वजनिक सभा " (१८७०) मद्रास में " महाजन सभा (१८७८) के मुख पत्र क्रमशः केसरी , मराठा , न्यू इंडिया स्कूल (१८८०) तथा " हिन्दू " ने दक्षिण भारत में ज्योति जागृति की । अतः कांग्रेस के उदय से पूर्व ही राजाराम मोहन राय , द्वारका नाथ ठाकुर, देवेन्द्र नाथ बनर्जी, नारोजी, आगरकर , विष्णुशास्त्री, लोकहितवादी आदि ने भारतीय राजनीति तथा आर्थिक नीति को मजबूत आधार-शिला दे दी थी । १८८५ में कलकत्ते की राजनीतिक परिषद् में लोगों में संगठन की भावना प्रबलतर हुई । १८८५ तक देश में सर्वत्र असंतोष, बुलबुले, जुल्म, चरम सीमा पर पहुँच चुके थे । अतः सुरक्षा कपाट के रूप में सुलुम, डब्लू सी० बनर्जी , दादा भाई, तैलंग, फिरोज शाह मेहता आदि के प्रयासों से " राष्ट्रीय कांग्रेस " की स्थापना हुई " कांग्रेस की शुरू-वात ही अंग्रेजों से शुरू हुई वही कांग्रेस एक रोष गैर कानूनी करार दे दी गई ।

उन्नीसवीं सदी का नेतृत्व उदार याचना-नीति में आस्था व्यक्त करने के बावजूद कलम राष्ट्र भक्त तथा शुद्ध चरित्र के थे । उनमें जनता को संगठित , प्रशिक्षित तथा जागृत करने की तड़प और लगन विद्यमान थी । राष्ट्रीय चेतना के प्रसार में विभिन्न मिशनरियों के एंग्लोमिक एसोसिएशन (१८८८) तथा एलिफिन्स्टन इन्स्टीट्यूट (१८३४) के यंग बंगाल, यंग मद्रास आदि युवा संगठनों की भूमिका को भी विस्मृत नहीं किया जा सकता । १८५७ के स्वातंत्र्य समर के रण बाँकुरों अर्थात टीपू, नाना साहब, झाँसी की रानी आदि तथा अबीमुल्ला खाँ केदार बख्श जैसे क्रान्तिकारियों के बलिदान ने भारतीयों में नया साहस

१- एजी पाम दत्त- आज का भारत पृ० १३८

२- डा० कर्णसिंह- भारतीय राष्ट्रीयता का अंकुर पृ० १६

और गौरव स्फुरित कर दिया था।

3- धार्मिक सामाजिक सुधार आन्दोलन

धर्म भारतवासियों के लिए सदियों से केवल एक सम्प्रदाय मात्र नहीं बल्कि जीवन की स्वाभिपूर्ण पद्धति रहा है। आधुनिक पाश्चात्य इतिहासकार ए० डी० रीन कोर्ट का कथन द्रष्टव्य है। "जागरण उसी धरातल पर हो सकता है जिस पर चेतना का अस्तित्व होता है। इसी यह बात स्पष्ट होती है कि गहन परिवर्तन का प्रवर्तक हेतु वह परिपुष्ट दार्शनिक प्रवृत्ति तथा धार्मिक भावना ही हो सकती है जो भारत की भारतीयता का ऐसा अभिन्न अंग है कि यदि उसका लोप हो जाय तो उस देश की आत्मा ही निर्जीव हो जाय।"[1]

ब्रह्मसमाज

आधुनिक नव जागृति के जन्मदाता राजा राम मोहन राय द्वारा स्थापित "ब्रह्म सभा (१८२८) की स्थापना" नव सुधार जागरण युग का सूत्रपात हुआ। धर्म के क्षेत्र में राजा जी ने धार्मिक सुव्यवस्था, तुलनात्मक अध्ययन, चिन्तन का उदात्त प्रगतिवादी दृष्टिकोण, मानवतावादी विश्व धर्म तथा सुदृढ़ एकेश्वरी (हिन्दू मोनोथिस्टिक) पद्धति पर जोर दिया। भारतीय समाज को निवृत्ति के मार्ग से हटाकर उसे कर्म का भौतिक

---

[1]- Awakening can only take place on the plane on which consciousness still dwells. This explains that the most powerful agent of metamorphosis in depth could only be the profound philosophic bent and religious feeling which is so much part of India that its disappearance should destroy the very soul of that great country."

- Amaury De Riencourt, The Soul of India, p. 287

पाश्चात्य ज्ञान से संपन्न किया तथा ग्रंथ प्रामाण्यवाद का विरोध कर बौद्धिक वैज्ञानिक अनुभवगम्य ज्ञान को महत्ता दी तथा जाड्यात्मकारी मूर्तिपूजा आदि का विरोध कर शुद्ध परमार्थ वेदान्त ज्ञान पर जोर दिया।

समाज सुधार के कार्यक्रमों में उन्होंने स्त्री प्रथा, बाल विवाह, कन्या विक्रय तथा जाति प्रथा के विरुद्ध संघर्ष अभियान छेड़ा तथा नारी स्वातंत्र्य के समर्थन में नारी वर्ग का संपत्ति पर अधिकार बताया। पत्रकारिता के क्षेत्र में अनेक पत्रों का प्रकाशन कर प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए आवाज बुलन्द की तथा प्रेस एक्ट (१८२७) का भी विरोध किया था।

यही "ब्रह्मसभा" १८४३ में देवेन्द्र नाथ टागोर का ब्रह्म समाज कहलाया। केशव चन्द्र सेन के प्रवेश के पश्चात् १८६६ में यह भारतीय ब्रह्मसमाज तथा आदि ब्रह्म समाज दो भागों में विभाजित हो गया। १८७८ में पुनः उनमें से 'साधारण ब्रह्म समाज' की शाखा फूटी। इस प्रगतिशील संगठन ने बाल विवाह, बहुविवाह तथा पर्दा प्रथा पर रोक लगाने के लिए १८७२ में नये एक्ट के लिए संघर्ष किया। केशव चन्द्र सेन के विचार पाश्चात्य संस्कृति और ईसाई धर्म से प्रभावित थे लेकिन अंग्रेजों की शोषक आर्थिक नीति का प्रतिरोध करने में उन्होंने कभी भी जरा हिचक नहीं दिखायी[१]। उन्होंने बंगला में सुलभ समाचार का प्रकाशन किया मुख्य रूप से पैसा था, प्रकाशित कर बौद्धिक जागरण फैलाया। ब्रह्म समाज ने व्यक्ति स्वातन्त्र्य, राष्ट्रीय ऐक्य और सहकरण एवं सामाजिक संस्थाओं और सम्बन्धों

१- "यदि भारत पर शासन करने का इंग्लैंड का उद्देश्य केवल धन कमाना है तो, मैं यही कहूँगा कि ब्रिटिश राज्य की जड़ें पाप ग्रस्त कर दी"-

- प्रो० सुरेश चन्द्र शर्मा, राष्ट्रीय जन व बंगला नैतिकता pp० ८८-८९

के प्रजातंत्रीकरण के सिद्धान्तों को घोषित कर भारतीय जनता के लिए नये युग का सृजन किया। भारतीय जनता के राष्ट्रीय जागरण की यह पहली अभिव्यक्ति थी।[1]

प्रार्थना समाज

केशवचन्द्र सेन की देख रेख में बम्बई में "प्रार्थना समाज (१८६७) की स्थापना हुई। पण्डित रम० जी० रानाडे भाण्डारकर आदि ने सारा जीवन सुधार कार्यों में समर्पित कर इसको बहुमुखी महत्त्व दिलाया था। "प्रार्थना समाज" ने हिन्दू धर्म में जात-पांत, छूआ, नारी दशा सुधारने के अनेक कार्यक्रम चलाये लेकिन इसका प्रभाव सीमित रहा।

आर्य-समाज

१८६३ में प्रारंभ दयानन्द सरस्वती के इस आन्दोलन ने समस्त हिन्दू-मुस्लिम जैन समाज को झकझोर कर जगा दिया था इसने हिन्दू धर्म को आक्रमक स्वरूप प्रदान कर ईसा, इस्लाम, जैन आदि धर्मों के विरुद्ध नयी प्रतिरोधक शक्ति पैदा की।

आर्यसमाज की स्थापना बंबई में १८७५ में हुई। इस सिद्धान्त के अनुसार ईश्वर के सच्चे स्वरूप का ज्ञान वेदों में है। वे प्रमाणित और अमोघ हैं। वे धर्म सम्बन्धी ज्ञान-विज्ञान और विकास के अविरल स्रोत हैं। वेदों के पठन-पाठन का अधिकार सबको है। आर्यों को वेदों का प्रमाण

१- (क) ए० आर० देसाई पूर्व उद्धृत पृ० २३१

(ख) ब्रह्मसमाज ईसाई हिन्दुत्व के युद्ध का पहला मोर्चा था, जिसमें हिन्दुत्व कुछ लगाया हुआ और प्रतिक्रिया की प्रवृत्ति से आतंकित था।"

- रामधारी सिंह दिनकर, पूर्व उद्धृत पृ० ४४२

मानना चाहिए वेदों के अतिरिक्त जो भी ज्ञान और चिन्तन है वह भारतीय होने पर भी ग्राह्य नहीं हो सकता। आर्यावर्त्त आर्यों का देश है। हिन्दी आर्य भाषा है।

आर्य समाज धार्मिक सामाजिक सुधार कार्यों में राष्ट्रीय जागरण की उदात्त भावना से युक्त था। उसने राष्ट्रीय एकता, गौरव- चेतना का उत्थान कर भारतीयों को समन्वित चेतित करने का प्रयास किया। वह शिक्षा, मानव- सम्मानाधिकार स्वराष्ट्र और स्वभाषा को गौरवान्वित करने वाला प्रगतिशील आन्दोलन था। मूर्ति पूजा, बाह्य कर्म- काण्डों का विरोध कर धर्म को नया रूप और गरिमा प्रदान की। उसने राज- नीतिक महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए डा० वी० रीनकोर्ट का कथन उल्लेखनी- पूर्ण नहीं है, "" आज इसमें जरा भी संदेह नहीं कि १९०५ का बंगाल का महान विद्रोह परोक्ष रूप से आर्य समाज की धार्मिक राष्ट्रीयता का ही परि- णाम था और महर्षि दयानंद का संगठन राजनीतिक राष्ट्रीयता का प्रथम मूर्त्त केन्द्र बिन्दु था।[1]

थियोसफी

१८७५ ई० में मादाम ब्लावत्स्की और कर्नल आलाय द्वारा स्थापित थियोसफिकल सोसाइटी यद्यपि विदेश प्रसूत धार्मिक संस्था थी फिर भी हिन्दू धर्म तत्त्वों का बड़ा प्रचारक था जिसका मुख पत्र " थियोसाफिस्ट " (१८७९) था। समाज सेवा, कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म और राष्ट्रीयता को बल देने वाली यह संस्था विश्व बंधुत्व की समर्थक थी। श्रीमती एनी बीसेंट ने अखण्ड हिन्दुत्व का आख्यान कर क्षोभ ग्रस्त भार- तीयों में " भारतीयता " के प्रति आस्था के दीप जलाये और भारत निन्दा करने वालों को मुंह तोड़ उत्तर दिया।[2]

१- डा० वी० रीनकोर्ट- द ग्रोथ आफ इण्डिया पृ० २२७

२- " पाश्चात्य जगत के सुगंभीर चिन्तन के बाद मैं यह कह रही हूं कि विश्व के सभी धर्मों में हिन्दू धर्म से बढ़कर पूर्ण, वैज्ञानिक दर्शन युक्त एवं आध्या-

राम कृष्ण मिशन के प्रवर्त्तक राम कृष्ण परमहंस ने धर्म के सरल, सुलभ सर्वग्राह्य रूप को अपने आचरण द्वारा प्रस्तुत करके बताया कि सभी धर्म एक ही ईश्वर की ओर ले जाने वाले अलग अलग रास्ते हैं। मूल तत्त्व एक है, साधन अनेक हैं तथा उनके शिष्य विवेकानन्द ने विश्व के धर्म मंच पर भारतीय अध्यात्म ज्ञान तथा हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता का भव्य प्रस्तुतिकरण किया। यह विचारधारा आध्यात्मिक नैतिक, पूर्व- पश्चिम के श्रेष्ठ चिन्तन से युक्त उदात्त धर्म, लोक- सेवा तथा राष्ट्र- भक्ति की भावना से पूर्ण थी जिसने भारतीय लोक मानस की हीन भावना को दूर कर प्राचीन गरिमा के पुष्प खिलाये। धर्म की पुनर्व्याख्या कर उसे समाजोपयोगी तथा सार्थक बनाया।

अतः ये धार्मिक सामाजिक आन्दोलन भारतीय आत्मा को प्रबुद्ध करने और साम्राज्यवाद की नींव हिलाने में महत्त्वपूर्ण प्रेरक सिद्ध हुए। ए० आर० देसाई का कथन उचित ही है कि ये धर्म सुधार आन्दोलन सतहतः राष्ट्रीय थे लेकिन तहतः धार्मिक तथा राष्ट्रीयता के उद्भव की शक्ति संजोए हुए थे।[1]

4. पत्रकारिता साहित्य का राष्ट्रीय पक्ष

वस्तुतः पत्रकारिता और साहित्य की सशक्त आवाज के बिना राष्ट्रीय चेतना, ऐक्य, राजनीतिक स्वाधीनता और अस्मिता के तत्त्व आदि की कल्पना करना भी कठिन है। ग्राम, नगर के घर- आंगन में देश के लिए प्राणों की बाजी लगाने की अलख जगाना तथा

१- ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत पृ० २२६

स्वाधीनता के लिए देश भक्ति, एकता की सौ प्रज्वलित करे रखना राष्ट्रीय पत्रकारिता और साहित्य का ही कार्य था। यदि १६ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में इन माध्यमों ने देशवासियों की अटूट निष्ठा से जगा कर खड़ा न कर दिया होता तो क्या २० वीं सदी में भारत में इतना बड़ा जन- ज्वार और जन- आन्दोलन विकसित हो सकता था ? तत्कालीन साहित्यिक जन और पत्रकार देश को सदा के हृदय की पहचान कर " राजभक्त " होने का स्वांग कर करते थे किन्तु उन्होंने कभी अपने जनदायित्व तथा सत्य को विस्मृत करके न साम्राज्यवाद के साथ किसी भक्त की न कभी संवर्ग कर्त्तव्य से डिगे, नहीं जीवों के बांधन में छिप कर दया की भीख मांगी बल्कि उनके विरुद्ध निरन्तर विपन्नता और विपत्तियों के साये में भी दृढ़तापूर्वक साम्राज्यिक अस्तित्व बनाते रहा। उनके एक- एक शब्द में देश के प्रति प्रतिबद्धता झलकती है। वे अकेले दुःख केसते हुए भी कभी जनता के प्रति गैर जिम्मेदार नहीं हुए। अतः राष्ट्रवादी समाचारपत्रों ने राष्ट्रीयता के प्रचारक और संगठनकर्ता का कार्य किया। उस समय के अधिकतर समाचार पत्र व्यापारिक लाभ के लिए नहीं, बल्कि सफलतापूर्वक राष्ट्रीय कार्य- कलापों के अंग के रूप में प्रकाशित हुए।[1] "

जागरण युग में प्रायः सभी रचनाकारों के साहित्य में राष्ट्रीयता और राजभक्ति की भावना भरपूर मात्रा में मिलती है। अतः राष्ट्रीय साहित्य एक तरफ भारतवासियों के बढ़ते राष्ट्रीय आन्दोलन का दर्पण था और दूसरी तरफ उसे आगे बढ़ाने का प्रबल अस्त्र।[2] "

5. अन्तर्राष्ट्रीय- क्रान्तियाँ

भारतीय नवोत्थान पर कोई अन्तर्राष्ट्रीय

१- विपिनचन्द्र- स्वतन्त्रता संग्राम पृ० ५६

२- अयोध्या सिंह, भारत का मुक्ति संग्राम पृ० ६१

क्रान्तियाँ, अमेरिका की स्वातन्त्र्य घोषणा (४ जुलाई १७७६) , फ्रांसीसी राज्य क्रांति (१७८९) , इटली (१८२०-२१) तथा स्पेन की (१८२०-२३) आदि क्रांतियों का गहरा प्रभाव पड़ा था । ये भारतीयों में चेतन्यता और राष्ट्रीय भावना प्रस्फुटित करने में सफल हुई थी । १८४८ के बाद हुई अनेक यूरोपीय क्रांतियों ने भारतीय विचारधारा पर गहरा छाप छोड़ी थी । उदाहरण-स्वरूप इटली में मेजिनी और गैरी बाल्डी के नेतृत्व में " यंग इटली " आन्दोलन कारबोनारी संगठन तथा पेरिस कम्यून घटना (१८७२) के अनुकरण पर भारत में भी अनेक विद्रोही संगठन और संघ आदि बने[1] ।

१७६०-१८३० का काल इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति तथा भारत में आबादी की पूरी उथल पुथल का है[2] । यह कहना गलत नहीं होगा कि इस औद्योगिक क्रांति की रीढ़ भारत पर टिकी थी । रजनी पाम दत्त का कहना बिलकुल सही है, " भारत की लूट के सहारे ही इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति सफल हो सकी इसने आर्थिक पद्धति में क्रांति को जन्म दिया और व्यापारिक पूंजीवाद के सिद्धान्तों का स्थान मुक्त व्यापार वाले पूंजीवाद के सिद्धान्तों ने ले लिया । इस प्रक्रिया ने औपनिवेशिक पद्धति की प्रणालियों को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया[3] । अतः १८१३ के पश्चात् भारत में दुनियाँ का शोषण का रास्ता खुल गया । इस नीति ने ग्राम-व्यवस्था , देशी न्याय व्यवस्था, शिक्षा तथा उद्योग धन्धों को चौपट कर दिया जिसके फलस्वरूप भारतीयों में तीव्र प्रतिक्रिया के कारण राष्ट्रीय भाव जाग्रित हुए । इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक ज्ञान, विज्ञान, आधुनिक शिक्षा, आवा-

---

१- विपिनचन्द्र पाल, मेमोरीज आफ माइ लाइफ एण्ड टाइम्स (भाग १) १९३२, पृ० २४७

२- जवाहरलाल नेहरू, हिन्दुस्तान की कहानी पृ० २५३

३- रजनी पामदत्त, इंडिया टुडे पृ० ६६

काल के विभिन्न संचार माध्यमों तथा आन्दोलन, सिद्धान्तिक परिवेश ने भी जागरण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निर्धारित कर दी थी।

3. नवजागरण की प्रेरक शक्तियाँ एवं हेतु

राष्ट्रीय नवजागरण की प्रक्रिया अति जटिल थी एवं अन्तर्विरोधों से युक्त थी उसके मूल में न जाने कितनी प्रेरक शक्तियाँ ऐतिहासिक अन्तर्धाराएँ, सामयिक परिस्थितियाँ एवं मानवीय प्रतिक्रियाएँ काम कर रही थी जिनका अन्तः सम्बन्ध नवजागरण की आकांक्षा से था। राष्ट्रीय हितों की दृष्टि से जैसी अधिकारों, मान्यताओं, पाश्चात्य विचारों तथा राष्ट्रवादी विचारों, अधिकार एवं स्वातन्त्र्यों के मध्य परस्पर विरोधी रहे हैं।

राष्ट्रवादी विचारकों की धारणा के अनुसार विभिन्न सांस्कृतिक कारणों से साम्राज्यवाद का जन्म हुआ है और इसी साम्राज्यवाद का विरोध करने के लिए भारत तथा एशिया के अन्य देशों में राष्ट्रीयता का जन्म हुआ[1]। जैसे सारा भारत पर राजनीतिक आधिपत्य करने का मुख्य आकर्षण यही था कि वह ब्रिटिश साम्राज्य का औपनिवेशिक उपांग बन कर अंग्रेज की लाभ-व्यवस्था और उद्योगों की वृद्धि के लिए आवश्यक कच्चा माल की पूर्ति और ब्रिटिश उत्पादित वस्तुओं का विदेशी बाजार बन जाए। इसका उल्लेख विपिन चन्द्र का यह है, "अन्तः राष्ट्रीय संघर्ष---- भारतीय जनता और ब्रिटानी शासकों के हितों की टक्कर का परिणाम था। ---- विदेशी शासन के प्रतिरोध के फलस्वरूप भारतीय जनता में राष्ट्रीयता के भाव उठे[2]।" वैसे सम्पूर्ण एशिया में युद्ध पूर्वार्ध-

---

1- आचार्य नरेन्द्र देव- राष्ट्रीयता और साम्राज्यवाद पृ० 6

2- विपिन चन्द्र- स्वतन्त्रता संग्राम पृ० 2

गरण के लिए भारतीय पाश्चात्य संस्कृति के समन्वय को मानते हैं।[1] इतिहासकार डी' मेलो ने हैलों के लिए तीन शक्तियों को उत्तरदायी माना है -

१- ईसा धर्म नीति
२- यंत्री ज्ञान
३- विज्ञान- प्रकृति विजय।[2]

हिन्दी साहित्यकार रामधारी सिंह दिनकर का विचार है, "भारत में ईसाइयत का प्रचार, ईसाइयों के द्वारा भारतीय धर्मों की निन्दा, यूरोप के क्रांतिकारी बुद्धिवादी विचार और अंग्रेजी पढ़े लिखे हिन्दुओं द्वारा हिन्दुत्व की भर्त्सना, ये कुछ कारण थे जिनसे हिन्दुत्व की नींव टूटी।"[3]

संदीप में राष्ट्रवादी विचारकों के मतानुसार राष्ट्रीयता और मतांतरण अंग्रेजी राज के विरुद्ध बगावत की देन है। भारत की भौतिक समृद्धि, धार्मिक- सामाजिक संकट, उद्योग- शिल्प और राष्ट्रीय विपत्ति की पूर्णतः व्यक्त करते अंग्रेजी सत्ता ने ध्वंसात्मक और रचनात्मक भूमिका निभायी जिसकी परिणति राष्ट्रीय हैलों के रूप में हुई।

उपर्युक्त धारणा के पूर्णतः विपरीत अंग्रेजी शासकों, इतिहासकारों तथा पाश्चात्य प्रगतिवादी विचारकों आदि के मतानुसार "भारतीय हैलों" और "राष्ट्रीयता" के उद्भव का मूलतः

१- सोशल स्टडी, दि हैलों इन इंडिया पृ० १८-२०
२- डी' मेलो, पार्ट्स इंडिया एण्ड द वेस्ट
३- रामधारी सिंह दिनकर पूर्व उद्धृत पृ० ४४१

[illegible] और [illegible] राज की प्रगतिशील भूमिका की तथा भारत को सभ्य और समुन्नत बनाने वाले परोपकारी कृत्यों की है। उनकी मान्यता है कि राष्ट्रीय नवजागरण अंग्रेजी शिक्षा-भाषा, न्याय व्यवस्था तथा प्रजातांत्रिक शिक्षा प्रदान आदि की कृतज्ञतापूर्ण देन है। अंग्रेजों का दावा था, "भारत के लोगों का यह विश्वास किसी राजनीतिक योजना है--- नैतिक रूप से [illegible] हैं---- इसके लिए उन्हें सभी श्रेय देना चाहिए।"[1] भारतीय इतिहासकार ए०सी० मजूमदार का कथन है, "आधुनिक भारतीय जनजागरण निश्चय ही पाश्चात्य सभ्यता की देन है।"[2]

समाजवादी लेखकों ए० आर० देसाई भी राष्ट्रवाद के उद्भव के संदर्भ में अंग्रेजी शासन की प्रगतिशील भूमिका को स्वीकार करते हैं। "आत्मनिर्भर स्वाधीन ग्रामीण अर्थतन्त्र पर आधारित भारत के अंतक को समाप्ति और पूँजीवादी देशों के आगमन के आर्थिक क्षेत्र के और पर भारत का रूपान्तरण अंग्रेजी शासन के ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील परिणाम थे।"[3]

वस्तुतः आधुनिक सभी विचारकों के मत प्रकाश कार्ल मार्क्स की इस धारणा पर आधारित है- "इंग्लैण्ड द्वारा हिन्दुस्तान की नष्ट कर भारत में सामाजिक क्रांति उत्पन्न करने में इतिहास का एक गौरव सिद्ध हुआ।"[4]

१- (क) मोंटेग्यू- चेम्सफोर्ड रिपोर्ट (१९१८) पृ० ११५ तथा इसी पाठ्यक्रम का भाग।

(ख) एर्न जान मार्टि- दि इन्डियन वाफ [illegible], १९८३ पृ० २५४-५७

(ग) [illegible]- एर्न जान स्ट्रैची- इंडिया [illegible] एण्ड प्रोग्रेस १९८८ पृ० ५

२- ए०सी० मजूमदार- इंडियन एमेन्सिपेशन पृ० ३७७

३- ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत पृ० ८

४- कार्ल मार्क्स का पत्र फेडरिक को (१४ जून, १८५३)

उपर्युक्त मत का विश्लेषण करने पर कुछ प्रश्न तथा नये विचार-बिन्दु उभरते हैं-

१- क्या राष्ट्रीयता और रैयतों का उदय ब्रीटो राज की गुलामी और आत्म निर्भर ग्राम समुदायों का विनाश किये बिना संभव नहीं था ?

२- क्या भारत की समस्त प्रगति, राष्ट्रीयता, जनतंत्रों एवं आधुनिकीकरण की संकल्पनाएँ ब्रिटिश राज की भाषा, शिक्षा, प्रशासन तथा सभ्यता की उदारतापूर्ण देन थीं ?

३- यदि १८५७ के गदर में या सभी पूर्व भारतीयों की विजय मिल गयी होती तो क्या राष्ट्रीय प्रगति और जागरण की प्रक्रिया ब्रीटो राज की प्रगतिशील भूमिका के बिना संभव हो जाती ?

४- क्या स्वयं सामाजिक संघटन का पूर्णतः ध्वंस ही राष्ट्रीय क्रांति तथा नवोत्थान के लिए अनिवार्य प्रक्रिया है ?

उपर्युक्त प्रश्नों पर गहराई से विचार करने के लिए पाश्चात्य चिन्तकों की सैद्धान्तिक स्थापनाओं की समीक्षा और वैज्ञानिकता का विश्लेषण करना अपेक्षित होगा। प्राक् ब्रिटिश भारत के ग्रामीण अर्थतन्त्र के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स का मत है कि " ये छोटे और बड़े पुराने भारतीय जनसमुदाय कृषि के संयुक्त अधिकार, कृषि और उद्योग-शिल्प के संयोजन और अपरिवर्तनीय श्रम विभाजन पर आधारित हैं। उनमें प्रत्येक स्वयं एक संपूर्ण इकाई है जो आवश्यक वस्तुओं का कुछ उत्पादन करता है। उत्पादन के बड़े भाग का समुदाय स्वयं उपभोग करता है और वह विक्रय-

शीत पण्य का रूप नहीं लेता। भारतीय समाज व्यवस्था में, पण्य विनिमय द्वारा उत्पन्न श्रम विभाजन से उत्पादन मुक्त है। उत्पादन के अधिशेष का अंश मात्र ही पण्य का रूप लेता है जब वह राज्य के पास पहुँचता है।---- सब सम्मिलित रूप से लेते करते हैं और फसल समुदाय में बांट दी जाती है-- ये स्वयंपोषी समुदाय सदा अपने चिरंतन रूप में फिर फिर आविर्भूत होते रहे हैं।[1]"

मार्क्सवादी चिन्तक ए० आर० देसाई की भी लगभग यही मान्यता है- " इन गांवों का बाहर की दुनिया से कोई सामाजिक, आर्थिक और बौद्धिक संपर्क नहीं था, बैलगाड़ी आवागमन का एक मात्र साधन थी।---- जहां भारत जन जीवन को राष्ट्रीय, आर्थिक एकता, बौद्धिक विकास और सामाजिक अस्तित्व के उच्चतर स्तरों की प्राप्ति करनी थी, तो आत्म निर्भर गांवों का विनाश अवश्यंभावी था। ऐसे लोगों का समन्वित राष्ट्र भला कैसे बन पाता जो विभिन्न केन्द्रों में अलग अलग विभक्त जीवन जी रहे थे।---- छोटे समूहों में स्वतन्त्र और पृथक् जीवन जीने वालों की जन-चेतना राष्ट्रीय स्तर की भला कैसे होगी?[2]

उपर्युक्त प्राक् ब्रिटिश भारत के ग्रामों की अर्थ-व्यवस्था की आधारभूत स्थापनाओं के चित्रण में आंशिक सत्य ही विद्यमान है। यह सत्य है कि प्राक् ब्रिटिश भारत का ग्रामीण जीवन पूर्णतः आत्म-निर्भर, सरल एवं स्वावलम्बी था, किन्तु यह कथन " भारतीय गांवों का बाहर की दुनिया से कोई विनिमय सम्बन्ध नहीं था " गांव के लगभग संपूर्ण उत्पादन का उपभोग गांव की जनता ही करती थी " वाणिज्यिकता के विप-

---

१- देखिए- कार्ल मार्क्स- पूंजी खण्ड १ प्रगति प्रकाशन मास्को पृ० ४४४ तथा टेली ट्रिब्यून, २५ जून १८५३ और कार्ल मार्क्स एण्ड फ्रेडरिक एंगेल्स, सेलेक्टेड वर्क्स (खण्ड १) १९५९ पृ० ३१३, ए०आर०देसाई पूर्व उद्धृत

२- ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत पृ० ८,१९,३६

रित है। ग्रामों में अनाज, मसालों, वस्त्र तथा हस्तशिल्प की वस्तुओं का अतिरिक्त उत्पादन अवश्य होता था।[1] इस अतिरिक्त उपज को ग्रामवासी बंजारों या समीपवर्ती कस्बों (अपेक्षाकृत बड़े गांव) में जाकर विक्रय करते थे।[2] वहाँ से देशी-विदेशी सौदागरों द्वारा देश- विदेश में माँग के अनुसार सप्लाई होती थी। भारत के उत्पादन की क्षीण और विदेशी व्यापार के सम्बन्ध में कैलवर्टन का कथन द्रष्टव्य है - " तीव्र बुद्धि, सूक्ष्म पर्यवेक्षण और रचनात्मक प्रतिभा के फलस्वरूप भारतीय उद्योग पाश्चात्य देशों से अपेक्षाकृत बढ़े हुए हैं। सुदूर की उन शताब्दियों में जब पाश्चात्य नौपरिवहन अविकसित था, भारत ने भारी बोझ ढोने के जहाज बनाये थे - वस्त्र निर्माण हिन्दुस्तान का प्रमुख उद्योग था और यहाँ के सूती रेशमी कपड़ों की तारीफ और माँग थी। तेरहवीं, चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दियों में धातु कार्य, प्रस्तर शिल्प, शक्कर तेल और कागज के उद्योग भी विकसित थे। कुछ भागों में काष्ठ कर्म, मृत्तिका पात्र और चर्म आदि उद्योग भी पल्लवित हुए।---- बहुत सारे यात्रियों ने भारत के निर्मित लोहे और यहाँ के रासायनिक उद्योग की प्रशंसा की है---- गन्धक से मुखमण्ड, अंगूठी, पानी मसाला फल और अनेक चीजें बनती थीं---- सारी दुनिया में खास कर यूरोप में उनकी बड़ी माँग थी।[2]"

पुर्तगाल, फ्रांसीसी, डच तथा अंग्रेज मुख्यतः मसाले वस्त्रों आदि के व्यापार के उद्देश्य को लेकर भारत आये थे। " १६०० से १७५७ तक ईस्ट इंडिया कंपनी मुख्यतः एक व्यापार-संघ थी।---- यह व्यापार संघ प्रायः बाहर से बुलियन (सोना- चांदी लाता था और उनके बदले भारत

१- डा० रामविलास शर्मा, सन् सत्तावन की राज्य क्रांति पृ० ७०,७१

२-(क) कैलवर्टन, वी० एफ० दि औरिजिन आफ अमेरिका १९३६ पृ० १६-१७

(ख) प्राक् ब्रिटिश भारत का नागरिक हस्तशिल्प अत्यन्त विकसित था और सब जगह उसकी माँग और सप्लाई थी- ए० आर० देसाई उपरिवत् पृ० १२

(ग) जयाएर लीस नेहरू- हिन्दुस्तान की कहानी पृ० २६-६०

से विलायिता के उपकरण की कला, सुलीकपड़ा इत्यादि विदेश से आता था- सत्रहवीं सदी के अन्त में रेशम, सूती सामान का बड़े पैमाने पर निर्यात हुआ। (ईस्ट इंडिया) कंपनी के लिए यह बड़े लाभ का रोजगार था।[1]

उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट है ग्रामों में उपर्युक्त वस्तुओं की अतिरिक्त उपज अवश्य होती थी जिनका अन्तर्देशीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार किया जाता था।[2] अतः ग्रामों में कृषि के साथ ही विविध हस्त शिल्प उद्योग संबद्ध थे उनके निर्मित वस्त्रों आदि का और कृषिजन्य प्राप्त उत्पादन का संपूर्ण उपभोग ग्रामों तक सीमित नहीं था बल्कि विभिन्न उत्पादित सामान को बैलगाड़ी, हाथी, घोड़े, ऊँट आदि साधनों के द्वारा छोटे समीपवर्ती कस्बों (अर्थशास्त्र बड़े गांव) और नगरों में ले जाया जाता था।[3] १६ वीं सदी से पूर्व यातायात के साधन सीमित और धीमीगति के अवश्य थे लेकिन बैलगाड़ी, घोड़े आदि की पहुँच देश में हर कहीं संभव थी क्योंकि भारत का अधिकांश भाग समतल है। उनके बीच में प्राकृतिक रुकावटें अधिक नहीं हैं। यही कारण था भारतीय ग्रामीण समाज चार कोनों में स्थित चार तीर्थों की यात्रा बैलगाड़ी आदि से करता था। क्या बैलगाड़ी से वाणिज्य विनिमय सम्भव नहीं होता? अतएव भारत में आज भी दूर दराज के ग्रामों से उत्पादित वस्तु को लेजाने लाने तथा यातायात का साधन बैलगाड़ी ही है।

प्राक् ब्रिटिश भारत में समस्त उद्योग ग्रामों, कस्बों तथा नगरों में बिखरे हुए थे क्योंकि नगरों और ग्रामीणों का स्वरूप एवं तकनीक तब एक समान थी। इसका कारण यह था कि तब तक भारत में कहीं भी स्वचालित मशीनी उपकरणों और विकसित प्रौद्योगिक तकनीक का आविष्कार नहीं हुआ था। आधुनिक भारत के समान तब भी भारत को

अरुणा देसाई, पूर्वोक्त पृष्ठ ६५

1. डा० राम विलास शर्मा, भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद pp 334-35
2. Irfan Habib, Agrarian system of Mughal India(1556-1707) pp 61-62.

अधिकांश जनता ग्रामों में ही रहती थी। नगरों की संख्या अधिक नहीं थी। अतः कृषि से संयोजित उद्योगों में निर्मित वस्तुओं से ही माँग की संपूर्ति होती थी क्योंकि देश- विदेश में प्रसिद्ध मलमलों, वस्त्रों, हस्तशिल्प, चर्म काष्ट आदि उद्योगों की प्रकृति और आवश्यकताएँ ऐसी हैं कि बिना कच्चे माल के विनिमय के कतिपय नगरों के हस्तशिल्प उद्योग विदेशी माँग की आपूर्ति नहीं कर सकते थे। अतः ये ग्रामोद्योग ही स्थानीय, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय माँग की संपूर्ति अपने अधिक उत्पादन से करते थे।

अतः वास्तविक तथ्य कुछ इस प्रकार हो सकते हैं :

१- प्राक् ब्रिटिश भारत में आत्म निर्भर ग्रामों का आर्थिक एवं सांस्कृतिक जीवन न तो बाहरी दुनिया से न विच्छिन्न था न ही उदासीन।

२- इन ग्रामों में उत्पादित संपूर्ण कृषि और हस्तशिल्प वस्त्रों आदि का सारा उपभोग ग्रामों और राज्य के लगान के रूप में ही नहीं होता था वरन् अतिरिक्त उत्पादन पण्य का रूप धारण करता था।

३- बैलगाड़ी आदि से भी आर्थिक विनिमय संभव है।

४- भारत में नागरिक हस्तशिल्प के साथ ग्रामीण हस्तशिल्प भी समुन्नत था क्योंकि दोनों की तकनीक में कोई अन्तर नहीं था।

५- वस्तुतः ग्रामों की अपरिवर्तनशीलता, स्थायी संरचना और चिरंतनता[१] का कारण उनका सामाजिक आर्थिक सम्बन्धों से शून्य

१- ग्राम समुदाय छोटे छोटे गणतंत्र हैं--- विदेशी सम्बन्धों से ये मुक्त हैं। जहाँ कुछ भी स्थायी नहीं, वहाँ ये ही अकेले अमर हैं। राजकुल लुप्त हो रहे, क्रांतियाँ होती रहीं, हिन्दू, पठान, मुगल, मराठा, सिख कोरेश क्रमशः मालिक बनते रहे, लेकिन ग्राम समुदाय यथापूर्व बने रहे।" चार्ल्स मेटकाफ १८३५

होना नहीं था। सच्चाई तो यह है कि भारतीय ग्रामीण समाज की सामाजिक आर्थिक संरचना तथा विकेन्द्रित अर्थ व्यवस्था सुदृढ़ भित्ति पर आधारित थी। सदियों से पूर्व भी भारतीय समाज के सामने सामाजिक, आर्थिक एवं आध्यात्मिक प्रगति के निश्चित आदर्श, उच्च लक्ष्य और प्रौढ़ परिकल्पनाएँ थी। भारतीय जीवन धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष जैसे आदर्शों से संयुक्त था जिनमें भारतीय उद्योग व्यवसाय की शैक्षता, साहित्य, कला शिल्प, धर्म तथा व्यक्तित्व और समाज का पूर्ण विकास समाविष्ट था। व्यवसाय और उद्योग आनुवंशिकता के सिद्धान्त पर तथा श्रम विभाजन, वर्ण व्यवस्था पर आधारित था। कृषि, उद्योग, कला साहित्य तथा धर्म सभी समुन्नत थे। राजनीति और राजा का मुगलकाल तक केवल इतना दखल था कि उन्हें लगान के रूप में उत्पादन का कुछ हिस्सा देना पड़ता था। आज के समान पूर्ण केन्द्रीय सत्ता नहीं थी। जहाँ पूरे देश के लोगों का भाग्य चन्द चुने हुए अल्प प्रतिनिधियों की मुट्ठी में केन्द्रित हो जाता है।

अतः विकेन्द्रित, स्वावलंबी, स्वतन्त्र ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता कि वे सामाजिक- आर्थिक निष्क्रियता और बौद्धिक जड़ता के पुर्ज होते हैं।

वस्तुतः भारतीय समाज की सुदृढ़ आर्थिक-सांस्कृतिक संरचना और श्रमशीलता के कारण ही भारत मुगलकाल तक राजनीतिक, उलटफेर, विदेशी आक्रमणों, लूट की भीड़, कोई विदेशी संस्कृतियों को पचा कर सामाजिक अनुकूलता, सांस्कृतिक विरासत तथा समृद्धि को चिरंतन रख पाया था। इतिहास के किसी भी दौर में उसकी तुलना विश्व के अन्य देशों से की जाए तो वह भौतिक समृद्धि, आध्यात्मिक शक्ति तथा सामाजिक

संतुलित अवस्था, शिल्प- वाणिज्यिक गुणवत्ता तथा शिक्षा आदि में अग्रगुरु और सोने की चिड़िया कहलाता रहा।

भारतीय इतिहास साक्षी है कि देश अनेकों बार पहले भी राजनीतिक अस्थिरता, अराजकता तथा धार्मिक संकीर्णता से उबरा था। औरंगजेब की मृत्यु के (१७०७) पश्चात् जब देश में अराजकता और धार्मिक धर्मान्धता का वातावरण व्याप्त हो गया था यदि उस समय विदेशी गुलामी की बेड़ियाँ किसी तरह टूट जाती तो क्या अन्य देशों के समान (जो पराधीन नहीं रहे) भारत का स्वाभाविक विकास और वैज्ञानिक उन्नति नहीं होती ? भारत के समृद्ध उद्योग अल्प ही काल- कवलित न होकर फिर न फलते फूलते ? क्योंकि भारतीय ग्रामीण व्यवस्था चिरंतन थी। भारत सदैव नवीन विचारों को ग्रहण करने और फैलाने में अग्रणी रहा है। वह अन्तर्राष्ट्रीय बाजार पर पहले से ही छाया था। पूँजीपति व्यापारियों का उदय हो चुका था तब क्या उनके व्यवसायी पूँजीपति समय के साथ शक्तिशाली न होते ? विश्व में होती क्रांतियाँ और आविष्कारों की जानकारी उन्हें अवश्य होती ? क्योंकि अन्य देशों से उनके राजनयिक व्यापारिक सम्बन्ध पहले से ही थे।

किन्तु इतिहास की वास्तविकता इसके विपरीत रही। सत्रहवीं शताब्दी से ही अंग्रेजों की निरन्तर लूट, व्यापारिक लाभ के लिए किये गये भयंकर आर्थिक राजनीतिक षड्यन्त्रों ने भारतीय ग्रामीण उद्योगों का समूल विनाश कर भारतीयों को स्थायी रूप से गरीबी, बेकारी अशिक्षा के दल दल में ढकेल दिया। उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा द्वारा भारतीयों की मूल ज्ञान धारा से काट कर भारतीय मनीषा, मस्तिष्क और आत्मा को

१- अयोध्या सिंह - भारत का मुक्ति संग्राम पृ० ६-७

(ख)" कुल राज्यसत्ता विशुद्ध सामंती राज्यसत्ता नहीं है, वह पूँजीवादी शक्तियों की छत्रछाया में पनपती राज्य सत्ता है और उनका सम्बन्ध पूँजीवाद की पहली मंजिल से है जिसे व्यापारिक पूँजीवाद कहा जाता है।

- डा० रामविलास शर्मा- भारत में अंग्रेजी राज और मार्क्सवाद पृ.३२६

पूरी तरह ध्वस्त करने का प्रयत्न रहा। उनकी ध्वंसात्मक नीतियाँ, अत्यधिक आर्थिक दोहन तथा हस्तशिल्प, वस्त्र आदि उद्योग के पूर्णतः नष्ट हो जाने से भारत आर्थिक- नैतिक- शैक्षिक रूप से पूरी तरह पिछड़ गया। फलस्वरूप भारतीयों में अनेक बुराइयाँ, सीमाबद्धता, भाग्योपजीविता तथा हीन भावना पैदा हुई। गरीबी- अशिक्षा ने उनका आत्म विश्वास, स्वाभिमान, स्वयं शक्ति एवं कुछ छीन लिया। भारत की लूट के बल पर इंग्लैंड ने औद्योगिक क्रांति संपन्न की। भारत को शुद्ध औद्योगिक सांस्कृतिक आर्थिक ढाँचे की रीढ़ को तोड़ कर उसे उत्पादक औद्योगिक राष्ट्र से कृषि प्रधान उपनिवेश बना डाला। देश की समृद्धि, स्वस्थ उच्च आदर्श, नैतिक आध्यात्मिक मूल्य एवं ब्रिटिश साम्राज्य की नींव सुदृढ़ करने में लग गये। अतः दमन, लूट, शोषण, जुल्म- प्रताड़णा तथा धर्म के अपहरण की प्रतिक्रिया स्वरूप भारतीयों में निज अस्मिता, धर्म की रक्षा के भाव उदित हुए। १८५७ के स्वाधीनता विप्लव में ब्रिटिश राज के विरुद्ध एक सम्मिलित जन-विद्रोह तथा जागृत चेतना देखने को मिलती है।

एक क्षण के लिए इतिहास की वास्तविकता को भूल कर १८५७ के स्वतन्त्रता समर में भारतीयों की विजय की कल्पना कर ली जाय तो क्या उस स्वतन्त्र भारत में जापान आदि देशों के समान स्वतोमुखी विकास संभव नहीं था? जापान आदि देशों का उदाहरण सामने रख कर भारत भी उपनिवेशीकरण और अभिनवीकरण में नव जागरण तथा नवोन्मेषीकरण की अवश्य धुन सकता था। भारत पुनः ब्रिटिश राज की गुलामी के बिना भी उद्योग शिल्प व्यवस्था आदि का पूँजीवादी रूपान्तरण अवश्य कर सकता था। क्योंकि जागरण की आधार भूमि निर्मित हो चुकी थी।

अतः यह एक कठोर सत्य और दुर्भाग्यपूर्ण घटना

है भारतीयों को सभ्य बनाने, पिछड़ी हुई जनता में राष्ट्रीय चेतना जगाने और स्वराज्य का प्रशिक्षण देकर सामाजिक राजनीतिक क्रान्ति करने का सबसे श्रेय अंग्रेजी साम्राज्य, सभ्यता, भाषा और शिक्षा को दिया जाता है और भारत की आधुनिक प्रगति, समाज में पुनर्जागृति तथा राष्ट्रीयता के लिए अंग्रेजी राज की गुलामी की अनिवार्यता को स्वीकार किया जाता है।

किन्तु अंग्रेजों द्वारा लिखित अधिकांश इतिहास "आमतौर पर ब्रिटिश हुकूमत की तरफदारी में या तो लफ्फाजियाँ पेश करते हैं या उनके गुण गाते हैं।— ब्रिटिश काल के इतिहास का भी अंग्रेजों के गुणों और अंग्रेजी हुकूमत का बड़प्पन जाहिर करने के लिए तोड़-मरोड़ किया गया है।" अतः अंग्रेजों के दावे वास्तविकता के विपरीत और गुलाम जनता को भुलावे में डालने के लिए थे क्योंकि यदि तो शासक भारतीयों से कबूल करवाना चाहते थे कि अंग्रेज राज उनके लिए सुख, शान्ति और समृद्धि लाया। तथा प्रारम्भिक राष्ट्रवादी नेता उनके भुलावे में आकर अनेक याचिकाएँ और स्मरण-पत्र तैयार करते रहे।

अंग्रेजी राज ने सदैव "फूट डालो और राज्य करो" नीति को प्रश्रय देकर भारतीय राष्ट्र की एकता को तोड़ना चाहा, जोड़ना नहीं। अतः भारत का नवोत्थान क्योंकि अंग्रेजी राज के अन्तर्गत हुआ था इसलिए भारतीय पुनर्जागरण के सूत्रधार यही हैं, कहना सही प्रतीत नहीं होता क्योंकि भारतीय ज्ञान-अर्थ-व्यवस्था तो शेष भारत से पहले से ही संयुक्त थी। भौतिक आधार पहले ही निर्मित था। तब अंग्रेजों ने ज्ञानों की स्वस्थ सगाई को तोड़कर कौन सा भौतिक आधार स्थापित किया?

वस्तुतः भारतीय नवजागरण की जड़ें अपने देश के पुरातन वैभव तथा अपनी धरती की मिट्टी में ही फैली हुई थी, शिक्षा-पत्रकारिता ने उन्हें पोषित करके आगे बढ़ाया। अतः रेनेसाँ अंग्रेजों की पोषित या बौद्धिक संतान, विशिष्ट देन अथवा उदारतापूर्वक दी हुई विरासत नहीं था परन्तु यह तो विश्व में हुई क्रांतियों, विगत भारतीय ज्ञान-मनीषा के पुनरुत्थान, बौद्धिक स्वाधीन चिन्तन का नियोग तथा पाश्चात्य-प्राच्य धर्म संस्कृति के द्वन्द्व की परिणति था।

ए० आर० देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृष्ठ 26

दूसरा अध्याय

पत्रकारिता : स्वरूप एवं विकास

१- पत्रकारिता क्या है ?

२- पत्रकारिता : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

३- भारतीय पत्रकारिता : उद्भव और विकास

४- प्रारंभिक हिन्दी पत्रकारिता (१८२०-१८५०)

2.1 पत्रकारिता क्या है?

वर्तमान काल में पत्रकारिता आधुनिक युगबोध, राष्ट्रीय चेतना, बौद्धिक जागरूकता एवं व्यापक जनसंवेदना को संप्रेषित करने का सर्वसुलभ उन्नत जनमाध्यम है। यह लोकमानस की सामुदायिक सहभागिता की वह जीवंत-विधा है जिसमें जनता की आत्मा के स्वर, उसके सुख दुख, जय-पराजय, आशा-आकांक्षा तथा सामयिक एवं सनातन सत्य मुखर हो उठते हैं।

2.1.1 जागरण काल में हिन्दी में "पत्रकारिता" शब्द के लिए अन्य पर्याय "पत्रकारी", "पत्रकला", "संवाद पत्रकला"; वृत्तविवेचन", "समाचारपत्र - सम्पादन" आदि अधिक प्रचलित थे किन्तु वर्तमान भाषा और साहित्य में "पत्रकारिता" शब्द रूढ़ हो गया है और इस शब्द का प्रयोग अंग्रेजी शब्द "जर्नलिज्म" [Journalism] के पर्याय के रूप में होता है। मूल रूप में "जर्नलिज्म" शब्द की व्युत्पत्ति फ्रांसीसी भाषा के "जूर" [Jour] और जर्नल [Journal] शब्द से हुई है जिसका अर्थ इस भाषा में क्रमशः "एक दिन" और "समाचार पत्र" है।[2] इस प्रकार व्युत्पत्ति की दृष्टि से "जर्नलिज्म" शब्द का अर्थ "दैनिक समाचार पत्र" संबंधी कार्य से हुआ।

संस्कृत भाषा के "पत्र" शब्द में "कृ" [करना] धातु णिनि + तल् + टाप् प्रत्ययों के योग से पत्रकारिता शब्द बना है जिसका अर्थ है - "पत्रकार होने की अवस्था या भाव, पत्रकार का काम, वह विद्या जिसमें पत्रकारों के कार्यों, उद्देश्यों आदि का विवेचन होता है।"[3]

पत्रकारिता का सामान्य अर्थ "पत्र - पत्रिकाओं के लिए समाचार, लेख आदि एकत्र करने तथा संपादित करने, प्रकाशन आदेश आदि देने का कार्य है।"[4]

किन्तु आज "पत्रकारिता" शब्द के उपर्युक्त परम्परागत अर्थ और क्षेत्र में विस्तार हो गया है। एडविन एमरी ने इसके आधुनिक विस्तृत अर्थ की ओर इंगित करते रहा है "परम्परागत रूप में पत्रकारिता का कार्य समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं में समाचारों को एकत्रित करके लिखना, सम्पादन करके प्रकाशित करना

---

[1] विशाल भारत, मई, 1932, पृ० 583
[2] पुरवल्स न्यू इंगलिश एन्साइक्लोपीडिया [खंड 7], पृ० 3445
[3] मानक हिन्दी कोश [तीसरा खंड], पृ० 360
[4] वैज्ञानिक परिभाषा कोश, पृ० 117

या समाचारों पर टिप्पणियाँ देना समझा गया है किन्तु पत्रकारिता का क्षेत्र उपर्युक्त कथन से बढ़ गया है । उसमें सामाजिक या आकर्षक लोक-सामग्री का विविध संचार माध्यमों द्वारा प्रसारण भी सम्मिलित है जिसमें मुख्य रूप से रेडियो और दूरदर्शन आते हैं । इन्हें सामान्यतया इलैक्ट्रानिक पत्रकारिता कहा गया है ।"[1]

उपर्युक्त कथन के अनुसार वर्तमान पत्रकारिता के अंतर्गत तत्कालीन समाचारों-विचारों का लिपिबद्ध मुद्रित प्रकाशन अर्थात् पत्र - पत्रिकाएँ ही सम्मिलित नहीं हैं वरन् रेडियो, दूरदर्शन आदि अन्य जनसंचार माध्यमों द्वारा गम्य प्रस्तुति एवं आकर्षक मौखिक प्रसारण भी समाहित है । पत्रकारिता के विषय एवं स्वरूप जीवन के सर्वांग पक्षों से सम्बद्ध हो गए हैं । एच० एम० स्टेनले ने कहा भी है -" पत्रकारिता शायद सबसे अधिक रोमांचक तथा जोखिमपूर्ण व्यवसायों में से एक है जिसमें पत्रकारों को देश के दैनिक जीवन के कार्यकलापों का ही नहीं, वरन् वायुयानों की उड़ानों, युद्ध और शोध जैसे विषयों के संवाद भी देने आवश्यक होते हैं ।"[2]

इस आधुनिक प्रचलनवादी सामाजिक जनसंस्थान के अंतर्गत पाँच विभाग आते हैं :

1. समाचारपत्र एवं पत्रिकाएँ
2. रेडियो
3. दूरदर्शन
4. चलचित्र
5. विज्ञापन

---

1. "Traditionally journalism is regarded as the collecting, writing, editing and publishing of news or comment upon news in newspapers and periodicals. The scope of journalism has however expanded to include the presentation of material of current interest or wide, popular appeal in a variety of media notably radio and television which are commonly referred to as electronic journalism'-Lexicon Universal Encyclopedia' (Volume 11 (1-J) Page 453-454.
2. Journalism is perhaps one of the most exciting and hazardous of the profession for reporters must cover not only the every day life of the country but subjects like aviation, war and exploration-(H.M.Stenleys) Chambers Encyclopedia (Volume 8(J-Mala) Page 142 .

भारतीय पत्रकारिता के संदर्भ में प्रसिद्ध सम्पादक एवं पत्रकार श्री रोलैंड ई० वुल्फे ने आधुनिक अवधारणा को इस प्रकार स्पष्ट किया है- " प्रायः हमेशा ही पत्रकारिता का अर्थ मुख्य रूप से समाचारपत्रों संबंधी काम से लिया जाता रहा है । किन्तु आज के भारत में पत्रकारिता का संबंध व्यापारिक पत्रिकाओं, समाचार पत्रों के लिए फोटो लेने की कला, रेडियो के समाचार, जनसंवेदन संबंधी कार्यों [पब्लिसिटी] सामान्य पत्रिकाओं के कार्यों तथा अन्य ऐसी कितनी बातों से है जिनका संबंध समाचार पत्रों से नहीं है ।"[1]

उपर्युक्त वक्तव्य से स्पष्ट है कि विश्व के अन्य देशों के समान भारत में भी पत्रकारिता का क्षितीर्य क्षेत्र, विकसित तकनीकी, विविध विषयों की संयोजना, सक्रिय एवं साज-सज्जायुक्त प्रसारित एवं प्रकाशित होने वाली मौखिक -पाठ्य-दृश्य सामग्री इसका वर्तमान परिदृश्य है आज यह श्रव्य-श्रव्य-दृश्य कला है जो विगत प्रारंभिक शताब्दियों तक की भारतीय पत्रकारिता से नितांत भिन्न है ।

2. पत्रकार रा० र० जाजिलकर ने आधुनिक पत्रकारिता को परिभाषित करते हुए कहा है -" ज्ञान और विचार, शब्दों तथा चित्रों के रूप में दूसरे तक पहुँचाना पत्रकला है ।"[2]

डॉ० रामचन्द्र तिवारी ने भी लगभग इसी प्रकार समान विचार अभिव्यक्त किए हैं ।[3] हर्बर्ट ब्रूकर ने पत्रकारिता को व्याख्यायित करते हुए कहा - " यह वह माध्यम है , जिसके द्वारा हम अपने मस्तिष्क में उस विश्व के बारे में समस्त सूचनाएँ संकलित करते हैं जिन्हें हम स्वतः कभी नहीं जान सकते ।"[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं में इसके मूल तत्व जनसंपर्क एवं जनसंचार की ओर संकेत किया गया है । वस्तुतः पत्रकारिता नित्य परिवर्तित होते सामयिक जनजीवन, भौतिक घटनाक्रम, राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय कार्यकलापों का संकलन एवं

---

1. सं० रोलैंड ई० वुल्फे, भारतीय पत्रकार कला, प्राक्कथन, पृ० 4
2, रा० र० जाजिलकर, आधुनिक पत्रकार कला, पृ० 2
3. " ज्ञान तथा विचारों को समीक्षात्मक टिप्पणियों एवं चित्रों सहित विशाल जनमानस तक पहुँचाना ही पत्रकारिता है ।"- डॉ० रामचन्द्र तिवारी पत्रिका सम्पादन कला, पृ० 56
4. हर्बर्ट ब्रूकर, फ्रीडम आफ इनफर्मेशन, पृ० 4

प्रस्तुतिकरण मात्र नहीं है, यह कला व्यापक जनसंवेदना, पारदर्शी मानवीय अनुभूतियों एवं अमूर्त भावनाओं को संप्रेषित करने का लोकप्रिय जनमाध्यम है।पत्रकारिता की आत्मा समाचारों और विचारों में व्याप्त सहजानुभूति एवं अमूर्त संवेदनशीलता है जिसकी उष्णता का अनुभव किसी घटना के समाचारों और विचारों को पढ़ सुन कर सहज ही होने लगता है। उदाहरणार्थ किसी रेल या विमान दुर्घटना का समाचार निर्दोष मृत एवं घायलों के प्रति संवेदना जागृत कर देता है। दहेज के दावानल में भस्मीभूत होती अबलाओं के समाचार लोकमानस में जलतीनारी का काल्पनिक या वास्तविक चित्र उभार कर उस सामाजिक कुरीति के प्रति आक्रोश एवं घृणा का संचार करते हैं और मानव जाति को जागृत करके जनमत का निर्माण करते हैं।

अतः पत्रकारिता अनदेखी सामाजिक घटनाओं एवं इन्द्रियगोचर समाचारों का बिना आगाजोट के निष्पक्ष विवरण ही नहीं वरन् समाचारों एवं विचारों में व्याप्त मानवीय अनुभूतियों का संवेदनशील सम्पूर्तन भी है। आज पत्रकारिता किसी जनमान्यता या जनाकांक्षा का निर्माण कर जन-जागरण के लिए रूप एवं वाणी देती है। वह किसी हृदय विदारक त्रासदी या अन्याय आदि से संबंधित तथ्यों को बेनकाब कर जनमानस को सचेत करती है।

पत्रकारिता को राष्ट्रीय और मानवीय मूल्यों से सम्बद्ध करते हुए पत्रकार अर्जुन तिवारी का कथन है "राष्ट्रीय एवं मानवीय मूल्यों से संदर्भित सत्कार्य ही पत्रकारिता है जिससे देशवासियों की नस-नस में स्वतंत्रता, समानता और विश्वबंधुत्व की भावना का संचार होता है। सद्विचारों की अभिव्यक्ति, पवित्र भावों की उद्भूति और न्यायोचित नैतिकता की पावन पीठिका ही पत्रकारिता है।"[1]

---

1. डा० अर्जुन तिवारी, स्वतंत्रता आंदोलन और हिन्दी पत्रकारिता [प्राक्कथन] पृष्ठ 13

प्रारम्भ में इसको अधिक से अधिक जल्दबाजी में रचित इतिहास या साहित्य समझा जाता था पर अब इस लोकशक्ति सम्पन्न, गंभीर उत्तरदायित्वपूर्ण सामाजिक संस्थान को "फोर्थस्टेट", "पावर विहाइण्ड दी थ्रोन" की संज्ञा दी जाती है। भारतीय पत्रकारिता का इतिहास ऐसे सशक्त राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं के अद्भुत साहसिक दृष्टान्तों से भरा हुआ है जिन्होंने ब्रिटिश शक्ति को अपने तेजस् और दीप्ति से निस्तेज कर दिया था।

पत्रकारिता अल्प या निश्चित कालावधि में समाचारों भावों एवं विचारों को अभिधापरक कथन और सर्जनात्मक विधाओं के माध्यम से व्यापक स्तर पर बृहत्तम् संप्रेषण करने की कला है। इसके द्वारा विश्व के समग्र वाङ्मय, सामायिक लोक-जीवन के परिवर्तनचक्र, सभ्यता-संस्कृति के विविध आयामों तथा ज्ञान-विज्ञानयुक्त विचार-शृंखला को समझने और महसूस करने की गहरी निर्लिप्त दृष्टि एवं वैज्ञानिक तर्क-प्रज्ञा प्राप्त होती है।

आधुनिक पत्रकारिता रचनात्मक एवं बौद्धिक सृजन से अधिक एक आर्थिक व्यवसाय तथा औद्योगिक प्रतिष्ठान हो गयी है जो लाभ और धन-प्राप्ति की आकांक्षा से प्रेरित है। आधुनिक पत्र-व्यवसाय पूँजीपतियों के हाथ की कठपुतली बन चुका है और "पूँजीपतियों का पत्र-संचालन कोरा व्यवसाय है, उसमें आदर्शवाद की गुंजाइश नहीं है।"[1] यद्यपि वर्तमान पत्रकारिता "मिशन" नहीं रह गई तथापि इस सर्वाधिक गौरवपूर्ण पेशे को अन्य साधारण व्यवसायों के समकक्ष नहीं रखा जा सकता। पत्रकार केवल वेतनभोगी श्रमजीवी नहीं, वह उससे बहुत अधिक समाज के हितों का प्रहरी, जनता का शिक्षक-पथप्रदर्शक, लोकमत तथा लोक जागरण का निर्माता है। वह मूक, दुर्बल प्रजा पर हुए अत्याचारों के समक्ष योद्धा है[2] "पत्रकार की

1. इन्द्र विद्यावाचस्पति, पत्रकारिता के अनुभव पृष्ठ 75
2. "पत्रकार लोक-सेवक, लोक प्रतिनिधि, लोकनायक और लोकगुरु की बहुविध पदवीधारण करता है"-श्री काका कालेलकर, विशालभारत मई, 1932 पृ058।

सबसे बड़ी चिंता यह होती है कि अधिकतम व्यक्तियों का अधिकतम हित कैसे हो। वह गरीब और पद दलित का मित्र होता है।"[1]

अतः पत्रकारिता एक ओर जन-जीवन या राष्ट्र को समर्पित निस्वार्थ जनसेवा एवं बौद्धिक साधना है तो दूसरी ओर आर्थिक लाभ प्राप्त करने का उद्योग भी है।[2] लंदन टाइम्स के भूतपूर्व संपादक एच० विलेम का कथन सच ही है "पत्रकारिता कला है, वृत्ति है और जनसेवा है।[3]

3. पत्रकारिता की मूल प्रकृति -

1. प्रत्येक वस्तु, विचार एवं भाव को जान लेने की उत्कट पिपासा या जिज्ञासा वृत्ति।
2. सृष्टि के कार्यकलापों को ज्ञान-विज्ञान द्वारा विश्लेषित करने की प्रवृत्ति।
3. जन-जीवन से स्पंदित, उद्वेलित होकर संवेदनशील जनानुभूति की सहज सीधी अभिव्यक्ति।

वस्तुतः पत्रकारिता वह माध्यम है जिसके द्वारा मानव की मूल जिज्ञासा क्यों, क्या, कैसे, कब, कहाँ आदि प्रश्नों का शमन होता है। पत्रकारिता में सत्यं, शिवं, सुंदर का भाव निहित है। पत्रकार सत्य का अन्वेषक है। वह सत्यानुभूति को आकर्षक साहसपूर्ण अभिव्यक्ति देकर मानव कल्याण या शिवतत्व के लिए समर्पित करता है।

---

1. बे०बी० मेकी, माडर्न जर्नलिज्म
2. "समाचार पत्र केवल आर्थिक उद्यम नहीं, वरन् एक बौद्धिक उद्यम भी है। पत्रकार का दर्जा कुछ अस्पष्ट सा है क्योंकि वह एक ओर व्यापारिक संस्थान के लिए कार्य करता है, दूसरी ओर वह एक साहित्यिक परंपरा का ट्रस्टी होता है और बौद्धिक स्वतंत्रता एवं अपने पाठ को को जानकारी देने के लिए समर्पित होता है"-प्रो०बेक्स लियोट,स्ट्रास वर्ग इंडर मेडनस सेंटर फॉर हायर स्टडीज,एम,.चलपतिराव,समाचार पत्र पृ0206
3. रा०र०डा०तिलकर, आधुनिक पत्रकार कला पृष्ठ 6।

4. विविध रूप :

आधुनिक पत्रकारिता में विशिष्टीकरण और विषय विशेषज्ञता की प्रवृत्ति घर कर गई है। आज पत्र - पत्रिकाएँ समाज के प्रत्येक वर्ग, व्यवसाय, धर्म, संप्रदाय तथा सर्जनात्मक एवं ज्ञान-विज्ञान की विभिन्न शाखाओं के लिए पृथक्-2 निकलती हैं। उदाहरण स्वरूप साहित्यिक पत्रकारिता में कहानी, नाटक, कविता आदि की विशिष्ट पत्रिकाएँ प्रकाशित होती हैं ।

प्रकाशन अवधि के आधार पर पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप निम्न-लिखित हो सकता है - दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, द्विमासिक, त्रैमासिक, चतुर्मासिक, अर्द्ध वार्षिक, वार्षिक तथा अनियतकालीन इत्यादि ।

"एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका" में समाचार पत्र और पत्रिका का अंतर इस प्रकार स्पष्ट किया है "समाचार पत्र एक अजिल्द धारावाही प्रकाशन है जो नियमित समय के अंतर से प्रकाशित होता है जिसमें समाचारों को प्रमुखता दी जाती है । अधिकांश समाचार पत्र दैनिक या साप्ताहिक होते हैं, कुछ अर्द्ध साप्ताहिक होते हैं । पाक्षिक और मासिक समाचार पत्रों के उदाहरण शायद ही कभी मिले हों । समाचार पत्र और पत्रिका का अंतर भी रोचक है, विशेष रूप से साप्ताहिक प्रकाशनों के बीच । यदि प्रकाशन सजिल्द है तो उसे पत्रिका कहा जायेगा । समाचार पत्रों के लिए पृष्ठ संख्या और आकार का निर्धारण नहीं किया गया ।"[1]

5. पत्रकारिता के आदर्श मानदंड :

सन् 1923 ई0 में "अमेरिकी समाचार-पत्र संपादक सोसाइटी" द्वारा स्वीकृत मानदंडों को विश्व के अधिकांश राष्ट्र न्यूनाधिक मान्यता

---

1. Encyclopaedia Britannica, Volume 16, Page 334

देते हैं, वे संक्षेप में इस प्रकार हैं[1]-

1. उत्तरदायित्व [Responsibility] : समाचार-पत्रों आदि के कार्य जनकल्याण की भावना से प्रेरित होकर किये जाने चाहिए अपनी स्वार्थ सिद्धि या असामाजिक कार्यों से प्रेरित होकर नहीं।

2. प्रेस की स्वतंत्रता [Freedom of the press] : मानव के महत्वपूर्ण अधिकार प्रेस की स्वतंत्रता की रक्षा होनी ही चाहिए। पत्र-पत्रिकाओं को निर्भय होकर कानून द्वारा अनुमोदित विषयों का विवेचन करना चाहिए।

3. निर्भीकता [Independance] : पत्रों को जनहित के लिए निष्पक्ष एवं स्वतंत्र होकर निर्भीक संपादकीय टिप्पणियाँ लिखनी चाहिये।

4. ईमानदारी, सत्यता और सटीकता [Sincerity, truthfullness and Accuracy] : पत्रकारिता के व्यवसाय में संलग्न व्यक्तियों एवं पत्रकारों को पाठकों के प्रति ईमानदार होना चाहिए। कोई सामग्री सत्यता की जाँच-परख करके ही प्रकाशित होनी चाहिए।

5. नैतिकता [Fairplay] : पत्र-पत्रिकाओं में किसी व्यक्ति के चरित्र और यश पर आक्षेप करने वाली ऐसी सामग्री प्रकाशित नहीं की जानी चाहिए जिसमें उन आक्षेपों का उत्तर देने का संबंधित व्यक्ति को अवसर न मिल सके।

6. निष्पक्षता [Impartiality] : समाचार प्रकाशन में किसी ओर झुकाव नहीं होना चाहिए। विचारपूर्ण अग्रलेखों और टिप्पणियों की बात पृथक् है।

7. शिष्टता [Decency] : लोक रुचि के आदर्शों को ध्यान में रखकर

---

1. बी.एन.आहूजा, थ्योरी एंड प्रैक्टिस ऑफ जर्नालिज्म 1979 पृ0 4-5

ही पत्रकारों को कोई सामग्री छापनी चाहिए।

कह सकते है कि जिस प्रकार कवियों की श्रेष्ठता का निकष गद्य है, गद्य की उत्कृष्टता का प्रतिमान "निबंध" है उसी प्रकार पत्रकारिता का निकष "जन-हित" है।

6. पत्रकारिता के उद्देश्य :

पत्रकारिता के मूल उद्देश्य क्या हो? "जनहित" या "अधिक से अधिक लाभांश प्राप्ति" पत्र-पत्रिका के मालिक अथवा संचालक की दृष्टि में अधिकांशतः आर्थिक लक्ष्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण होता है। जबकि पाठक समुदाय इनको ज्ञान-वितरण के विस्तार और जनहित का प्रतिनिधित्व करने वाली सामग्री की उम्मीद से खरीदता है। उत्तम कोटि की पत्र-पत्रिकाएँ इन दोनों मूल उद्देश्यों को दृष्टि में रख कर पत्र-नीति का निर्माण करती हैं।

पत्रकारिता के उद्देश्य विभिन्न परिवर्तनों के साथ युगानुरूप बदलते रहते हैं। गांधी जी ने कहा था "पत्रकारिता एक सेवा है" यदि हम गांधी जी से भी पूर्व 19वीं शताब्दी की प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता का सिंहावलोकन किया जाय तो यह तथ्य निर्विवाद रूप से सत्य है कि उस काल की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ यथा "कविवचन सुधा","हरिश्चन्द्र मैगजीन","हिन्दी प्रदीप","ब्राह्मण","भारत मित्र", "सारसुधानिधि", "उचितवक्ता", "भारतेंदु" आदि किसी व्यावसायिक दृष्टिकोण से नहीं, वरन् निःस्वार्थ जन-सेवा, जन-जागृति एवं जन-समर्पण की भावना से निकाली गई थी। उन दिनों पत्रकारों के लिए कोई पारिश्रमिक या पुरस्कार की व्यवस्था नहीं थी। "महारथी" मासिक के संपादक श्री रामचन्द्र महारथी

---

1. डा०सुरेशचन्द्र जैन, भारतीय समाचार पत्रों का संगठन एवं प्रबंध पृष्ठ

के शब्दों में, "उन दिनों पत्रकारिता एक व्रत होता था वृत्ति नहीं।"[1] अधिकतर पत्र संपादक अनवरत अपार हानि सहन करके भी देशहित के लिए समर्पित भाव से पत्र चलाते ही जाते थे। उस पराधीन भारत में स्वतंत्रता-संघर्ष के लिए जनमानस को चैतन्य एवं उद्बुद्ध कर दिशा देना ही उनका ध्येय था। ये पत्र-पत्रिकाएँ पाठकों के मानसिक विकास और मार्ग दर्शन के लिए ज्ञानवर्द्धक, उच्च मूल्यों से पुष्ट, जीवंत जनहितकारक सामग्री का ही चयन करती थीं। उन्होंने समकालीन स्वतंत्र भारत की पत्रकारिता के समान सस्ती लोकप्रियता के प्रलोभन, विशेष सुविधाओं के मोह और सत्ता से लाभान्वित होने की कर्मनाक मनोवृत्ति से अपनी प्रतिष्ठा को कभी ठेस नहीं पहुँचायी। वे आधुनिक पत्रकारिता के समान छिछली मानसिकता, घुरोहीनता और अधिकारों की मुजमलेपा में कभी नहीं भटकी।

प्रारम्भिक पत्रकारिता के उद्देश्य हिन्दी प्रचार, राजनीतिक सामाजिक जागृति, साहित्यिक- सांस्कृतिक संरक्षण आदि है जबकि समकालीन पत्रकारिता का उद्देश्य है "लोग जो माँगे वही देना चाहिए, हम जनता के विचारक नहीं, हम तो लोगों के सेवक हैं। ग्राहक को जिस माल की आवश्यकता हो, उसे ग्राहक तक पहुँचा कर उसे राजी रखना ही दुकानदार का आदर्श हो सकता है"।[2]

कहने का अभिप्राय यही है युग और परिवेश के साथ पत्रकारिता के उद्देश्य, रुचि, आदर्श एवं स्वरूप में मौलिक अंतर आ गया है।

श्रेष्ठ पत्र-पत्रिकाओं के अनेक कार्य या उद्देश्य हो सकते हैं:

1. समष्टि हित के लिए ज्ञान विज्ञान को सीमा का विस्तार करना।

---

1. सं० वेदप्रताप वैदिक, हिंदी पत्रकारिता-विविध आयाम पृ० 762
2. श्री काका कालेलकर, विशालभारत मई 1932, पृ० 58।

2. लोक-शिक्षा एवं लोक-रुचि का परिष्कार करना।
3. नवीन क्रान्तिकारी परिवर्तन को दिशा एवं आंदोलन को नेतृत्व प्रदान करना।
4. राष्ट्रीय एकता, लोकतंत्र तथा स्वतंत्रता आदि मूल्यों के लिए संघर्षरत रहना।
5. कला, साहित्य, संस्कृति, दर्शन एवं ज्ञान-विज्ञान को जनसंप्रेक्षणीय एवं सर्वसुलभ बना कर जनमानस को अन्तर्दृष्टि एवं तर्क प्रज्ञा प्रदान करना।
6. बौद्धिक, समीक्षापरक, निष्पक्ष संपादकीय टिप्पणियों एवं आलेखों द्वारा अज्ञात सत्य एवं रहस्यमय तथ्यों का अनावरण एवं प्रसारण।
7. जन सामान्य में अन्याय एवं शोषण के विरुद्ध जनमत का निर्माण।
8. साहित्यिक विधाओं को युगानुरूप अभिव्यक्ति एवं प्रगति।
9. राष्ट्रीय साहित्य, भाषा तथा संस्कृति के प्रति सार्वजनिक अभिरुचियों का निर्माण।

अतः पत्रकारिता का उद्देश्य जनहित की दृष्टि से विश्व तथा राष्ट्र के समग्र पक्ष एवं जन-संकेतों को प्रतिबिंबित करने वाली नवीन सामग्री को एकत्रित, संपादित, संप्रेषित कर सर्वसाधारण का मार्ग-दर्शन करना है।

7. पत्रकारिता और साहित्य :

प्रारम्भ से ही पत्रकारिता और साहित्य के अन्तः संबंध अंतरंग एवं अभिन्न रहे हैं। आधुनिक हिन्दी साहित्य का जन्म, पोषण एवं विकास पत्रकारिता की क्रोड़ में हुआ।

पत्रकारिता और साहित्य दोनों का कला की श्रेणी में परिगणन होता है। इन दोनों कला माध्यमों द्वारा मानव जीवन प्रतिबिंबित होता है।

साहित्य के मूल तत्व है - अनुभूति, कल्पना और विचार और इसकी मूल संवेदना है - समग्र मानव जीवन। पत्रकारिता के भी मूलाधार हैं: संवेदनशील अनुभूति, विश्लेषणात्मक बुद्धि और संभावित सत्य को खोज लेने वाली कल्पना शक्ति और पत्रकारिता की परिणति है- जीवन और समाज के विविध आयामों की अभिव्यक्ति। "प्रत्येक पत्रकार अंततः साहित्यकार भी है प्रत्येक साहित्यकार अनिवार्यतः पत्रकार[1]। दोनों ही जीवन से जुड़े समर्पित साधक हैं;दोनों ही प्राणिजगत के सत्यों , आवेगों संघर्षों, हर्षोल्लास-निराशाओं, अधोपतन और उन्नयनों का प्रस्तुतिकरण करते हैं। संपादक बाल कृष्ण राव के अनुसार -" दोनों ही लेखक हैं- दोनों के कार्य किन्हीं ऐसे गुणों की अपेक्षा करते हैं जो दोनों के लिए अपरिहार्य है- अनावृत दृष्टि, चिंतन, लेखन में प्रेक्षणीयता की क्षमता।"[2] दोनों ही अनुभूति के स्तर पर जन-मन में डूब कर जीते हैं।मानव-घटनाओं और सामाजिक दुर्बलताओं का विश्लेषण करने पर उद्विग्न हो उठते हैं;और हर बात की तह तक पहुँचने वाली अन्तर्दृष्टि द्वारा लोक मानस के अन्तर्द्वन्द, आकांक्षाओं,भावनाओं और विचारधाराओं को मुखर करते हैं।

पत्रकारिता का मूल ध्येय है -जन सेवा। साहित्य के लोक मंगलकारी स्वरूप को इंगित करते हुए तुलसीदास ने कहा था -

क कीरति भनिति भूति भल सोई।
सुरसरि सम सब कह हित होई।।[3]

---

1. संपादक बाल कृष्ण राव, माध्यम वर्ष1, अंक 1, मई,1964 पृ0 25
2. वही, पृ0 25
3. रामचरित मानस - 1/1315

कहा जा सकता है इन दोनों के मूल तत्व, उद्देश्य एवं कार्यों में पर्याप्त समानता है।

वस्तुतः पत्रकारिता साहित्य की ही एक प्रतिष्ठित विधा है निबंध, कहानी, उपन्यास, नाटक एकांकी आदि साहित्यिक विधाओं के समान पत्रकारिता भी मानवीय समस्याओं को सफल अभिव्यक्ति कर सकती है। किसी भी सम्पन्न साहित्य, भाषा और सभ्य राष्ट्र का स्तर पत्रकारिता की प्रौढ़ता से आंका जा सकता है। साहित्य के सभी पक्षों एवं विधाओं को पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रोत्साहन एवं दृष्टि मिलती है। पत्रकारिता की अनेक विधाओं यथा रिपोर्ताज, डायरी, स्केच, रेडियो-नाटक, टेलीविजन-फीचर, एकांकी आदि को साहित्यिक क्षेत्र में मान्यता प्राप्त है। पत्र-पत्रिकाओं के साहित्यिक आलेखों तथा समाचारों आदि में साहित्य के समान मानव जीवन के सर्वाङ्ग पक्षों हर्ष-विषाद, दुःख-सुख पूर्ण घटनाक्रम सहज अंकित होता है यद्यपि पत्रकारिता को साहित्य के समान गरिमा एवं सम्मान नहीं दिया जाता तथापि यह भी साहित्य के उच्च-स्तर तक ऊपर उठ सकती है और साहित्य के लिए संभव है कि वह पत्रकारिता के स्तर तक अभिधात्मक हो जाय। अंतर केवल स्तर या श्रेणी का है।[1]

वस्तुतः पत्रकारिता को साहित्य-इतिहास के वर्तमान पृष्ठों तक सीमित न रख कर, हिन्दी की साहित्य-सर्जना और विकास से संबद्ध करके देखा जाना चाहिए क्योंकि हिन्दी के आधुनिक साहित्य के बहुआयामी विकास में पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया।[2] हिन्दी के प्रारम्भिक आधुनिक साहित्य का सृजन एवं विकास उन समर्पित पत्रकारों

---

1. बाल कृष्ण राव, माध्यम, मई 1964 पृष्ठ 25-26
2. डा० रमा जैन, कादम्बिनी [मासिक] सितम्बर 1984 पृष्ठ 84

के द्वारा हुआ जो साहित्यिक रचनाकार भी थे। वे स्वयं अपनी पत्र-पत्रिकाओं के लेखक, संपादक, संचालक, व्यवस्थापक, एवं वितरण कर्ता थे। 19वीं शताब्दी में साहित्यिक रचना-कर्म और पत्र-संचालन एक अविभाजित, परस्पर पूरक विधान था पं० हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में "वस्तुतः आरंभ में साहित्य और पत्रकारिता एक दूसरे से जुड़े-मिले थे।"[1]

हिन्दी के अधिकांश श्रेष्ठ साहित्यकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, महावीर प्रसाद द्विवेदी, गुलेरी, प्रसाद, निराला, प्रेमचन्द्र से लेकर अज्ञेय और नगेन्द्र आदि तक किसी न किसी पत्रिका से, किसी न किसी रूप में जुड़े रहे हैं। उन्होंने पत्र-पत्रिकाओं का संपादन, संचालन, एवं लेखन कार्य आदि करके पत्रकारिता को नवगरिमा और दिशा दी है।

नवीन साहित्यकार पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से प्रारम्भ में अवसर और प्रोत्साहन पाकर आगे चल कर प्रौढ़ शाश्वत साहित्य का सर्जन कर पाते हैं। साहित्य में नित-नवीन कल्पनाओं, टटके भावों और विचार आंदोलनों का प्रसार पत्र-पत्रिकाएँ ही कर पाती हैं आज साहित्य और पत्रकारिता दोनों ही कला के साथ विज्ञान भी है जिसको समाज, राष्ट्र और विश्व के प्रति दायित्व एवं प्रतिबद्धता समान है।

किन्तु पत्रकारिता और साहित्य को एक दूसरे का पर्याय नहीं माना जा सकता। उन दोनों को एक मानना सत्य से मुख मोड़ना होगा। दोनों में मौलिक अंतर है क्योंकि पत्रकारिता के अनेक रूप, साहित्य नहीं कहला सकते और साहित्य की अनेक विशेषताएँ पत्रकारिता में नहीं हैं।

---

1. डा०कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, आशीर्वचन, पृ07

"साहित्य न तो बेतबूटों की सजावट और नक्काशी है और न समाचार पत्र की खबर या पार्टी - प्रोग्राम का परचा। साहित्य जीवन का पुनः सृजन और सामाजिक यथार्थ की कलात्मक अभिव्यक्ति है।[1]

पत्रकारिता घटनाओं और विचारों का व्यवस्थित क्रम एवं मानव अथवा राष्ट्र के जीवन की गतिविधियों और कार्यकलापों को यथार्थ परक बेलाग अभिव्यक्ति है।

साहित्य में एक असीम सौन्दर्य युक्त सत्य की जिज्ञासा का भाव होता है। परन्तु यह सत्य घटनात्मक आकलन के आधार पर नहीं वरन् सौन्दर्य पक्ष से मूर्त होता है। साहित्यकार सत्य का प्रचारक नहीं होता तथापि सत्य का विस्तारक और उद्घोषक वही है। वर्डसवर्थ का कथन है "अपने आदर्श, कल्पना, चिंतन के स्वर्ग और पैरों के नीचे पड़ी धर की जमीन दोनों के प्रति समान रूप से सच्चा रह सकना ही साहित्यकार की चरम सफलता है।"[2]

अतः साहित्य का सत्य और यथार्थ भाव रस, सौन्दर्य और कल्पना भाव से आच्छादित होता है। काव्यगत सत्य तथ्यपरक न होकर संभाव्य बातों को लेकर व्यंजित होता है। किन्तु पत्रकारिता में सत्य का अभिधापरक, तथ्य पूर्ण, निष्पक्ष चित्रण होता है। काव्यगत सत्य सार्वभौम सार्वकालीन एवं शाश्वत होता है।पत्रकारिता में समसामयिकता और युगीन धारा का प्रभाव अधिक होता है। पत्रकारिता कल्पना के स्थान पर समसामयिक यथार्थ का सजीव प्रतिबिंब होती है यद्यपि साहित्यकार भी युगधर्म एवं युग सत्य को नकार कर नहीं चल सकता। लेकिन उसकी वृत्ति सत्य और यथार्थ कथन में भी बिम्ब और प्रतीकों के माध्यम से अमूर्तता और

---

1. रमाकान्त शर्मा, आलोचना, अक्टूबर-दिसम्बर 1985 , पृ0 35
2. बाल कृष्ण राव, आलोचना, अक्टूबर 1957 , पृ0 36

सूक्ष्मता की ओर होती है। वहाँ साहित्यकार शाश्वत मूल्यों का अन्वेषण करता है वहाँ पत्रकार तात्कालिक मूल्यों का।[1]

पत्रकार लेखक सदैव साहित्यकार नहीं हो सकता[2] श्री पदुम लाल पुन्नालाल बख्शी के शब्दों में "साहित्य के क्षेत्र में सभी लेखक साहित्यकार का गौरव नहीं पा सकते। और माखन लाल जी के अग्रलेख पत्रकारिता के नमूने हैं, कविताएँ साहित्य की कृतियाँ[3] वस्तुतः दोनों में अंतर निरंतरता और क्षणिकता, स्पष्ट उद्देश्यता और निरुद्देश्यता का है तथा कुछ अंतर अभिव्यंजना और शिल्प का भी है।

साहित्य हृदय की संवेदना परक अभिव्यक्ति है, पत्रकारिता निर्वैयक्तिक, तथ्य एवं तर्क प्रधान वैचारिक प्रस्तुतिकरण है। पत्रकार सामाजिक-राजनीतिक स्थिति का वस्तुनिष्ठ, तटस्थ आकलन कर्ता है। साहित्यकार जीवन की अनुभूतियों को आत्मसात कर काल्पनिक बिंब-सर्जना करता है।

यह भ्रामक धारणा निराधार है कि पत्रकारिता केवल सूचना और प्रचार का माध्यम है। वह स्थायी साहित्य का निर्माण नहीं कर सकती। अधिकांश हिन्दी पत्रकारिता की सामग्री, भाषा-अभिव्यंजना, शिल्प और राष्ट्रीयता की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। उसकी अस्थायी, नश्वर, समसामयिक कह कर उपेक्षा नहीं की जा सकती।

---

1. [illegible] बाल कृष्ण राव, आलोचना, अक्टूबर 1957 पृ० 36
2. "लेकिन पत्रकार साहित्यकार नहीं है -साहित्यकार, जो क्षणिक है उसमें से सनातन की छाप को या जो सनातन है उसकी तात्कालिक प्रासंगिकता को खोजता और उससे उलझता है पर पत्रकार के लिए क्षणिक की क्षणिक प्रासंगिकता ही सनातन है और जहाँ वह उस प्रासंगिकता को तत्काल नहीं पहचानता वहाँ उसका आरोप करता चलता है"-अज्ञेय नदी के द्वीप पृ० 20
3. आलोचना, अक्टूबर 1957 पृ० 37-38

"जागरण काल" [भारतेन्दु युग] के सर्जकों की रचनाओं को समसामयिक परिवेश से प्रभावित नश्वर साहित्य कहा जाता है। उसमें चिरंतन मूल्यों, भावात्मक सौंदर्य, पारदर्शी तरलता का अभाव दिखाया जाता है किन्तु उस युग के रचनाकारों ने अपने युग की पुकार और स्वर में अपना स्वर मिला कर उन आवश्यकताओं की पूर्ति की। गोर्की का कथन है कि कलाकार का दायित्व अपने युग के प्रति होता है, समाज के प्रति होता है।अमृतराय के शब्दों में, "सामयिक और सनातन दो कला-कोठरियाँ नहीं, काल की एक ही अनादि धारा है जिसे हम सामयिक कह कर जानते पहचानते हैं, वह सनातन काल का ही अंश है एक बूंद काल-महासागर की।"[1]

वस्तुतः भारतेन्दु युग को हिन्दी पत्रकारिता के प्रस्तुतिकरण तथा चिंतन में अनुभूति का अद्भुत पुट है। इनके लेख एवं समाचार आदि केवल स्थूल अर्थों का ही बोध नहीं कराते, उनमें ऐसी संवेदना और सशक्त चेतना है कि वे भौतिक वायवीय अर्थों के साथ उनके मूल में छिपी अनुभूति का ज्ञान करा जाते हैं।

हिन्दी पत्रकारिता को राष्ट्रीय नवजागरण के विराट अभियान और निर्माण में महत्त्वपूर्ण अविस्मरणीय हिस्सेदारी रही है। उन्होंने समाज की दृष्टिकोण को व्यापक, उदार तथा तर्क संगत बनाने, राष्ट्रीय चेतना जागृत करने एवं हिन्दी भाषा का सर्वमान्य वैज्ञानिक रूप स्थिर करने में ऐतिहासिक भूमिका निभायी है। ये पत्र हिन्दी साहित्य को सर्वसुलभ, जन-सौष्ठवीय एवं लोकप्रिय बनाने में निरंतर संघर्षरत रहे। अतः जागरण

---

[1][क] अमृतराय, माध्यम, मई, 1964 पृ0 15

[ख] "ऐसा कुछ भी साहित्य के रूप में जीवित नहीं रह सकता जो पत्रकारिता भी न हो जो व्यक्ति अपने और अपने समाज के बारे में लिखता है वही सचमुच समस्त मानवता और सभी युगों के बारे में लिख सकता है-बर्नार्ड शॉ, वही, पृ0 26

बात की हिन्दी पत्रकारिता श्रेष्ठ साहित्य और राष्ट्रीयता की संवर्धक एवं उन्नायक रही जिनको साहित्य-पत्रकारिता के उच्च प्रतिमानों और राष्ट्रीय-जागरण के उत्थान की दृष्टि से नकारा नहीं जा सकता।

2.2 पत्रकारिता-ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

2.2.1 पुरातन समाचार माध्यम : प्राचीन समय में समाज में संपर्क एवं संप्रेषण का माध्यम प्रकृति , संदेशवाहक पक्षी भोज एवं ताड़ पत्र थे।[1] पौराणिक कथाओं में "नारद" मुनि का चित्रण तीनों लोकों के समाचारों के संवाहक और संप्रेषणकर्ता के रूप में किया गया है। "महाभारत" में संजय द्वारा धृतराष्ट्र को कुरुक्षेत्र में घटित समस्त सूचनाओं की जानकारी दी गयी है। शासक वर्ग अपनी प्रजा को ढोंढी पिटवा कर राजाज्ञाओं तथा विशेष समाचारों का ऐलान करवाते थे। प्राचीन मुद्राएँ, अशोक आदि सम्राटों के उत्कीर्ण शिलालेख एवं स्तम्भों में लिखित घोषणाएँ, ताड़पत्रों पर लिखे महाकाव्य, सन्त, चारण, भाटों की मौखिक पद्यबद्ध रचनाएँ, अनेक मत संप्रदायों के गुटके, सरकारों द्वारा भेजे जाने वाले समाचार पत्रक आदि जन-संप्रेषण के प्रारम्भिक माध्यम थे जो मुद्रणालय के जन्म के साथ विगत इतिहास बन गये।

प्राचीन भारत में आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं जैसी कोई मुद्रित सामग्री उपलब्ध नहीं होती। इसका कारण मुद्रण यंत्रों का अभाव, औद्योगिक पूँजीवादी व्यवस्था की कमी, संचार साधनों की न्यूनता एवं पत्रकारिता विषयक ज्ञान का अभाव था। शासकीय स्तर पर केवल विदेशी राजदूत कूटनीतिज्ञ, विभिन्न देशों के यात्री और व्यापारी एवं गुप्तचर

---

1. दमयंती के संदेशवाहक हंस थे, यक्ष ने मेघदूत को माध्यम बनाया था शकुन्तला कमल-पत्रों पर उद्गार व्यक्त करती थी।

आदि सभी प्रकार की उपयोगी सूचनाएँ उपलब्ध कराने के माध्यम है।

2. संस्कृत ग्रन्थों में "समाचार", "पत्र" एवं "पत्रिका" शब्दों का प्रयोग मिलता है किन्तु आधुनिक अर्थ से भिन्न रूप में। "पंचतंत्र", "वाल्मीकि रामायण" आदि में "समाचार" शब्द उचित चाल-चलन एवं आचरण के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[1] जो संस्कृत में "समाचार" का व्युत्पत्तिपरक अर्थ [सम आ+चर्+घञ्] है।[2] तुलसीकृत "रामचरितमानस" में "समाचार" शब्द किसी कार्य की "सूचना" या "खबर" के अर्थ में आया है।[3] हिन्दी में इसका आधुनिक कोशीय अर्थ है -"संवाद, खबर, ऐसी ताजा हाल की घटना की सूचना जिसके संबंध में लोगों को जानकारी न हो- न्यूज"।[4]

संस्कृत वाङ्मय में "पत्र" शब्द "पत्" धातु [गिरना] में स्ट्रन प्रत्यय के योग से निर्मित है जिसका अर्थ "कागज", "पट्टा" या "दस्तावेज" है।[5] हिन्दी में "पत्र" शब्द का एक अर्थ "समाचार पत्र या अखबार" से है।[6]

संस्कृत भाषा में "पत्रिका" शब्द की व्युत्पत्ति "पत्री+कन्+टाप+ इत्व" आदि के योग से हुई है।[7] इसका आक्षरिक अर्थ " चिट्ठी", कोई छोटा लेख या लिपि का टुकड़ा है। "रामचरित मानस" में यह शब्द 'चिट्ठी' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[8] मानक हिन्दी कोश में इसका अर्थ-"प्रायः नियमित

---

1. [क] "ताम्बूलादि समाचारकर्त्तव्योहि सदा भवेत्"- पंचतंत्र
   अर्थात पान सुपारी खिलाने का शिष्टाचार करना चाहिए।
   [ख] "असद् स्त्रीणाम् समाचार"- वाल्मीकि रामायण - सरस्वती, सितंबर 1959 पृ0 161-164
2. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृष्ठ 1223
3. "समाचार सब लोगन्ह पाए, लागे घर-घर होम बधाए"-रामचरितमानस 1/285
4. [क] मानक हिन्दी कोश, पाँचवां खंड पृ0 284
   [ख] विष्णुदत्त शुक्ल, पत्रकार कला पृ0 19
5. संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ, पृ0 652-53
6. हिन्दी शब्द सागर, छठा भाग, पृ0 2798
7. संस्कृत शब्दार्थकौस्तुभ, पृ0 652
8. "पुनिधरिधीर पत्रिका बाँची"-रामचरित मानस 1/289/3

रूप से निकलने वाली ऐसी पत्रिका जिसमें विषयों के लेख, कहानियाँ, कविताएँ होती हैं जैसे सम्मेलन पत्रिका"।[1]

3. मुगल काल में भारतीय शासकों को "पत्रकार-कला" का ज्ञान था। यद्यपि मुद्रणालय द्वारा कहीं भी पत्र प्रकाशित नहीं हुए थे किन्तु मुगल शासन व्यवस्था में समाचार-संकलन एवं लेखन के लिए एक पृथक् विभाग में "वाकयानवीस" और "अखबारनवीस" आदि लेखकों की नियुक्ति की जाती थी।[2] इन लेखकों द्वारा लिखित हस्तलिखित पत्रक-"अखबारते दरबारे मुअल्ला" "पैगामे हिंद","पुर्ने अखबार" आदि आधुनिक संदर्भ में पत्र-पत्रिका कहलाने के अधिकारी नहीं हैं क्यों कि इनका लेखन जनहित की दृष्टि से जनता को जानकारी देने के लिए नहीं होता था। ये पत्र मुगलशासकों एवं राजदरबारों के उपयोग के लिए प्रकाशित किये जाते थे।इनके समाचार सीमित विषयों तथा शासकीय कार्य-कलापों से संबंधित होते थे। इन मुगलकालीन हस्तलिखित औसतन 6 इंच लंबे, साढ़े चार इंच चौड़े पत्रकों का उल्लेख इतिहास लेखक खाफी खाँ की पुस्तक "मुंतखब-उल-लुबाब"[3], फ्रांसीसी डॉक्टर फ्रैंको बर्नियर लिखित "ट्रेवल्स इन दी मुगल अम्पायर"[पृ023।], वेनिस पर्यटक निकोला मनूची कृत "स्टोरिया डीमोगोर" [पृ033।-32] भारत में कार्यरत डॉ0आन्ड्रायर और स्लीमैन आदि के वक्तव्यों और ग्रंथों में उपलब्ध है।[4] जयपुर आदि राजपूत रियासतों में भी राज्यों की प्रमुख घटनाओं की जानकारी शासकों को देने की प्रथा "शाहवाकया" आदि में मिलती है। एच0 सी0टिक्कीवाल

1. मानक हिन्दी कोश, तीसरा खंड, पृष्ठ।223
2. डॉ0 अंबिका प्रसाद वाजपयी, समाचार पत्रों का इतिहास प्रस्तावना पृ0।
3. "इस इतिहास लेखक ने लिखा है कि शिवाजी के वंशज राजाराम की मृत्यु का समाचार संवाद पत्रों द्वारा शाही शिविर में पहुँचा था"- मार्ग ग्रीटर वार्न्स, इ एन्डियन प्रेस ,पृ022-23
4. एम0वसपति राव, समाचार पत्र पृ0 9-10

ने "जयपुर एण्ड दी लेटर मुगल्स" [पृ0 197] में जयपुर की पुरानी भाषा में लिखे समाचारों के उदाहरण दिये है[1]-

"श्री महाराज पुरन्दरगढ़ लियौ अर श्री जी की फतह हुई- अर सैबी, आपि मिल्यौं।" साजा बुदी 1 वि0 सम्वत् 1722[जून26,1665 ई0]

"हजूर म ज्यौं सदा सु राड़ को खबर दी अर पातसाह की फतह की कही वामैं श्री जी जड़ाऊ पोहची जोड़ी बकसी-- अब्दुल खां का पकड़या की खबर हजूर मैं ल्याया तामै अजहये महरबानगी पगरखी बुटोदार बकसी- सम्वत् 1777 म पातसाही जंग मैं सदा सु बहादरी सुं लड़ता मरया गया"- शुक्रवार मंगसर बुदी 1, वि0 सम्वत् 1777 [नवम्बर 1720

अतः ये मुगलकालीन पत्रक जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे इनको पत्रकारिता का पूर्वज कहा जा सकता है।

4. आधुनिक मुद्रणकला के आविष्कारक के रूप में गुटेन्बर्ग [1394-1469 ई0] का नाम लिया जाता है यद्यपि इसके प्रारंभिक जन्मदाता चीनी माने जाते हैं। गुटेन्बर्ग ने 1452 ई0 के लगभग प्रतिपृष्ठ 42 पंक्तियों में बाइबिल प्रकाशित की थी तथा अपने छोटे-छोटे परिपत्रों [पैम्फलेट] में पोप की आज्ञा प्रकाशित कर प्रिंटिंग प्रेस की नींव जर्मनी के मैंज नगर में डाली।[2]

ई0पूर्व0 60 में रोम में समाचारों का नियमित संग्रह जूलियस सीजर ने "एक्टाडार्यना" [Acta Durana] "एक्टा सिनेटस" तथा "एक्टा पब्लिका" के रूप में सरकारी घोषणाओं, रोमन सीनेट और जनसाधारण को वित्त संबंधी जानकारी देने के लिए हस्तलिखित रूप में कराया था। किन्तु नियमित रूप में जनता के लिए हस्तलिखित असरकारी

1. एच0सी0 टिक्कीजाल, जयपुर एण्ड दी लेटर मुगल्स पृ0 197
2. श्री कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ, पृ02

प्रकाशन ओग्सबर्ग, वायना, रैटिस्बन आदि नगरों में चिट्ठियों के रूप में हुआ। प्रथम सरकारी पत्र 1556 ई० वेनिस नगर से प्रकाशित हुआ जिसकी हस्तलिखित प्रतियाँ नगर के विशेष स्थानों पर चिपका दी जाती थी और नागरिकों को इन्हें पढ़ने के लिए मूल्य [गजटा] देना होता था "गजट" शब्द की व्युत्पत्ति "गजटा" से हुई प्रतीत होती है।[1]

मुद्रित पुरातन समाचार पत्रों की उपलब्ध प्रतियों में इंग्लैंड से प्रकाशित एक पृष्ठीय "न्यूज आउट ऑफ कैंट" [1561 ई०] तथा ओग्सबर्ग से प्रकाशित "एविस रिलेशन ओर्डर जोइंग" [1609] की पूरी फाइल और "रिलेशन" "फ्रैंकफर्ट" [सितंबर, 1621] आदि की प्रतियाँ प्रमुख हैं।[2]

2.3 भारत में आधुनिक पत्रकारिता का उद्भव और विकास :

1. पत्रकारिता को प्रमुख प्रेरक शक्ति भारत में प्रेस की स्थापना [6 सितम्बर, 1556 ई०] थी।[3] भारतीय भाषा में सर्वप्रथम मुद्रित पुस्तक सम्भवतः सेण्ट जेवियर कृत "डाक्ट्रिना क्रिस्तजो" [पुर्तगाली भाषानुवाद, 1557 ई०] थी।[4] नागरी टाइप का प्रयोग सबसे पहले यूरोप में प्रकाशित पुस्तक अथानासी किर्चरो कृत "बाइबा इलस्ट्रेटा" [1667 ई०] में हुआ था।[5] रोम से प्रकाशित पुस्तक [एल्फाबेटुम ब्राह्मणीकम् सिव हन्दोस्तानम् उनवर्सिटाटिस काडी" [1771 ई०] में पहली बार नागरी के चल टाइप [मूवेबल] का प्रयोग हुआ। इस पुस्तक में भारवा बोली, व्याकरण, वर्णमाला और सात-आठ पृष्ठों में हिन्दी गद्य दिया गया है जो उस युग में भी नागरी लिपि के प्रचलन और लोकप्रियता को सूचित करता है।

---

1. इन्द्र आचार्य, पत्रकारिता के अनुभव पृ० 80-81
2. डॉ० वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम पृ० 22
3. डा० राम चन्द्र तिवारी, पत्रिका संपादन कला पृ० 81
4. श्री कृष्णाचार्य, हिन्दी के आदि मुद्रित ग्रन्थ पृ० 7
5. वही, पृष्ठ 8-9

भारत में नागरी लिपि के टाइप हुगली के विल्किन्स तथा पंचानन कर्मकार के प्रयासों से निर्मित हुए। ईसा धर्म प्रचारकों ने बंबई, विपिन कोटा, तामिलनाड, कलकत्ता आदि में अनेक प्रेस धार्मिक पुस्तकों के प्रकाशन के लिए स्थापित कर लिये थे किन्तु 1780 ई0 के पूर्व पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन किसी भी भाषा में प्रारम्भ नहीं हो पाया था। इसका मुख्य कारण ईस्ट इंडिया कंपनी की पत्रकारिता के प्रति स्वतंत्रता विरोधी नीति थी। उसके अधिकारी वर्ग को यह भय और आशंका थी कि अंग्रेजी पत्रों द्वारा भ्रष्टाचार, लूट, पक्षपात आदि निन्दनीय भ्रष्ट कार्यों की इंग्लैंड तक सूचना पहुँच जायेगी।

2. भारत भूमि में पत्रकारिता का ऐतिहासिक शुभारंभ कंपनी से असंतुष्ट स्वतंत्र व्यापारी अंग्रेजों द्वारा हुआ।[1] इस दिशा में पहला असफल प्रयत्न विलियम बोल्ट नामक व्यापारी ने [1768] समाचार पत्र प्रकाशन के लिए कलकत्ता के सार्वजनिक स्थलों पर नोटिस लगा कर किया।[2] कंपनी के कोर्ट ऑफ डायरेक्टर्स ने उसे 18 अप्रैल, 1777 को तुरंत आदेश देकर यूरोप के लिए रवाना कर दिया।[3]

इसके बारह वर्ष पश्चात् 29 जनवरी, 1780 ई0 को जेम्स आगस्टस हिके ने भारत की धरती पर पहला अंग्रेजी समाचार पत्र "बेंगाल गजट आर कैलकेटा जेनरल एडवरटाइजर" या "हिके गजट" प्रकाशित किया। यह साप्ताहिक पत्र आकार में अति लघु द्वि-पृष्ठीय था लेकिन पत्रकारिता की स्वाधीन चेतना, दुःसाहस और निर्भीकता में अग्रणी था। तत्कालीन अंग्रेज

---

1. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास पृष्ठ 27-28
2. एस0नटराजन, हिस्ट्री ऑफ दि प्रेस इन इंडिया पृ0 17
3. प्रोसिडिंग्स आफ दी कैलकट कमेटी एट दा कांसिल ऑफ कोर्ट विलियम

उच्चाधिकारियों गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स, चीफ थोम्स, डीन पीयरस, मुख्य न्यायाधीश ईलीजाह ईम्पों आदि के निजी जीवन, नीतियों तथा तत्कालीन प्रशासनिक भ्रष्टाचार, बुराइयों का लगातार पर्दाफाश करने पर 14 नवम्बर, 1780 को हिके को पोस्ट आफिस के विज्ञापनों से वंचित कर दिया गया। जून, 1781 को उसे निर्दयता से पीट कर, 5000 रुपये दंड देकर कारावास में डाल दिया गया उसे जमानत न देने पर 80000 का जुर्माना देना पड़ा लेकिन प्रेस की स्वतंत्रता के समर्थक ने जेल से ही गजट का संपादन कर अपने उग्र विरोधी स्वर को अंत तक न बदला। प्रारम्भिक अंग्रेजी पत्रों की विषय सामग्री का आभास "हिके गजट" की 23 दिसंबर, 1780 की विषय-सूची से लगाया जा सकता है।[1]

विषय सूची - Advertisement, News from Madras, Calcutta intelligence from the chrismas fall, Extract of a letter from Chandernagar, Proclamations. All persons, to be sold, to the Public, Poet's corner, Notice, wanted, To lett.

हिके गजट की सूची से स्पष्ट है कि विज्ञापन, संपादक के नाम पत्र, रोजगार, मकान संबंधी सूचनाओं आदि का सूत्रपात इस प्रारम्भिक पत्र से ही हो चुका था। 18वीं के अन्य प्रमुख पत्रों में "कलकत्ता गजट" [1780], "बंगाल जनरल" [1785] "ओरियन्टल मेगजीन" [1785] "कलकत्ता क्रोनिकल" [1786] "मद्रास कूरियर [1785] "बंबई हेरल्ड" [1789 ई0] आदि थे। सन् 1780-1823 ई0 तक अनेक अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं को अपनी ही शासक जाति के कठोर नियंत्रण, सेंसर, इंग्लैंड निर्वासन, जुर्माना आदि का दण्ड सरकारी कार्यों की आलोचना के कारण भुगतना पड़ा था। मई, 1799

1. "हिके गजट" की माइक्रोफिल्म नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी, नई दिल्ली में सुरक्षित है।

के प्रेस अधिनियम के अन्तर्गत मुद्रक, प्रकाशक, संपादक को अपने नाम, छपित सामग्री को घोषणा सचिव के समक्ष करनी होती थी । नियमों में शासित क्षेत्रों में विद्रोह भड़काने वाली टिप्पणियों, कंपनी की वित्तीय स्थिति , निजी घोटालों आदि को मुद्रित न करने की हिदायत थी[1]। 7 अप्रैल , 1877 में सार्वजनिक सभाओं पर रोक लगाने के बाद भूमिगत पत्रों का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ।

प्रारंभिक अंग्रेजी पत्रकारिता का प्रकाशन केवल अंग्रेजी भाषा में अंग्रेज संपादकों तथा प्रकाशकों द्वारा, भारतीय अंग्रेज व्यापारी पाठकों के मनोरंजन और जानकारी देने के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ था। भारतीय जनता का न तो इन पत्रों से संपर्क-संबंध था, न ये पत्र उनके हितों का प्रतिनिधित्व करते थे, न इन पत्रों की भारतीयों के लिए कोई उपयोगिता थी। इनका ऐतिहासिक महत्व इतना अवश्य माना जा सकता है कि इनहोंने भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता के लिए नींव और ईंटें का निर्माण कर दिया था तथा पत्रकारिता की स्वाधीनता के लिए संघर्ष परंपरा का श्रीगणेश किया। सिल्क बंकिंघम के "कैलकटा जनरल" जैसे स्वाधीन पत्रों ने भारतीय पत्रकारिता के समक्ष स्वतंत्र, संघर्षपूर्ण पत्रकारिता का आदर्श दृष्टान्त प्रस्तुत कर उन्हें प्रेरित-प्रभावित किया।

3. भारतीय भाषाओं की पत्रकारिता : भारत में पत्रकारिता के अभ्युदय में यद्यपि अंग्रेजी पत्रकारिता की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी तथापि राष्ट्रीय गौरव की दृष्टि से देश की सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याओं को प्राधान्य देने वाली, राष्ट्रहित से जुड़ी तथा उनका प्रतिनिधित्व करने

---

1. एम०चलपति राव, समाचार पत्र, पृ० 22-23

वाली पत्रपत्रिकाएँ देशी भाषाओं की ही थी। देशी पत्रकारिता विदेशी भाषा, शेष पाठकों, व्यक्तिगत आक्षेपों-टिप्पणियों और कंपनी की कठोर आलोचना मात्र तक ही सीमित नहीं थी, उसका दृष्टिकोण सर्वथा स्वदेश परक, राष्ट्रीय-निर्माण और जनजागृति का था। राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए लोकमानस को उद्बुद्ध कर उन्हें आधुनिकता, वैज्ञानिक विचारों एवं ज्ञान-विज्ञान से संपृक्त करना था।[1] देशी पत्रकारिता की प्रेरक-शक्ति राजाराम मोहन राय ने पत्रकारिता को जन-हितों से जोड़ कर जहाँ एक ओर सती प्रथा, बाल विवाह जैसी रूढ़ियों के विरुद्ध जनमत तैयार किया, वहीं दूसरी ओर हिन्दू धर्म के कटु आलोचक मिशनरी पत्रों "समाचार दर्पण", "दिग्दर्शन, आदि का मुंहतोड़ प्रतिकार किया।[2] भारतीय संस्कृति एवं के रक्षार्थ राजाराम मोहन राय और सहयोगी पत्रकारों ताराचन्द दत्त, भवानी चरण बनर्जी, हरचन्द्र राय, गंगाकिशोर भट्टाचार्य आदि ने "बंगाल गजट" [अंग्रेजी] "संवाद कौमुदी" [बंगला 1819] " बंहममैनिकल मैगजीन [अंग्रेजी 1821 ई०] "मीरात-उल अखबार" [फारसी 1822] बंगदूत" [हिन्दी बंगला बहुभाषी 1829 ई०] "बेंगाल हेरल्ड" [1829] आदि पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित की। राजाराम मोहन राय ने अंग्रेजी कंपनी, रूढ़िवादी भारतीयों, ईसा-

---

1. देशी पत्रकारिता के संबंध में रेव०जे०लोंग द्वारा 1859 ई०] की टिप्पणी द्रष्टव्य है- "भारतीय समाचार पत्र देखने में विनोद मालूम होते हैं, लेकिन किसी जाति के युद्ध गीतों की भाँति वहाँ काम करते हैं और जैसे तिनकों के उड़ने से हवा का रुख पता चलता है उसी तरह से ये दिशा-निर्देश देते हैं उनमें सती प्रथा, जाति-प्रथा, विधवा विवाह, बहु विवाह के प्रश्नों पर दोनों पक्षों के विचार बड़ी कुशलता से प्रस्तुत किये जाते हैं।" उद्धृत एम०चलपतिराव, समाचार पत्र पृ०075
2. राजाराम मोहन राय ने पत्रकारिता के उद्देश्य के विषय में लिखा था "मेरा सिर्फ यही उद्देश्य है कि मैं जनता के सामने ऐसे बौद्धिक निबंध उपस्थित करूँ जो उनके अनुभवों को बढ़ाये और सामाजिक प्रगति में सहायक हों। मैं शक्तिभर शासकों को उनकी प्रजा की परिस्थितियों का परिचय देना चाहता हूँ"।- डा० कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता पृ० 20-21

मिशनरियों के आक्रमणों का लोहा लेने के लिए "शिव प्रसाद शर्मा" के नाम से कई लेख लिखे तथा सुप्रीम कोर्ट में एडम द्वारा लागू किये गये "प्रेस अध्यादेश"[1823 ई] के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट में अर्जी दी जिसे नामंजूर करने पर उन्होंने विरोध स्वरूप "मिरात-उल-अखबार" का प्रकाशन बंद कर दिया था।

सितंबर 1828 ई0 की जीएस्टाव पैल की रिपोर्ट के अनुसार अंग्रेजी भाषा में दो दैनिक, तीन अर्द्धसाप्ताहिक, एक फारसीका साप्ताहिक पत्र प्रकाशित होता था।भारतीय भाषाओं के 6 पत्र [तीन बंगला, दो फारसी, एक हिन्दी] छपते थे। 1830 में भारतीय भाषाओं के पत्रों की संख्या 16 हो गयी थी।[1]

4. उर्दू एवं मिशनरी पत्रकारिता : भारत में सभी देशी भाषाओं में पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन लगभग साथ-साथ प्रारम्भ हुआ क्योंकि उनके लिए समान परिवेश, प्रेरक शक्तियाँ, उद्देश्य तथा प्रशासन-तंत्र था किन्तु जिन भाषाओं की पत्रकारिता को राजकीय संरक्षण सहयोग और रियायतें मिली, वे प्रगति की दौड़ में सबसे आगे निकल गयी। उन्नीसवी सदी में उर्दू-अंग्रेजी भाषा की पत्रकारिता सरकारी तथा राजाओं का प्रोत्साहन और संरक्षण पाकर फल-फूल रही थी।[2] 1837 ई0 में पश्चिमोत्तर प्रदेश [उत्तर प्रदेश] की अदालतों और दफ्तरों की भाषा उर्दू हो जाने के कारण हिन्दी को शिक्षा-न्याय-आजीविका प्राप्ति में कोई व्यावहारिक उपयोगिता नहीं रह गयी थी।परिणाम स्वरूप हिन्दी-शिक्षा प्राप्त कर

---

1. एम0चलपति राव, समाचार पत्र पृ0 44
2. जे0 नटराजन, हिस्ट्री आफ इण्डियन जर्नलिज्म पृ0 2

रहे छात्रों की संख्या भी कम होती जाती थी।[1]

अतः अधिकांश उच्च शिक्षित हिन्दू -मुसलमान जनता का झुकाव और लगाव उर्दू-अंग्रेजी पत्रकारिता की ओर हो गया था। इसीलिए प्रारम्भिक अधिकांश उर्दू पत्र हिन्दू संपादकों द्वारा प्रकाशित हुए थे। उदाहरण स्वरूप उर्दू -फारसी के प्रारम्भिक पत्र "जामे जहाँनुमा" [1822 ई0] तथा "मिरात-उल-अखबार [फारसी, 1822] के संपादक क्रमशः हरिहर दत्त और राजाराम मोहन राय थे। उर्दू पत्र "कोहेनूर" [1850 लाहौर] मुंशी हर सुख राय का पत्र था। "आफताबे पंजाब" दीवान सूरा सिंह, "अवध अखबार" मुंशी नवल किशोर, "अखबारे आम" पं0 मुकुन्द राम ने प्रकाशित कराये थे। ऐसी अवरोधक परिस्थितियों में हिन्दी पत्रकारिता के लिए संपादक-लेखक-पाठक कहाँ से आते। अतः हिन्दी पत्रकारिता का विकास करना टेढ़ी खीर था।

1813 ई0 में ईसाधर्म प्रचारकों को 'चिल्ड्रनेर्स एक्ट' के द्वारा सरकारी संरक्षण सहयोग तथा निर्विरोध प्रचार की आज्ञा मिल चुकी थी। "यूनाइटेड मिशन आफ इंडिया" तथा उसकी प्रशाखाओं ईसा धर्म प्रचार के लिए अभियान तेज कर दिया था। बंगला-हिन्दी में देशी भाषा के पत्र "दिग्दर्शन", "समाचार दर्पण" आदि हिन्दू धर्म-चिंतन के कटु आलोचक थे। इनका उद्देश्य ईसा-धर्म-प्रचार था। ये मिशनरी पत्र आदि हिंदी

---

1. 31 दिसम्बर 1853 में बनारस कॉलेज के अन्तर्गत छात्र संख्या

हिन्दी संस्कृत के साथ अंग्रेजी	- 90	धर्मानुसार 1953
केवल हिंदी	- 0	क्रिश्चियन 3
संस्कृत के साथ हिन्दी	- 0	मुसलमान 9
उर्दू के साथ अंग्रेजी	- 93	हिन्दू 307
केवल उर्दू	- 0	
हिन्दी संस्कृत के साथ उर्दू	- 0	

- भारतीय साहित्य, जोशी , 1958

भारतीय समाज के जातीय दृष्टिकोण, हितों आकांक्षाओं और समस्याओं को वाणी नहीं देते थे। हिन्दी पत्रकारिता और राष्ट्रीय नवजागरण में इनका ऐतिहासिक महत्व यही माना जा सकता है कि इन्होंने हिन्दी में पाठ्य पुस्तकों के अभाव की पूर्ति की तथा हिन्दी गद्य में आधुनिक ज्ञानात्मक विषयों की संयोजना कर हिन्दी गद्य का व्यवहारिक रूप सामने रखा। उन्होंने भारतीय समाज की कमजोर नब्ज पर तीव्र प्रहार कर उन्हें उत्तेजित कर जगाया जिससे जन-जागरण का वातावरण निर्मित हुआ।

2.4. प्रारम्भिक हिन्दी पत्रकारिता [1820-1850 ई०]

1. युगीन परिवेश - उन्नीसवी सदी के प्रारम्भ से ही हिन्दी पत्रकारिता के अभ्युदय के लिए अनेक प्रेरक शक्तियाँ सक्रिय हो चुकी थी। "फोर्ट विलियम कॉलेज" की स्थापना [1800] तथा उसमें "प्रेमसागर" आदि ग्रंथो के प्रकाशन और हिन्दी शिक्षण, गद्य के प्रचलन तथा हिन्दी में धार्मिक- ज्ञानात्मक प्रचार-पाठ्य पुस्तकों के प्रकाशन ने हिन्दी-पत्रकारिता के लिए आधार शिला का निर्माण कर दिया था। अनेक शिक्षण - संस्थाओं की स्थापना, अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार, प्रबुद्ध भारतीयों द्वारा किये गये धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों तथा प्रेस, अंग्रेजी पत्रकारिता आदि अनेक संचार साधनों ने पत्रकारिता के लिए आवश्यक उपादान जुटा दिये थे। ईसा-धर्म प्रचार तथा अंग्रेजी शासकों की लूट और शोषण-नीति से भारतीय सांस्कृतिक एवं आर्थिक वैशिष्ट्य का नामोनिशां मिटने लगा था।प्रतिक्रिया स्वरूप लोक-मानस की विचारधारा और परिवेश में उद्वेलन और उत्क्रांति शुरू हो गयी थी। भारतीयों में आधुनिक नव जागरण और राष्ट्रीय विरासत की रक्षा के भाव उदित हुए। उन्होंने अपने जागृत भावों और असंतोष पूर्ण विचारों को अपनी पत्र-पत्रिकाओं

के माध्यम से वाणी दी। इन पत्र-पत्रिकाओं ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध जनमत-निर्माण तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए प्रबल आकांक्षा और जागरूकता उत्पन्न करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी थी।

2. प्रथम हिन्दी पत्र : हिन्दी में पत्रकारिता का प्रारम्भ निर्विवाद रूप से "उदन्त मार्तण्ड" [30 मई, 1826 ई0] नामक पत्रिका से माना जाता है। किन्तु महादेव साहा ने अपने लेखों [1] में तथा जे0एच0 आनन्द ने अपने शोध-ग्रंथ "पाश्चात्य विद्वानों का साहित्य"[2] में "उदन्त मार्तण्ड" को पहला हिन्दी प न मान कर क्रमशः मिशनरी पत्र "दिग्दर्शन" और "गॉस्पल मैगजीन" [1820] को माना है।

महादेव साहा के मतानुसार "दिग्दर्शन"[3] का प्रकाशन पहले अंग्रेजी-बंगला में 1818 से 1820 ई0 तक हुआ। बाद में दिल्ली से आदमी बुला कर इसके तीन अंक हिन्दी में भी प्रकाशित कराये गये थे।[4]

डा0 जॉन हेनरी आनन्द ने "दिग्दर्शन" [1818 ई0] तथा ब्रिटिश म्यूजियम से प्राप्त "गास्पल मैगजीन" [1820] को माना है। उनके अनुसार गॉस्पल मैग्जीन" मिशनरी पत्रिका का प्रकाशन कलकत्ता * "बंगाल औरिएन्टल मिशनरी सोसाइटी [बी0ए0एम0एस0] संस्था ने

---

1. [क] सरस्वती, जनवरी, 1960 पृ0 24
   [ख] "राष्ट्रभारती", अगस्त, 1959
2. "हिन्दी साहित्य के इतिहासकार — प्रथम पद के गौरव स्थान पर "हिन्दी दिग्दर्शन" और "गॉस्पल मैगजीन" को प्रतिष्ठित करेंगे। गॉस्पल मैगजीन केवाठ पृष्ठ मेरे पास सुरक्षित हैं' - डा0 जे0एच आनन्द पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 113
3. वही, पृष्ठ 108-111
4. डॉ0 वेद प्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम पृ0 779

दिसंबर 1819 में अंग्रेजी-बंगला में स्कूल प्रेस से किया था इसके 8 से 13 [1920 ई0] अंकों के विज्ञापनों से ज्ञात होता है कि बाद में अंग्रेजी संस्करण बंद करके हिन्दी संस्करण निकाला गया। डा0 आनंद के पास उपलब्ध प्रति में "गास्पल मेगजीन" की भाषा इस प्रकार है।[1]

कोइ समय में बंग देशीय एक पंडित ने कहा जो :
स्वभावो यादृशो यस्य न जहाति कदाचन्,
अंगारः शत धौतेन मालिन्यं न मुञ्चति।

इसका अर्थ: जिसका जैसा स्वभाव वो उसको कभी परित्याग करता नहीं , देखो जैसे सतबार धोने से भी अंगार अपनी मालिन्यता का त्याग करता नहीं,

यह सुनके एक हिन्दुस्तानी पण्डित ने उत्तर दिया कि ऐसा नहीं, उस अंगार का भी मालिन्य दूर होय सकता है, जैसा

सद्गुरु पावे भेद बतावे ज्ञान करे उपदेश,
तब कोयले का मैला छुटे जब अग्नि करे परवेश [पृ0 1-2]

हिन्दी के प्रथम पत्र होने की संभावना दुंदी से प्रकाशित पत्र "दरबार रोजनामचा" [1810-20] में भी मिलती है। इस पत्र का उल्लेख जेम्स टाड कृत "एनल्स एंड एंटीक्वीटीज ऑफ राजस्थान [भाग 2] में किया गया है।[2]

किन्तु जेम्स टाड ने इस पत्र की भाषा और प्रकाशन काल की कोई प्रामाणिक चर्चा नहीं की है। "दिग्दर्शन" [1818] की कोई हिन्दी

1. [क] डा0जे0एच आनन्द, पाश्चात्य विद्वानों को हिंदी साहित्य पृ0 112-13
   [ख] आजकल, दिसंबर, 1984, पृ0 49
2. सं0 वेद प्रताप वैदिक, पूर्व उद्धृत पृ0 780

प्रति उपलब्ध हो पायी है।

अतः उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री और खोज के आधार पर "गाँसपत्र मैगजीन" [1820 ई०] को पहला हिन्दी पत्र मानना अधिकतर तर्क संगत होगा।

3. प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाएँ- हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भिक वर्षों में निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थीं[1]-

सन्	पत्र का नाम	संपादक-प्रकाशक	स्थान	भाषा
30 मई, 1826 ई०	उदन्तमार्त्तण्ड	पं० युगुल किशोर शुक्ल	कलकत्ता	हिन्दी
10 मई, 1829	बंगदूत	प्र०राजाराम मोहन राय आदि सं०नीलरतन हालदार	कलकत्ता	हिन्दी-बंगला, फारसी
जून 1834	प्रजामित्र	प्रकाशन संदिग्ध माना गया है		-
जून 1845	बनारस अखबार	प्र०राजाशिव प्रसाद सं०गोविन्दनाथ पत्ते	बनारस	हिन्दी
11 जून 1846	मार्त्तण्ड	प्र०नासिरुद्दीन	कलकत्ता	हिन्दी-उर्दू-फारसी-बंगला
1846	आनन्दीप	प्रकाशी	-	-
1848	शिमला अखबार	शेख अब्दुल्ला	शिमला	हिन्दी-उर्दू
1849	जगद्दीपक भास्कर	-	कलकत्ता	बंगला-हिन्दी
1950	साम्यदण्डमार्त्तण्ड	पं०युगलकिशोर शुक्ल	"	हिन्दी
"	सुधाकर	सं०तारा मोहन मित्र काशी		हिन्दी-बंगला
"	मजहरुल सरूर	भरतपुर दरबार का मुखपत्र भरतपुर		हिन्दी-उर्दू

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि 1826-1850 ई0 के बीच केवल ग्यारह पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थी जिनमें अधिकतर दो या तीन भाषाओं में निकली थी इससे हिन्दी पत्रकारिता की धीमी गति का आभास हो जाता है। तत्कालीन हिन्दी पत्रकार-संपादकों की अदम्य जिजीविषा का परिचय इसी बात से लग जाता है कि पं0 गुप्त किशोर शुक्ल को "उदन्त मार्त्तण्ड" धनाभाव के कारण [1827] में बंद करना पड़ा था किन्तु पुनः उसी निष्ठा और उत्साह से "सामय दंड मार्त्तण्ड [1850 ई0] का प्रकाशन किया था। अधिकतर पत्रिकाएँ कलकत्ते से प्रकाशित होने के कारण सम्भवतः यही थे कि प्रारम्भ में देवनागरी लिपि के टाइप कलकत्ते में ही उपलब्ध थे तथा इसी प्रदेश में सबसे पहले आधुनिक शिक्षा और नवजागरण का स्पंदन हुआ था। प्रारम्भिक बंगला-बंगाली पत्र भी यहीं से प्रकाशित हुए थे।

उपर्युक्त प्रारम्भिक पत्रों में से कुछ ही के विषय में [उपर्युक्त तालिका से अधिक] विवरण उपलब्ध है जिनके आधार पर इनके स्वरूप, भाषा, नीति, उद्देश्य के बारे में कोई धारणा बनायी जा सकती है।

उदन्त मार्त्तण्ड साप्ताहिक पत्रिका - 30 मई 1826 को अहिंदी भाषी क्षेत्र कलकत्ता से हिंदी-भाषी जनता के हितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए निकाली गई थी।[1] इसके संपादक-संचालक गुप्त किशोर शुक्ल सरकारी

---

1. "यह उदन्त मार्त्तण्ड पहले पहल हिन्दुस्तानियों के हित के हेत जो आज तक किसी ने नहीं चलाया — इससे सत्य समाचार हिन्दुस्तानी लोग देख कर आप पढ़ें समझ लेय औ अपनी भाषा की उपज न छोड़े— इसलिए - औरे साहस में चित्त लगाया के एक प्रकार से यह नया ठाटबाट"- आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 392

हिंदी का सर्वप्रथम पत्र

उदन्तमार्त्तण्ड

अर्थात

हिन्दुस्तानियों के हित के विषय में प्रकाशित होने वाला समाचार पत्र

१ खण्ड | अंक वार ९ सम्वत् १८८२ | १० मई १८२६ सोमवार | मिलने का दिन ६ रुपया

इस पत्र के प्रकाशक का प्रस्तावना

यह उदन्त मार्त्तण्ड अब बहिलेव हम हिन्दुस्तानियों के हित के हेतु जो आज तक किसी ने नहीं चलाया पर अंगरेजी बोली बोलते हैं उनको तो कुछ सुख है और जब वे सब बराबर सुख सुखी होते हैं वैसे बराबर धन धनी होना भी अपनी रहते पराई आंख देखना वैसा ही इस अर्थ में जिसको पैठ नहीं उसको उसके रस का स्वाद मिलना कठिन ही है और हिन्दुस्तानियों में बहुतेरे ऐसे हैं कि पराई चाल देख कर अपनी बहुतेरी भूले देखि पड़ती हैं जो बुद्धिमान हैं वे अपनी तो खो बैठे हैं पर पराई पर अपने बुरेपन बराबर करने का जिन्हें बाध है वैसों को धन बचा चाहिये और इस में वे बड़े चतुर हैं जो इन्हों पर भी भाग टटोल लेवें बांह और कांखों से लहू में देख लेवें उसको थोड़े भी न देखकर साथियों को खेलाते बताने हैं ऐसी ऐसी बातों के विचार खेलवाड़ देखकर सब समाचार हिन्दुस्तानी लोग देख कर आप बड़ा जो समझ लेंगे और पराई अपेक्षा जो अपने भाई को उपकार होवे इस लिये बड़े दया वान कृपालु जो गुणनिधि विद्यासागर सबके कल्याण के निमित्त श्रीमान् महामहिम जनरल बहादुर की आज्ञा से ऐसे साहस में जिस समाचार के हर हफ्ते से छपवाने का ठाटबाट जो कोई अच्छा लेख इस अवसर के लायक है लेने की इच्छा करें तो अपने नाम और विद्या भेज मेरी से सब बातें के समाचार यहां के रहने वाले घर बैठे ही बाहिर के रहने वाले डाक पर आज्ञा करेंगे इसका मोल महीने में दो रुपया और डाक के महसूल की तैयारी लिखनावली और साथ ही बाहिर रहने वाले जो रुपया इसके की मानीनी करदेंगे वाहीसे लिखे महीने महीने के अन्तर रुपये भर पावने की रसीद भेज मेरे में किसी अवसर जो यहां रुपया डाकना भूल जावेगा जो कोई कारबार वाले करने उसी अर्थ लिख

हिन्दी के सर्वप्रथम समाचार पत्र 'उदन्त-मार्त्तण्ड' के प्रथम अंक की मुखपृष्ठ की प्रतिलिपि

सहायता[1] डाकदर की रियायतों न मिलने तथा धनाभाव के कारण इसे डेढ़ वर्ष बाद [11 दिसंबर 1827 ई0] बंद करने को मजबूर हो गये। उस समय थोड़े से ग्राहकों के बल पर किसी भी भाषा के पत्र के लिए असम्भव था।[2]

इस साप्ताहिक पत्रिका का मासिक मूल्य 2 रु0 और अंकवार आठ आना थी जो तत्कालीन मूल्यमानों को देखते हुए बहुत अधिक प्रतीत होती है। तत्कालीन सोने का भाव इसी पत्रिका के तीसरे अंक में इस प्रकार प्रकाशित हुआ था[3]-

सोना दर भरी	16।।।)	सोना टकसाल सही भरी 15।।।)
मोहर नई दर	17)	17।।)
पुरानी	18)	18)

---

1. [क] "पै हमें पूछिये तो इनकी मायावी दया से सरकार अँगरेज कंपनी महाप्रतापी की कृपा जैसे औरों पर पड़ी वैसे पड़ जाने की बड़ी आशा थी और मैंने इस विषय पर यथोचित उपाय किया --- अंत में नटों के से आम दिखायी दिए।"- सं0 मुंशी किशोर सुकुल, उदन्त मार्त्तण्ड, 4 दिसंबर, 1827

   [ख] "उस समय ब्रिटिश कंपनी "समाचार दर्पण", उर्दू-फारसी पत्र "जामेए-जहाँनामा को डाक दर की रियायतें देती थी किन्तु उदन्त मार्त्तण्ड को ये रियायतें मांगने पर नहीं दी गई" - एम0पट्टाभि राव, पूर्व उद्धृत पृ0

2. उदन्त मार्त्तण्ड, 12 जून, 1827 ई0

3. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पूर्व उद्धृत, पृ0 95

वस्तुतः इस काल की पत्रिकाओं का अधिक मूल्य मुद्रण-व्यय के अधिक होने तथा सरकारी संरक्षण के अभाव के कारण होता था। किन्तु व्यापारी वर्ग तो इसे अधिक मूल्य पर भी खरीदने को तैयार रहता था।[1] क्योंकि स्वदेशी व्यापारी वर्गों के हितों के लिए यह पत्रिका संघर्ष शील एवं सचेत रहती थी। बंगला पत्रिका "समाचार चन्द्रिका" ने भारतीय व्यापारियों" के विरुद्ध एक चिट्ठी प्रकाशित करके उन्हें बहुत बुरा-भला कहा था जिसका तीखा प्रत्युत्तर संपादक पुनुल किशोर शुक्ल के देने पर "समाचार चन्द्रिका" के संपादक भवानी चरण बनर्जी ने उन पर मान-हानि का दावा ठोक दिया था।[2]

इस पत्रिका में हिंदी भाषा के प्रति सजगता और दायित्व भावना भी परिलक्षित होती है। मिशनरी पत्र"समाचार दर्पण" के द्वारा "उद्गक सिंह" गलत नाम लिखने पर "उदन्त मार्त्तण्ड" ने उसके साथ तीव्र कटाक्ष कर जैसा वाद-विवाद चलाया था[3] जो शक्ति-साधन विहीन

---

1. "उदन्त मार्त्तण्ड" में प्रकाशित व्यापारी वर्ग की चिट्ठी, चैत वदि 13 संवत् 1883
2. डा०कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता, पृष्ठ 44
3. एडिटोरियल रिमार्क- अनुदता-"समाचार-दर्पण में नए समाचार न मिले इसका कुछ दुःख नहीं है पर लाहौर में रनजीत के समाचार में गोरख सिंह जो लिखा जाता है — तो भूल, इसका इसका उद्गक सिंह और ए महाराजा के बड़े कुमार हैं इतनी विनय और है कि अंगरेजी गवर्नमेंट गैजेट में भी शोध देवे— और दर्पण प्रदर्शक ने एक बेर उद्सिंह और दूसरी बेर उद्गक सिंह, फिर उद्क सिंह अपने दर्पण में लिख दिया है। इसमें कौन से शब्द में उनको अभिलषि है, समझ में नहीं आया।'- उदन्त मार्त्तण्ड, आश्विन वदि अंक, संवत् 1883

होने पर भी इस पत्र की युगीन चेतना और हिन्दी के प्रति अनुराग को द्योतित करता है।

उदन्त मार्त्तण्ड की भाषा बोल-चाल की अर्थगर्भ तथा स्पष्ट है। "उदन्त मार्त्तण्ड" हिन्दी का पहला समाचार पत्र होने पर भी भाषा और विचारों की दृष्टि से सुसंपादित पत्र था "इसमें विज्ञापन, समाचार, बाजार भाव, पत्र आदि विविध सामग्री प्रकाशित होती थी।

बंगदूत का प्रकाशन 10 मई, 1829 ई० में कलकत्ता से ही तीन भाषाओं बंगला फारसी हिन्दी में एक साथ हुआ था। इसका अंग्रेजी संस्करण "हिन्दू हेरल्ड" अलग से सोलह पृष्ठों में छपता था।[1] राजाराम मोहन राय और उनके सहयोगियों, आर०एम० मार्टिन, द्वार का नाथ ठाकुर नील रत्न हालदार आदि द्वारा प्रकाशित पत्र में हिन्दी का होना महत्वपूर्ण है क्यों कि राजाराम मोहन राय के द्वारा अंग्रेजी को प्रभुत्व मिलने लगा था। फिर भी "बंगदूत" से हिन्दी के व्यापक प्रचलन एवं जनभाषा होने का प्रमाण मिलता है। इस पत्र में बाजार भाव नागरी लिपि में ही इस प्रकार छपते थे[2]-

चावल पटने का	2।।।-)	3) मन
दाल अरहर	।।।।)	।।।।-)
चना	।=)	।=)
गेहूँ दूधिया	।।।।-)	।।।।=)
गोवा घी	24)	2 5)

नील रत्न हालदार के संपादकत्व में निकले राजाजी के इस

1. डा० कुंज बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता पृ० 44
2. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास पृ० 105

की भाषा के विषय में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की टिप्पणी थी-" राजा साहब की भाषा में एक-आध जगह बंगालापन जरूर मिलता है पर उसका रूप अधिकांश में वही है जो शास्त्रज्ञ विद्वानों के व्यवहार में आता था"[1]

इसका मासिक मूल्य 3 रुपया और वार्षिक 30 रुपया था। इसके भी केवल 10-11 अंक के बाद सम्भवतः बंद हो गया था।

"प्रजामित्र" के प्रकाशन के संबंध में "समाचार दर्पण " में 21 जून, 1834 ई0 को एक विज्ञप्ति निकली थी किन्तु इसका प्रकाशन सम्भवतः नहीं हो पाया[2] ।

"बंगदूत" [1829] के प्रकाशन के बाद लगभग 16 वर्षों के अंतराल से सन् 1845 में "बनारस अखबार" का प्रकाशन हुआ।[3] इससे हिन्दी पत्रकारिता की धीमी गति और अबाध निरंतरता के अभाव का आभास हो जाता है। वस्तुतः उस युग में हिन्दी-पत्रकारिता की राह में अनेक गति अवरोधक बाधाएँ थीं जिनके कारण उसकी विकास-गति अति मन्द मन्थर रही -

1. अंग्रेजी सरकार द्वारा हिन्दी-पत्रकारिता को संरक्षण-समर्थन न देना।
2. उच्च शिक्षा, आजीविका या न्यायालयों आदि में उर्दू और अंग्रेजी भाषा को प्रधानता देना।
3. हिन्दी गद्य में सरल, व्यवहारिक एवं परिष्कृत भाषा का अभाव होना।
4. जनता का निम्न आर्थिक जीवन-स्तर एवं पत्रकारों की आर्थिक कठिनाइयाँ।
5. हिन्दी प्रदेश में साक्षरों की अल्प संख्या तथा हिन्दी पाठकों की नगण्यता।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 39।
2. डा. कृष्ण बिहारी मिश्र, हिन्दी पत्रकारिता पृ0 33-34
3. "बनारस अखबार सन् 1845 में नहीं बल्कि 1844 के जून मास में निकला था और इसके संपादक मराठा नहीं बल्कि एक बंगाली सज्जन तारा मोहन मित्र और प्रसन्न नाथ बन्द्योपाध्याय, विशाल भारत, मार्च, 193।

6. पत्र-पत्रिकाओं के प्रति जनरुचि, जन-समर्थन की न्यूनता।
7. पत्रकारिता के विकास की अनिवार्य शर्त- दूरगामी संचार-साधनों संवाद-साधनों एवं औद्योगिक व्यवस्था का अविकसित होना।
8. पत्रकार-कला विषयक ज्ञान और पत्रकारों की अल्प संख्या।
9. हिन्दी - पत्रकारिता में व्यावसायिक लाभ और प्रोत्साहन का अभाव आदि।

अतः हिन्दी-पत्रकारिता के इस विरोधी वातावरण में जब छोटी-मोटी पत्रिकाओं का निकलना भी, उर्दू-ओबी का आधिपत्य सर्वत्र विद्यमान था, राजा शिव प्रसाद ने "बनारस अखबार" की उर्दू भाषा को नागरी लिपि में प्रकाशित कर हिन्दी-पत्रकारिता के लिए मार्ग प्रशस्त किया और हिन्दी-उर्दू आदि के द्विभाषी पत्रों की परंपरा का सूत्रपात किया। यद्यपि उस समय यह पत्र ओज सरकार की चाटुकारिता और भाषा-नीति के कारण सर्वत्र निन्दित हुआ था, तथापि अनजाने में ही "बनारस अखबार" ने उर्दू को देवनागरी लिपि का मार्ग दिखाकर हिन्दी पत्रकारिता और जातीय लिपि को विस्तृत फलक प्रदान कर हिन्दी उर्दू बंधनों को छूट किया था। इसके बाद ही हिन्दी-उर्दू आदि द्वि-भाषी पत्र-पत्रिकाओं और उर्दू - पत्रों के हिन्दी-संस्करण निकालने की परंपरा चली।

पत्र का मोटो था -

सुबनारस अखबार यह शिव प्रसाद आधार।
बुधि विवेक जन निधुन को चितहित बारम्बार।।
गिरजापिति नगरी जहाँ गंग अमल जलधार।
नेत सुभासुभ मुकुर को, उठौं विचार-विचार।।

किन्तु पत्र की भाषा उर्दू मिश्रित हिन्दी थी- " अस्सी संगम पर गंगाजी के पश्चिम तरफ थोड़े ही दूर पर राजा राजाराम साहेब ने अपने काशीवास करने के लिए एक बारहदरी संगीनी और के लमे मकान अस्तबल खाना वगैरह बनवाया है -- यकीन है कि बाग तैयार हो जाने पर बहुत अच्छा केफ़ियत का मकान नजर आवेगा और सारे मकानों का सिरताज बन जावेगा।"[1] तीर्थों में मुद्रित, हिन्दी प्रदेश काशी से प्रकाशित होने वाले इस पत्र की प्रसार संख्या 90 थी।[2] इस पत्र के 20 दिसंबर,1877 के अंक में प्रकाशित एक लेख में भारत में अंग्रेजी शासन का राजा जनक और राम राज्य से रोचक तुलनात्मक अंतर स्पष्ट किया गया था।[3] इसमें संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद, स्थानीय समाचार तथा अन्य पत्रों से लिये उद्धरण आदि प्रकाशित होते थे।

"मार्तण्ड " [इण्डियन सन् , 1846] "ज्ञान दीप"[1846] के विषय में उपर्युक्त तालिका से अधिक सूचना उपलब्ध नहीं है।

"मालवा अखबार" मध्य प्रदेश में इन्दौर दरबार का राजकीय मुख्य पत्र था । हिन्दी-उर्दू में प्रकाशित इस पत्र का आकार ।।"×8 का था।।873 ई0 से यह मराठी में भी छपने लगा। इसका वार्षिक मूल्य 12 रु0 तथा एक प्रति का । रु0 आना था। "मालवा अखबार तत्कालीन राजनैतिक परिवेश या सत्ताधारियों की कोई तस्वीर पेश नहीं करता और न ही उसमें किसी भी प्रकार के सुधारों सामाजिक अथवा शैक्षणिक सुधारों के प्रति आग्रह है।वस्तुतः वह उसका उद्देश्य भी नहीं था। वह इन्दौर दरबार की आकांक्षाओं और आवश्यकताओं का प्रतिबिंब था।[4]

---

1. बनारस अखबार, 1 जनवरी, 1952 ई0
2. उद्धृत ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ0 189-190
3. एम[क] एम0 भवानी राव समाचार पत्र पृ0 109
   [ख] रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन0डब्ल्यू0पी0 1877 में प्रसार संख्या 58 बतायी गई है।
3. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन0डब्ल्यू0पी,29 दिसंबर 1877 पृष्ठ 2
4. डा0 कैलाश नारद, मध्य प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता: एक शताब्दी पृ0।।

१९ वीं शती के मध्य का प्रमुख साप्ताहिक

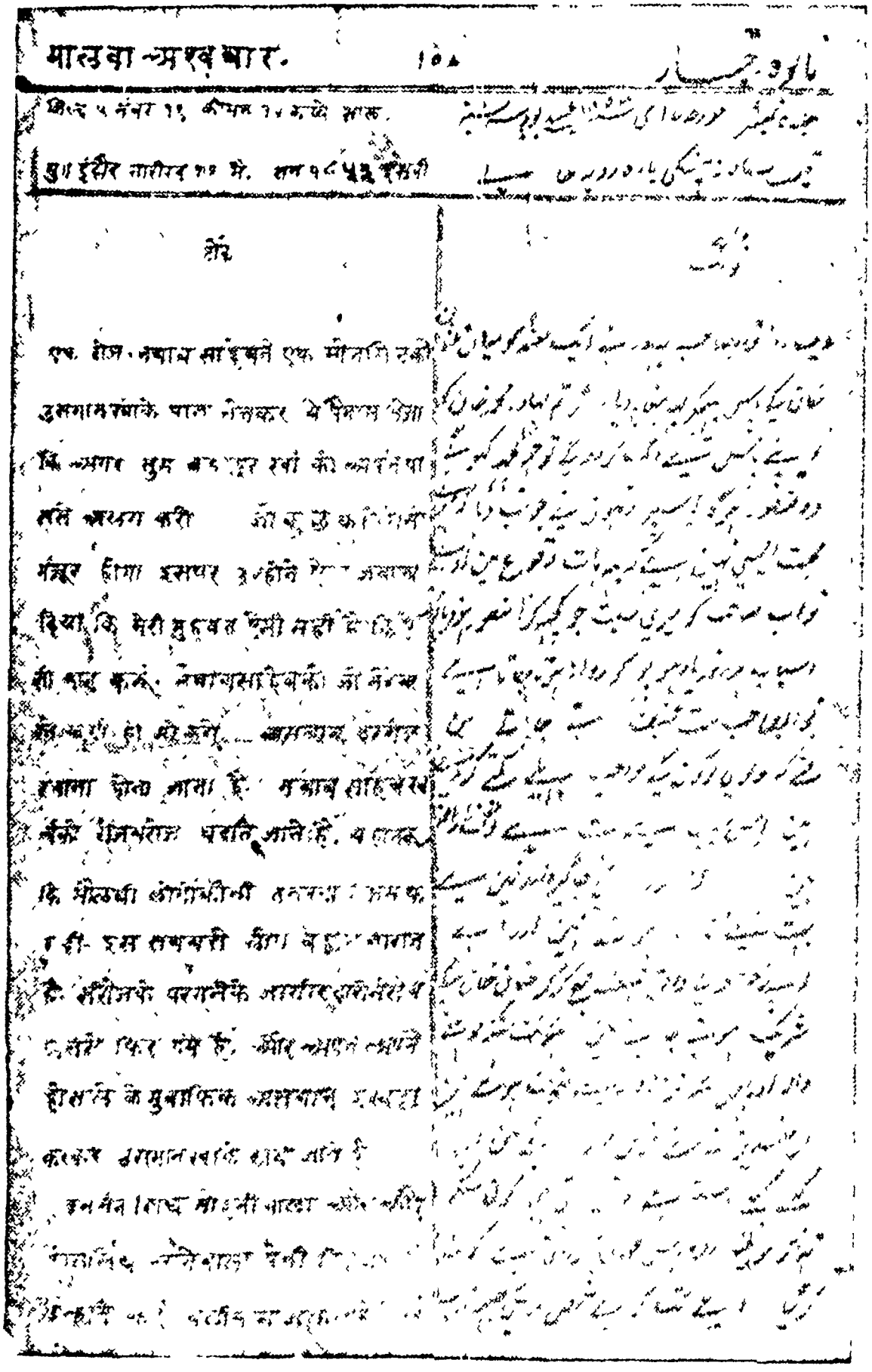

मालवा-अखबार. १०८

इंदौर तारीख १० मे. सन १८५३ ईसवी

किन्तु उसमें 19 वीं सदी के सातवें दशक से नवजागरण के साथ राष्ट्रीय समस्याओं तथा राजनीतिक विषयों से संबंधित लेख प्रकाशित होने लगे थे।[1] दूसरी पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों के उद्धरण भी यह पत्रिका छापती थी। 1 फरवरी 1853 ई0 के अंक में प्रकाशित "नागपुर के समाचार" इस प्रकार है -

"वहाँ के अखबार से मालूम हुआ कि रजीडण्ट साहिब बहादुर के लिए बनूलिब धूसे का मसूल माफ हुआ। एक दिन दो सिपाहियों ने मियाँ भाई को बहुत मारा। देखिये बचता है कि नहीं। सिपाहियों को गिरफ्तारी का हुक्म हुआ है। कई परगनों में से नई हजार रुपया खजाने में दाखिल हुआ। उबर आई कि एक औरत ने पेट गिरा दिया -"[2]

उपर्युक्त समाचार में एक क्षेत्र के समस्त समाचार बिना किसी शीर्षक तथा बिना किसी तिथि और तारतम्य के एक साथ संयुक्त कर लिए दिये गये हैं जो आधुनिक समाचार के प्रस्तुतिकरण से भिन्न शैली है। "शिमला अखबार" लिथोग्राफ में मुद्रित साप्ताहिक पत्र प्रकाशन शेख अब्दुल्ला ने कर पहाड़ी प्रदेश की सामाजिक समस्याओं को विषय बनाया। इसके रोचक, विविध विषयों से समन्वित पत्र की कुल पचास प्रतियों में से 22 हिंदू, 8 मोब और 20 प्रतियाँ निःशुल्क बाँटी जाती थीं।[3] यह मनोरंजक लेखों वाला आकर्षक साज-सज्जा युक्त सुसंपादित पत्र था। सुधाकर (1850) तारा मोहन मिश्र द्वारा संपादित मनोरंजक ज्ञानवर्द्धक विशुद्ध हिन्दी पत्र था। इसकी प्रसार संख्या 74 थी। प्रकाशन-व्यय

---

1. रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स: एन0 डब्ल्यू0पी0, जौलाई - दिसं0 1878 (27 अप्रैल 1970 पृ0 191-20
2. डा0 कैलाश नारद, मध्य प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता पृ0 12
3. 1850 की प्रेस संबंधी सरकारी रिपोर्ट

50 रुपये तथा आय 74 रु० थी। इसके ग्राहकों में 50 हिन्दू, 22 यूरोपीय तथा 2 मुसलमान थे।[1] लेख परिमार्जित शुद्ध हिन्दी में प्रकाशित होते थे तथा पत्र के नाम के नीचे मुख पृष्ठ पर काशी के चित्र अंकित रहते थे किन्तु घनाभाव के कारण यह भी शीघ्र कालकवलित हो गया इसके सुंदर शुद्ध हिन्दी द्रष्टव्य है।

" हमको तो मत के छेड़छाड़ से कुछ प्रयोजन नहीं क्योंकि वर्तमान समय में सुखदर्शी कम दिखायी देते हैं और जो है भी सो इस प्रकार को अनुचित चर्चा में हाथ नहीं डालते। जिस वास्ते कि मतामत का विवाद केवल अज्ञानता मात्र है। परन्तु उत्तम पुरुष जो होते हैं सो अनुचित विषय अपने सामने देखकर चुप नहीं रह सकते इसलिए एक महात्मा ने यह दृढ़ प्रतिज्ञा की है कि हालर बाटाइन ने दर्शन शास्त्र पर जहाँ-तहाँ कुतर्क किया है उन सबों का खंडन कर संस्कृत अथवा भाषा में एक पुस्तक छपवावें"[2]।

प्रसिद्ध ज्योतिषी सुधाकर द्विवेदी का नामकरण इसी पत्र के नाम पर हुआ था।

5. उपर्युक्त प्रारम्भिक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के विवेचन के आधार पर कुछ धारणाएँ बनायी जा सकती हैं। इन प्रारम्भिक पत्रिकाओं की संघर्ष-यात्रा कुएं की धार से मलती-बदती थी, अधिकांश पत्र पत्रिकाओं का जीवन बुलबुले की भाँति क्षणभंगुर रहा था। उस समय तक न इनको उदारता पर पढ़ने वाले थे और न इनका पोषण-परिवर्द्धन करके प्रोत्साहित करने वाले शासक थे फिर ये चलती तो कैसे बल पर। यही कारण था कि इन 25 वर्षों की लम्बी अवधि में केवल 10-11

1. सं०वेदव्रताम वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम पृ० 118
2. [क] नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० 2007 भारतेन्दु स्मृति अंक पृ०60
[ख] ब्रजरत्नदास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०189-190

पत्रिकाएँ ही प्रकाशित हो सकीं।

इस शैशव काल की पत्रकारिता कोई ठोस स्मरणीय विशिष्ट उपलब्धि प्राप्त करने में समर्थ नहीं हो सकी थी। उसमें निश्चित नीति स्वरूप, दृढ़ उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों के अभाव के कारण विरोधी ताकतों से जूझने की संकल्प शक्ति विकसित नहीं हो पायी थी। इस प्रारंभिक अवस्था में यह संभव भी नहीं था। शायद किसी दृढ़ नीति और संकल्प शक्ति के अभाव में ही शिव प्रसाद सितारे "हिन्द" ने के "बनारस अखबार" ने भाषा में उर्दू रूप को प्रमुखता देकर अपनी भीरुता और चाटुकारिता का परिचय दिया था। सरकार और शिक्षित होते जन-समुदाय द्वारा पोषित उर्दू-फारसी के विरुद्ध लड़ने की शक्ति और दृढ़ता उनमें नहीं थी।

किन्तु इन पत्रों के प्रारम्भिक साहसिक प्रयासों एवं निः-स्वार्थ समर्पित निष्ठा को नकार कर आगे नहीं बढ़ा जा सकता। इन पत्र-पत्रिकाओं का ऐतिहासिक एवं साहित्यिक महत्व निर्विवाद है। इनकी विशिष्ट उपलब्धि यही मानी जा सकती है कि उन्होंने बिना किसी प्रोत्साहन और सहयोग के पत्रकारिता की परंपरा को उस समय जीवित बनाये रखा जब हिन्दी-भाषी समाज अटूट मूर्छा में निमग्न था और उर्दू-फारसी-अंग्रेजी का वर्चस्व हो चला था। अम्बिका प्रसाद वाजपेयी[1] के शब्दों में "उस समय के इन पत्र-संचालकों की प्रशंसा करनी चाहिए कि जब न तो बहुत से ग्राहकों की आशा थी और न विज्ञापनों की, फिर भी इन्होंने केवल देश भक्ति और प्रजाहित की कामना से प्रेरित होकर अपना धन, श्रम और समय ऐसे कार्य में लगाया जिससे किसी प्रकार के लाभ की आशा न थी।"[1]

---

1. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, पूर्व उद्धृत पृ० 121

हिन्दी के ये प्रारम्भिक पत्र सामयिक समस्याओं के प्रति सचेत, समाज के धार्मिक-सामाजिक- आर्थिक विषयों के प्रति जागरूक तथा देश-विदेश के समाचारों के प्रकाशन के प्रति उत्सुक दिखाई देते हैं जबकि 1850 तक जन सामान्य में राष्ट्र-निर्माण के प्रति सुस्पष्ट भाव भी उदित नहीं पाये थे। रेल-तार आदि साधनों का आगमन भी तब तक नहीं हुआ था। पत्रों की नीति प्रति स्वातन्त्र्य और दुलमुल थी क्यों कि हिन्दी पत्रकारिता को प्रारम्भ से ही अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए कठोर संघर्ष करना पड़ा था।

पत्रों की भाषा , रूप, नीति आदि के संबंध में कोई सामान्य आदर्श निर्मित नहीं हो पाया था हिन्दी पत्रों में उपबोधिक बोलचाल या विद्वानों द्वारा प्रयुक्त भाषा (बनारस अखबार आदि को छोड़ कर) लिखी जाती थी।

तीसरा अध्याय

हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम

१- विवेच्यकालीन पत्रकारिता : परिचय एवं
   स्वरूप (१८५१-१९००)
२- राष्ट्रीय पत्रकारिता
३- सम्पादकीय सामग्री
४- विविध-समाचार

3.1. विवेच्यकालीन पत्रकारिता : परिचय एवं स्वरूप [1851-1900]

1. भारतीय इतिहास में उत्तर उन्नीसवीं शताब्दी राष्ट्रीय-नवजागरण एवं सुसंगठित जनमत के अंकुरण का काल था। सम्पूर्ण देश पश्चिमीकरण, वैज्ञानिक संचार-साधनों एवं सांस्कृतिक-राजनीतिक परिवर्तनों से स्पंदित था। इसी परिवेश में राष्ट्रीय नवचेतना के साथ राष्ट्रीय पत्रकारिता का प्रस्फुटन हुआ। प्रारंभिक हिन्दी पत्रकारिता भी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के उदय के साथ नव-आकार, नव-भंगिमा तथा नव-राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण करने लगी थी। यद्यपि तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में आधुनिक पत्रिकाओं के समान भव्य साज-सज्जा, नयनाभिराम चित्रांकन, इन्द्रधनुषी विज्ञापनों की भरमार, हजारों-लाखों में प्रसार-संख्या, व्यावसायिक अर्थ-निष्ठा एवं विषय-विशेषज्ञता आदि विशिष्टताओं के दर्शन टूटने पर भी नहीं होते तथापि इसकी श्रेष्ठता सिद्ध होती है- इसकी प्रखर राजनीतिक चेतना, निरंतर संघर्षशीलता और प्रौढ़ क्रांतिकारी चिंतन में। इसकी उत्कृष्टता के प्रमाण मिलते हैं- इसके सशक्त संपादकीय तथा जातीय भाषा और जातीय [राष्ट्रीय] हित के लिए पूर्ण समर्पण एवं अपनत्व भाव में। इसके वैचारिक प्रभाव से ही आगामी पत्रकारिता के आदर्श मानदंड बने, उसे सही दिशा मिली। तत्कालीन पत्रकारिता से हिन्दी गद्य को साहित्यिक गरिमा मिली तथा जन-भाषा हिन्दी में सहज वेग एवं कलात्मक सौंदर्य का विकास हुआ। इसी के अनवरत प्रयासों से जीवन के सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीय नवचेतना, बौद्धिक-रचनात्मक चिंतन तथा सार्वदेशिक सशक्त जनमत का सूत्रपात हुआ। इसने शोषकों के प्रति जनता में व्यापक मोहभंग की अनुभूति जागृत कर राष्ट्रीयआंदोलन की नींव डाली

तथा राष्ट्र-चेतना को निरंतर अपनी समर्पित आहुति के घृत से सुलगा कर स्वाधीनता-यज्ञ की ओर अग्रसर किया।

1. द्विभाषी पत्रकारिता : 1857 का महासमर हिन्दू-मुसलमान नेताओं तथा जनता ने कंधे से कंधा भिड़ा कर लड़ा था। स्वातंत्र्य सेनानी मुज़ब्ब कलाम आज़ाद के शब्दों में "सभी भारतीय चाहे मुसलमान हों या हिंदू, हर बात को एक ही दृष्टिकोण से देखते थे और घटनाओं को एक रंग से ही आँकते थे। ... सदियों तक इकट्ठे रहने के परिणाम स्वरूप हिन्दू-मुसलमानों के स्थायी मैत्री-संबंध हो गये थे।"[1] अतः उस सद्भाव पूर्ण परिवेश में स्वाभाविक ही था कि हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता भी संयुक्त रूप से निकलतीं। हिन्दी-उर्दू दोनों ही उस समय हिंदू-मुसलमान जनता की संपर्क-भाषाएँ थीं। दोनों भाषाओं में तब तक धर्म के आधार पर सांप्रदायिक विभाजन और अलग-अलग स्पष्ट पहचान नहीं बनी थी। हिन्दू-मुसलमान दोनों ही हिन्दी-उर्दू पत्रों का एक साथ संपादन तथा प्रकाशन करते थे। वे समझते थे कि हिन्दी-उर्दू में से किसी एक भाषा की उपेक्षा करके उनकी पत्र-पत्रिकाएँ जीवित नहीं रह सकती हैं। इसका कारण यह था कि उर्दू कचहरियों की सरकारी मान्यता प्राप्त [1837 ई0] भाषा बन चुकी थी और हिन्दी जनसाधारण की मातृभाषा थी ही। इन दोनों भाषाओं में भाषा-विज्ञान की दृष्टि से कोई अंतर नहीं है, केवल लिपि और शब्द-भण्डार पृथक् हैं। अतः इस काल में द्वि-भाषी पत्रों की लम्बी शृंखला चली -

प्रकाशन-तिथि	पत्रका नाम	संपादक-प्रकाशक	स्थान	भाषा-रूप
सन् 1850 ई0	मजहरुल सरूर	भरतपुर दरबार	भरतपुर	हिन्दी-उर्दू
1853	ग्वालियर गजट	मुंशी अहमनदास आदि	ग्वालियर	"

1. सुरेन्द्रनाथ सेन, अठारह सौसत्तावन [भूमिका] पृ0 16

हिंदी का सर्वप्रथम दैनिक पत्र

समाचार सुधावर्षण

समाचार सुधावर्षण

प्रत्याहिक पत्र।

[illegible] संख्या [illegible] सन १२६२ साल तारीख २१ पौष शुक्रवार इंग्रेजी सन १८५५ साल तारीख [illegible] पौष वदि १२

२ वालम संख्या ४८९ सन १२६२ साल तारीख २१ पौष शुक्रवार इंग्रेजी [illegible] जानुआरि

विज्ञापन

[illegible] ७ तारिख [illegible] उसमें [illegible] देखने आवेगा।

[illegible]

[illegible]

J F STACE.

Secy [illegible]

विज्ञापन।

[illegible]

[illegible] आवेगा।

[illegible]

Hugh Machardy.

Manager

विज्ञापन

[illegible]

समाचार सुधावर्षण

पौष वदि १२ [illegible] १८५५

[illegible]

प्रकाशन-तिथि	पत्र का नाम	संपादक-प्रकाशक	स्थान	भाषा-रूप
सन् 1854 ई०	समाचार-सुधावर्षण	श्याम सुंदर सेन	कलकत्ता	हिन्दी-बंगला
1855	सर्वहितकारक	शिवनारायण	आगरा	हिन्दी-उर्दू
1856	राजपुताना-अखबार	कन्हैया लाल	जयपुर	"
1857	पयामे आजादी	प्र०अजीमुल्ला खाँ सं०बेदार बख्त	दिल्ली	"
1865	सैर-सपाटे-हिंद	डा०आर०सी० माथुर	मिर्जापुर	"
1866	ज्ञान प्रदायिनी पत्रिका	प्र०बाबू नवीन चन्द्र राय सं० मुकुन्द राम	लाहौर	"
1867	रतन प्रकाश	पं०किशोरलाल नागर	रतलाम	"
"	विद्या विलास	वेंकटराम शास्त्री	जम्मू	"
1868	वृत्तांत-दर्पण	सदा सुख लाल	प्रयाग	"
1869	जगत् समाचार	-	आगरा	"
"	मंगल समाचार	डा०गिरिप्रसाद सिंह	मेरठ	"
"	जगदानंद	ठाकुर सिंह	-	"
"	पापमोचन	कृष्ण चन्द्र	-	"
"	जगत् प्रकाश	-	मुरादाबाद	"
1877	नागपुर-सरकारी-अखबार	प्रादेशिक शिक्षा संचालक	नागपुर	"

Sajjnu Vilaas

सज्जनविनोद

पाक्षिकपत्र

भारतवर्षीयप्रजाहितैषी विरचितश्च नवर्ष
धर्मसारसरणिकश्च विनाशजागरश्च
सज्जनमनसुखविनोदकश्च दुर्जनमानविनाशकश्च

सुखीहैंहिंसब प्रजाजन पधर्मकर्मरतिंतु
गाजरचटुलिटैमेरेकनुह
दुर्जनमानविनाश हरकाशदी जिमिकाज॥

भाग १ | आगरा सज्जनविनोद चैत्रशुक्ला ४ चंद्रवार ता: ८ एप्रिल १९४३ ई. | अंक ३

सज्जनविनोद

मूल्य प्रथम मयूरकमासूल (१) साल
मात्रवाद (३) गला महारजोंसे (५) साल

नियम

यह पत्र मासमें दो बार अर्थात् १५ दिन में प्रकाशित होता है नियम इसके अति उत्तम सर्व पत्रकारके हैं सम्पूर्ण धर्म सभा सनातन शास्त्रोंके उपदेश राजनीति ज्ञान विचार स्त्रीशिक्षा, बालोपदेश मातृभाषा की उन्नति विविध समाचार आश्चर्य वार्ता प्रत्न निरूपण कृषि कर्म वैद्यक वाणी विज्ञापन खजानिक मेडिसिन निवेदनपत्र आदि भिन्न रूपमें हैं जिनमहाशयों को लेनेकी इच्छा हो अपना नाम व निश्चय दिखा मानिस्वरूप तीन रुपया के सज्जनविनोद को

[illegible]

विज्ञापन

[illegible]

[illegible]

Registered No. 46

खजाना
दारुल खिलाफत

GRANTHKÁR PRESS ÁGRA.

ग्रंथकार यंत्रालय आगरा | मीः [illegible]

सन् १९२९ मकरार्क मास पक्षे — [illegible]

मर्यादापरिपाटीसमाचार

[illegible] धर्मशास्त्र का आकर किंतु [illegible] मासिक नम्बर ८।

MARYÁDÁPARIPÁTÍ SAMÁCHÁR.

[illegible]

मूल्य जो पेशकी दाखिल किया जावे				मूल्य जो पीछे दिया जावे			
वार्षिक-[illegible] साथ पहले	द्वैवार्षिक त्रिमाही पहले	षड्मासिक छमाही पहले	त्रैमासिक-[illegible] तिमाही पहले	वार्षिक-[illegible] साथ पीछे	द्वैवार्षिक त्रिमाही पीछे	षड्मासिक छमाही पीछे	त्रैमासिक-[illegible] तिमाही पीछे
५॥	१७॥	९	५	६	१२	७	३

[illegible]

प्रकाशन-तिथि	पत्र का नाम	संपादक - प्रकाशक	स्थान	भाषा रूप
सन् 1871 ई0	मुहब्बे मारवाड़ या मरुधर मित्र	प्रादेशिक शिक्षा-संचालक	नागपुर जोधपुर	हिन्दी-उर्दू
1871	बुंदेल खंड अखबार	-		"
1873	हिन्दी प्रकाश	धर्म सभा	अमृतसर	हिन्दी-उर्दू-गुरमुखी
"	अवधपुर समाचार	कृष्ण राव	अवधपुर	हिन्दी-अंग्रेजी
"	मर्यादा-परिपाटी समाचार	पं0दुर्गाप्रसाद शुक्ल	आगरा	हिन्दी-संस्कृत
1874	जगत आइना	-	पंजाब	हिन्दी-उर्दू
1875	काशी पत्रिका	बालेश्वर प्रसाद	काशी	"
1876	नूरुलबसर	-		"
"	कमरल-अखबार	"		"
"	कन्दे-बमाहर	-		"
"	हिन्दू-बांधव	पं0 शिवनारायण	लाहौर	"
1878	सरिश्ते तालीम	शिक्षा-विभाग	लखनऊ	"
1879	जयपुर गजट	श्याम लाल जी	जयपुर	हिन्दी-उर्दू-अंग्रेजी
1881	सैयद-उल-अखबार	-	दिल्ली	हिन्दी-उर्दू
1882	मारवाड़ गजट	सरकारी गजट	जोधपुर	"
1883	हिन्दुस्तानी	गंगा प्रसाद वर्मा	लखनऊ	"
1884	राजपुताना गजट	मुराद अली	अजमेर	"
"	मथुरा अखबार	दीनदयाल शर्मा	मथुरा	"
"	कुरुक्षेत्र समाचार	-	"	"
	भारतभूषण	-	कानपुर	"
	जम्मू गजट	-	जम्मू	"

प्रकाशन-तिथि	पत्र का नाम	संपादक-प्रकाशक	स्थान	भाषा-रूप
सन् 1889 ई०	परधा धर्म सभा	पं०गौरी शंकर वैद्य	फर्रुखाबाद	हिन्दी-उर्दू
1890	ब्राह्मण समाचार	प्रतापनारायण	मुजफ्फरनगर	"
"	कायस्थ-पंच	-	प्रयाग	"
"	सद्धर्म प्रचारक	महात्मा मुंशीराम	दिल्ली	"
1890	हकीक्त जाफरी	सैयद हुसैन जाफरी	लखनऊ	"
1891	दिल्ली समाचार	बाबू माधव प्रसाद खत्री	मिर्जापुर	"
1896	अलरफीक	वली मुहम्मद	बनारस	"
1897	भार्गव पत्रिका	गौरी शंकर	अजमेर	"
1898	गौड़ हितकारी	-	कानपुर	"

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि हिन्दी-उर्दू द्विभाषी पत्र- हिंदू-मुसलमान संपादकों द्वारा संपादित एवं संचालित थे। अतः धर्म या संप्रदाय के आधार पर हिन्दी-उर्दू पत्रों की विभाजन समस्या उग्र रूप धारण नहीं कर पायी थी। यह संगठित रूप पत्रकारिता में ही नहीं, सेना और सर्वसाधारण में भी व्याप्त था। 1857 तक देश के इतिहास में एक भी दृष्टान्त ऐसा नहीं मिलता कि सांप्रदायिकता या धर्म के आधार पर दंगे भड़के हों।[1]

सन् 1857 ई० के विप्लव के बाद से ही अंग्रेजों ने "फूट डालो-शासन करो" नीति को बढ़ावा दिया। सेना, आजीविका, शिक्षा-प्रशासन

---

1. सुरेन्द्र नाथ सेन, अठारह सौ सत्तावन [भूमिका] पृ० 17

आदि का ऐसा पुनर्गठन किया कि हिन्दू-मुसलमान संगठित होकर पुनः विद्रोह न कर सकें, उनमें सांप्रदायिक मतभेद निरंतर बढ़ते जाएँ ताकि वे दोनों ब्रिटिश शासन से मुक्ति पाने के लिए राष्ट्रीय स्वातंत्र्य - संघर्ष में एक होकर भाग न ले सकें।

इसके लिए अंग्रेजों ने जातीय भाषा खड़ी बोली को जो हिन्दी-प्रदेश के हिन्दी-मुसलमानों के व्यापारिक, दैनिक कामकाज और बोलचाल की मातृभाषा थी, उसे सीधे पूर्व से जोड़ कर "हिन्दी" को हिंदुओं और "उर्दू" को मुसलमानों की भाषा बना दिया। जहाँ उन्होंने एक ओर लिपि- अलगाव से हिन्दी-उर्दू भाषा-विवाद को जन्म दिया, वहीं फारसी लिपि का संबंध इस्लाम से बता कर हिन्दू-मुसलमान झगड़े को भड़काया। तत्कालीन हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता पर भी इस भाषा-विवाद तथा अंग्रेजी नीति का स्थायी प्रभाव पड़ा था।

इसके अतिरिक्त अंग्रेज शासकों ने अपने आर्थिक लाभ तथा साम्राज्य के सुदृढ़ स्थायित्व के लिए जर्जर सामंती व्यवस्था को आखिर तक बनाये रखा।[1] उन्होंने रियासतों के कामकाज और कचहरियों में उर्दू को ही सरकारी मान्यता दी। इसी लिए उपर्युक्त तालिका के सभी रियासती पत्रों की भाषा उर्दू बहुल हिन्दी भाषा थी। अंग्रेजी इतिहासकारों ने मुगलकालीन भारत को क्रूर अत्याचारी शासन के रूप में गलत तस्वीर पेश कर विद्वेष भाव को खुलकर पनपाया। लिपि और भाषा की इस अलगाव पूर्ण नीति ने मुक्त और गतिशील पत्रकारिता के उस युग में गंभीर सांप्रदायिक - मतभेद बढ़ाकर जातीय भाषा और राष्ट्रीयता के विकास में बहुत रोड़े अटकाये क्योंकि 1857 के पश्चात् सम्पूर्ण विश्व और भारत का पहिया एक तेजी से घूम रहा था। ज्ञान,

---

1. ए०आर०देसाई, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि पृ० 250-51

[illegible]

[illegible] ६ [illegible] सन् १८५[illegible] | जिल्द [illegible]

[illegible] छपता है [illegible] महीना और [illegible] ६) और [illegible] छमाही [illegible]

[illegible] छपेगा उसे एक पंक्ति [illegible] लिये जावेंगे और [illegible] से कम कोई [illegible] न छपेगा और किसी की दुसई न छपेगी

पंजाबी रेशम का बयान

पंजाब में [illegible] रेशम [illegible] कि [illegible] सिन्धु [illegible] और तुर्किस्तान से अफ़ग़ानिस्तान होकर [illegible] की रचना [illegible] के इतिहास [illegible] लिखा है [illegible] नहीं [illegible] होता है परन्तु फ़्रान्स और लम्बार्डु [illegible] रेशम से भी [illegible] तर है परन्तु [illegible] इतनी [illegible] जाते हैं जो रेशम [illegible] और [illegible] पंजाब में [illegible] बिकता है [illegible] पंजाब [illegible] बुखारा के रेशम को [illegible] और [illegible] है [illegible]

[illegible] एक भांति का कीड़ा होता है वह अपने शरीर से रेशम निकालता है और शहतूत के वृक्ष जलंधर के इलाके में बहुत [illegible] जो उन कीड़ों को पुष्टि [illegible] खिलाकर [illegible] शहतूत के वृक्षों पर रक्खें तो सम्भव है कि [illegible] रेशम बहुत होने लगे यहां तक कि [illegible] सौदागरों को भी [illegible] जैसे अब बंगाल से बीस लाख पौंड का लगभग प्रति वर्ष विलायत [illegible] को जाता है और बुखारे से जो रेशम पंजाब में [illegible] मनुष्य [illegible] और [illegible] के पास जाता है [illegible] दूसरी [illegible] रेशम [illegible]

साहित्य तथा राजनीति में नई विधाओं, उद्भावनाओं और विषयों के विश्लेषण में दिन-प्रतिदिन जातीय पत्रकारिता को नये शब्द-भंडार की आवश्यकता अनुभव हो रही थी। उर्दू के "मतलकात" सिद्धान्त से आधुनिक जातीय भाषा का आधार निरंतर संकुचित होता गया। फलस्वरूप हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता पर भी इस अलगाववादी नीति का स्थायी प्रभाव पड़ा। उनकी दिशा बदली, हिन्दी-उर्दू पत्रों के पाठक बंट गये। हिन्दी-उर्दू खड़ी बोली गद्य का विकास पृथक्-पृथक् हिन्दी-उर्दू पत्रकारिता के माध्यम से होने लगा।

राजा शिव प्रसाद द्वारा प्रकाशित हिन्दी में "बनारस अखबार" और उर्दू में "बनारस गजट"। 1845 ई0। से हिन्दी-उर्दू के पृथक् संस्करण निकालने की अलगाववादी प्रवृत्ति धीरे-धीरे उभरने लगी थी। उदाहरण स्वरूप अनेक उर्दू पत्रों के हिन्दी-संस्करण निम्नांकित हैं-

सन्	उर्दू अखबार	हिन्दी-संस्करण	संपादक	स्थान
1852 ई0	नुस्खबसर	बुद्धिप्रकाश	सदासुखलाल	आगरा
1861	आफताबे आलम-ताब	सूरज प्रकाश	गणेशी लाल	"
1861	मुफीद-उल-खलाइक	सर्वोपकारक	शिवनारायण	"
1861	मुहब्बे रियाया	प्रकाशित	हकीम जवाहर लाल	इटावा
1861	तेरहवें खलाइक	जगताप चिंतक	सोहन लाल	अजमेर
1864	आबेहयात	भारत खण्डामृत	पं0वंशीधर	आगरा
1869	खियादर्श	खियादर्श	-	मेरठ
1869	आगरा एग्यु-केशनल गजट	आगरा एग्यूकेशनल गजट	सरकारी	आगरा
1873	अखबारे अंजुमने-हिंद	भारत पत्रिका	ब्रिटिश इंडियन एसोसियेशन	लखनऊ
1874	मुहब्बे हिन्दी	नागरी प्रकाश		मेरठ

उपर्युक्त तालिका में एक बात ध्यान देने योग्य है कि इन हिन्दी-उर्दू पृथक संस्करणों के (हिंदू) संपादक एक ही थे। इसका अभिप्राय यही हो सकता है उर्दू राजाश्रय प्राप्त शिक्षितों की भाषा थी जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। हिन्दी खड़ी बोली गद्य [नागरी लिपि] की लोकप्रियता और प्रगति तत्कालीन ऐतिहासिक परिवेश और आवश्यकता की उपज प्रतीत होती है। खड़ी बोली गद्य और हिन्दी पत्रकारिता को
2. तीव्र प्रगति में अनेक प्रेरक-तत्व कार्य कर रहे थे।

1. तत्कालीन धार्मिक-सामाजिक सुधार आंदोलनों की आधार-भूमि वेदों- उपनिषदों आदि पौराणिक तथा संस्कृत वाङ्मय पर टिकी थी। "आर्य समाज" के संस्थापक महर्षि दयानंद ने अहिंदी-भाषी होने पर भी अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "सत्यार्थ प्रकाश" को हिन्दी में प्रकाशित कर उसको "आर्य भाषा" के रूप में प्रतिष्ठित किया था। अतः जैसे-जैसे राष्ट्रीय पुनर्जागरण और अतीत के पुनरुत्थान की भावना गहनतर होती गयी, हिन्दी भाषा और पत्रकारिता का सहज विकास उर्दू से पृथक् होता गया। देवनागरी खड़ी बोली हिन्दी में संस्कृत- वाङ्मय और धार्मिक ग्रन्थों के अनुवाद की मांग बढ़ जाने और कचहरियों में हिंदी-प्रवेश आंदोलनों ने हिन्दी को लोकप्रिय बना दिया तथा उर्दू से अलग निज अस्मिता निर्माण को गति प्रदान की। किंतु अंग्रेजों की भेद-नीति ने तो इस हिन्दी-उर्दू भिन्नता में सांप्रदायिक भाव पैदा किया था, दोनों की राहें और लक्ष्य ही नहीं बदल दिये, परस्पर विद्वेष, कटुता और प्रतिद्वन्द्विता के विष-बीज भी बो दिये।

2. 1843 ई० से पश्चिमोत्तर प्रदेश के [बंगाल से] पृथक प्रांत बन जाने से प्रशासन और शिक्षा आदि में जन-भाषा हिन्दी की उपयोगिता का

अनुभव किया जाने लगा था। पश्चिमोत्तर प्रदेश में शिक्षा हेतु पर 13000 रुपये की स्वीकृति मिली थी। आगरा, देहली के साथ बनारस आदि कॉलिजों में भी उच्च शिक्षण में अंग्रेजी-उर्दू के साथ हिन्दी-संस्कृत विभाग के अन्तर्गत [1849] पढ़ायी जाने लगी थी।[1] उच्च शिक्षा का माध्यम यद्यपि अंग्रेजी थी किन्तु प्राथमिक-माध्यमिक शिक्षा देशी भाषाओं के माध्यम से ही जाती थी। अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर रहे भारतीयों की संख्या केवल 2 लाख 65 हजार थी।[2] जो कुल शिक्षा प्राप्त कर रहे भारतीयों में बाल्टी में बूंद के बराबर थी। अतः अधिकांश मध्यवर्गीय शिक्षित जनता का पठन-पाठन, दैनिक कार्य कलाप, चिंतन अब भी हिंदी में ही होता था। 1854 ई० में चार्ल्स "वुड के शिक्षा-डिस्पैच" से निजी स्तर पर माध्यमिक शिक्षा पर जोर देने के कारण हिन्दी को अप्रत्यक्ष रूप में सहज बढ़ावा मिला था।

3. राजा शिव प्रसाद सितारे हिंद ने अपने पत्र "बनारस अखबार" [1845] में जातीय भाषा खड़ी बोली में "मतलकात सिलान्त" द्वारा देवनागरी हिंदी का पूर्ण उर्दूकरण कर सरकारी चमचागिरी का अपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किया था। इस पत्र ने भारतीय समुदाय में तीव्र प्रतिरोध और प्रतिक्रिया की लहर पैदा कर दी थी। इस पत्र की भाषा का विरोध करने के लिए तत्कालीन परिवेश में अत्यन्त स्वाभाविक था कि अन्य पत्रकार शुद्ध हिन्दी पत्रकारिता की ओर उन्मुख होते क्योंकि उक्त पत्र की भाषा लोक-भाषा की प्रकृति के सर्वथा विपरीत थी। "बनारस अखबार" की हिन्दी आम बोल-चाल की भाषा से कितनी पृथक् थी इसका अंदाजा हिन्दी की प्रारंभिक पत्रिकाओं "गास्पल मेगजीन" [1820] "उदन्त मार्तण्ड" [1826] "बंगदूत" [1829] आदि से पहले दिये गये भाषा के उदाहरणों के

---

1. भारतीय साहित्य, जुलाई 1958 पृ० 84-85
2. सर ए०क्रोपर, शिक्षा निदेशक, रिव्यू ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया इन 1886 पृ० 4

सूचनात्मक विवेचन से जगाया जा सकता है। "बनारस अखबार" की भाषा तत्कालीन प्रशासन और कचहरियों में प्रयोग होने वाली सरकारी भाषा थी जो सर्वसाधारण की बोलचाल की भाषा से नितांत भिन्न थी। इसका कारण स्पष्ट ही है कि राजा शिव प्रसाद यदि अपने पत्र को लोकप्रिय बनाने के लिए देवनागरी लिपि में उर्दू को न अपनाते तो न तो सरकार ही उसे संरक्षण देती, न रियासतों में उच्च वर्ग ही उसे अपनाता क्योंकि सरकारी नीति उर्दू बढ़ाने की थी।

अतः "बनारस अखबार" की तीव्र प्रतिक्रिया स्वरूप विशुद्ध हिन्दी में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ "सुधाकर" [1850] "बुद्धिप्रकाश" [1852] राजा लक्ष्मण सिंह का "प्रजा हितैषी [1855] "तत्वबोधिनी पत्रिका" [1865] आदि प्रकाशित हुई।

3. राष्ट्रीय पत्रकारिता का उदय :

हिन्दी पत्रकारिता का सच्चा राष्ट्रीय स्वरूप और सशक्त आस्तित्व उपर्युक्त हिन्दी-उर्दू द्वि-भाषी पत्रों, हिन्दी-संस्करणों या विशुद्ध हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में लक्षित नहीं होता। उसके दर्शन पहली बार सन् 1868 ई० में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा संपादित "कविवचन सुधा" में होते हैं। इसके प्रकाशन से हिन्दी पत्रकारिता में एक नया युग प्रारम्भ हुआ। उसे ठोस आधार और दिशा मिली। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में "भारतेन्दु ने "कविवचन सुधा" के द्वारा हिन्दी में निर्भीक पत्रकार-कला का आदर्श लोगों के सामने रखा। उनसे पहले लोगों ने पत्र निकाले थे। उनमें से कोई इस लगन से एक निश्चित उद्देश्य के लिए नहीं जुटा था।"[1]

इस पत्रिका का राष्ट्रीय महत्व हिन्दी में राष्ट्रीय भावों को जागृत करने, हिन्दी पत्रकारों को प्रेरणा देने तथा हिन्दी भाषा और

1. डा० राम विलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ० 117

पत्रकारिता को सत्य जातीय स्वरूप प्रदान कर पाठकों की अभिरुचि जागृत करने में है। हिन्दी-उर्दू पत्रकार बाबू बाल मुकुंद गुप्त ने इस पत्रिका के विषय में ठीक ही कहा था " यद्यपि हिन्दी भाषा के प्रेमी उस समय बहुत कम थे, तो भी हरिश्चन्द्र के अलिख लेखों ने लोगों के जी में ऐसी जगह कर ली थी कि "कविवचन सुधा" के हर नम्बर के लिए टकटकी लगाये रहना पड़ता था।"[1] इस पत्रिका की स्वाधीन चेतना का प्रमाण इसी बात से लग जाता है कि अंग्रेजी सरकार ने इस पत्रिका के स्वतंत्र राजद्रोही लेखों तथा देशहित पूर्ण टिप्पणियों से क्रुद्ध होकर इसकी 100 प्रतियाँ लेनी बंद कर दी थी जबकि इससे पूर्व किसी पत्रिका के साथ ऐसा नहीं हुआ था। यह पत्रिका कविता मासिक से जनता की मांग पर निर्भीक राजनीति-समाज सुधार संबंधी पाक्षिक, इसके पश्चात साप्ताहिक रूप से [1875 ई०] प्रकाशित की गयी थी।

इस साप्ताहिक पत्रिका के आदर्श के अनुरूप नीति वाक्य था-

जय-जगतसों सज्जन दुखी मति होंहिं, हरिपद मति रहै।
अधर्म छूटै, स्वतंत्र निज भारत गहै, कर दुख बहै।।
कुछ लखि मत्सर, नारिनर सम होंहि, जग आनन्द लहै।
तजि ग्राम कविता, सुकविजन की अमृत बानी सब कहै।।

जिस समय "कविवचन सुधा" [1868] का जन्म हुआ था। "वह समय अंगरेज अधिकारियों के सामने हाथ जोड़े खड़े रहने का था।"[2] उस समय "नारिनर सम होंहि" और "स्वतंत्र निज भारत गहै" कहने वाले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र जैसे साहसी राष्ट्र निर्माता ही हो सकते थे। यह

---

1. सं० भागवतमल्ल शर्मा, बाल मुकुंद गुप्त निबंधावली पृ० 315-16
2. अंबिका प्रसाद वाजपेयी, समाचार पत्रों का इतिहास पृ० 129

भारतेंदु के पत्र

कविवचनसुधा।

जिल्द १। सं० १९२४ आश्विन शुद्ध १५। । नंबर २

दाम पेशगी साल।

नगदख वचित बाब	.. ..	१)
दिवानखरच	.. ..	१॥)

दाम बाद साल।

नगदख वचित	.. ..	२॥)
दिवानखरच	.. ..	२)

श्रीयुत बाबू हरिश्चन्द्र जी की आज्ञानुसार।

बनारस।

छापेखाने से गोपीनाथ पाठक के मुद्रित किया।

REGISTERED No. 40.

बालाबोधिनी

स्त्री जनों की प्यारी हिन्दी भाषा में सुधारी

मासिक पत्रिका

नियम।

मेरी प्यारी बहिनो! मैं एक तुम्हारी बड़ी बहिन बाला-बोधिनी आज तुम लोगों से मिलने आई हूँ और मेरी बड़ी इच्छा है कि तुम लोगों से सब महीनों में एक बार मिलूँ, हँसों मैं तुम लोगों से अलग न किसी को छोड़ी हूँ क्योंकि तुम सब बड़ी हो सुखी हो और मैं अभी जनमी हूँ और हम नामें से मैं तुम सब की छोटी बहिन हूँ पर मैं तुम लोगों से हिलमिल कर मेलजोल और संगिनी की भाँति रहना चाहती हूँ, इससे मैं तुम लोगों से हाथ जोड़ कर और आँसू पोंछ कर यही मांगती हूँ कि मैं जो कभी कोई भली बुरी, कड़ी नरम, कड़वी अनकड़वी कहूँ उसे मुझे अपनी समझ कर क्षमा करना क्योंकि मैं जो कुछ कहूँगी सो तुम्हारे हित की कहूँगी और माँ बहिनों की तरह प्यार और बेटी बेटों की भाँति मानती हूँ इससे इसकी बातों का बुरा कभी नहीं और कभी कड़वा और कभी छोटी समझ कर बड़ा ज्ञान लगा कर सुनती हैं वैसे ही तुम भी इस अपनी छोटी

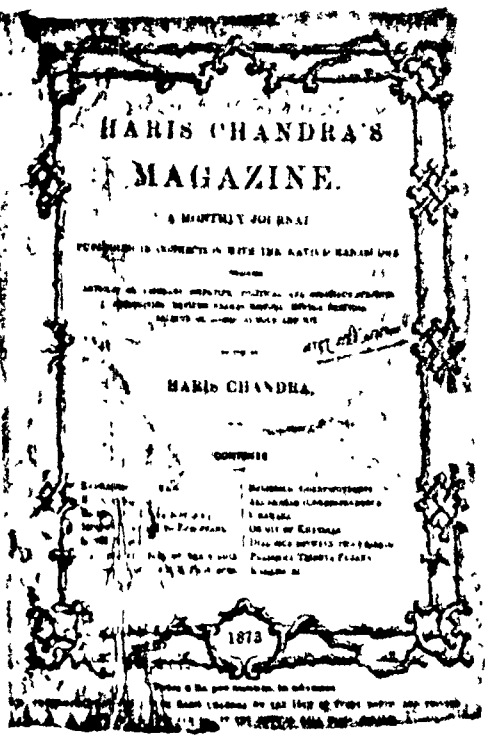

HARIS CHANDRA'S MAGAZINE.

A MONTHLY JOURNAL

HARIS CHANDRA.

CONTENTS

1873

श्रीहरिश्चन्द्रचन्द्रिका।

विद्वत्कुलामलस्वान्त कुमुदामोददायिका।
आर्य्यप्रानतकोकेभ्य श्रीहरिश्चन्द्रचन्द्रिका॥

खण्ड १] जून सं० १८७४ ई० [संख्या ८

श्रीरामः।

विष्णुपदजयराजकीर्त्तिनैके।

प्रभुमैं सभपतितमकोराजा॥ सभपतितमकी मौतिरीतिलघिक रन्दाजकोसाजा॥ मंचीलोभ कामकिंचरमनमभ विपरीतिस माजा॥ मनापतिमतिमन्दहन्द कुलोहपक्षीहधिराजा॥ उजरतजातविवेकनगर अविवेकवसा मतमेरो॥ तवहीधाहपकारत आपतसरनगहीप्रभुनेरो। राजकुलतिलकमुकुटमणिरामदा-जमधराजा॥ अभिमेध्यसनविचारि जानिलियकरकृपेमजुधराजा॥१॥

प्रभुमैं सभपतितमेनामौ॥ अविवेकोआलसीमदमतिकुटिल कुगतिग्रामौ॥ क्रोधविषसविष यारसलंपटकरमविषेअनुगामी॥ अंहसोकहौंकथाजिजपानिधितुम समअंतरजामी॥ दीनबंधुसुनि अधम उधारनकीरतिसतलखा को॥ अवधायोमैं शरणआनि जियकीजेजिंकरधामी॥ टेकगह

पत्रिका विविध राष्ट्रीय समस्याओं तथा विषयों से समन्वित थी। इसकी संपादकीय टिप्पणियों तथा सर्जनात्मक साहित्य में राष्ट्र-नव-निर्माण के स्वर पूर्ण तेजस्विता के साथ मुखरित हुए हैं -" सरकार पक्ष का कहना है कि हिन्दुस्तान में पहले सब लोग उड़ते-फिरते थे और आपस में गमनागमन न हो सकता था। यह सब सरकार की कृपा से हुआ। हिन्दुस्तानियों का कहना है कि उद्योग और व्यापार बाकी न रहा। रेल आदि से भी द्रव्य बढ़ने की आशा नहीं है। ... कुल मिलाकर 26 करोड़ रुपया बाहर जाता है।"[1]

गाँधी जी के आगमन से लगभग 45 वर्ष पूर्व ही 23 मार्च, 1874 को "कविवचन सुधा" में भारतेन्दु ने स्वदेशी वस्त्रों का प्रचार कर उन्हें अपनाने की प्रतिज्ञा करते हुए लिखा था " हम जो... नित्य सत्य परमेश्वर को साक्षी देकर यह नियम मानते हैं और लिखते हैं कि हम लोग आज के दिन से कोई विलायती कपड़ा नहीं पहिनेंगे... हिन्दुस्तान ही का बना कपड़ा पहिनेंगे।"[2]

"कविवचन सुधा" के अतिरिक्त जनसाधारण के दुख-सुख को पत्रकारिता से जोड़ने वाली, हिन्दी को "नई धारा" में ढालने वाली राष्ट्रीय उद्बोधन और सरकारी भर्त्सना के लिए छिप कर व्यंग्य करने वाली "हरिश्चन्द्र मैगजीन" का प्रकाशन भारतेन्दु ने ही 15 अक्टूबर, 1873 को प्रारंभ किया था। आठ अंकों के पश्चात् इसका हिन्दी नामकरण "हरिश्चन्द्र चंद्रिका" कर दिया गया। यह कागज और छपाई में आकर्षक, विविध विषयों से से समन्वित तथा ज्ञानवर्द्धक सामग्री से युक्त थी। इस पत्रिका ने अंध रूढ़िवादिता, औपनिवेशिक साम्राज्यवाद तथा सामंती संस्कृति के विरुद्ध कभी खुल्लम-खुल्ला, कभी राजभक्ति की चाशनी में भिगो कर रोचपूर्ण

---

1. डा० राम विलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ० 32
2. वही, पृ० 33

व्यंग्यात्मक तेवर दिखलाये थे। इसी कारण सरकार ने इस पत्र की भी 100 प्रतियाँ जैसी बंद कर दी थी। 13 नवंबर, 1877 के अंक की विषय सूची से इस पत्रिका की राष्ट्रीय समस्याओं, सर्जनात्मक मौलिक प्रयासों तथा आधुनिक युगीन बोध के प्रति सजगता का अनुमान लगाया जा सकता है :-

विषय सूची	पृष्ठ
अथ श्री राधा सुधा शतके लिख्यते	25
साहित्य सत सूची भाषा-भाष्य सहित	30
प्रान्तर-दर्शन	32
कवित्त	35
सबै जात गोपाल की	35
चीनी साहित्य	36
शरद ऋतु वर्णन	37
कविराज की सभा-सटस्थ	38
काशी	39
नागमंगला का दान पत्र	39
भक्ति ज्ञानादिक से क्यों बड़ी है?	42
शतरंज की चाल	44
Scope for the Educated Indian	44
अमरुशतकम्	46
कादम्बरी	47
श्रीयुत कविवचन सुधा संपादक समीपेषु [पत्र]	50
कीर्तिकेतु नाटक	52
मार्टिन वाल्डेन के भाग्य	56

विषय सूची	पृष्ठ
पुरावृत्त संग्रह	59
मैत्री	63
समस्या	65
Allahabad Veritas	66
Social Reformation (R.N.P.)	70
From Punch-Musalman Platform	71
Historical correspondance	72
Pope and Kaiser	73
England and Russia	74

उपर्युक्त विषय-सूची से अंग्रेजी-हिन्दी भाषा में प्रकाशित इस पत्रिका के युगानुकूल गंभीर चिंतन, उच्च स्तर तथा वैविध्य युक्त प्रौढ़ सामग्री का आभास हो जाता है। इसी पत्रिका में राष्ट्र नवचिंतन को सर्व प्रचलित जातीय भाषा और धारा प्रवाह शैली में प्रस्तुत करते हुए संपादक ने कहा था "पब्लिक ओपिनियन अर्थात् सब साधारण लोगों की राय क्या वस्तु है? और इसमें कितना जोर है और इसके लिए क्या हो सकता है? यह प्रश्न ठहरा तो इसका साधारण उत्तर यही है कि यह वह वस्तु है जो संसार को एक कर सकती है, गंगा की धारा हिमालय पर चढ़ा कर ले जा सकती है, सूर्य को पश्चिम मे उगा सकती है और चाहें तो ईश्वर को भी पकड़ कर कठपुतली की भांति नचा सकती है। यह मेरा कहना कभी असत्य नहीं है क्योंकि दस आदमी मिल कर कठिन काम को भी सहज कर सकते हैं। फूटी-फूटी तालाब भरता है।"[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में इस राष्ट्रीय पत्रिका की आधुनिक विचारों की छटा, जनतंत्रीय चेतना, ऐक्यभाव तथा आधुनिक दृष्टि का संगम दृष्टिगोचर होता है। आचार्य रामचन्द्र का कथन कितना सटीक है "हिंदी गद्य का ठीक परिष्कृत रूप पहले-पहल इसी चन्द्रिका में प्रकट हुआ। जिस प्यारी

1. हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 अप्रैल 1874 पृ० 197

हिंदी को देश में अपनी विभूति समझा, जिसको जनता ने उत्कंठा पूर्वक दौड़ कर अपनाया, उसका दर्शन इसी पत्रिका से हुआ।"[1]

संपादक भारतेन्दु ने स्त्री-शिक्षा के लिए "बाला बोधिनी" (1874) पत्रिका भी प्रकाशित की थी जिसके शीर्ष छन्द का उत्कृष्ट नारी-स्वर सम्भाव द्रष्टव्य है -

जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष या में कछु न विभक्ति।।[2]

इसकी मई, 1875 की उपलब्ध प्रति में देव-पीरानी, छोटे संबंधियों से गृहस्थ के व्यवहार, खर्च करने की व्यवस्था, बालकों के लालन-पालन आदि विषयों के साथ "नीति विषयक इतिहास तथा "मुद्राराक्षस" के नाटक के अनुवाद का धारावाहिक अंश भी प्रकाशित हुआ है। इस पत्रिका से संपादक के युगों से प्रताड़ित नारीवर्ग के प्रति संवेदनशील और जागरूक प्रजातांत्रिक रुख का दिग्दर्शन हो जाता है।

इस पत्रिका में भी भारतेन्दु ने सरल-सुबोध ग्राम भाषा में, महिलाओं को व्यावहारिक दृष्टान्त देकर राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ इकाई परिवार को एक सूत्र में बाँधने के लिए शिक्षा दी थी,-"झाड़ू को देखो कि जब तक यह बंधी है तब तक कोई भी सख्त इसके तोड़ने को सामर्थ नहीं होता और आपकी झाड़ू में सामर्थ है कि मनों कूड़े को बात की बात में बाहर निकाल दे। परन्तु जब उसके बंधन खुल के बिखर जावें तो उस समे सारा बल उसका नाश ही कर डालें। इसी प्रकार जब तक तुम्हारा घर झाड़ू की भाँति एकता भाव करके बंधा

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पूर्व उद्धृत, पृ0 42।
2. बालाबोधिनी, मई 1875

हुआ है तुम भी सामर्थ हो। जिस कार्य को चाहो सुगम ही कर सकोगे।"[1]

उपर्युक्त राष्ट्रीय चेतना स्फुरित करने वाली भारतेन्दु की पत्र-पत्रिकाओं ने तत्कालीन भारतीय समाज में हलचल मचा दी थी। पत्र-पत्रिकाओं का ताँता लग गया था। नया शिक्षित वर्ग पत्रकारिता क्षेत्र को अपनाने लिए आगे आया।

उपर्युक्त पत्रिकाओं के कुछ गद्य उदाहरणों से स्पष्ट है कि भारतेन्दु मंडल की अधिकतर पत्र-पत्रिकाओं की "हिंदी हिंदी होती थी वे अपनी भाषा की प्रकृति को पहचानने वाले थे[2] उन्होंने आम बोल चाल की प्रचलित भाषा को ही अपनी पत्रकारिता के लिए चुना था क्योंकि ये जनता के जागरण तथा हित साधन के लिए ही निकाली गयी थी।

किन्तु आधुनिक प्रगतिशील शोधकर्ता एवं साहित्यकार भारतेन्दु युग की पत्र-पत्रिकाओं की "शुद्ध हिन्दी भाषा-शैली पर कटाक्ष कर प्रहार करते नहीं थकते -" युगीन प्रचलित उर्दू मिश्रित हिन्दी या खरा हिन्दुस्तानी के विरोध की थी और प्रयास किया जा रहा था कि शुद्ध हिन्दी शैली का विकास किया जाए। इस नई शुद्ध हिंदी शैली या भारतेन्दु के अनुसार "हिंदी नये चाल में ढली" को बनाने की दरकार जनता नहीं थी, बुद्धिजीवी और संस्कृत कोष थे। "नये चाल में ढली" हिंदी पर जनता की स्वीकृति यदि लेखक लेना भी चाहते तो यह संभव नहीं था क्योंकि हिन्दी आंदोलन का केन्द्र बनारस था जहाँ जनता की भाषा शुद्ध बोली नहीं थी।"[3]

उपर्युक्त भ्रांत धारणा और अपरिपक्व विचारों के विषय में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि किसी भी भाषा और उसकी शुद्ध

---

1. बालाबोधिनी, मई, 1875, पृ० 34
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पूर्व उद्धृत, पृ० 421
3. असगर वजाहत, हिन्दी-उर्दू की प्रगतिशील परिचिता [शोध प्रबंध] 1981, पृ० 12

शैली के विकास का संबंध उसके बोलने वाले जन-समाज के मानसिक - सांस्कृतिक विकास और उत्थान के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है, न कि स्थान-विशेष की किसी स्थानीय बोली पर।

उर्दू मिश्रित हिन्दी या "हिन्दुस्तानी" के समर्थक शिव प्रसाद सितारे हिंद ने स्वयं प्रारंभिक कृतियों "राजा भोज का सपना" आदि में चलती थोड़ी संस्कृत मिली ठेठ सरल हिंदी को आदर्श प्रतिमान माना था। राजा लक्ष्मण सिंह के अनूदित "शकुंतला नाटक" को पाठ्य पुस्तक "गुटका" में स्थान दिया था। "पर संवत् 1917 के पीछे उनका झुकाव उर्दू की ओर होने लगा जो बराबर बना क्या रहा, कुछ न कुछ बढ़ता ही गया। इसका कारण चाहे जो समझिए। या तो यह कहिए कि अधिकांश शिक्षित लोगों की प्रवृत्ति देख उन्होंने ऐसा किया अथवा ओहदे अधिकारियों का रुख देख कर। अधिकतर लोग पिछले ही कारण को ठीक समझेंगे।"[1]

अतः युगीन प्रवृत्ति "सरल हिन्दुस्तानी" के विरोध की कदापि नहीं थी। वह तो हिन्दु-मुसलमान जनता की खड़ी बोली जातीय भाषा थी ही, बल्कि तत्कालीन प्रवृत्ति तो उस कृत्रिम कठिन उर्दू मिश्रित हिन्दी के तीव्र विरोध की थी जो सरकारी प्रशासन कचहरियों आदि में अवसरवादी चाटुकारों, ओहदे अभिलाषियों या आजीविका प्राप्ति के लिए कर्तव्य समुदाय आदि द्वारा प्रयोग की जाने लगी थी। यह मतलबात के सिद्धान्त को अपना कर बनी बनावटी भाषा, जो न अच्छी उर्दू कहलाने की अधिकारिणी थी, न आम बोल चाल में ही प्रयोग की जाती थी, उसे जनता पर थोपा जा रहा था। उसको आम जनता की स्वीकृति उस नव जागृत काल में क्या मिलती, आज के धर्म निरपेक्ष भारत

---

1. आचार्य राम चन्द्र शुक्ल, पूर्व उद्धृत, पृ0 402

के प्रगतिशील साहित्य और आधुनिक पत्रकारिता में भी नहीं मिल पायी है।[1]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 15 अक्टूबर 1873 ई0 में "हरिश्चन्द्र मैगजीन" "हिन्दी भाषा" [अंग्रेजी भाषा में जिसे लेख में स्पष्ट किया था,"हमारा सच्चा प्रयास यह होना चाहिये कि जिस भाषा को हम बोलते हैं, उसे समृद्ध बनाये और जहाँ से भी आपको शब्द मिल सके, सभी स्त्रोतों से शब्द-भंडार बढ़ायें। हमारा यह प्रयास इस सिद्धान्त से निर्देशित होना चाहिये कि हमारी जन भाषा चाहे उसको जो भी पुकारें वह सबके समझने योग्य और उपयोगी हो। किन्तु भाषा के लिए जितना अरुचिकर विदेशी शब्दों से बचने के लिए उसकी पहरेदारी होगा, उतना ही अरुचिकर संस्कृत के अप्रचलित शब्दों से भाषा को

---

1. भारतेन्दु युग की यही सबसे बड़ी खूबी है, वह जनता का साहित्य है। उनकी भाषा न दरबारों की है, न सरकारी अफसरों और कचहरी के मुहर्रिरों की। वह जनता की भाषा है .... लोग कहते हैं कि हिन्दी का जन्म एक शुद्धि और बहिष्कार की भावना से हुआ है कि उसमें से सब विदेशी शब्द निकाल दिये जायँ और संस्कृत के शब्द ठूँस दिये जायँ, उनसे निवेदन है कि भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र राधा चरण गोस्वामी आदि लेखकों ने ही हिन्दी को उसका आधुनिक रूप दिया है .. एक बार उनकी रचनाओं को पढ़ कर देखिये कि उनकी भाषा में विदेशी शब्द बढ़ाये गये हैं... या उनका बहिष्कार किया गया है - डा0 राम विलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ0 15-54

भरना होगा।"[1] इसी लेख में उन्होंने देवनागरी-फारसी लिपि-विवाद के समाधान में व्यापक उदार दृष्टिकोण और दूरदर्शिता का परिचय दिया था।[2]

अतः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्र-पत्रिकाओं की स्वाभाविक बोलचाल की सजीव परिष्कृत भाषा और मौलिक शैली कितनी फली-फूली थी इसका अनुमान इन्हीं तथ्यों से लगाया जा सकता है। ओंओं की भक्ति और उर्दू-परस्ती के कारण राजा शिव प्रसाद "सितारे हिंद" का खिताब पाने में भले ही सफल हो गये हों' लेकिन जनता तथा पत्रकारों के द्वारा दिये गये सम्मान के अधिकारी तो "भारतेन्दु" ही हुए हैं। भारतेन्दु के पत्रों द्वारा स्थापित राष्ट्रीय नीति, आदर्श जीवन-विधान, भाषा और पत्रकारिता के आदर्शों से प्रेरणा ग्रहण करके अन्य जाने-अनजाने लेखकों और पत्रकारों ने पूरे देश में पत्र-पत्रिकाओं का जाल बिछा दिया था। जबकि "बनारस अखबार" जैसे पत्रों की कठिन उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी को हिन्दी में तो क्या, उर्दू पत्रकारिता में भी स्थान नहीं मिला था।

अतः "जागरण काल" [1851-1900] में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ही हिन्दी पत्रकारिता के सूत्रधार रहे। अतः इस पूरे जागरण युग को

---

1. 'Our real endeavour aught to be enrich the language we speak, from all available sources. Improve the stock by the teasures from wherever they may be had. The principle which aught to guide us in our exertions should be such as is calculated to render our vernacular by whatever name you may call it, useful and intelligible of all, but do not while pretending to guard against the introduction of foreign words, fill the language with absolute idioms. One is as distateful as the another'.
   - हरिश्चन्द्र मैगजीन 15 अक्टूबर, 1873 पृ0 11-12.

2. वही
   "What characters ought to be employed, Persian or Devnagri? This is such an insignificant point on which it is useless, in my opinion to waste our energies and time. Our efforts, should be directed towards improving our language and making it rich and fertile.
   Ibid

SAJJAN VINOD

With which is incorporated

THE SUDARSHAN SAMACHAR

सज्जनविनोद

सम्मिलित

सुदर्शन समाचार

जिल्द ६) तारीख १२ माह मार्च सन १८९६ ई० गुरु बार (नम्बर १

२३

Terms of Subscription.

	Rs.	As.
Per Annum in Advance, ...	6	12
Per Annum in Arrears, ...	7	0

Terms of Advertisement.

Per line	0	1

—:0:—

प्रथम राम पद शीश नवाऊं
पुन बुधजन कों चरन मनाऊं ।
पत्र प्रतिमास चरस अठवारा
प्रकटित सदा छपत है द्वारा ।
द्विगुन अमृत है बार पियावे
कहा मधुर बुधजन मन भावे ।
मोलहु याको अति लघु भाई
जो प्रथम हि देहु चुकाई ।
छ रुपया औ बारह आना
देहु तदपि [illegible] सदा सुहाना ।
[illegible]
[illegible] सज्जन विनोद सुदर्शन हेतु ।
[illegible] को प्रथम [illegible]
दाम [illegible] पीछे दीजै ।
[illegible]
[illegible]

जे जो लेन होय नहिं याही
पत्र माहिं लिख भेजो ताही ।
फेरो मत अखबार सुजाना
यामें हरज और नुकसाना ।
जाको [illegible] नहिं पैहै
सो नर ग्राहक समझो जैहै ।
दाम देन तेहि परिहि सदाई
इन नियमन कह जानहु भाई ।

हीरक

रसायनशास्त्र कोयला और हीरा दोनों एक पदार्थ निर्णय किये गये हैं किन्तु इस तुच्छ पदार्थ कोयला के लिये संसार में कौन होगा जो न ललचाता होगा क्या सधन क्या निर्धन क्या मूर्ख क्या पण्डित [illegible] नहीं है अति प्रबल [illegible] भी एक बहुमूल्य हीरा पाकर अपने को कृतकृत्य मान लेता है कितने देश के देश इस अङ्गार खण्ड के लाभार्थ काल आनन में जल कर भस्म होगये अथवा इस क्षुद्र [illegible] द्वारा [illegible] अनुपम सौंदर्य और इसकी इतनी चाहना पर ध्यान देने से चित्त चकित होजाता है चित्र लिखने में बड़ी निपुण [illegible] चित्ररेखा ने अपनी प्रिय सखी ऊषा को त्रिभुवन के पावन पदार्थ चित्र में अंकित कर दिखाया किन्तु सोच होता है कि हीरक की उज्वलता का प्रकाश चित्रद्वारा भी न कर सकी होगी । कविकुल मुकुट कालिदास और शेक्सपियर प्रभृति जिन्हों ने प्राकृतिक पदार्थों को नहीं छोड़ा जिसे उन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का लक्ष्य किया है पर हीरा के सौंदर्य वर्णन में उन्हें भी कोई उपमा न मिली जिससे साथ इसकी समता किई जाती । हीरा [illegible] पदार्थ है इसका मूल्य [illegible]

"भारतेन्दु युग" कहना अनुपयुक्त नहीं होगा। इस काल में हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की संख्या लगभग 350 के लगभग पहुँच गयी थी।[1] अतः इस सम्पूर्ण काल की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं को दो वर्गों में विभाजित करके प्रस्तुत किया जा सकता है -

1. उत्थान काल (1868-1885 ई०)
2. प्रसार काल (1886-1900 ई०)

4. 'कविवचन सुधा' (1868) से लेकर 1885 ई० तक भारतेन्दु उत्थान काल में प्रमुख हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ निम्नलिखित थीं -

सन्	पत्र का नाम	संपादक	स्थान	रूप-आदि
1868ई०	कविवचन सुधा	भारतेन्दु हरिश्चन्द्र	बनारस	मासिक-पाक्षिक-साप्ताहिक
1869	समय विनोद तत्संयुक्त सुदर्शन समाचार	बद्रीदत्त ज्योतिर्विद	नैनीताल	पाक्षिक
"	उदयपुर गजट	मुंशी नवल किशोर	उदयपुर	मासिक
1870	बुद्धि विलास	-	जम्मू	"
1871	अल्मोड़ा अखबार	मुंशी सदानंद सनवाल	अल्मोड़ा	साप्ताहिक
1872	हिन्दी दीप्ति प्रकाश	पं०कार्तिक प्रसाद खत्री	कलकत्ता	"
"	बिहार बन्धु	पं० केशव राम भट्ट	कलकत्ता, पटना	"
1873	चरणाद्रि चन्द्रिका	जयराम	काशी	"
1874	नाटक प्रकाश	रतन चन्द्र	प्रयाग	मासिक

1. डा० राजेन्द्र प्रसाद शर्मा, ग के निर्माता काल बृज भट्ट, पृ० 150

THE KASIPATRIKA

A WEEKLY EDUCATIONAL JOURNAL OF SCIENCE, LITERATURE, AND NEWS IN HINDUSTANI.

EDITED BY

LAKSHMI SANKAR MISRA, M. A.

PROFESSOR OF PHYSICAL SCIENCE, BENARES COLLEGE.

काशीपत्रिका

॥भारतजीवन॥

BHARATJIWAN. BENARES.

हिन्दुबान्धव।

THE HINDIPRADIPA

हिन्दीप्रदीप।

मासिकपत्र।

विद्या, वाद्य, सभाचारावली, इतिहास, पदार्थ, साहित्य, दर्शन, राजकाजी इत्यादि के विषय में

हर महीने की १ सी को छपता है॥

सुभ भरत देशमनेक पुरित प्रगट है आनंद भरे।
बचि कुमत दुरजन बायु सों अधिष्ठापसम थिर नहिं टरे॥
सभै विविध विचार उन्नति कुमति सब या में जरे।
हिन्दीप्रदीप प्रकाशि सूरजतादि भारत तम हरे॥

ALLAHABAD.—1st March 1878. [Vol. I No. 7]

प्रयाग फाल्गुन कृष्ण १२ सं० १९३४ [जि० १ संख्या ७]

THE BRAHMANA

ब्राह्मण

मासिकपत्र

शब्दों की यातना।

जिस कुसमय और देव की प्रतिकूलता ने भारतवर्ष के विविध पदार्थों की दुर्दशा करने में कोई प्रयत्न नहीं छोड़ रक्खा अब यही भारत की विद्या और भाषा के शब्दों की दुर्गति और यातना भोगान पर सचेष्ट हुई है; सरकारी लाइब्रेरी अर्थात पुस्तकालय में जो जो भाषा की पुस्तकें विद्यमान हैं वहिले तक हिन्दी पुस्तकों को क्षिप्तविक्षिप्त अक्षरों में रहती थी और उर्दू किताबों की फारसी हरफों में तब तक [illegible] शब्द की दुर्गति और यातना [illegible]

सन्	पत्र का नाम	संपादक	स्थान	रूप-आदि
1874ई0	भारत बंधु	लोताराम वर्मा	अलीगढ़	साप्ताहिक
"	सदादर्श	लाला श्री निवास दास	दिल्ली	"
1875	सक्त संबोधिनी पत्रिका	सरदार संतोष सिंह	अमृतसर	मासिक
"	नीति प्रकाश	कन्हैया लाल	लुधियाना	"
"	आनन्द लहरी	वीरेश शास्त्री	बनारस	साप्ताहिक
1876	काशी पत्रिका	बालेश्वर प्रसार	"	"
1876	सुदर्शन समाचार	मुरलीधर	प्रयाग	मासिक
1877	मित्र विलास	पं0 मुकुन्द राम	लाहौर	साप्ताहिक
"	भारत दीपिका	-	-	-
"	भारत हितैषी	-	-	-
"	हिन्दी प्रदीप	पं0बाल कृष्ण भट्ट	प्रयाग	मासिक
1878	ज्ञानचन्द्र	रतननाथ	"	"
"	भारत मित्र	पं0छोटूलाल मिश्र	कलकत्ता	पाक्षिक-साप्ताहिक दैनिक
"	कुल चिंतक	-	कानपुर	-
"	जयपुर गजट	बाबू महेन्द्र नाथ सेन	जयपुर	मासिक
1879	सारसुधानिधि	सदानंद मिश्र	कलकत्ता	साप्ताहिक
"	सज्जन कीर्ति सुधाकर	महाराणा सज्जन सिंह	उदयपुर	"
1880	उचित वक्ता	दुर्गा प्रसाद मिश्र	कलकत्ता	"
"	काशी पंच	-	काशी	"
"	क्षत्रिय पत्रिका	बाबू रामदीन सिंह	बाँकीपुर	मासिक
1881	आनन्द कादम्बिनी	बदरी नारायण, चौधरी 'प्रेमघन'	मिरजापुर	"

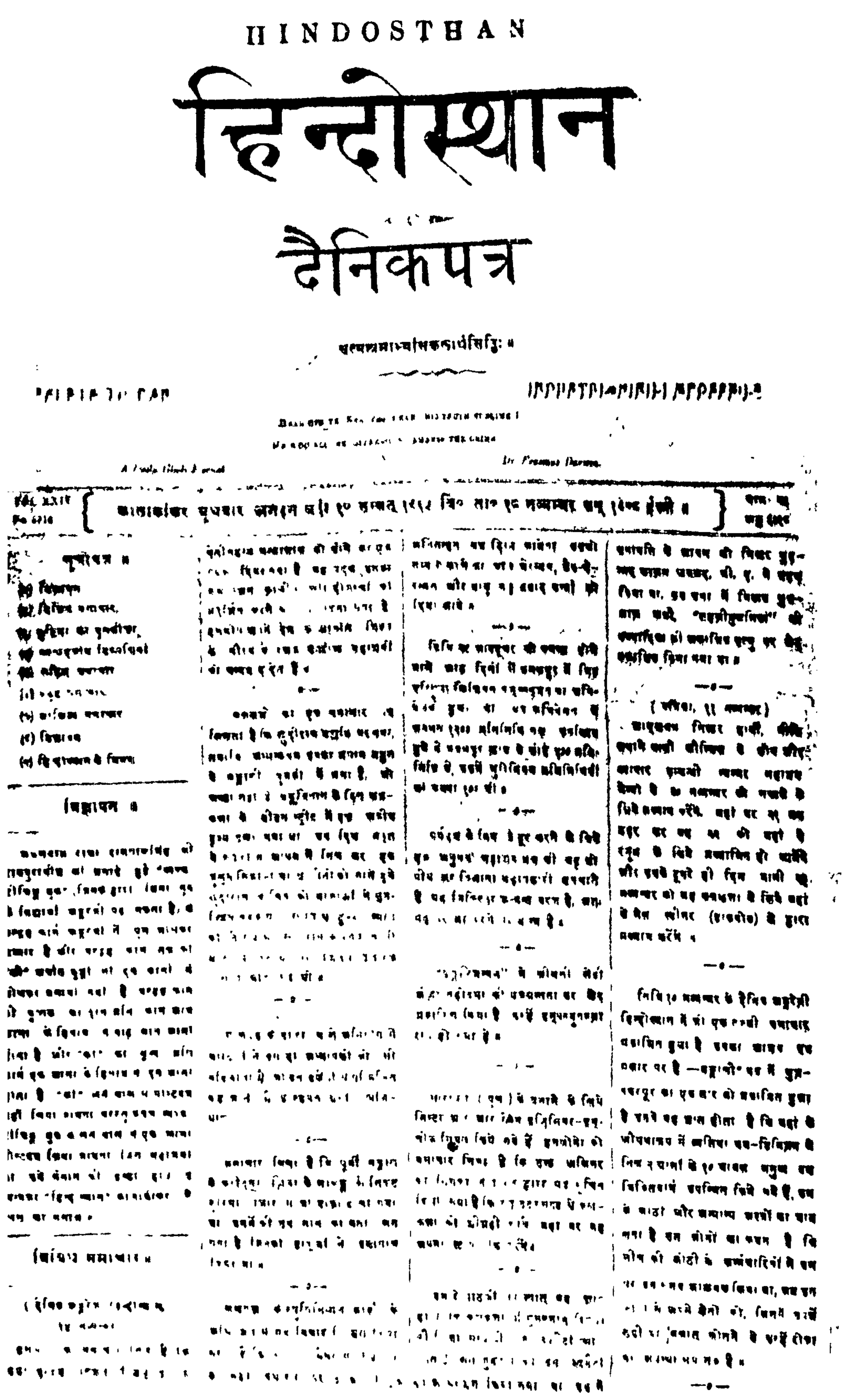

HINDOSTHAN

हिन्दोस्थान

दैनिकपत्र

कालाकांकर बुधवार अगहन बदी १० सम्वत् १९५२ वि० ता० १३ नवम्बर सन् १८९५ ईस्वी ॥

सूचीपत्र ॥

विज्ञापन ॥

विविध समाचार ॥

सन्	पत्रका नाम	संपादक	स्थान	रूप-आदि
1882-60	प्रयाग समाचार	देवकी नंदन तिवारी	प्रयाग	मासिक
1883	वैष्णव पत्रिका	पं०अंबिका दत्त व्यास	काशी-भागलपुर	"
"	इन्दु	-	जालौर	"
"	कविकुल कुम्भ दिवाकर	पं०रामनाथ शुक्ल	-	"
"	जग विलास	बा. विध्याचल प्रसाद	बाँकीपुर	"
"	सदाचार मार्तण्ड	पं० लाल चन्द्र शास्त्री	जयपुर	"
"	भारतेन्दु	पं०राधाचरण गोस्वामी	वृन्दावन	""
"	इन्द्रप्रस्थ प्रकाश	जयंती प्रसाद शर्मा	दिल्ली	"
"	काशी समाचार	बिहारी सिंह	काशी	"
"	सत्य प्रकाश	राम जंसी लाल	बरेली	"
"	दिनकर प्रकाश	रामदास वर्मा	लखनऊ	"
"	ब्राह्मण	पं०प्रताप नारायण मिश्र	कानपुर	"
"	पीयूष प्रवाह	पं० अंबिका दत्त व्यास	भागलपुर	"
1884	भम्यारन हितकारी	-	-	
"	भारत जीवन	रामकृष्ण वर्मा	काशी	साप्ताहिक
1885	हिन्दुस्तान	राजाराम पाल सिंह और संपादकगण	कालाकाँकर	दैनिक
"	भारतोदय	बाबू सीताराम	कानपुर	"
"	भारत प्रकाश	बनवारी लाल	मुरादाबाद	मासिक
"	सत्य प्रकाश	पं०ज्वाला प्रसाद	आगरा	"
"	विद्याविलास	पं० दुर्गा प्रसाद मिश्र	कलकत्ता	"
"	भारत पंचामृत	बाबू गोविंद सिंह	"	"
"	काव्यामृत वर्षिणी	शिवदत्त मिश्र	लखनऊ	"
"	भारत चन्द्रोदय	गुरुबख्श सिंह	सिंदूर	"

बिहार बन्धु।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः"

सर्वहित

पाक्षिकपत्र

बूँदी

मूल्य आना क	नियम
[illegible]	१- सर्वहित संबंधी पत्र व मूल्य संपादक के नाम भेजें – अगर कोई [illegible]
[illegible]	२- [illegible]
[illegible]	३- [illegible]
[illegible]	४- [illegible]
[illegible]	५- [illegible]
[illegible]	६- [illegible]
[illegible]	७- [illegible]

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं में से अब कुछ ही पत्रों की प्रामाणिक सामग्री और मूल जिल्दें उपलब्ध हैं। इनमें से "समय विनोद", "हिन्दी प्रदीप", "भारत मित्र", " सार सुधानिधि" , "बिहार बंधु", "उचित वक्ता", "आनन्द कादम्बिनी", "ब्राह्मण", "पीयूष प्रवाह", "भारत जीवन" आदि के कुछ अंक या जिल्दें उपलब्ध हैं जिनके आधार पर तत्कालीन पत्रकारिता की राष्ट्रीय चेतना और वैशिष्ट्य का अंकन किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय संग्रहालय (National Archives) में उपलब्ध गुप्त दस्तावेजों से भी इनमें से कुछ पत्र-पत्रिकाओं की उग्र राष्ट्रीयता का विवरण मिल जाता है।

1885 ई0 के बाद से 1900 ई0 "सरस्वती" पत्रिका के उदय तक भारतेन्दु युगीन प्रवृत्तियों का ही प्रसार काल रहा था अतः इसे भी साथ ही विश्लेषित करना युक्तिसंगत होगा।

5. हिन्दी पत्रकारिता के इस प्रसार-काल में 1886-1900 ई0 में निम्नलिखित पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थीं -

सन्	पत्र का नाम	संपादक-संचालक	स्थान	रूप
1886ई0	रसिक पंच	पं.बद्रीनाथ मिश्र	प्रयाग	चित्रा-मासिक
"	सुख संवाद	पं.लक्ष्मण प्रसाद [illegible]	[illegible]	मासिक
1887	विक्टोरिया सेवक	-	-	-
"	[illegible] हितैषी	पं.राम गुलाम [illegible]	जयपुर	साप्ताहिक
"	आयुर्वेदोदय	पं.दत्त राय [illegible]	मथुरा	मासिक
"	भारत [illegible]	संचालक-[illegible] बलदेव सिंह संपा.-[illegible] सिंह	रीवाँ	साप्ताहिक
"	[illegible] समाचार हिन्दी-गुजराती	पं0राम [illegible]	मथुरा	मासिक
"	प्रयाग मित्र	देशोपकारक प्रेस	प्रयाग	पाक्षिक

सन्	पत्र का नाम	संपादक-संचालक	स्थान	रूप
1888-90	सभा पत्र	हर सहाय मल और मास्टर मुरामल	मुरादाबाद	
"	भारत भगिनी	श्रीमती महादेवी	प्रयाग-लाहौर	पाक्षिक
1889	विचार पत्र	चिमन लाल	इटावा	मासिक
"	भारत धर्म	पं० रामनारायण वाजपेयी	बिठूर, कानपुर	मासिक
"	प्रजा हितैषी	-	जबलपुर	"
"	आरोग्य जीवन	पं० गजानन राव	प्रयाग	"
"	विद्या धर्म दीपिका	पं०चन्द्र शेखर घर मिश्र	गोरखपुर	"
"	सुगृहिणी [स्त्री-पत्रिका]	श्रीमती हेमन्त कुमारी चौधरी	दरभंगा	"
"	बुद्धि प्रकाश	पं०चन्द्र शेकर गौड़	अलीगढ़	पाक्षिक
"	शिक्षा पत्रिका	दीन दयाल सिंह	बाँसोपुर	"
"	तराई गजट	लछमतराय तथा टेकचंद	तराई जबलपुर	साप्ताहिक
"	भारत दर्पण	पं०विष्णु नाथ ब्रह्मचारी	कलकत्ता	साप्ताहिक
"	भारत मार्तण्ड	"	"	"
"	मित्र	पं०दामोदर विष्णु सप्रे	काशी	"
"	राजस्थान समाचार	मुंशी सर्वदान	अजमेर	मासिक-पाक्षिक-दैनिक
1890	कवितेंदु			
	"धिक्कारम् अथवा दोतेकरो"	श्री गणेश नारायण बोरकड़े सखाराम शिवाजी गोले	अमरावती	
"	सरस्वती विलास	नन्हे लाल	नरसिंहपुर नागपुर	मासिक

हिन्दी बङ्गवासी।

प्रतिसप्ताह। | साप्ताहिक समाचार पत्र। | सोमवार आषाढ़ वदी छठी सम्वत् १९४८ ता० २७ वीं जुलाई। सन् १८९१ ई०। | प्रतिसोमवार प्रकाश होता है। | [१२

बकरीद-गड़

[illegible]

सन्	पत्र का नाम	संपादक-संचालक	स्थान	रूप
1890ई0	गोरखा		नागपुर	मासिक
"	निगमागम चन्द्रिका	पं0ठाकुर प्रसाद शर्मा 1904 में अमृत लाल चक्रवर्ती	मेरठ-मथुरा काशी	
"	पुष्कर दीप	-	पुष्कर जि0अजमेर	मासिक
"	बाल सुधा	-	होशंगाबाद	"
"	मोतीचूर	मुंशी अमीर हसन	धौंधोपुर	"
"	सत्य	अज्ञात	मुरादाबाद	"
"	साहित्य सरोज	"	मेरठ	"
"	हिन्दी पंच	अज्ञात	अलीगढ़	मासिक
"	सज्जन सुधापान	पं0बैजनाथ व्यास	सितारा	साप्ताहिक
"	सरस्वती विलास		काशी	"
"	तिमिर नाशक	पं0 कृपाराम	काशी	"
"	जयपुर समाचार	बाबू अमर नारायण माथुर	जयपुर	"
"	चम्पारन चन्द्रिका	पं0 भुवनेश्वर मिश्र	सदर बेतिया	" वार्षिक मूल्य 2।।
"	हिन्दी बंगवासी	पं0 अमृतलाल चक्रवर्ती	कलकत्ता	साप्ताहिक " "
"	सरस्वती प्रकाश	-	"	पाक्षिक
"	सर्वहित	पं0 राम प्रताप शर्मा	बूंदी	पाक्षिक-वार्षिक ।
1891	हिन्दी समाचार	माधव प्रसाद शुक्ल	मिर्जापुर	साप्ताहिक
"	कवि और चित्रकार	पं0 कुन्दन लाल	फर्रुखाबाद	त्रैमासिक
"	धूर्त पंच	दामोदर प्रसाद शर्मा	कलकत्ता	मासिक

सन्	पत्र का नाम	संपादक-संचालक	स्थान	रूप
1891ई0	विद्या प्रकाश	राम नारायण	लखनऊ	मासिक
"	बाल हितकर	-	"	"
"	नौकाजगहित	वंशीधर	बनारस	"
"	रामधनमित्र	पं0गणेश राव	"	"
"	रामपताका	पं. राधा मोहन शुक्ल	प्रयाग	
"	शिक्षक	एम.एस.शुक्ल	मथुरा	मासिक
"	जगत मित्र	पं0 केशवराम शर्मा	"	"
"	व्यापार	सीताराम	कानपुर	"
1892	व्यापार हितैषी	हनुमान प्रसाद	काशी	साप्ताहिक
"	भारत भूषण	बाबू गोपाल राम गहमरी	बंबई	मासिक
"	भारत हितैषी	विशन दत्त	फर्रुखाबाद	"
"	ब्राह्मण हितकारी	पं0 बुधा राम	काशी	"
"	सरस्वती प्रकाश	बनवारी लाल	"	"
"	ब्रजवासी	रा0ब0 वर्मन के पास		
"	मालवा समाचार	-	इन्दौर	"
1893	नागरी मोद	पं0बदरी नारायण चौधरी प्रेमघन	मिर्जापुर	साप्ताहिक-मासिक
1893	भारत प्रताप	प्रताप कृष्ण झगा	मुरादाबाद	मासिक
"	सुधा सागर	पं0 रुक्मी लाल दुबे डा0 भूदेव प्रसाद	कानपुर	"
"	सत्यवक्ता	गोपाल प्रसाद	होशंगाबाद	"
"	साहित्य सुधानिधि	देवकीनन्दन खत्री	मुजफ्फरपुर	मासिक
1894	वनिता हितैषी	संचा.-सीताराम सं.-भाग्यवती देवी गहलोत	कानपुर काकेड़ी	"

सन्	पत्र का नाम	संपादक-संचालक	स्थान	रूप
1894 ई0	कलकत्ता समाचार	-	कलकत्ता	साप्ताहिक
"	रत्नाकर	पं0 शिवराम पांडे	प्रयाग	मासिक
"	सर्वहितैषी	पं0 रामस्वरूप जनवारी लाल	मुरादाबाद	मासिक-साप्ताहिक
"	श्री हरिश्चन्द्र कौमुदी	पंचमसिंह वर्मा	गया	
"	सारन-सरोज	अवध बिहारी शरण सारस्वत	छपरा	"
"	न्याय-पत्र	विद्या वर्द्धिनी सभा	प्रयाग	"
"	काव्य-पत्र	विद्यावर्द्धिनी सभा	प्रयाग	"
"	दिनचर्या	पं0 मोहन लाल विष्णु लाल पांड्या	नाथद्वारा	मासिक
1895	संसार दर्पण	पं0 अयोध्या प्रसाद	झांसी	"
"	स्वतंत्र	-	लखनऊ	साप्ताहिक
"	एलोपैथिक डाक्टर	जगन्नाथ शर्मा	प्रयाग	मासिक
"	विद्या विनोद		बाँकीपुर	"
"	प्रश्नोत्तर	भिखारी शरण	काशी	"
"	कुसुमाञ्जली	बाबू बटुक प्रसाद	"	"
"	दीनबंधु		फर्रुखाबाद	"
"	खद्दोत	अमृतसर	"	"
1896	नागरी प्रचारिणी पत्रिका	नागरी प्रचारिणी सभा बाबू श्याम सुंदर दास आदि	काशी	मासिक
"	श्री व्यंकटेश्वर समाचार	सेठ खेम राज श्री कृष्णदास	बंबई	साप्ताहिक
"	काशी वैभव		काशी	मासिक
"	भारत-हितैषी	-	बंबई	"
"	न्याय-रत्न		पिलखवाड़ा	"

"सुकवितायथस्ति राज्येनांकम्"

॥ रसिक वाटिका ॥

अर्थात्

रसिक समाज कानपुर की नवरसमय मासिक पत्रिका,
बाबू व्रजभूषण लाल गुप्त, अवैतनिक प्रकाशक
नौघरा कानपुर द्वारा प्रकाशित

भाग २ | २० अप्रैल सन् १८९८ ई० / वैशाख सम्वत् १९५५ वि० | क्यारी १

॥ नियम ॥

१—मूल्य नगर में तथा बाहर सर्व साधारण से अग्रिम वार्षिक १, रु० मात्र, राजा महाराजा और रईसों से उनकी इच्छानुसार एक क्यारीका मूल्य ८,

२—नमूने की कापी बिना मूल्य दीजायगी, यदि लेना अस्वीकार होतो पत्रद्वारा प्रकाशक को सूचनादेना चाहिये नहीं तो दूसरी कापी कीमत तलब डाक द्वारा भेजी जायगी।

३—एकबार विज्ञापनकी छपाई ८, पंक्ति, और वितरण कराई ३, रु० हैं अधिक उपयोग के लिये प्रकाशक को लिखिये।

४—हिन्दी गद्य तथा पद्य के साहित्य विषयक उत्तम लेख मान्य होने से स्थानानुसार छाप दिये जायंगे परन्तु अस्वीकृत लेख लौटाने का नियम नहीं है।

५—रसिक वाटिका सम्बन्धी पत्र कृपया मनी आर्डर नोटिस और हुंडी सब प्रकाशक के नाम भेजना चाहिये

पुनि निज मित्र रसिकन को दिखाइये

भगवत रसिकको यातें बिना रसिक कोई क्या जानै

तारीख		
२५		
अप्रैल		
१८९८ ई०		

संवत्		
सप्तमी		
५		
१९५५		

उठहु उठहु यह सो चुके, देखहु नैन उघार ।
'रसिकमित्र' गहि हाथ दै, पढ़हु काव्य ललकार ॥

प्रथम भाग VOL. I

रसिक-मित्र

७वीं संख्या NO. 7

कानपुर रसिक कवि सभा सम्बन्धी मासिकपत्र

जो कि

पण्डित मनोहरलाल मिश्र मन्त्री रसिक कवि सभा
कानपुर की ओर से प्रकाश होता है.

जैसे पारस लगि [illegible] लोहा कनक समान ।
त्यों [illegible] पढ़त, [illegible] होय [illegible] ॥

सर्वसाधारण से आग्रह [illegible] रु० और
रसिक [illegible] श्रेणियों से कई नियम
[illegible] प्रकाश करेंगे यदि
धन्यवाद सहित स्वीकार होगा परन्तु
निर्धारित मूल्य से कम न हो

[illegible]

सन्	पत्र का नाम	संपादक-संचालक	स्थान	रूप
1896-60	प्रताप	श्री ज्वाला प्रसाद	अलीगढ़	साप्ताहिक
"	उदयपुर गजट	राज्य पत्र	उदयपुर	मासिक
1896	रसिक मित्र	मनोहर लाल मिश्र	कानपुर	"
"	रसिक वाटिका	ब्रज भूषण लाल गुप्त	"	"
1897	कवि और समालोचक	-	बलिया	मासिक
"	भारतोपदेशक	ब्रह्मानन्द सरस्वती	मेरठ	"
"	चन्द्रिका	हजारी लाल	लखनऊ	"
"	त्रिवेणी तरंग	विद्या-धर्म वर्द्धिनी सभा	प्रयाग	"
"	स्वदेशी वस्तु प्रचारक	-	पंजाब	"
"	शिक्षा	पं० सकल नारायण शर्मा	बाँकीपुर	साप्ताहिक
1898	भारत मार्त्तण्ड	पं० रामकिरण शर्मा "श्याम"	जोधपुर	"
1899	तत्त्व प्रभाकर	पं० कन्हैया लाल तथा पं० बलदेव प्रसाद मिश्र	मुरादाबाद	"
"	नृत्य पत्र	देवकी नंदन	प्रयाग	"
"	प्रेम पत्रिका	पं०मनोहर लाल मिश्र	कानपुर	"
"	देश हितकारी	-	मेरठ	"
"	सर्वहितकारक	राजा देवीदास	अल्मोड़ा	मासिक-साप्ताहिक
1900	सरस्वती	श्याम सुंदर दास आदि	प्रयाग	मासिक
"	काव्य कलानिधि	महावीर प्रसाद मालवीय	कौंदिया मिर्जापुर (वर्तमान कानपुर)	"
"	काव्य सुधानिधि	राम भरोसे शर्मा चतुर्वेदी	काशी	"
"	सुदर्शन	पं०माधव प्रसाद मिश्र बाबू देवकी नंदन खत्री		
"	फरलोस गढ़ मित्र	माधव राव सप्रे	बिलासपुर	"
"	बड़ाबाजार गजट	राम राय दिनौतकर बाबू राम लाल	कलकत्ता	साप्ताहिक

श्री सूरदास जी

श्री गोस्वामी तुलसीदास

सरस्वती

सचित्र हिन्दी मासिक पत्रिका

[काशी नागरीप्रचारिणी सभा के अनुमोदन से प्रतिष्ठित]

फरवरी सन् १९०० ई०

भाग १ संख्या २

वार्षिक मूल्य ३) अग्रिम मूल्य प्रति संख्या ।-)

इण्डियन प्रेस, प्रयाग

से छप कर प्रकाशित

राजा शिवप्रसाद

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र

उपर्युक्त पत्र-पत्रिकाओं की लंबी सूची देखकर ही पत्रकारिता के तीव्र विकास का अनुमान लगाया जा सकता है। उत्थानकाल (1860-1885) में लगभग 2 दैनिक, 30 साप्ताहिक, 5 पाक्षिक, 35 मासिक तथा प्रसार-काल (1886-1900) में लगभग 31 साप्ताहिक, 7 पाक्षिक तथा 60 मासिक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। जागरण के दौर में पत्रकारिता राष्ट्र-आंदोलन और विषय-विशेषज्ञता की ओर बढ़ी है। उदाहरण स्वरूप इस काल में नारी-वर्ग के लिए जहाँ "बालबोधिनी", "भारतभगिनी", "सुगृहिणी", "बालिका हितैषी" आदि पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं, वहीं न्याय, नृत्य, नाट्य, कृषि, वाणिज्य, कविता, स्वदेशी वस्तु प्रचार तथा बालकों के लिए पृथक्-पृथक् पत्र निकाले गये।

विवेच्यकालीन हिन्दी पत्रकारिता की राष्ट्रीय-चेतना तथा स्वरूप का परिचय प्राप्त करने के लिए प्रतिनिधि उपलब्ध पत्र-पत्रिकाओं के नीति, मूल्य, संपादकीय सामग्री तथा समाचारों आदि का सन्दर्भ में विवेचन करना अधिक समीचीन होगा क्योंकि सभी पत्र-पत्रिकाओं के पृथक्-पृथक् विश्लेषण से अनावश्यक विस्तार होगा तथा शताधिक (लगभग 350) पत्र-पत्रिकाओं का निरूपण करना यहाँ संभव भी नहीं है।

6. उद्देश्य-जैसा कि स्पष्ट किया जा चुका है कि जागरणकालीन पत्रकारिता का मूल उद्देश्य धनार्जन नहीं था "हिन्दी प्रदीप" ने प्रथम अंक में ही स्पष्ट किया था "मेरा मुख्य उद्देश्य देश की भलाई है इसलिए मैं प्रकट हुआ हूँ— पत्र को प्रकाशित करने में कदापि यह प्रयोजन नहीं है कि कुछ धन कमा कर रुपये एकत्र करूँ बल्कि देश की बुराइयों का शोधन, भलाई का संचार और उन्नति महापुरुषों का मुख्य तात्पर्य है।"[1] "भारत जीवन" ने "प्रजा का जगाना होना" मुख्य कार्य बताया।[2] तत्कालीन जाति-पत्र की संकीर्णता में न बँधे होकर सभी जाति और वर्ग के लोगों के लिए थे।[3]

1- हिन्दी प्रदीप, सितंबर 1887 पृष्ठ 3

2- भारत जीवन 5 मार्च, 1884 पृष्ठ 1-2

3- प्रथमतः यद्यपि अपने प्रिय के घर जन्म लिया है तथापि ब्राह्मण तो सबके पूज्य ही हैं। वैश्य तो सहकारी ही हैं और शूद्रों के बिना अन्य सबकी उत्पत्ति प्रकट नहीं होती। अस्तु यह सब वर्णों के हित के लिए सदैव यत्नवती रहेगी- प्रिय पत्रिका (भोजपुर, 1881 प्रथम उपक्रम पृष्ठ 5-6

सार सुधानिधि

"सारसुधानिधि" सम्बन्धीय
विशेष विज्ञप्ति।

विशेष सूचना।

यद्यपि प्रिय "सारसुधानिधि" अतिबाल्य अवस्थाके कारण अभीतक अपने कर्तव्य-
पालन में सामर्थ्य नहीं हुआ है, तथापि गुणग्राही महामान्य महाराणा महाराजाधिराज के
प्रेम वात्सल्य स्नेह द्वारा सहलीहो पुरातकालवाले लिख मैं इच्छा करता हूँ।

सदानन्द मिश्र

"सारसु० निधि" सम्पादक।

तत्कालीन पत्रकारिता भाषा, समाज, साहित्य आदि नव निर्माण के बहुविधि उद्देश्यों को लेकर प्रकाशित हुई थी "सारसुधानिधि" ने अपने अनेक प्रयोजनों का उल्लेख किया था "भारतवासियों का जन-संशोधन, सत्य संस्कार स्थापन तथा उनके चित्त की स्थिरता और दृढ़ता का संपादन करना "सारसुधानिधि" का प्रथम प्रयोजन है। दूसरा। जब तक देश की भाषा की उन्नति नहीं होती है तो सम्पूर्ण उन्नति को कौन पूछता है। ——इसलिए यथार्थ हिन्दी भाषा का प्रचार करना और हिन्दी लिखने वालों की संख्या में वृद्धि करना सारसुधानिधि का दूसरा प्रयोजन है। तीसरा। देश-देशांतर का प्राचीन और सामयिक घटना प्रकाश करके स्वदेशियों के चक्षु-दान कराना तीसरा प्रयोजन है। चौथा। भारतवासियों की मानसिक तथा शारीरिक शक्ति नितांत हीन और एकांत जीर्ण हो गयी उसकी यथोचित औषधि द्वारा बलवत्ता, ओजस्विता और तेजस्विता गुणों का प्रचार करना चौथा प्रयोजन है। पंचम। इस देश के लोग वाणिज्य-व्यापार करते हैं ——इसलिए उसका प्रतिविधान, एकात्मस्थापन सामयिक व्यवहार और सत्यसाभर्ग देना सारसुधानिधि का पंचम प्रयोजन है।"[1]

कतिपय पत्र-पत्रिकाओं के मूल प्रयोजनों से स्पष्ट है कि वे जन-जागृति, जन-सुधार, हिन्दी-हिन्दुस्तान की प्रगति के उद्देश्य से प्रकाशित हुए थे।

7. <u>आदर्श जीवन-विधान-</u> तत्कालीन पत्रकारिता की आचरण-संहिता, चरित्र तथा आदर्श क्या थे? आधुनिक परिपार्श्व में वह अपने मूल से कितनी संयुक्त और वियुक्त है? इस चलते प्रश्नों का प्रत्युत्तर कतिपय पत्र-अंकों से ही मुखर हो गया है। "उचितवक्ता" का मत था कि स्वाधीनता खोकर राष्ट्र की चरमोन्नति भी वरेण्य नहीं है, "पहली उन्नति और अगली उन्नति में अंतर इतना ही है कि वह स्वाधीन भारत की उन्नति थी और यह पराधीन भारत की उन्नति हो रही है इस उन्नति में पदानत निर्वीर्य हम भारत कुल तिलकों की अनादर के साथ गर्दन नीची हो जाती है।"[2]

1- सारसुधानिधि, 13 जनवरी, 1879

2- उचितवक्ता, 7 अगस्त, 1880

"ब्राह्मण" ने पुनः आषाढ़ में कहा था "हम भिखमंगे नहीं कि केवल ग्राहकों की खुशामद का ख्याल रखें। हम भाट नहीं कि बड़े आदमियों और राजपुरुषों की निरी झूठी स्तुति गाया करें। जो हो सो हो हम ब्राह्मण हैं।"[1]

पत्रकार भारतेन्दु ने निर्भीक होकर देशवासियों को राष्ट्रीय चेतना की वेदी में अपने को हविष बनाते हुए आह्वान किया था "भारतवर्ष की सब अवस्था, सब जाति, सब देश में उन्नति करो — चाहे तुम्हें लोग निकम्मा कहें या नंगा कहें, कृस्तान कहें या भ्रष्ट कहें —कुछ डरो मत। जब तक सौ दो सौ मनुष्य बदनाम न होंगे, जात से बाहर न निकाले जायेंगे दरिद्र न हो जायेंगे, कैद न होंगे, वरंच जान से न मारे जायेंगे तब तक कोई देश नहीं सुधरेगा।[2]

अतः पत्र और पत्रकारों के विचार, प्राणदायिनी उर्जा तथा उच्चादर्श न अर्थ-प्राप्ति से जुड़े थे, पद या यश-प्राप्ति से। इन्होंने पत्रकारिता और रचनात्मक लेखन कर्म को पेशा न बनाकर राष्ट्र-धर्म तथा जीवन-कर्तव्य के रूप में ग्रहण किया, "हमें अपने लेख द्वारा धन की आकांक्षा नहीं है, न हम अपने पत्रों का "सरकुलेशन" पाठकों की संख्या बढ़ी हुई चाहते हैं, न इन लगाय शाहीदों में दाखिल होने की भाँति हम नाम चाहते हैं कि बड़े लिखाड़ों में हमारी गिनती हो।——न हमसे खुशामद चुनाचुनी और मिथ्या प्रशंसा की जाती है तब कोरी कलम की कारीगरी से कौन रीझे।"[3]

राष्ट्रीय एकता, साम्प्रदायिक सद्भाव तथा साहित्य-भाषा आदि उच्चादर्शों के लिए निस्वार्थ भाव से जूझना इनका आदर्श-बिंदु है।[4]

8. प्रसार-संख्या-विवेच्य काल के अधिकांश पत्रों की प्रसार-संख्या अधिक नहीं थी फिर इनका भारतीय जनमत और सरकार पर व्यापक प्रभाव पड़ा था।[5]

1- ब्राह्मण, 15 मई 1883, पृष्ठ 30

2- बालाबोधिनी, जनवरी, 1874

3- हिंदी प्रदीप सितंबर, 1895

4- उदारचरिता नानु वसुधैव कुटुम्बकम् अतः कारण हम सब आर्यों को यही चाहिये कि सबसे परस्पर प्रेम रक्खें। बराबर एका बढ़ाते जाय—अपने पुराने बादशाहों समय के वैर-भाव को भूल जाँय"-भारत जीवन 3 मार्च 1884 पृष्ठ 2

5- "सरकार विशेषकर से इन पत्रों के प्रभाव से डरती थी इनकी वास्तविक पाठक संख्या अधिक न थी, पर यह उनके प्रभाव का मापदण्ड नहीं था क्योंकि एक प्रति को बहुत से पाठक पढ़ते थे।"-TO ताराचंद, भारतीय स्वातंत्र्य आंदोलन का इतिहास, पृष्ठ 399

क्योंकि "यदि किसी पत्र की एक भी प्रति किसी गाँव में या ग्राम-समूह में पहुँचती है तो उसमें जो कुछ छपा है, वह तुरंत उस इलाके में रहने वाले सब लोगों में फैल जायेगा।"[1]

तत्कालीन पत्र परस्पर अपने पत्रों का आदान-प्रदान और आपसी संपर्क बनाये रख कर एक साथ मिलकर प्रत्येक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय समस्या को उठाती तथा उसके पक्ष-विपक्ष में निरंतर वाद-विवाद तथा चर्चा कर विचार-विमर्श करती फलस्वरूप संगठित जनमत का निर्माण स्वतः हो जाता था। "जागरण" के साथ सभी प्रेसों भाषाओं के राष्ट्रीय पत्रों की प्रसार-संख्या बढ़ती गयी थी। "नेटिव प्रेस रिपोर्ट" के गुप्त दस्तावेजों में प्रायः सभी पत्रों की प्रसार-संख्या दी गई है। कुछ पत्रों की प्रसार-संख्या लगभग 1885 ई0 में इस प्रकार थी:

पत्र का नाम	रूप	स्थान	प्रसार-संख्या
अल्मोड़ा अखबार	साप्ताहिक	अल्मोड़ा	100
आनंद कादंबिनी	मासिक	मिर्जापुर	500
हिंदुस्थान	दैनिक	कालाकाँकर	173
भारतजीवन	साप्ताहिक	बनारस	2000
भारतबंधु	"	अलीगढ़	175
हिन्दी प्रदीप	मासिक	इलाहाबाद	200
प्रयाग समाचार	साप्ताहिक	"	450
कविवचन सुधा	"	काशी	500

"कविवचन सुधा", हिन्दी प्रदीप, हिंदुस्थान आदि की प्रसार-संख्या अत्यल्प होने पर भी ये महत्व और प्रभाव की दृष्टि से अग्रणी रहे और अधिसंख्य जनता को एकता के दृढ़ बंधनों में बाँध राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करते रहे।

9. मूल्य- भारतेन्दु युग की अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं का मूल्य तत्कालीन मूल्यमानों को देखते हुए अधिक प्रतीत होता है उसके मुख्य कारण राजकीय सहायता का अभाव, मुद्रण-व्यय का अधिक तथा विज्ञापन-आय का अत्यल्प होना, व्यावसायिक

1- रोपर लिथ्रिज पुन उद्धृत डा0 ताराचंद, उपरिवत् पृष्ठ 403

पूंजी तथा ग्राहकों की न्यूनता आदि थी। प्रायः साप्ताहिक पत्रिकाओं का मूल्य "कविवचन सुधा" की देखा-देखी लगभग 6/- वार्षिक रखा जाता था। "सर्वहितकारी" साप्ताहिक का मूल्य केवल 2 11 रुपये था तब भी यह साप्ताहिक पत्रिका दो वर्ष भी पूरे न कर सकी, "कविवचन सुधा" में जाकर मिल गयी। "हिन्दी दीप्ति प्रकाश" का मूल्य केवल 1॥) वार्षिक था तथापि इसके संपादक वार्षिक प्रसाद जी को घर-घर घूम कर ग्राहक बनाने पड़ते थे। अधिकांश पत्र अल्प जीवी रहे इसका कारण जनता की अकुशलता नहीं थी बल्कि तत्कालीन गरीबी, अशिक्षा, अभिरुचि के अभाव तथा अंग्रेजों की हिन्दी शिक्षा, पक्षपातिता तथा भाषा-संबंधी उपेक्षित नीति के कारण हिन्दी पाठक वर्ग तेजी से नहीं बढ़ पा रहा था। कुछ प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के मूल्य इस प्रकार थे-

पत्र का नाम	रूप	मूल्य वार्षिक डाक व्यय सहित
भारत जीवन	साप्ताहिक	1 11)
सारसुधानिधि	"	6 11)
भारत मित्र	"	2 11)
उचित वक्ता	"	3)
हिन्दी प्रदीप	मासिक	1 11)
ब्राह्मण	"	1 11)
रसिक विनोद	पाक्षिक	6 111)
विद्युत प्रवाह		2)
हरिश्चन्द्र पत्रिका (36 पृष्ठों में)	मासिक	6)
भारतोदय	दैनिक	10)

प्रायः पत्र-पत्रिका सरकार, रईसों तथा पढ़ने वाले ग्राहकों से अधिक मूल्य लिया जाता था।

1- "हिन्दी प्रदीप" का जनवरी-अगस्त 1889 में मूल्य संबंधी विज्ञप्ति इस प्रकार की सभाएँ, पुस्तकालय, विद्यार्थियों तथा अध्यापकों से अग्रिम 1(0) वार्षिक सदस्यों से 3 1) पढ़ने से 4 1) पिछले अंकों की पूरी जिल्द की जिल्द दो रुपये 3) इसके प्रथम अंक में मेरा मूल्य भी इतना रखा गया है जिससे लागत निकल जायेगी-सही, दिसंबर 1877

10. कठिनाइयाँ- तत्कालीन पत्र और पत्रकारों को कदम-कदम पर भयंकर बाधाओं से जूझना पड़ता था। पहली कठिनाई तो हर पत्र के सामने आर्थिक ही थी। प्रायः सभी हिन्दी पत्र ग्राहकों की न्यूनता तथा पत्रकारों की साधन हीनता के कारण घाटे में चलते थे। उस युग के नवजात वर्गों -जमींदार, भूस्वामी, धनिक, काश्तकार, महाजन, उद्योगपतियों तथा बुद्धिजीवी मध्यम वर्ग में केवल शिक्षित मध्यम वर्ग ही हिन्दी पत्रों का उपभोक्ता था। समाज के अधिकांश वर्गों से पत्रकारिता को कोई प्रोत्साहन नहीं मिल सका था। डा०राम विलास शर्मा के शब्दों में "सेठ लोग आज से भी अधिक भाषा और साहित्य के प्रति उदासीन थे --सरकार के प्रेस एक्ट आदि का भय अलग था।[1]

ग्राहकों की न्यूनता तो थी ही जो थोड़े बहुत ग्राहक थे वे भी संपादक को पैसा न भेजते। कुछ विलंब से चुकाते। प्रायः सभी पत्रों ने परेशान होकर ग्राहकों से प्रार्थना, विनय याचना आदि की थी "उचित वक्ता" के संपादकीय लेख "जैसा जहाँ है कि भारतवासियों में एका नहीं है" में खीझ कर कहा था "पाठकों। शायद आपको लोगों को ऋण चुकाने का अनुभव न हो --परन्तु हिन्दी पत्रों के प्रेमियों हिन्दी पत्रों के नहीं वरन् देशीय समस्त भाषा के संपादक तो इस बात को खूब अच्छी रीति से जानते हैं। वे लोग मुक्त कंठ से स्वीकार कर लेंगे कि संपादकों के दाम न देने में भारतवासियों का ऐसा एका है कि दूसरे-2 देशों में ढूँढने पर भी न मिले।"[2]

भारतेन्दु के पत्रों को सरकारी 100 प्रतियों की खरीद बंद होते ही उनकी चमक कम होने लगी थी। उन्हें विवश होकर उन्हें दूसरों को सौंपना पड़ा या बंद कर देना पड़ा था।

कभी-कभी पत्रिका के संचालक का आक्रोश, विवशता तथा ओभ्रांत होकर फूट पड़ता "हमने तो सच्चा हाल सूचना दिया था उस पर किसी महाशय ने ध्यान नहीं दिया। राजा की आँख में हम चढ़े ही हैं, प्रजा का यह हाल है कि कोई हमारी सहायता की ओर कुछ ध्यान नहीं देता। इस साल बिल्कुल

1- डा० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग
2- उचित वक्ता, 13 जनवरी 1883

घाटा ही घाटा दिखायी देता है।"[1]

अभी तंपादक क्रोध में आकर अंतिम "चितौनी" और धमका देते "हम उन्हें कुछ जता देते हैं कि महीने के अंदर ही यहाँ तक ही तक अपने रुपये भेजें, नहीं तो "हिन्दी प्रदीप" ने नादिहन्दों को जो दशा की थी उसी का स्मरण करें उनके नाम पतेवार नादिहन्दों में छापे जायेंगे।"[2]

वस्तुतः जनता की क्रय-शक्ति का ह्रास तेजी से हो रहा था अतः गिरते आर्थिक स्तर, घटती अंग्रेजी भाषा के प्रभाव, हिन्दी में लेखकों-पाठकों की न्यूनता तथा वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट 1878 आदि के दमन ने भारतीय भाषाओं के पत्रों की उन्मुक्त गति और शक्ति को कुंठित कर दिया था।

किन्तु विवेच्य पत्रकारिता घाटा उठा कर भी हिन्दी-हिंदुस्तान के हितों के लिए प्रतिबद्ध थी। उस समय के पत्रों की दयनीय असहाय स्थिति का वर्णन "ब्राह्मण" संपादक प्रताप नारायण मिश्र ने इन शब्दों में किया है "चार वर्षों से हम देख रहे हैं कि देशी समाचार पत्रों में खिलौनेवर हिन्दी पत्रों में तो कुछ लाभ होता है बेचारे संपादकों का तो ही जानता है। "भारतमित्र", "भारतेन्दु", "उचितवक्ता" आदि उत्तमोत्तम पत्र इसी घाटे की भूल के मारे थोड़े ही दिनों में चल कर बंद हो गये। ——"हिन्दी प्रदीप" से ऐसी हालत में सरकार ने 10 रुपये प्रेस के ले लिए।"[3]

ऐसी विकट परिस्थितियों में भी हिन्दी पत्रकारों का निरंतर प्रकाशित होना उनकी अदम्य जिजीविषा और उत्कट लगन और आचरण को प्रकट करता है। वस्तुतः "उस समय संपादकों की अक्षमता उतनी न थी जितनी परिस्थितियों की कठोरता थी।"[4] महावीर प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा था "हिन्दी की दशा कुछ ऐसी बुरी है कि अच्छे से अच्छे पत्र को भी बहुत कम लोग पढ़ते हैं।"[5] हिन्दी

1- हिन्दी प्रदीप, मार्च, 1879
2- पियूष प्रवाह, 23 मई 1884 पृष्ठ 12
3- डॉ० धनंजय भट्ट "सरल" हिन्दी की दशा और पत्रकारिता पृष्ठ 8-9
4- डॉ० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृष्ठ 27-28
5- सरस्वती, अगस्त, 1906 पृष्ठ 306

प्रदीप" के संपादक ने व्यथित मन से लिखा था "हमारा कलेवर हिन्दी भाषा और देवनागरी अक्षरों में न होता तो यह कहना और हौसला रखना किसी तरह का पाप न समझा जाता कि हमारे भी हजार-दो हजार ग्राहक हैं किन्तु तब और से निराश हिन्दी अब इस लायक नहीं——हमें केवल उतने ही पढ़ने वाले चाहिए हैं जो रुचि और प्रेम के साथ हमें आदर दें।[1]

11. साज-सज्जा एवं प्रस्तुतिकरण- आलोच्य काल में हिन्दी पत्रकारिता में अशुद्धि रहित निर्दोष मुद्रण, आकर्षक सुरुचिपूर्ण प्रस्तुतिकरण रंगीन साज-सज्जा तथा नयनाभिराम अलंकरण का यथेष्ट विकास नहीं हो पाया था। इसका मुख्य कारण संचालकों का धनाभाव, मुद्रणालयों की जर्जर स्थिति, पत्रों का अल्प-विस्तरण, पत्र-कला की अविकसित तकनीक तथा लोकोद्देश्य पूर्ण राष्ट्रीय दृष्टिकोण का होना था। सीधे सादे रूप में आकर्षक शीर्षक और रोचक बोधगम्य सामग्री देकर पाठकों को रिझाने की चेष्टा की जाती थी। कुछ ही पत्रिकाएँ 'हरिश्चन्द्र पत्रिका', 'सरस्वती पत्रिका', 'उषा पत्रिका' आदि ही मनोहर साज सज्जा, साफ-सुथरे मुद्रण, कागज तथा आकार के साथ प्रकाशित हुई। अधिकांश पत्रों का मुद्रण अशुद्धिपूर्ण एवं अस्पष्ट था, छपाई भी आकर्षक और स्तरीय नहीं कही जा सकती जिसका मुख्य कारण अर्थाभाव था।

वस्तुतः पत्र-पत्रिकाएँ उस समय केवल विज्ञापन या शुद्ध मनोरंजन का साधन नहीं थी। वे पाठकों के हित, समाज सुधार, जन-जागृति वाली ज्ञान वर्धक सामग्री को सर्वोपरि महत्व देती थीं। वे विदेशी परतंत्रता के विरुद्ध विद्रोह और स्वाधीनता का मशाल जगाने वाली अग्रदूत थीं तथा स्वदेश परक दृष्टिकोण एवं राष्ट्रीय जन-जागरण का माध्यम थीं। वे व्यवसाय, विज्ञापन और बाह्य आकर्षक साज-सज्जा से अप्रभावित थी तथा पत्रकार के समर्पण पूर्ण दायित्व की द्योतक थीं।

उनकी छपाई दो पुराने ढंग से दो या तीन कालमों में की जाती थी। अर्थाभाव के कारण वे संयुक्तांक निकालने को विवश होती जिससे पोस्टेज का खर्च बचाया जा सके। साधारणतया पृष्ठों की संख्या 10-36 पृष्ठों तक होती थी।

1- हिन्दी प्रदीप, सितंबर 1893 पृष्ठ 1-2

मुख-पृष्ठ - किसी पत्र-पत्रिका का मुख-पृष्ठ देख कर ही उसके स्तर, मूलस्वर, उद्देश्य एवं स्वरूप के संबंध में निश्चित अवधारणा बनायी जा सकती है। आकर्षक मुख पृष्ठ किसी पत्रिका को खरीदने और पढ़ने को बरबस प्रेरित करता है। सामान्यतः विवेच्यकालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठों पर पत्रिका का नाम, तिथि, भाग, मूल्य तथा मूलस्वर को अभिव्यक्त करने वाला सिद्धान्त वाक्य, विषय-सूची, अंक-संख्या, चित्र, प्रकाशन-स्थान आदि अंकित रहते थे। किसी-किसी पत्र में प्रेस का नाम, स्थान व मुद्रक का नाम भी मुद्रित रहता था। उस युग के पत्र-पत्रिकाओं के मुखपृष्ठ का अनुमान प्रस्तुत शोध प्रबंध में दी गई कुछ पत्रों के मुख पृष्ठों की फोटो-प्रतिलिपियों से लगाया जा सकता है।

शीर्षक- पत्र-पत्रिकाओं में पैने, चटपटे, सार्थक तथा सटीक शीर्षक देना भी एक कला है। वही शीर्षक उत्तम माने जाते हैं जो पाठकों के मूल भावों का स्पर्श और उद्वेलित कर उन्हें रचना या समाचार पढ़ने को विवश कर दें। आर्थर क्रिश्चियन के अनुसार, "अच्छा शीर्षक मुहावरेदार, बोलचाल की सशक्त भाषा में लिखा होता है। उसमें सुबोध, सतर्कता, प्राणवत्ता, तथा संक्षिप्तता होती है।"[1]

विवेच्यकाल की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अग्रलेखों, समाचारों, कविता, प्रहसनों, लेखों आदि के शीर्षक मुहावरों, संस्कृतश्लोकों, अंग्रेजी वाक्यों, हिन्दी कविता आदि में मनोरम ढंग से दिये जाते थे जिनका पैनापन, व्यंग्य, सजीवता एवं सटीक प्रभाव पाठकों में अदम्य अभिरुचि उत्पन्न करके उन्हें पढ़ने को बाध्य करता है। कुछ शीर्षक इस प्रकार थे।

मुहावरों और लोकोक्तियों में शीर्षक

"ऊंट पर नोन (शोक पर शोक)" पियूष प्रवाह 25 जनवरी, 1885॥ "तीन दबावत निधड़क को पातक, राजा, रोग" (ब्राह्मण, 1883, वर्ष 1 अंक 10) "आधा तीतर आधा बटेर", "घर के घाट के" (हिन्दी-प्रदीप, फरवरी-मार्च 1883) "पाँच पीर तेरा चले" (भारतमित्र (19 सितंबर, 1878) आदि शीर्षक सार्थक अभिव्यक्ति देते हैं।

1- पुनश्चा सं० वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता: विविध आयाम पृष्ठ 465-466

संस्कृत वाक्यों में शीर्षक- "अतिसर्वत्र वर्जयेत" [पियूष प्रवाह, 25 मार्च 1885] "दरिद्रदोषो गुणराशिनाशी" [भारतमित्र, 7 अप्रैल 1879] "मूलन्नास्ति कुतः शाखा", [ब्राह्मण, अंक 6 संख्या 5 "सर्वत्यक्तवा दरिभोत्" [हिन्दी प्रदीप, मई 1878] "अहिंसा परमोधर्मः, यतो धर्मस्ततोजयः" [भारतमित्र, 15 जून 1876]

हिन्दी कविता में शीर्षक-

"सबै सहायक सबल के, कोऊ न निबल सहाय ।
पवन जगावत अग्नि को, दीपहि देत बुझाय।। [ब्राह्मण-1884 अंक 2 अंक 4]

रहो एकता से मिलि दहो पाप सन्ताप ।
रहो सदा सत्संग में, कहो प्रेम आलाप ।। [हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1878]

अंग्रेजी शब्दों में शीर्षक- "लोकल सेल्फ गवर्नमेंट" [हिन्दी प्रदीप मई 1882] "पब्लिक ओपिनियन" [हरिश्चन्द्र मैगजीन 15 अप्रैल 1874] "ब्यूरिसडिक्शन थियरी" [ब्राह्मण 1882, अंक 2] "इम्पीरियल लाइसेंस टैक्स" [भारतमित्र 16 जून 1879 अं0]

कुछ पत्रिकाओं के शीर्षक सीधे-सादे होते थे जबकि कुछ के गुप्त, संकेतित एवं मार्मिक थे जो तुलनात्मक चिंतन को ध्वनित करते हैं । कुछ व्यंग्यात्मक तोयक शीर्षक भी मिलते हैं । "काले रंग की करामात," "ईश्वर भी क्या ठठोल है"- (हिन्दी प्रदीप)"कानपुर कुछ सुनसुनाया है", "सुनिये तो", "ध्यान कीजिए"(ब्राह्मण) "धन देवी नहीं", उल्लू पंजाब", "जी हुजूर"(पीयूष प्रवाह)"जो नाटक का भी फाटक बंद हुआ"- (समय विनोद)।

उपर्युक्त सरलता तथा कटाक्ष करते धारदार शीर्षक युग की जागृति और चेतना को ध्वनित करते हैं । वे संक्रमणकालीन संस्कृति, आधुनिकता और युगीन प्रतिक्रिया का गहरा अहसास दिलाते हैं ।

12. नीति-वाक्य- जागरण कालीन पत्र-पत्रिकाओं के नीतिवाक्य [मोटो] कुछ गंभीर, सप्राण, उद्देश्यपरक आदर्शों और आवेगों के अनुरूप होते थे । कुछ मार्मिक, ओजपूर्ण मोटो द्रष्टव्य हैं -

"क्योऽस्तु तत्र निष्ठानां येषां सर्वे मनोरथाः"- भारत मित्र

"अर्थं निजः परोवेति गणना लघुचेतसाम्"

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्" - भारतजीवन

"हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः" - उचितवक्ता

"अनुनय प्रतिष्ठे न न दैन्यं न पलायनम्- पियूषप्रवाह

"शुभ सरस देश सनेह पूरित, प्रकट हेत आनंद भरे ।

धनि कुल कुर्मन वायु सौं, मणिदीप सम थिर नहिं टरे।।

तुम विवेक विचार उन्नति कुमति सब यामैं जरे ।

"हिन्दी प्रदीप" प्रकाशित सुरक्षादि भारत सब हरै।-हिन्दी प्रदीप

"शत्रोरपि गुणा वाच्या दोषा वाच्या गुरोरपि"-ब्राह्मण

उपर्युक्त कुछ नीति-वाक्यों से ही तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं की उत्कर्ष चेतना, लोकहित के प्रति सजगता, दृढ़ता, विज्ञता और ओजस्विता का अनुमान लगाया जा सकता है । ये मोटो तत्समीदार आधुनिक पत्रकारिता के विपरीत तोद्देश्य प्रौढ़ चिंतन के प्रतीक हैं जो युगीन नवजागरण और पत्रकारिता के आदर्शों को प्रतिबिंबित करते हैं ।

13. <u>प्रमुख स्तंभ</u>- भारतेन्दु युगीन मासिक, साप्ताहिक, दैनिक आदि पत्र-पत्रिकाओं के प्रमुख स्तंभ कुछ इस प्रकार रहते थे :

1- संपादकीय अग्रलेख एवं टिप्पणियाँ ।

2- विविध साहित्यिक विधाएँ-नाटक, उपन्यास आदि ।

3- व्यंग्य-विनोद प्रधान सामग्री ।

4- व्यावहारिक ज्ञान- उदाहरणार्थ सांप काटने, लू से बचने का उपाय, बारम्बिरा करने का उपाय आदि ।

5- समाचारावली ।

6- विज्ञापन, धन्यवाद, शोकसंवेदना आदि ।

7- पत्र एवं टिप्पणियाँ ।

8- पुस्तक-पत्र आदि की समीक्षा ।

9- शतरंज आदि खेलों की चालें ।

पत्र-पत्रिकाओं में तब महिलाओं, बालकों आदि के लिए अलग से कोई स्तंभ नहीं होता था। व्यंग्य-चित्र आदि का भी अभाव था।

सामग्री-चयन- दैनिक समाचार पत्रों में जहाँ संपादकीय पृष्ठ पत्र की आत्मा होता है वहीं मासिक, साप्ताहिक तथा पाक्षिक आदि पत्रिकाओं में निश्चित लंबी अवधि की नियतकालिकता और उद्देश्यपरकता के कारण समाचारों की अपेक्षा विचार-लेखों तथा विविध साहित्यिक विधाओं को प्रधानता दी जाती है। वस्तुतः विवेच्यकालीन पत्र-पत्रिकाओं में समसामयिक, स्थायी एवं शोधपरक सामग्री का समुचित सम्मिश्रण रहता था। पाक्षिक-मासिक तथा साप्ताहिक पत्रों की सामग्री दैनिक की अपेक्षा अधिक सरस, गंभीर एवं स्थायी महत्व की थी "जैसे लेख सदैव अजर-अमर, चिर यौवन सम्पन्न और जब पढ़ो तब नये मान पड़ते हैं।[1]

अतः विवेच्यकालीन पत्र-पत्रिकाओं में हल्की-फुल्की मनोरंजक सामग्री के साथ उच्चस्तरीय शाश्वत साहित्यिक विधाओं का भी चयन किया गया था। सामग्री चयन की दृष्टि से 1851-1900 ई0 के काल की पत्रकारिता की सामग्री साधारणतया साहित्य-राजनीति एवं सामाजिक सुधार संबंधी विषयसामग्री और उद्भावनाओं से सम्पन्न थी तथा वे जीवंत सोद्देश्यपूर्ण राष्ट्रीय पत्रकारिता का आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती हैं।

पत्रकारिता जनजीवन से जुड़ी होने के कारण राजनीति और साहित्य को परस्पर पूरक मान कर उनको समान महत्व देती थी। "सारसुधानिधि" साप्ताहिक] की निम्नांकित विषय-सूची से विदग्ध प्रौढ़ साहित्यिक स्तर, विषय-वैविध्य एवं राजनीतिक प्रतिबद्धता का अनुमान लगाया जा सकता है -

विषय सूची	पृष्ठ संख्या सारसुधानिधि] 17फरवरी 1879
विज्ञापन सूचना	60
गोहत्यानिवारण तथा देशोपकार उद्देश्य	61
शास्त्र संबंधी नया आयन	62
स्वाधीनता और तेजस्विता	64

समाचारावली	65
काबुल की खबरें	66
योरोप के समाचार	67
स्वास्थ्य रक्षा	68
साहित्य	69
हिन्दू समाज	70
बाजार दर, सूचना, नियम	71
विज्ञापन	72

14. रूप- हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप दैनिक, साप्ताहिक, मासिक, तथा शोध पत्रों का मिश्रित रूप था। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के हिन्दी दैनिक समाचार पत्र एवं पत्रिकाओं के उद्देश्यों, रूप-सज्जा एवं विषय सामग्री में कोई भूलभूत अंतर नहीं था क्योंकि दैनिक पत्रों की संख्या बहुत कम थी। साप्ताहिक मासिक में भी दैनिक के समान समाचार संकलित रहता था। आधुनिक पत्र-पत्रिकाओं के समान उनके कार्यक्रम, योजना, कर्तव्य एवं अभिव्यंजना भिन्न नहीं थी।

15. लेखक- हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में सैकड़ों नामे-नामे भारतेन्दुयुगीन तथा द्विवेदीयुगीन साहित्यकारों भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, "प्रेमघन", लक्ष्मीराम मेहता, पं० अंबिका दत्त व्यास, नाथूराम प्रसाद मिश्र, बाबूमुकुंद गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास, बाबू देवकीनंदन खत्री, बाबू सीता राम, गोपाल राम गहमरी, महावीर प्रसाद द्विवेदी, देवकीनंदन खत्री, कार्तिक प्रसाद, श्यामसुंदर दास बी आदि की हजारों की संख्या में लिखी रचनात्मक एवं मननात्मक सामग्री मिलती है। नवोदित एवं प्रसिद्ध पत्रकार-लेखकों में दुर्गाप्रसाद मिश्र, लाला सीताराम, गोविंद नारायण मिश्र, परसन, पं० मोहनलाल पंड्या, बेनीराम भट्ट, पं० सकल नारायण पाठक, सदानंद मिश्र, सदानंद सनवाल, पं० लक्ष्मीशंकर मिश्र, नवीन चन्द्रराय, पं० बलदेव प्रसाद मिश्र, स्वामी सत्यानंद, पं० रामशंकर व्यास, पं० गोपीनारायण अग्निहोत्री, बाबू ठाकुर प्रसाद खत्री, अमृत लाल चक्रवर्ती, पं० रघुवीर प्रसाद द्विवेदी मनोधि समर्थदान आदि ने प्रायः विविध विषयों पर कलम चला कर गौरवपूर्ण पत्रकारिता सामग्री दी।

इस काल में अधिकतर लेख गुमनाम या अधूरे संक्षिप्त नामों से ही मिलते हैं उदाहरणार्थ क०प०, एक०दा०उ० जैसे, एक आर्य बंधु आदि इसी कारण सभी लेखकों के नाम स्पष्ट नहीं हो पाते। द्विवेदीयुगीन अधिकांश साहित्यकार-पत्रकारों की रचनाएँ इस काल की पत्र-पत्रिकाओं में बहुतायत से मिलती हैं। अधिकांश पत्रिकाओं के लेखक पत्र-पत्रिकाओं के संपादक तथा भारतेन्दुयुगीन साहित्य के सर्जक थे लेकिन कुछ नवोदित ऐसे लेखक भी थे जिनके प्रेरणा स्रोत भारतेन्दु, बालकृष्ण भट्ट, प्रताप नारायण मिश्र आदि साहित्यकार थे।

16 विज्ञापन- विज्ञापन पत्रकारिता का प्रमुख आय स्रोत तथा अंग होता है जिसकी उपेक्षा कोई भी पत्र-पत्रिका नहीं कर सकती। विवेच्य पत्र-पत्रिकाओं में जहाँ पौष्टिक दवाओं, पुस्तकों, पत्रों, साबुन, इत्र, विज्ञप्ति आदि उपभोक्ता सामग्री के विज्ञापन प्रकाशित होते थे, वहाँ तत्कालीन प्रकाशित विज्ञापन पुस्तकों के विज्ञापन भी बहुत बड़ी संख्या में प्रकाशित होते थे। इन विज्ञापनों के माध्यम से तत्कालीन जागृत होती शैक्षिक तथा सामाजिक चेतना दिग्दर्शित हो जाती है। आधुनिक तकनीक का दीक्षा-रूपण भी इन्हीं पत्र-पुस्तकों में की गई विज्ञापन-तकनीक से हुआ था।

यद्यपि तब भी पत्र-संचालकों के लिए विज्ञापन आकर्षण की वस्तु थे किन्तु विज्ञापित वस्तु या पुस्तक आदि के अनहितकारक या अश्लील होने पर उस पर तीखा निर्मम प्रहार किया जाता था तब विज्ञापन से होने वाली आय को तौलकर के समय ये पत्रिकाएँ तनिक भी महत्व नहीं देती थी उदाहरणार्थ "भंवरी" नाम की पुस्तक का "विज्ञापन इस तथ्य की पुष्टि करता है "यह उपन्यास एस० एन० आर्य एण्ड कं० से मिल सकता है इस उपन्यास के किस्से में चाहे जो हो हर पेज के फुटनोट पर कंपनी ने इसे कमाने की तिकड़म बहुत अच्छी निकाली है। --- स्वार्थ कैसे साधना होता है यह पुस्तक इसका उदाहरण है दवाइयों का विज्ञापन यहाँ भद्दे अश्लील शब्दों में किया गया है।"[1]

1- हिन्दी प्रदीप जून 1906 पृष्ठ 19

विज्ञापन

बिहार-बंधु

(डेमीफ़ालियो ८ पृष्ठ)

इस साप्ताहिक समाचार पत्र के विषय में "कमखर्च बालानशीन" की मसल बहुत ठीक २ घटती है। बढ़िया काग़ज़ पर खूब सफ़ाई के साथ छपकर ठीक समय पर निकलना; रिडर, प्रेसकरेक्टर, आदि की भे जी हुई, और दूसरी तुरंत की रटकी २ गरमा गरम खबरें; और कारस्पाण्डेण्टों की नोक झोंक वाली बातों, और चुटकुलों का छपना आदि के सिवाय-इस समाचार पत्र की इन दो बातों के लिये विशेषकर बड़ी बड़ाई की जाती है। एक तो यह कि इसमें बड़ी ढिठाई के साथ पोलिटिकल अर्थात् राजनैतिक विषय बहुत बार छपा करते हैं; और दूसरी बात यह है कि भाषा इसकी इतनी सीधी है कि मानो रोजमर्रे की बोलचाल, और मनोहर इतनी कि जो पढ़ते हैं मधुर भाषी मित्र से बातचीत करने का मज़ा उठाते हैं।

वार्षिक मूल्य, अग्रिम, डाकमहसूल समेत कुल ८)रु० पता "बिहारबन्धु" छापाखाना, बांकीपुर, पटना।

एकजोड़ अंगूठी

नाम अनूठा किस्सा, जो "बिहारबंधु" में सारा एकबार छपगया है, फिर छपकर पुस्तक के आकार में तय्यार होगया है, जिन साहिबों को मंगाना हो "बिहारबंधु" छापाखाना बांकीपुर से मंगालें।

कीमत फ़ी जिल्द आठ आने

डाकमहसूल दो आने

सज्जाद-सुमन

(नाटक)

यह नये ढंग का किस्सा नागरी हर्फ़ और उर्दू बोलचाल में छपा है। इसमें जगह बंगाली, अंग्रेजी और देहाती लोगों की गंवारी बोलचाल भी है। बहुतेरी जगहों में ये सा लिखा गया है कि जिसके पढ़ने से पढ़ने वाला कैसा ही उदास क्यों न हो ज़रूर ही हंस पड़ेगा। और बाज़े जगहों में ऐसे बयान हैं कि उनके पढ़ने से संगदिल से संगदिल की आंखें भी डबडबा आती हैं। मजा तो यह कि वे दोनों एक बूंद आंसू टपकाये आगे बढ़ जायें। दाम सिर्फ ५ रु० डाकमहसूल ≡ मैनेजर, बिहारबंधु, छापाखाना, बांकीपुर

धाई-शिक्षा

पहला हिस्सा

अच्छे सुंदर नागरी हर्फ़ों में छपकर तय्यार है। इसमें बातचीत के तौर पर हमल रहने के वक़्त से लेकर लड़का होजाने तक और लड़कों की बीमारियों का हाल, और उन की दवायें बहुत साफ़ साफ़ और सीधी ज़बान में लिखी हैं।

3.2. संपादकीय-सामग्री :

3.2.1. संपादन-कला एवं दायित्व- "संपादन" शब्द का व्युत्पत्तिपरक अर्थ [सम+णिच+ल्युट्] प्रस्तुत करना, पुस्तक या सामयिक पत्र आदि का क्रमपाठ ठीक करके उसे संकलित करना है। [एडिटिंग] ।[1] "प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन आफ बुक्स एक्ट" [1867] के अनुसार "समाचारपत्र में जो कुछ भी प्रकाशित होता है, उसका चयन एवं निर्णय करने वाला व्यक्ति संपादक कहलाता है ।[2]

पत्रकारिता में संपादक का कार्य सर्वाधिक दायित्वपूर्ण और जोखिम भरा होता है ।[3] संपादन-कला का आदर्श यही है कि वह लोक-हित को सामग्री को सर्वोपरि महत्व दे और निस्पृह अनुभवों द्वारा जन-जीवन को सजग एवं गतिशील बनाये । "संपादक की द्वितीयव्यता" लेख में "हिन्दी प्रदीप" के कर्तव्यनिष्ठ संपादक बालकृष्ण भट्ट ने संपादकीय दायित्व पर विचार किया था, "शासन की प्रभु शक्ति में संपादकों की तृतीय श्रेणी [Third Power] है जो योग्यतापूर्वक संपादक का काम निबाहा जाय तो बड़ा नाजुक काम भी है इसमें बड़ी गंभीरता पत्ते सिरे की योग्यता और युक्त-अयुक्त का विचार होना बड़ा आवश्यक है । स्वार्थ-त्याग और समभाव की भी जरूरत है । - - - "न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीरा" इसका पूरा उपयोग संपादक के काम में ही देखा जाता है ।"[4]

19वीं शती के ही भारतीय-पत्र "अभ्युदय पत्रिका" ने भी संपादक की महत्ता और दायित्व पर समुचित प्रकाश डाला था, "संपादक अपने देश, राजा

1- संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ [तृतीय संस्करण] 1967 पृष्ठ 1232

2- डा० रामचन्द्र तिवारी, पत्रिका संपादन-कला पृष्ठ 58

3- "संपादक का समाज पर गहरा प्रभाव पड़ता है - - यदि पत्रों का लक्ष्य केवल धन कमाना नहीं है यदि उनका आदर्श जन-हित की रक्षा करना तथा साधारण मनुष्य का साथी, मित्र, उपदेष्टा तथा रक्षक होना है तो पत्र-प्रकाशक संपादक होने के नाते, उस विशाल जनसमूह के प्रति उत्तरदायी हैं"-कन्हैयालाल मिश्र पाठी पत्र और पत्रकार, पृ० 188-189

4- हिन्दी-प्रदीप, दिसंबर, 1906

और साधारण का प्रतिनिधि है, इसलिए राजा को चाहिए कि उसका मान अच्छी तरह से करे और संपादक का भी यही काम है कि यथार्थ और सत्य-सत्य परामर्श राजा को देवे और ऐसा करने से देशोन्नति भलीभाँति हो सकती है। जो काम दस-पाँच हजार रुपये पाने वाले मंत्री से चल सकता है वह काम योग्य संपादक से होता है।"[1]

अतः पत्र की नीति सुस्थिर करना, समयानुकूल तर्कपूर्ण संपादकीय सामग्री संशोधित करके प्रकाशित करना तथा जनसमूह के प्रति उत्तरदायी होना संपादक के प्रमुख कर्तव्य एवं दायित्व माने जा सकते हैं। साधारण-कालीन पत्र-पत्रिकाओं की संपादकीय-सामग्री में निम्नलिखित स्तंभ होते थे -

1- संपादकीय आलेख एवं टिप्पणियाँ

2- व्यंग्य-विनोदात्मक स्तंभ

3- संपादक के नाम पाठकों के पत्र

4- पुस्तक-पत्र समीक्षा

5- अन्य लेख, उद्धरण, शोक-संवाद आदि

संपादकीय आलेख एवं टिप्पणियाँ - संपादकीय आलेख एवं टिप्पणियाँ पत्र-पत्रिकाओं के व्यक्तित्व, नीति एवं विचारों के द्योतक होते हैं ये प्रबुद्ध पाठकों को क्रमबद्ध रूप में, पृष्ठभूमि सहित विश्लेषित एवं सुविचारित सामग्री प्रदान करते हैं। सामान्य पाठक जिन घटनाओं तथा तथ्य-गर्भित विचार-शृंखला को ठीक प्रकार से समझ नहीं पाता संपादक उन्हें स्पष्ट शैली और सरल मर्यादित शब्दों में प्रस्तुत कर बोधगम्य बनाता है। वह सम्पूर्ण घटना-चक्र के तीव्र-प्रवाह को मोड़ कर पाठकों मस्तिष्क में आद्योपांत चित्र साकार कर देता है।[2]

1- ग्रीष्म पत्रिका, 1881 प्रथम उपक्रम पृष्ठ 5-6

2- "संपादक कठिन विषयों को भी अन्धा के समय पानी में तैरती नौका बना देता है। संपादकीय लेखन की दृष्टि से वही संपादक सर्वाधिक सफल होता है जो स्पष्ट, सशक्त तथा प्रत्यक्ष सरल-सुबोध शैली अपनाता है। किसी तथ्य को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत नहीं करता या गलत बात कहे बिना तर्क-संगत विचार प्रस्तुत करता है"- आर्थ० एफ० नोट, न्यू सर्वे आफ जर्नलिज्म, पृ0259-60

संपादकीय अग्रलेख सामयिकता को महत्व देते हुए भी भविष्य की ओर संकेत करते हैं। संपादकीय सामग्री की उपयोगिता तथा दायित्व संक्रांति युग में और भी अधिक बढ़ जाता है क्योंकि राष्ट्र की प्रशासनिक नयर नीतियाँ, सामाजिक अंतर्विरोध, आर्थिक-धार्मिक विषमताएँ जन-जीवन के विचारों-भावों को उद्वेलित करने लगती हैं। उस समय संपादकीय अग्रलेख आदि समस्त का मार्ग प्रशस्त करके उन्हें दिशाहीन होने से बचाते हैं।

"जागरण युग" की हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के अग्रलेखों में राष्ट्रीय स्वर प्रखर है। उत्तर उन्नीसवीं शती के नवीन पुरातन के संधि युग में पत्रों के स्वतंत्र अग्रलेखों और बेबाक टिप्पणियों ने अज्ञानांधकार में भटकते-जूझते पाठकों में ज्ञान का प्रखर प्रकाश एवं आत्मविश्वास उद्दीप्त किया था। विभिन्न समस्याओं पर कुछ प्रतिनिधि अग्रलेख द्रष्टव्य हैं :

2. अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर अग्रलेख- 19वीं शती विश्व और भारत की राजनीति में गहरी उथल-पुथल से पूर्ण सदी था। हिन्दी के राष्ट्रवादी पत्रों ने विश्व के देशों जापान, चीन, रूस, आयरलैंड, अमेरिका आदि की वैज्ञानिक-राजनीतिक-आर्थिक गतिविधियों तथा अन्य देशों के साथ ब्रिटिश साम्राज्य के उपनिवेशिक संबंधों गुण-दोष से भरे पैने अग्रलेख प्रकाशित किये थे। इनमें प्रायः सभी आर्थिक-राजनीतिक मुद्दों तथा अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों आदि को सफलता के साथ उठाया गया था।

रूस के जार का साम्राज्यवादी विस्तार-नीति की भर्त्सना और रूसियों के साहस पर स्वतंत्र संपादकीय विचार-लेख "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित हुआ था, "रूस-रूस की लड़ाई की सूरत बदलने से हमको दो बड़ी भारी बात मालूम हुई। एक यह कि रूसी जैसे साहसी, सूरमा और उत्साही हैं। दूसरे यह कि रूसियों में कितना बल और युक्ति है। - - - ये वीर साहसी मुसलमान यूरप के एक महाबली राजा का मुकाबला कर रहे हैं और अपनी लगातार विजय से लोगों को निश्चय करा दिया कि रूसी लोग खाने के लिए ऐसे सुगम ग्रास नहीं हैं वरन् एक ऐसी कड़ी हड्डी हैं जो गले से उतारते ही सब गले को फाड़ देगी।— अब तो लोग

यह डरते है कि कहीं ऐसा न हो कि रूसी हिन्दुस्तान पर चढ़ाई कर इस देश को ले लेंगे, वे भी इस भय को अपने जी से दूर करें।[1]

"सारसुधानिधि" राजनीति प्रधान सामग्री के प्रकाशन को सर्वाधिक महत्व देती थी। उसमें "उन्नीसवी शताब्दी और ये सभ्यता" शीर्षक में संपादक सदानंदमिश्र ने युद्धों की विभीषिका और आधुनिक सभ्यता का व्यंग्यपूर्ण रेखांकन किया है "क्या इसी को सभ्यता, राजनीति, धर्मनीति और दयावृत्ति कहते हैं। --- नित फरासीस और जर्मन का युद्ध, रूस और टर्की का युद्ध, अफगान और बुखारा का युद्ध, जुलू और अंग्रेजों का युद्ध, ये सब युद्धों से स्पष्ट प्रमाण होता है कि सभ्य और असभ्य, राजा और शेर इनमें कुछ फरक नहीं है। --- हम लोग प्राचीन काल को असभ्य कहते हैं परन्तु अबके जिनीयस राजाओं का व्यवहार देख कर संदेह होता है कि प्राचीनकाल असभ्य था या अपका समय असभ्य है क्योंकि प्राचीन काल में युद्ध हुआ था सही, पर वो युद्ध परेतु अर्थात् हिस्सा पत्ती के कारण हुआ था परन्तु संप्रति —जुलू लोग का अपराध यही है वो स्वाधीन हैं, सेंट लुइसा उपसागर उनके पास है। — अंग्रेजों की ये इच्छा कि उपसागर जुलू छोड़ दें, हथियार रख दे और इन लोगों के अनुग्रह के आसरे जीते रहें। — सत पचीस बरस के भीतर अब के सभ्य राजाओं की युद्ध-तृष्णा से कितना नुकसान हुआ है इसके उदाहरण के लिये एशिया का एक समाचार पत्र कहता है कि इस पचीस बरस में — सब समेत सतरे लाख, अड़तालीस हजार आदमी मारे गये। इन सब युद्धों में सब मिला के 2743000000 दो अर्ब सात अर्ब और तिहत्तर करोड़ रुपये खर्च हुए।अभी भी हिंदुस्तान का गदर इतने जुदा है तिस पर भी युद्ध। युद्ध। — इधर काबुल। उधर जुलू। ये ही क्या सभ्यता का स्वरूप है।[2]

अतः तत्कालीन पत्रकारिता ने विश्व के स्वतंत्र देशों की स्वाधीनता अपहरण की साम्राज्यवादी विस्तार-नीति के विरुद्ध आवाज उठायी। उनकी सहानुभूति सदैव स्वाधीनता के लिए संघर्षरत राष्ट्रों के साथ रही। इन पत्रों ने काबुल जुलू जैसे युद्धों के औचित्य और उनसे हुई अपरिमित जन-धन हानि पर प्रहार कर जन-मानस को सचेत किया।

1- हिन्दी प्रदीप, सितंबर, 1877 पृष्ठ 13-14
2- सारसुधानिधि, मार्च, 1879 पृष्ठ 86 [भाग 1 अंक 8]

राष्ट्रीय पहलुओं पर अग्रलेख - विवेच्यकालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय प्रश्नों और महत्वपूर्ण समस्याओं के प्रति स्पष्टवादिता, सुस्पष्ट दृष्टिकोण रखती थीं। इनकी संपादकीय सामग्री राष्ट्रीय एकता, स्वदेशी, कर-दुर्भिक्ष तथा प्रशासनिक अन्याय संबंधी अग्रलेखों से लबालब है। अपने युग, परिवेश और आवश्यकताओं के अनुकूल इनके वैचारिक अग्रलेखों का बौद्धिक विश्लेषण कितना सार्थक और उत्तेजनापूर्ण होता था इसका अनुमान कतिपय राष्ट्रीय अग्रलेखों से लगाया जा सकता है।

भव्य ऐतिहासिक दरबारों [1877, 1880] का आयोजन करके लार्ड लिटन और लार्ड रिपन आदि ने जन-असंतोष को और अधिक भड़का दिया था क्योंकि उस समय भारत लगातार दुर्भिक्षों और आर्थिक विपत्तियों से घिरा हुआ था।[1] "सार विनोद" में "दिल्ली दरबार" अग्रलेख में भव्य दरबारों की सार्थकता और उसकी भवितव्य को भांप कर भारतीयों को आगाह किया था "हमारे समझ में तो ऐसा आता है कि यह दर्बार हमारे देश के निर्बुद्धि राजा-महाराजाओं को फुसलाने के लिए किया गया था। इस प्रकार तो हम लोग भी अपने लड़कों को भाँति-2 का खेलौना देकर फुसला सकते हैं। — वैसे ही तोपों की सलामी और भाँति-2 के खिताब और डालियाँ देकर इन राजाओं को सर्कार ने फुसला लिया। भला हम यह पूछते हैं कि सेंधियों को "आनरेरी जनरल" अथवा "अवनीराधिपति" को "सिपहसरदिंद" और जैपुर बूंदी प्रभृति को "कौंसिलर" की उपाधि से क्या लाभ हुआ? हाँ इन महाराजाओं को जो परिचित्र स्वच्छंदता का आभास था वह भी जाता रहा। आज पड़ने पर सिंधे युद्ध संधी अथवा युद्ध संधी सहायता के लिए अब पहिले ये ही लोग पूछे जायेंगे। इन उपाधियों का फल तो

1- "उन्होंने "लार्ड लिटन" भारतवर्ष में आकर ऐसा कोई काम नहीं किया कि जिससे सारा भारत प्रसन्न हुआ होता क्योंकि दक्षिण का दुर्भिक्ष इनके समय उपस्थित हुआ था परन्तु महामान्य ने प्रारम्भ ही में दिल्ली के महादर्बार का ऐसा आडंबर किया कि उस कारण इस दुर्भिक्ष का बंदोबस्त ऐसा न हो सका कि प्रजा का जीवन बचता"। - सारसुधानिधि 29 दिसंबर 1879 पृष्ठ 578

इन्हें जब कहो कि लोगों को अधिक सेना भर्ती करने का आज्ञा मिल जाती — अथवा हिन्दुस्तानियों के जो योग्य पुरुष हैं वे काले-गोरे को न निर्वे किशयना बराबर से सिविल सर्विस का अधिकार पावें।"[1]

"ब्राह्मण" ने "शान्तिराम की कचहरी में" संपादकीय लेख में रंगभेद-नीति और अंग्रेजी न्याय-व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया था "हाय! हमारे काले रंग की यह दुर्दशा। कोई कैसा ही योग्य पुरुष क्यों न हो तो भी इस अभागे "नेटिव" नाम के कारण कुछ अंकता ही नहीं। हमारे बाबू साहब [सुरेन्द्र नाथ बनर्जी] को आ गाँसना नामंजूर हुआ और वे हाईकोर्ट की अवमानना का दोष लगाकर दो महीने के लिए कारागार भेज दिये गये"।[2]

ब्रिटिश सरकार की कर संबंधी नीति के दुष्प्रभाव से सम्पूर्ण निर्धन भारतीय जनता का जीवन दुष्कर तथा कष्टकर हो उठा था। "उचितवक्ता" ने लार्डलिटन का प्रतिकार करते हुए लिखा, "इस दुःखद टैक्स से गवर्नमेन्ट को सामान्य सी आमदनी है परन्तु बेचारी प्रजा को कितने अत्याचार सहने पड़ते हैं, इन्हें लिख नहीं सकते।"[3]

लार्ड लिटन काबुल आदि के युद्ध-व्यय की क्षतिपूर्ति भारत की जनता से वसूल करना चाहते थे। भारत मित्र, सारसुधानिधि आदि अधिकांश राजनीति प्रधान पत्रों ने इसका स्पष्ट विरोध किया था।[4] तत्कालीन कुछ निर्भीक राष्ट्रीय अग्रलेखों में "काबुल का युद्ध" [सारसुधानिधि 20 जनवरी 1879] भारतीय प्रजा और युद्धिय राजनीति [12 मई 1879 सारसुधानिधि] भारतवर्ष से इंग्लैंड को लाभ होता है या नहीं? [उचित वक्ता 11 सितंबर 1880] अपने को जाँच नहीं पाँच पोर तीन चले [19 सितम्बर 1878] आदि थे।

स्थानीय समस्याएँ - स्थानीय समस्याओं से पाठकों का जीवन सबसे अधिक प्रभावित होता है क्योंकि पाठकों की सर्वाधिक अभिरुचि आसपास के परिवेश और समस्याओं में होती है। उत्तर 19वीं शती के पत्र-संपादक स्थानीय जनता के दुःख-दर्द को प्रकट करना पहला दायित्व समझता था। "हिन्दी प्रदीप" ने प्रयाग शहर की

1- सत्य विनोद, फरवरी 1877 पृष्ठ 3
2- उचित वक्ता, 17 जून, 1882
3- भारत मित्र 1878 [21-22 संख्या] उद्धृत कृष्णबिहारी मिश्र हिन्दी पत्रकारिता पृष्ठ 112

कुव्यवस्था, मेलों में पुलिस और प्रशासन के अत्याचारों कर उघाड़ कर जनता के सामने रखा "मि० पिंसन मजिस्ट्रेट इलाहाबाद जिनके सिपुर्द इस मेले का इंतिजाम किया गया था किसी पुलिस इन्सपेक्टर की बहुत तारीफ अपने रिपोर्ट में उनकी कर्तव्यपरायणता का भरसक तोषताप की है और उन्हें पुलिस इंस्पेक्टर को 500 रुपये इनाम की सिफारिश की है। जिसी भलमनसी लील जाना इसी को कहते हैं। — क्या पंडे, क्या दुकानदार कोई इस मेले के इंतिजाम से खुश नहीं रहे बल्कि जो अत्याचार लोगों पर हुआ है उसे कहते लिखते कंपकंपी आती है।"[1]

"भारत जीवन" ने आत्मशासन प्रणाली के अन्तर्गत काशी के ही योग्य सभापति के निर्वाचन पर जोर देते हुए कहा "आत्मशासन प्रणाली जो हमें मिली है तो उचित यह कि उसका यथोचित उपयोग करें — क्या इतने बड़े नगर में कोई एतद्देशीय मनुष्य सभापति के योग्य न मिलेगा। — काशी जो बड़ा नगर है और विद्या तथा योग्य पुरुषों का घर है, हम पूछते हैं कि क्यों नहीं हमारे सुयोग्य रईस राजा शिवप्रसादनारायण सिंहजी को यह पद दिया जाता। — या हमारे सुयोग्य भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ही को नियत कर दीजिए वे किसी से विद्या, बुद्धि, मान या महत्व में कम नहीं।"[2]

"सभ्य विनोद" ने स्थानीय कुली और मजदूरों की समस्या को उठाते हुए लिखा "बेचारे कुली और मजदूर कहते हैं कि पहिले घास-लकड़ी बेच कर निर्वाह करते थे अब वह भी छीना गया, जंगल अपने आधीन कर लिया, पत्ता तक तोड़ने की आज्ञा न रही।— लकड़हारों की अपेक्षा मोल लेने वालों पर योग्य महसूल लगाया जाय तो कदाचित ऐसी तंगी लकड़ियों की नहीं रहेगी"।[3]

इस प्रकार तत्कालीन पत्रकारिता ने अग्रलेखों के माध्यम से युगीनदायित्व तथा चिंतन की युगानुकूल आवश्यकता को पूर्ण कर जन-जागरण का प्रयत्न किया। उनका तुलनात्मक चिंतन, निष्पक्ष विवेचन, तलस्पर्शी बौद्धिक दृष्टि ने जनमत को

1- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर 1882 पृष्ठ 14

2- भारतजीवन 17 मार्च 1884

3- सभ्यविनोद 1 मई 1876 पृष्ठ 6

प्रभावित कर राष्ट्रहित के लिए संगठित किया ।

3. व्यंग्य-विनोदात्मक स्तंभ- यह पत्र-पत्रिकाओं की सामग्री का सबसे रोचक तथा उपयोगी स्तंभ होता है । प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ सरसता और लोकप्रियता बनाये रखने के लिए मनोरंजक सामग्री को अवश्य प्रकाशित करती हैं । इस सशक्त हास-परिहास पूर्ण स्तंभ में बड़ी से बड़ी कटु-तीखी बात ऐसे हल्की-फुल्की कटाक्ष करती सुरुचिपूर्ण भाषा और सर्वग्राह्य रोचक शैली में कह दी जाती है कि जो पाठकों का भरपूर मनोरंजन करने के साथ अचूक तीर वार भी कर जाती है ।

विवेच्यकालीन पत्र-पत्रिकाओं की व्यंग्य-विनोदात्मक सामग्री भी जन-जागृति फैलाने का एक अस्त्र थी । इनमें चुटकुलों, लटकों, विभिन्न हास्य-व्यंग्यपूर्ण अभियानों के माध्यम से सामाजिक विसंगतियों, युगीन अन्तर्विरोध तथा विदेशी शासन की कुटिल चालों को समझने के लिए पाठकों को अपनी-आत्माएँ एक नहीं करना पड़ता था। ये पत्र-पत्रिकाएँ राजनीतिक-धार्मिक-सामाजिक विषयों पर मारक चोट करके भी ब्रिटिश-कोप तथा सामाजिक-बहिष्कार से साफ बच निकलती थीं । पत्रकारिता में प्रकाशित साहित्य का विशिष्ट गुण हास्य-व्यंग्य पूर्ण सजीव लेखन है । उनका विनोद, चिंदादिली और परिहास देखो ही बनता है ।

तत्कालीन पत्रों ने विनोद और व्यंग्य से संबन्धित दमदार "अभियानों" के माध्यम से पश्चिमोन्मुख युवावर्ग, विदेशी सत्ता, भारतीय दुर्बलताओं और युगीन विषम परिवेश पर कटाक्ष करने का विलक्षण ढंग निकाला था । हास्य-व्यंग्य पूर्ण अभियानों की मीठी-चरपरी चुटकी की चुभन पाठकों को अंदर तक हिला जाती है। कुछ रोचक हास्य-व्यंग्यात्मक रोचक सामग्री इस प्रकार हैं ।

नया अभियान "अवध पंच" के ढंग पर - 1

अमीर : हिंदुस्तान के नवाब ।

आलस्य : इन लोगों की नन्द-घूंटी ।

1- हिन्दी प्रदीप, दिसंबर 1878 पृष्ठ 10

और देखिए सारसुधानिधि 1० दिसंबर 1880

एका : जिसका बीज यहाँ बोया नहीं गया।

पढ़े-लिखे : कुलियों से भी सस्ते, कौड़ी के तीन-तीन।

बेरोजगारी : अंग्रेजी राज की शोभा।

साहब लोग : दो-ले, किरानी पुरेशियन।

राजा : शतरंज के मोहरे।

पण्डित : फूल ऑफ ट्वेन्टीथ सेंचुरी।

जाति : हिन्दुस्तानियों को अंधी कोठरी में बंद रखने की तदबीर।

नये शब्दों के नये-नये अर्थ -1

कलयुग के देवता : विलायत की स्वर्ग भूमि के निवासी।

भाग्य के सिकन्दर : मैनचेस्टर के जुलाहे।

नरक : दुर्भिक्ष, कर-पीड़ित भारत की वसुंधरा।

पवित्रतीर्थ : होटल।

अंग्रेजीभाषा : संस्कृत या हिन्दी।

शुरू लाल के कुछ के लतीफे -2

जिसकी लाठी उसकी भैंस : मिस्र को फतहयाबी।

धोबी का कुत्ता घर का न घाट का : अधपढ़े अंग्रेजी वाँ।

कौड़ी के तीन-तीन : हिन्दी के अखबार और एडीटर।

बन्दर के हाथ नारियल : हिंदुस्तानियों के लिए सेल्फ गवर्नमेंट।

"हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित उपर्युक्त व्यंग्यात्मक अभिधानों के माध्यम से आधुनिक प्रगतिशील दृष्टिकोण, तत्कालीन युगीन बुराइयों और यथार्थ की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। प्रायः सभी साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं ने हास्य-व्यंग्यपूर्ण अभिधानों के प्रकाशन द्वारा गतिशीलता, अस्तित्वता, अंग्रेज अंधभक्ति तथा पाश्चात्य सभ्यता आदि पर तीखी-मीठी चुटकी ली है और पाठकों को सुधार के लिए उत्तेजित किया गया है।

1- हिन्दी प्रदीप, जनवरी-फरवरी-मार्च-अप्रैल 1896 पृष्ठ 23

2- उपरिवत्, जनवरी 1883 पृष्ठ 23-24

"पीयूष प्रवाह", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका", "ब्राह्मण", "भारतेन्दु", "हिन्दी प्रदीप" आदि पत्रिकाओं में हास्य-व्यंग्य सामग्री भरपूर मात्रा में प्रकाशित हुई थी । "पियूष प्रवाह" में "अति सर्वत्र वर्जित" (25 अप्रैल 1884) "दिहातियों के विचित्र सिद्धांत" (25 मई 1884) "किस-किस का कहा माने" (25 जून 1884) "हम भी आपकी कुछ कहाँ तक गिनायें" (25 मई 1884) आदि में सामयिक राजनीतिक-सांस्कृतिक विडंबनाओं पर गहरी चोट की गई है । "दिहातियों के विचित्र सिद्धांत" का कुछ अंश द्रष्टव्य है:

(पुलिस) हे सत नारायण बाबा कोई रुपये वाला फँसे ।

(मतलबी) किसी के घर आग लगे या पत्थर पड़े हमें क्या ।

(अफसर) हमारे पीछे पीछे फिरो, हमारी खुशामद करो, हम तुम्हारे मालिक, तुम्हारे गवर्नर जनरल, हर तरह से डरते रहो, नहीं फाड़ खायेंगे ।

"भारतजीवन" में प्रकाशित "क्यों दुखले? (13 जून, 1887 की व्यंग्यात्मक अभिधान शैली का अंदाज भी "हिन्दी प्रदीप" और "पियूष प्रवाह" से मिलता-जुलता है:

क्यों दुखले ? भारतवासी । फूट और बैर जाने से ।।
लड़ाई । 'हनु परीक्षा', 'धाइखिल' आदि - आदि पुस्तकों के विरोध से ।।
आर्यसमाजी (दयानंदी) देश चिंता व डर-डर से ।।
यवन (मुसलमान) अपना राज्य न रहने से ।।
कृषिहार । अकाल पड़ने से ।।
भले आदमी । भारत पुलिस देवता के जाल में पड़ जाने से ।।
हिन्दी रसिक । प्रेमपात्र भारतेन्दुबाबू जी हरिश्चन्द्र तथा लाला श्री निवासदास के वैकुंठवास होने से ।।[2]

1- पियूष प्रवाह, 25 मई 1884 पृष्ठ 5

2- भारतजीवन, 13 जून 1887 पृष्ठ 6

"ब्राह्मण" में "गप्पाप" "प्रश्नोत्तर" आदि स्तंभों में तरल व्यंग्यात्मक सामग्री का चयन किया जाता था। "गप्पाप" का यह चुटकुला ईसाई मिशनरियों की कमजोरियों पर कितनी तीखी चोट कर जाता है, "एक पादरी साहब एक हिन्दू समुदाय के सामने बड़े जोर-शोर से छुआछूत का खंडन कर-2 कह रहे थे। देखो भाई। खाने-पीने से धर्म नहीं जाता —— इस पर एक हिंदु भाई ने कहा – "दो बोतलें शराब की चढ़ा जाइये फिर देखें आपका धर्म कैसे नहीं जाता। ईश्वर चाहेगा तो धर्म-अर्थ का विचार ही जाता रहेगा, धर्म की तो बात ही क्या।"[1]

'हरिश्चन्द्र मैगजीन' में हास्य व्यंग्यात्मक कविता के माध्यम से युवा पीढ़ी पर आक्रोश-आलोचना और जागरण के लिए नया स्टाइल निकाला था :[2]

I dobod say any suchchee baten let the
India be barbad
Ever ewar hit Hoojur sahab subkuch such
Hai bara vishad
Daily banda Hukmi basir karega
Hakim ka darbar ——
__ Though beef bure chis fore Hindoo
But I eat for sake of thou
I din't believe on Hindoo idols, but I
worship only to show———

इसी प्रकार "यूरोपीय के प्रति भारतवर्षीय के प्रश्न" में "यदि धन में हैं तो उसे फाँसी देकर क्यों मारते हैं। —— यदि आप परमार्थी है तो आत्मस्वार्थ में सर्वदा क्यों तत्पर रहते हैं। और चाहे कैसा अनर्थ हुआ करे आप अपने अर्थ को ही साधते रहते हैं अतएव आप किसी में नहीं पर प्रयोजन में पूरे हैं।" अंग्रेज शासकों

1- ब्राह्मण खण्ड 9, संख्या 8 पृष्ठ 16

2- हरिश्चन्द्र मैगजीन 15 मई 1874 पृष्ठ 214-215

3- हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 अक्टूबर 1873 पृष्ठ 9-10

की असलियत को व्यंग्यात्मक प्रश्नोत्तर शैली में बोल कर रख दिया गया है। इस प्रकार इस स्तंभ में गंभीर राजनीतिक दबाव कर सामयिक राजनीति और सामाजिक कमजोरियों को निशाना बनाया गया था।

4. पाठकों के पत्र- संपादक के नाम प्रकाशित पत्रों में पाठकों की प्रतिक्रिया, मन की बात और सामयिक विविध विषयों पर राय कुल कर व्यक्त होती है। वस्तुतः यह जन-स्तंभ अखबार में प्रत्येक नागरिक के लिए खुला मंच होता है जो जनसामान्य के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। पत्र-पत्रिका की गरिमा इसी में होती है कि वह कटु आलोचकों तथा पक्ष-विपक्ष दोनों के पत्र प्रकाशित करें, किन्तु उनकी भाषा शिष्ट एवं शालीन होनी चाहिये क्योंकि जनता भावुक और संवेदनशील अधिक होती है, तर्कशील कम। ये पत्र कभी-कभी जन-आंदोलन का रूप धारण कर लेते हैं।[1]

उत्तर उन्नीसवी शती के जागरण काल में संपादकों और पाठकों में सांध्या-सख्या रिश्ता था। पाठक संपादक को अपना अंतरंग मित्र और हितैषी समझ कर बिना किसी दुराव के अधिकार के साथ कभी उनको प्रशंसात्मक पत्र लिखते, कभी शिकायत, गिला-शिकवा करते और कभी अहम् राष्ट्रीय समस्याओं पर सीधे उद्गार व्यक्त करते। तत्कालीन पत्रों में सैकड़ों की संख्या में अत्यन्त सरल शैली में पत्र प्रकाशित हुए हैं। "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित एक मनोरंजक पत्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है।[2]:

मान्यवर, संपादक महोदय,

आपके प्रतिमास की सूचना देखकर मन में सन्देह होता है कि मैंने मूल्य दिया या नहीं। स्मरण शक्ति को बहुत कुछ उत्तेजना देता हूँ, — तब यह

1- सं0 वेद प्रताप वैदिक हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम पृष्ठ 461

2- हिन्दी प्रदीप, जून 1880

गुनगुना कर कहती है—— अरे, रहने दे, भकुआ संपादक तुझे मिले हैं। न देगा तो क्या तेरा नाम छाप देंगे।—— क्या तू ही अकेला है, बहुतेरे पड़े हैं, क्या तेरे ही देने से संपादक का घाटा पूरा हो जाता है?इसी में तब रुपया बर्बाद कर देगा तो बीबी नसीबन को क्या देगा। अभी तो तुझे दूसरे हलवाई का देना है, पहले उसे तो अदा कर। तीन मन मिठाई के दाम बाकी हैं। बीबी के लिए जो बनारसी साड़ी ली थी उसका दाम गिल्लीमल बजाज को चाहिए। पिशुन गान्धी को फूलेल और इत्र का दाम बाकी है। संपादक को देकर क्या होगा। न दीन का न दुनिया का। ——

प्रिय संपादक। मैं इसी सात-पाँच में पड़ा विधाता ने जो हम भारतीयों के लिए दास्य कर्म नियत कर रखा है, दस में चार इसी में वर्त्तमान रहता हूँ। अब से आप अपना पत्र भेज कर अपने उत्तेजक स्वी अमृत की घूँटी मुझे जबरदस्ती घुटाने लगे तब से अपना भला या बुरा पहचानने की कुछ अक्ल आ गयी है। पर प्रकृति को शीघ्र बदल पाना महा दुर्घट है। इसलिए आग्रह करता हूँ कि आप पत्र भेजना बन्द न करें और जो हमारी सलाह मानें तो एक बार नादेहन ग्राहकों को लिख छाप दें।——

अफसोस कि हम हिन्दू कहलाते हैं और हिन्दी को न हो चाहते।—— इतना कहने पर भी तो उत्तेजना न हो तो हिन्दी के विद्यार्थियों का हिन्दू होना अपराध है। अब विशेष प्रार्थना है कि कोई महाशय मेरे इस कहने का बुरा न माने। मैंने यथार्थ की ओर और जैसा बोल रहा है उसी का उल्लेख कर लेखनी को इतना कष्ट दिया। किमधिकम्

आपका शुभाकांक्षी
महावीर प्रसाद
हजारी बाग
जून, 1880

उपर्युक्त पत्र से स्पष्ट है कि उस समय शिक्षित पाठक भी सच्चे हृदय से हिन्दी पत्रकारिता के विकास की आकांक्षा रखते थे। इससे हिंदी संपादकों की कठिनाइयों तथा समाज की रुचि पर भी प्रकाश पड़ता है।

3.3. विविध समाचार

1. समाचार क्या है ? आधुनिक "समाचार" शब्द अंग्रेजी भाषा के "न्यूज" शब्द का पर्याय है जो लेटिन के "नोवा" शब्द से निर्मित है। जिसका अर्थ नवीन है।[1] नवीनता और ताजगी समाचारों का प्राण होती है। संस्कृत में समाचार "आचरण" या "उचित चाल-चलन" तथा हिन्दी कोश में "न्यूज" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[2]

प्रत्येक सूचना या नवीन जानकारी को समाचार नहीं कहा जा सकता। प्रो० विलाई श्रेयर के अनुसार "अनेक व्यक्तियों की अभिरुचि जिस सामयिक बात में होती है, वह समाचार है।"[3]

हार्पर लोच और आर० सी० करोल ने अपनी पुस्तक "समाचार" में लिखा है,'समाचार अति गतिशील साहित्य है। समाचार समय के करघे पर इतिहास के घहरीले खेल बुने वाले कपड़े को बुनने वाले तकुए हैं।[4]

अतः कहा जा सकता है कि "समाचार" किसी तथ्य घटना, परिवर्तन या विचार का बेलाग ताजा विवरण है जिसमें बहुसंख्यक पाठकों की अभिरुचि होती है। समाचार के मूल तत्व हैं - यथार्थता, नवीनता, सार्थकता और बहुसंख्यक पाठकों की अभिरुचि आदि।

आधुनिक युग में पाठकों के ज्ञान और अभिरुचि का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो गया है। आधुनिक संवाददाता का कार्य जटिल हो गया है। किन्तु उन्नीसवीं शती के सामान्य पाठकों में समाचारों के प्रति अभिरुचि अधिक निर्मित नहीं हो पायी थी। उनमें नवीन जानकारी एवं ज्ञान-प्राप्ति के प्रति तीव्र ललक का अभाव था।

1- श्री० चक्रपति राव, समाचारपत्र पृष्ठ 8

2- देखिए प्रस्तुत प्रबंध का दूसरा अध्याय

3- संपादक वेदप्रताप वैदिक, हिन्दी पत्रकारिता:विविध आयाम पृष्ठ 737

4- प्रेमनाथ चतुर्वेदी, समाचार-संपादन पृष्ठ 16-17

हिन्दी की अधिकांश पत्रिकाओं के समाचार अंग्रेजी या अन्य देशी भाषा के पत्रों से नकल करके छापे जाते थे। संचार-साधनों की न्यूनता थी। "रायटर कंपनी" समाचार ऐजेंसी (1878) की समाचार भेजने की दर बहुत ऊँची थी। "हिंदुस्तान समाचार" और "समाचार-भारती" जैसी हिन्दी-भाषी समाचार-समितियाँ उस हिन्दी विरोधी परतंत्र परिवेश में जैसे पनपती अवश्य थे स्वतंत्र भारत में ही जीवित नहीं रह पायीं। अतः तत्कालीन हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ बासी-अनुवादित समाचारों के बल पर जीवित और लोकप्रिय होकर जन-स्वीकृति नहीं पा सकती थी यही कारण था कि ये विचार-प्रधान पत्रिकाओं के रूप में विकसित हुईं।

हिन्दी में दैनिक समाचार-पत्रों की न्यूनता के कारण साप्ताहिक-मासिक आदि पत्रिकाएँ ही हर अंक में "समाचारावली" प्रकाशित करती थी हिन्दी प्रदीप के संपादक का मत था कि साहित्यिक मासिक में समाचारों का संकलन नहीं होना चाहिए।[1] किंतु फिर भी संपादक समाचारों को साहित्यिक पुट देकर आकर्षक भंगिमा में प्रस्तुत करते थे।

जागरणकालीन समाचारों को निम्नलिखित वर्गों में बाँटकर विश्लेषित किया जा सकता है:

1- स्थानीय समाचार 2- राष्ट्रीय 3- अंतराष्ट्रीय 4- मौसम, खेल, पदवी आदि 5- सामाजिक-राजनीतिक व जागरण के समाचार 6- मानवीय 7- आर्थिक आदि।

2. स्थानीय - तत्कालीन पत्रों ने स्थानीय प्रशासन की कुव्यवस्था, भ्रष्ट-कृत्यों तथा जन-हित के प्रश्नों और समस्याओं पर कुछ समाचार प्रकाशित किये थे। "ब्राह्मण" ने कानपुर में गंगा-प्रदूषण का समाचार प्रकाशित करके म्युनिसिपल

1- मासिक पत्रों में समाचारावली बासकर ऐसे में जिसके निकलने का कुछ क्याम नहीं है। समाचारावली निरर्थक और लेख की उत्तमता में थक्का है।" हिन्दी प्रदीप, जौलाई 1882, पृष्ठ 16

कमेटी की लापरवाही पर कटाक्ष किया था, "अब गंगाजी का यह हाल है कि हमारे कानपुर में एक चमड़े का कारखाना खुला है। कई दिनों से उसका दुर्गंधि पूरित जल कभी-2 गंगा में आ जाता है। जिसके कारण गंगा-स्नान, पितृ तर्पण और जलपान करने को भी नहीं चाहता है और रोग फैलने का भी डर अधिक संभव है, पर न जाने हमारी म्युनिसिपल कमेटी किसी नींद में सो रही है।"[1] उपर्युक्त समाचार उस काल में जल-प्रदूषण के प्रति सजगता को प्रकट करता है।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ स्थानीय जनता की सामाजिक-आर्थिक समस्याओं को प्रकाशित करना अपना दायित्व समझती थीं। "समय विनोद" ने कुर्माचल प्रांत में प्रचलित कुत्सित वेश्या-वृत्ति को समाप्त करने के लिए स्थानीय सरकार से अपील की थी।[2]

"हिन्दी प्रदीप" ने स्थानीय प्रयाग माघ मेले, दरबार तथा नगर में फैली गंदगी आदि के समाचारों का प्रकाशन लोक-जागृति के उद्देश्य से किया था।

"दरबार की धूमधाम बेअम कुशल से समाप्त हुई। हम नहीं समझते कि इन दरबारों से हम हिंदुस्तानियों को कोई फायदा है।——बहुत सा खर्च और हर तरह की दिक्कत उठानी पड़ती है। —— और सब बेअम कुशल है तो इधर मँहगी, उधर हिकमत की थाँक। देखे दो दैत्यों के रगड़े में यह वर्ष कैसा बीते।"[3]

समाचारों को रोचक बनाने की शैली निराली है।

राष्ट्रीय - उत्तर 19वीं शती के भारतेन्दुकालीन पत्रकारिता ने राष्ट्रीय-भाव के उन्नयन के लिए राष्ट्रीय समाचारों को सर्वाधिक प्राथमिकता दी थी। उन्होंने सरकार की कर, अकाल तथा रंग-भेद युद्ध आदि के समाचार निरंतर प्रकाशित किये थे। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ जनसामान्य के दुःख-सुख से जुड़ी हुई थीं। पत्रकार भी अकाल, मँहगाई और तुरसा की तरह बढ़ते टैक्सों को झेल रहा था इसलिए उसके शब्द-शब्द में सच्चाई और दर्द उभर आया है। "सुनने में आता है कि

1- ब्राह्मण, 15 जून 1883 ई0 पृष्ठ 4।
2- समय विनोद अल्मोड़ा तुर्क्षान समाचार 15 फरवरी 1877 पृष्ठ 2
3- हिन्दी प्रदीप फरवरी, 1879 पृष्ठ 15

बुन्दापुर के बाजार में एक रुपये घास का दाना बिकता है दरिद्र लोग उसी दाने को खरीद कर खाते हैं। —प्रायः रोज ही 1/2 आदमी अन्न के अभाव से मरते हैं। अन्न आदि चीजों का अभाव जिस प्रकार हो रहा है इससे बंबई क्या, भारतवर्ष के सभी स्थानों में ऐसी आत्महत्या की खबर मिलें तो कुछ आश्चर्य नहीं है।"[1] उपर्युक्त समाचार में दुर्भिक्ष-पीड़ित भारत का यथार्थ चित्र उभर आता है।

दुर्भिक्ष के कठिन समय में भी अंग्रेजी शासक लगान आदि में कोई राहत नहीं देते थे, "सन् 1877 और 78 की सालाना रिपोर्ट देखने से मालूम हुआ कि सरकारी खजाने में 53450213 रुपया आमदनी हुई। —सरकार ने दुष्काल के समय किसी को एक पैसे की रियायत नहीं दी। —दुःख का विषय है कि जिनसे सवा चार करोड़ रुपया साली साल में जमीन की पैदावार से सरकार को मिलता है उसके पालन के लिए इस अकाल पीड़ित समय में एक करोड़ रुपया भी खर्च किया जाता तो वे बेचारे न उजड़ते —इसके एवज में प्रजा पर उल्टा टैक्स लगा।"[2]

सरकार अकाल पीड़ित जनता से ही राहत कार्यों के लिए कर वसूल करती थी। अधिकांश जागरूक पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्रीय भावना को भड़काने वाले समाचार प्रकाशित करने में तनिक भी नहीं हिचकिचाती थी। उचित वक्ता ने लिखा- "ऐसे समाचार लिखता है यदि लार्ड लिटन और मॉन्ट्रयी साहब चीन या अर्की में होते तो अब तक सिर धड़ से अलग कर दिया होता, यदि रशिया के होते तो उनको बहुत समय साइबेरिया की खानों में काटना पड़ता, अगर जर्मनी में होते तो जेल में बंद कर दिये जाते।"[3]

तत्कालीन पत्रों ने अमानवीय राष्ट्रीय शोषण, बलात्कार जैसी राजनीतिक हलचलों के समाचार भी निर्भीकता से प्रकाशित किये ताकि भारतीयों में शासन के प्रति विद्रोहभाव तथा स्व राष्ट्र के प्रति निष्ठा जागृत हो सके।

1- हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1879 पृष्ठ 12

2- ब्राह्मण, 15 अप्रैल 1883 पृष्ठ 11

3- उचित वक्ता 1880 [वर्ष 1 अंक 6]

अंतर्राष्ट्रीय - तत्कालीन पत्रकारिता 19वीं शताब्दी में विश्व की राजनीतिक हलचलों और ज्ञान-विज्ञान की आधुनिक प्रगति के समाचार निष्पक्ष विवेचन के साथ प्रकाशित करती थी ताकि भारतीय उनसे तथ्य ले के कुछ प्रेरणा ग्रहण करें, उनकी ज्ञान-पिपासा बढ़े और वे बौद्धिक-राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हों।

परंतु भारतीय परिवेश में अनेक ब्रिटिश समर्थक पत्र अनेक प्रकार की अफवाह और अविश्वसनीय आलेख छापते रहते थे जिनका तथ्य होकर खंडन करना तत्कालीन पत्र अपना दायित्व समझते थे। "इंग्लैंड के लोगों ने गप उड़ाई है बहुत से मरहठे राजे जतियों से छुपाछुपी मिले हुए हैं हम नहीं जानते यह असंभव बात उन लोगों के मन में कैसे आयी।"[1]

जनमानस की विचारधारा को सही मोड़ देने के लिए ऐसे अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों का चयन किया जाता था जो पाठकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव डालकर नव राष्ट्रीय चेतना जागृत कर सके। "चीन आनंद नगरस्थ अमेरिकान कौनसिल ने कहा है कि आनंद में विलायती कपड़े का प्रचलन करना मैनचेस्टर का कर्तव्य है परन्तु उस नगर के 20 हजार निवासियों ने यह आपत्ति की है कि विलायती कपड़े से देशी कपड़ा मजबूत होता है। यह हिन्दुस्तान नहीं है कि सत्ता देव भूल जाएं।

उपर्युक्त समाचार का ध्येय इंग्लैंड निर्मित वस्त्रों के बहिष्कार की प्रेरणा देना था। तत्कालीन पत्रिकाएं भारतीयों में विद्या-प्राप्ति के प्रति उत्साह का संचार कर देना चाहती थीं, "इंग्लैंड के लोग विद्या की उन्नति के लिए कैसे यत्नवान होते हैं और विद्या विषयक बातों में ये लोग कैसे उत्साह के साथ धन द्वारा उसकी सहायता करते हैं। यह बात नीचे लिखी तालिकाओं से मिल जायगी।[3]

1- हिन्दी प्रदीप, सितंबर 1877 पृष्ठ 15

2- उचित वक्ता, 14 अगस्त 1880 [वर्ष 1 अंक 2]

3- भारत मित्र, 19 सितंबर 1878 पृष्ठ 30

विद्यालय का नाम	पुस्तकों का एक 2 परिमाण	आय
अक्सफोर्ड	6782	110000 रुपये
कैंब्रिज विश्वविद्यालय	2500	3000

"पियूष प्रवाह" ने जापान का दृष्टांत प्रस्तुत करते हुए शिक्षा-संबंधी समाचार प्रस्तुत किये थे।[1] इंग्लैंड में ऐसे भारतीयों की बढ़ती राष्ट्रीय चेतना के समाचार भी ये सजगता से छापती थीं।[2]

3. मौसम, केल, पदवी संबंधी- तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में देश के विभिन्न भागों के वृष्टि, बाढ़, सूखा आदि के समाचार विस्तार से छपते थे क्योंकि समस्त भारतीय जीवन इनसे प्रभावित होता था, "बंबई के प्रांतों में इतना पानी बरसा है ---कि लोगों को डर है कि परसाल अनावृष्टि से अकाल पड़ा अबके साल अति वृष्टि से पड़ेगा।[3] इनमें वृष्टि, अकाल आदि दैवी विपत्तियों के शमन के लिए धार्मिक अनुष्ठानों के समाचार भी प्रकाशित होते थे।[4] मौसम संबंधी समाचारों को भी आकर्षक भाषा भंगिमा के साथ प्रस्तुत किया जाता, "आरम्भ से अब तक मेघ ने पानी की बूंदों के लिए भी तरसाया पर खेती करने वालों को भलीभाँति रुला कर अब अंतिम पानी बरसाया।"[5]

केल, पदवी- पत्रकारिता केलों, अधिकारियों के दौरे, पद-पदवी, खानि आदि के समाचारों के प्रति सजग थी। केल संबंधी समाचार का एक नमूना

1- "जापान में इन दिनों 28443 स्कूल हैं जिनमें पढ़ने वालों की संख्या 30 लाख है। सिवाय इनके लड़कियों के स्कूल और नार्मल स्कूल वगैरह 163 है जिनमें 11298 पढ़ने वाले हैं इतो यह प्रगट फलित हुआ कि हजार के पीछे पचासी जापानी पढ़ते हैं।" {भारतवासी गण! चेतो} पियूष प्रवाह 25 मई 1884

2- सार सुधानिधि 13 जनवरी 1879

3- हिन्दी प्रदीप सितंबर 1876 पृष्ठ 16

4- {क} देश हितैषी 1862 अंक 5
{ख} भारतमित्र, 17 मई 1876

5- पियूष प्रवाह, 25 अक्टूबर 1884 पृष्ठ 17

द्रष्टव्य है - "देश-देशान्तर के मल्ल यहाँ एकत्र हुए हैं। दो दिन से कुश्तबाग में कुश्ती का तमाशा हो रहा है। तमाशाधीन को एक रुपया, आठ आना, चार आना टिकट देना पड़ता है।"[1] उपर्युक्त केस-समाचार से ज्ञात होता है कि कुश्ती को कितनी लोकप्रियता प्राप्त थी। खेलों पर टिकट लगाना उनकी जन-प्रियता और महत्ता को सूचित करता है।

"पदवी-प्राप्ति" के समाचारों में व्यंग्य और चैतन्यता को कौंध साफ दिखायी देती है "अलीगढ़ के प्रसिद्ध आनरेबुल सैयद अहमद खाँ साहब का केएसी० एस० आई० की पदवी छोड़ने से मिली अर्थात् नेशनल कांग्रेस में सहयोग न देने के उपरांत ही। हम अनुमान करते हैं कि यदि सैयद साहब नेशनल कांग्रेस में गये होते तो कदाचित् उन्हें यह खिताब न मिलता। भारतवासियों को चाहिये कि यदि वे अपने नाम के पीछे दो-चार अक्षर लगाया चाहें तो अपने देश और देशवासियों की बुराइयाँ किया करें।"[2]

उच्च पदाधिकारी जनता का दुःखदर्द देखने के लिए भ्रमण नहीं करते थे बल्कि सैर-सपाटे और मनोरंजन के लिए दौरे किये जाते थे किन्तु उनके भव्य-स्वागत के लिए अधिकांश ताल्लुकेदार, जमींदार उपस्थित हो जाते थे।[3]

4. सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण के समाचार- "जागरण काल" की पत्रकारिता ने स्त्री शिक्षा, सामाजिक-सांस्कृतिक नवजागरण आदि के द्वारा राष्ट्रीय-स्पंदन का बीड़ा उठाया था। शिक्षा-संबंधी-सचेतना तथा समाज की कुप्रवृत्तियों पर दृष्टिपात करते हुए हिन्दी प्रदीप ने समाचार प्रकाशित किया था "कलकत्ते में मोटी दासी नामा 19 वर्ष की एक युवा स्त्री ने अपने शुहर से पाठशाला पढ़ने की आज्ञा चाही। शुहर के आज्ञा न देने पर वह कुछ दिन हुए अफीम खाकर मर गई।" [पा०] उपर्युक्त समाचार तत्कालीन भारतीय समाज में नारी की हीन-दीन स्थिति से अवगत करा देता है।

1- हिन्दी प्रदीप फरवरी 1878 पृष्ठ 7
2- भारत जीवन, 23 जनवरी 1888
3- [क] आर्य दर्पण सितंबर 1888 रिपोर्ट आव सेन्ट्रल न्यूज पेपर्स एन०डब्लयू०पी० 1888 पृष्ठ 6703
[ख] हिंदोस्थान 11 सितंबर 1886, उपरिवत्
4- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर 1877 पृष्ठ 2

"भारत जीवन" ने उस युग की सर्वाधिक विवादास्पद सामाजिक समस्या "विधवा विवाह" के समाचार प्रकाशित करते हुए हर्ष प्रकट किया था-

"16 फरवरी सन् 1884 ई0 में एक विधवा विवाह नडियाद में हुआ। वर की अवस्था 25 वर्ष की और दुलहिन की 16 वर्ष की थी। यह विवाह शास्त्रानुसार हुआ था। अनुमान 200 मनुष्यों को भोजन दिया गया। दुलहिन बिचारी सात वर्ष की अवस्था में विधवा हो गयी थी। - ईश्वर करे यह जोड़ी चिरकाल तक चिरजीव रहे।"[1]

इस प्रकार तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने सामाजिक शास्त्र परंपराओं से लोहा लेते हुए नारी-दशा को सुधारने की चेष्टा की थी।

आज में बढ़ते दौर, पाखंडों की "ब्राह्मण" ने अच्छी कलई खोली थी, "हाय। इन्हीं गुरुओं ने देश को चौपट कर दिया। ——श्री निवासशास्त्री नामक एक भविष्यवक्ता ने ऐसा कहा है कि संवत् 1940 में वर्षा न होगी—— हिन्दुस्तान में मारी के रोग से करोड़ों नर जायेंगे -[आ0] होगा तो वही जो ईश्वर करेगा पर पण्डितजी ने अभी से भोले भालों को डरा कर अपनी टहीभाने का ढंग निकाला। पाठक गण। इनके धोखों से डरे नहीं ये वही हैं जो जन्मपत्री द्वारा सभी सच्चे गुण मिला ब्याह कराते हैं तिस पर भी लाखों रांडें एनके जन्म को रो रही हैं।"[2] कुछ पंडित ब्राह्मण होकर संपादक मिश्रजी ने इतना तीव्र प्रहार पुरोहितों के प्रपंचों पर किया था जो इन संपादकों की ओजस्विता और सांस्कृतिक चेतना को ही द्योतित करता है।

उस पराधीन युग में पुलिस के अत्याचार भी आज के समान बढ़े हुए थे। "गोआल पाड़ा में पुलिस ने एक आदमी को इतना मारा कि वह मर गया। एक हेड कानस्टेबिल और एक कान्स्टेबिल दोष के भागी पाये गये हैं।"[3]

1- भारत जीवन, 3 मार्च 1884 पृष्ठ 3

2- ब्राह्मण, अप्रैल 1883 पृष्ठ 10

3- हिन्दी प्रदीप, नवंबर 1877 पृष्ठ 13

आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व भी प्रकाशन आदि में पुलिस अत्याचारों, भ्रष्टाचार और रिश्वत के समाचारों को महत्व दिया जाता पत्रों की सामाजिक चेतना को प्रकट करता है "यहाँ का स्टेशन मास्टर जो रिश्वत के मामले में गिरफ्तार था, न जाने कहाँ भाग गया।"[1] "विधुर प्रवाह" ने रेलवे, डाक आदि विभागों में फैले भ्रष्टाचार को अनावृत्त करते हुए अनेक समाचार प्रकाशित किये थे। "लाहौर के डाकघर में 1100 रुपया गुप्त हो गया है कुछ चिंता नहीं मालूम होती।"[2]

5. मानवीय समाचार- समाज के नैतिक पतन, विपन्नता और दायित्वहीनता को रेखांकित करते हुए तत्कालीन पत्रों ने मानवीय समाचारों का भी प्रकाशन किया था "अविवचन सुधा" ने समस्तीपुर का समाचार प्रकाशित किया था, "यहाँ एक औरत ने गरीबी की वाजह अपने दो महीने के लड़के को 2/- रुपये में बेच डाला।" "ब्राह्मण" ने रुपये के लिए पिता को मारने वाले पुत्र का समाचार प्रकाशित किया "सिंध के जज की अदालत में एक पितायाती पुत्र को फाँसी हुई। पुत्र ने पिता से रुपया माँगा। पिता ने न दिया। बाद में पुत्र ने छुरी से पिता की जान ले ली और आप भी फाँसी पर चढ़ गये।"[4] अंग्रेजों द्वारा शिक्षित भारतीयों को अपमानित-प्रताड़ित करने के समाचार छपते ही रहते थे। "उचितवक्ता" ने लिखा "हजारीबाग में एक वाजर साहब किसी दुकान पर बैठा था। इस समय नार्मल अंग्रेजी स्कूल के द्वितीय शिक्षक मुंशी पहले दुकान में चले आये इसलिए साहब ने उन्हें खूब मारा। शिक्षक महोदय ने डिप्टी मैजिस्ट्रेट के पास नालिश की है।"[5] तत्कालीन शिक्षित वर्ग अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाने लगा था।

1- हिन्दी प्रदीप, नवंबर, 1877 पृष्ठ 16
2- विधुर प्रवाह 25 जून, 1884 पृष्ठ 10
3- अविवचन सुधा 23 जनवरी 1864 पृष्ठ 7-8
4- ब्राह्मण 15 मई, 1863 पृष्ठ 34-35
5- उचितवक्ता 1880 वर्ष 1 अंक 5

6. आर्थिक समाचार- आर्थिक लेन-देन, बाजार भाव आदि समाचार देने का अंदाज भी निराला था, "नया अन्न कट कर मंडियों में आने लगा। 12 सेर से ऊपर गेहूँ, चना, चावल आदि का भाव न चढ़ा—— लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा तीनों ने तो कभी से हमको छोड़ रखा था, अब अन्नपूर्णा ने भी कदम बढ़ाना शुरू कर दिया।"[1]

भारतीय जनता अन्न आदि के विदेशों में निर्यात से भुखमरी की हालत पर पहुँच चुकी थी। "भारतमित्र" ने लगभग प्रत्येक अंक आर्थिक-समीक्षा, अन्न-निर्यात आदि के आँकड़े प्रस्तुत किये थे, "1877 साल के जुलाई महीने तक धान और चावल 265x168 मन, गेहूँ 14691262, तिल 662329 मन, तीसी 662329 मन, चीनी 113695 मन किन्तु अब की साल धान और चावल 668952 मन, गेहूँ 102027 मन, तिल 194899 मन —इस देश के बाहर गया।[2]

भारतीय जनता सीमित आय तथा क्रय-शक्ति के अभाव में सस्ते अन्न को भी नहीं खरीद पाती थी। "सारसुधानिधि" में कपड़ा, मसालों आदि की कलकत्ता बाजार की दर इस प्रकार छपती थी:[3]

कपड़ा कोरा	पनूहापन	दर से दर
लैंकिशाट	21 इत्था 5	2 11=) 3 1)
नैनसुख	21 " 12 x 12	1 1)11) 1 11=)
मलमल	211 " 12 x 12	1 11) 1 111)
विलायती थान प्रति दर		111)। 1 111)
किराना	मन प्रति	दर से दर
तीफ	"	10) 10)
जीरा	"	25) 30)
धनिया	"	2 11) 4 1)
बड़ी इलायची	"	20) 21)
नारियल तेल	"	16 11)

1- हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1876 पृष्ठ 15
2- भारत मि. 7 सितंबर 1878 पृष्ठ 67
3- सारसुधानिधि 20 जनवरी 1879 पृष्ठ 24

उपर्युक्त विविध समाचारों के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने हर विषय की जानकारी और समाचार देकर ज्ञान के नये आयाम खोले उन्होंने भारतीयों को देश की वास्तविक स्थिति से अवगत करा के उनमें नव चेतना जागृत करने का कितना कठिन दायित्व निभाया था जबकि उनके पास आर्थिक-संचार साधन अत्यन्त सीमित थे अधिकांश समाचार राष्ट्रीय जागरण से संबद्ध थे। समाचारों का विषय वैविध्य, प्रकृति और शिल्प लेखन से अनुमान लगाया जा सकता है कि समाचारों में संपादकीय टिप्पणी जोड़कर लोक-चेतना लायी जाती थी। उनकी प्रवृत्ति सुझावपरक है जो आधुनिक समाचारों में निष्पक्षता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं मानी जाती।

7. भाषा-शैली- समाचारों भाषा सुबोध, स्पष्ट और रोचक है कहीं उसमें दुरूह, क्लिष्ट और अस्पष्ट शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ है। अंग्रेजी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग नागरी में मूल शब्द लिखकर हुआ है। उदाहरणार्थ कान्स्टेबल, फेमिन, बिल, टैक्स आदि। समाचारों की भाषा व्यवहारिक बोलचाल की मुहावरेदार है जो आज भी समाचार के लिए उपयुक्त मानी जाती है। कहीं-कहीं समाचारों को साहित्यिक पुट देकर आकर्षक प्रस्तुतिकरण किया गया है। तत्कालीन भाषा शिल्प और स्टाइल परवर्ती पत्रकारिता ने भी अपनाया था जैसे सरस्वती, कर्मयोगी, प्रताप विशाल भारत आदि।

8. उपर्युक्त विवेच्य युगीन पत्रकारिता के विभिन्न पहलुओं के आधार पर निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि तत्कालीन पत्रकारिता का दृष्टिकोण एवं उद्देश्य शुद्ध व्यावसायिक न होकर सेवा, सुधार एवं मिशनरी भावना से ओत-प्रोत था। उसमें नवीन-पुरातन, राज भक्ति-देश भक्ति, मातृ-भाषा हिन्दी के साथ उर्दू-फारसी से लगाव और अंग्रेजी से प्रतिबद्धता और द्वन्द का विचित्र विरोधाभास झलकता है।

परिमाण या संख्या में ही नहीं, गुणवत्ता और श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से भी इस युग की पत्रकारिता गौरव की अधिकारिणी है। विवेच्य पत्र-पत्रिकाओं में युगीन राष्ट्रीय नव-चेतना और अन्तर्विरोध कभी खुल कर और कभी राजभक्ति की आड़ में छिप कर व्यक्त हुए हैं।

अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ समाचारों से अधिक विचारों की वाहक थीं।

उनके पुराने बासी समाचार पाठकों को आकर्षित और उत्तेजना नहीं दे पाते थे। अतः ये विचार-प्रधान पत्रिकाओं के रूप में पनपी क्योंकि नव-विचार ही पाठकों में आवेग और विद्रोह पैदा कर सकते थे।

हिन्दी साहित्य को व्यापक राष्ट्रीय-चेतना और जन-जीवन से जोड़ने का माध्यम पत्रकारिता हुई। इससे पूर्व दरबारी सामंती प्रवृत्ति के कारण साहित्य की धारा संकुचित दरबारी गौरवगान और चाटुकारिता तक सीमित थी।

इस काल में अधिकांश हिन्दी पत्र-पत्रिकाएँ अल्प जीवी रहीं। पराधीन विकल परिवेश में भी इनका तीव्र उत्साह, समर्पित साधना और अदम्य जीवन-आकांक्षा देखते ही बनती है। इस सन्दर्भ में डा० रामविलास शर्मा की टिप्पणी कितनी औचित्यपूर्ण है, "पत्र साहित्य की परंपरा न होते हुए भी उसने थोड़े ही वर्षों में जो उन्नति की, उसका एक साथ कारण लेखकों की धुन थी। —— इंग्लैंड के विक्टोरियन युग की आत्मतुष्टि, उसकी समाजों की मनोवृत्ति, लोकप्रियता, मानसिक गुलामी आदि बातों का भारतेन्दु युग में अभाव है। जनता में जागृति फैलाने का प्रधान साधन ये पत्र थे।"[1] अधिकतर प्रारंभिक पत्र-पत्रिकाएँ दो भाषाओं उर्दू-हिन्दी में एक साथ निकली। जो संपादक उर्दू संस्करण निकालता, वही हिन्दी में भी पत्र प्रकाशित करता। इस प्रकार उर्दू की लोकप्रियता और हिन्दी के जनसाधारण में प्रचलन और सहज स्नेह के कारण हिन्दी-उर्दू का धार्मिक सांप्रदायिक विभाजन उग्ररूप धारण कर पाया था क्योंकि हिन्दी-उर्दू दोनों में से किसी एक भाषा की उपेक्षा करके ये जीवित नहीं रह सकती थीं।

अधिकतर पत्र-पत्रिकाएँ मासिक, साप्ताहिक या पाक्षिक रूप में ही प्रकाशित हुईं। दैनिक पत्रों में केवल तीन पत्र "समाचार-सुधावर्षण (1854) "हिंदुस्थान" (1885) "भारतोदय" (1885) ही थे क्योंकि दैनिक पत्र निकालने में आर्थिक व्यवस्था धन तकनीकी विकास तथा जन-जागृति की आवश्यकता होती है। हिन्दी पत्रों में तो घाटा ही घाटा था। अतः दैनिक पत्रों को अधिक प्रोत्साहन नहीं मिल सका।

1- "भारतेन्दु युग" पृष्ठ 26, 39

संपादकों में पारस्परिक सहयोग और सहृदयता की भावना मिलती है। यद्यपि तत्कालीन पत्रों में आपस में नोंक-झोंक चलती रहती थी पर उसमें भी हिन्दी-हिंदुस्तान के हित-चिंतन की भावना ही छिपी रहती थी।

बाह्य पर्यावलोकन अर्थात् आकार, रूप-सज्जा, मुद्रण, प्रस्तुति की दृष्टि से भारतेन्दुकालीन पत्र-पत्रिकाएँ अत्यन्त साधारण स्तर की मानी जा सकती हैं किन्तु ये अपनी विस्फोटक संपादकीय सामग्री, वैचारिक वैभव, प्रगतिशील तेवर एवं कलात्मक सोद्देश्यता आदि गुणों के कारण उच्चस्तरीय हैं। इनकी संपादकीय सामग्री एवं समाचार शुद्ध भारतीय-संस्पर्श, बौद्धिक ताजगी, आधुनिक स्टाइल, निर्भीक स्पष्ट नीति आदि से युक्त थे जिन्होंने अपने युग के कठिनतम उद्देश्यों को परिपूर्ण करके जन जागरण का बीड़ा उठाया था।

इन हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के संपादक ही इनके पीर-बावर्ची-भिश्ती और खर थे। इन संपादकों की ओजस्विनी लेखनशैली, विलक्षण विद्वता और वैचारिक तेवर से पत्रों का साहित्यिक रूप सौन्दर्य दमक उठा था।

जागरण युगीन पत्र-पत्रिकाओं का संपादकीय लेखन विचारोत्तेजक सूचना गर्भित एवं बुद्धिसंगत होने के कारण पठनीय होता था। उनमें राजनयिक, मानवीय एवं सामाजिक व्यंग्य भरपूर हैं जो पाठकों को मूल समस्या को समझने की अन्तर्दृष्टि देते हैं। अतः ये पत्र-पत्रिकाएँ अपनी प्राञ्जल सामग्री तथा आलोचनात्मक अग्रलेखों में सर्वग्राह्य शैली द्वारा तर्क की और रस की विचारधारा प्रवाहित करने और ब्रिटिश साम्राज्यवाद का विरोध करने में अग्रणी थीं जिनका प्रभाव परवर्ती हिन्दी पत्रकारिता पर पड़ा था।

उस काल की पत्र-पत्रिकाओं की भाषा में निर्माणकाल की अव्यवस्था तथा व्याकरण सम्मत एकरूपता का अभाव मिलता है फिर भी वह जीवित, सहज और आम बोलचाल की स्वाभाविक भाषा है जो पत्रकारिता के लिए आज भी उपयुक्त मानी जाती है।

उस युग में पत्रकारिता, साहित्य और राजनीति एक साथ कदम से कदम मिला कर चली थी। जागरण युग के पत्र-संस्थान केवल समाचार-वितरण की ऐजेंसियाँ न होकर जनता की टूटी आस्था, आत्मविश्वास और मनोबल को जोड़ने के हेतु थे। विवेच्ययुग में आधुनिकता, राष्ट्रीयता और भारतीयता की वाहिका पत्रकारिता ही रही। उसमें हिन्दी और हिंदुस्तान के प्रति गहरी प्रतिबद्धता दृष्टिगोचर होती है।

चौथा अध्याय

सांस्कृतिक- उत्थान

१- धार्मिक एवं सांस्कृतिक मूल्यांकरण

२- समाज सुधार संबंधी कल्पना

4. धार्मिक एवं सांस्कृतिक नवजागरण

जब किसी समाज राष्ट्र में नवजागरण और नव-चेतना का उन्मेष होने लगता है तो उसके जीवन का कोई अंग या क्षेत्र अछूता नहीं रह जाता। राजनीति, धर्म, संस्कृति, समाज, साहित्य और पत्रकारिता आदि में परिवर्तनों की पदचाप साफ सुनायी देने लगती है। राष्ट्रीय नव-जागृति का श्रीगणेश राजनीति से ही हो, यह आवश्यक नहीं। भारत, जहाँ धर्म समस्त जीवन के कार्यकलापों का मेरुदण्ड रहा हो, वहाँ धर्म के क्षेत्र से ही पुनर्जागरण के नये दिशाएँ, नये स्पन्दन और नये आन्दोलन जन्म लें, यह स्वाभाविक प्रक्रिया लगती है। सर वेंटेजन सिरोल का मत भी है कि हिन्दुओं के सामाजिक एवं धार्मिक पुनरुत्थान से ही भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव हुआ।[1]

आज भारत में राजनीति और धर्म को पृथक् करने की माँग उठायी जा रही है किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण काल में राष्ट्रीय उन्नायकों एवं बुद्धिजीवी रचनाकारों ने जीवन को अलग खाँचों और दायरों में विभक्त करके नहीं देखा था। उनके लिए जीवन एक अखण्ड और अविभाज्य तत्त्व था। राजनीति, धर्म, समाज, संस्कृति, पत्रकारिता और साहित्य आदि परस्पर सापेक्ष एवं सम्बद्ध थे। "राष्ट्रीय कांग्रेस" (१८८५) ने भी एक ऐसा सर्वव्यापी आदर्श अपने सामने प्रस्तुत किया, जिसमें सारा जीवन यहाँ से वहाँ तक अविभाज्य है।[2] आगे चलकर गांधी जी ने भी इसी धारणा को पुष्ट किया था। यह पुष्टि तत्कालीन सांस्कृतिक आन्दोलन एवं पत्रकारिता

१- विशाल भारत, सितंबर १९६० पृ० १८५

२- सं० हरिमोहन उपाध्याय से० पट्टाभि सीतारमैया- कांग्रेस का इतिहास भाग १

में भी देखी जा सकती है। इन सभी का कार्य क्षेत्र धर्म, समाज तथा राजनीति आदि में समान रूप से नवीनीकरण और पुनर्जागरण का रहा।

इसी मनोवृत्ति के कारण तत्कालीन पत्रकार केवल संपादक और साहित्यिक रचनाकार ही नहीं थे, उन्होंने एक साथ राष्ट्रीय उन्नायक, समाज सुधारक, राजनीतिक कार्यकर्ता, दार्शनिक-विचारक और क्रांतिकारी आन्दोलनकर्ता के दायित्व भी पूरी निष्ठा से निभाये थे। एक ओर ये संपादक राजनीतिक मोर्चे पर अंग्रेजी शासन के दमन और शोषण के विरुद्ध आग उगलते डटे रहते थे, दूसरी ओर सामाजिक-धार्मिक रूढ़िवादिता और अन्ध-परम्परा से दृढ़तापूर्वक टक्कर लेते थे। उनकी सारगर्भी योजना के समान उद्घोष तथा अविचलित संघर्ष जीवन के सभी स्तरों पर एक साथ समान रूप से चलते रहते थे।

उस युग में राष्ट्रीय नव-निर्माण की चेतना बहु-केन्द्रित रूप में, विभिन्न स्तरों पर प्रस्फुटित हुई थी। पत्रकारिता में भी यह धार्मिक, सामाजिक तथा जातीय संस्थाओं के मुखपत्रों के रूप में अंकुरित हुई। राष्ट्रीय जागरण की प्रारंभिक अभिव्यक्ति राजा राम मोहन राय के धार्मिक सामाजिक सुधार सम्बन्धी पत्रों " ब्रह्मनिकल मैगजीन " (अंग्रेजी १८२२), " मिरात-उल-अखबार " (फारसी, १८२२), " संवाद कौमुदी " (बंगला १८२१), " कौमुदी " (हिन्दी आदि १८२६) आदि पत्रों में हुई। इसी नव-चेतना को आगे चलकर ईश्वर चन्द्र विद्यासागर के " सोम प्रकाश ", " प्रार्थना-समाज " की " तत्वबोध पत्रिका " तथा राम कृष्ण मिशन के " उद्बोधन ", " प्रबुद्ध भारत ", " समायान " तथा " विजयी " आदि पत्रों ने बढ़ाया। हिन्दी पत्र- पत्रिकाओं में भी प्रारम्भ से ही धार्मिक-सामाजिक सुधार के लिए धार्मिक सामग्री का प्रकाशन हुआ था। " उदंत मार्तण्ड " (१८२६) में " संसार पर वैदिक धर्म का प्रभाव " आदि धार्मिक लेख प्रकाशित हुए थे। हिन्दी के

प्रथम दैनिक " समाचार सुधावर्षण " (१८७४) में " विधवा-विवाह " पर सामाजिक लेख प्रकाशित हुए थे।

" ब्रह्मसमाज " के सिद्धान्तों को प्रचार करने वाली पत्रिकाओं में " सत्यवादिनी पत्रिका " (१८६५) " ज्ञानप्रदायिनी पत्रिका " (१८६६) , " ब्रह्मज्ञान प्रकाश " (१८६८) , " हिन्दू बान्धव " (१८७६) आदि थीं।

२. वस्तुतः भारतीय नवजागरण की संपूर्ण धाराओं सांस्कृतिक, साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक चेतना का विकास लगभग एक हुआ। पत्रकारिता में आर्यसमाज, सनातन धर्म, जैन धर्म तथा अनेक जातियों ने गौड़ ब्राह्मण सभा (मथुरा) " कायस्थ सभा " (गाजीपुर) अग्रवाल सभा (मथुरा) आदि ने सामाजिक- धार्मिक- जातीय संस्थाओं और संगठनों ने अपने- अपने मुख पत्र प्रकाशित किये। इन सुधार- संगठनों ने जनता में सामाजिक नव जागृति के लिए ही पत्र- पत्रिकाओं को साधन बनाया। विभिन्न धार्मिक- सामाजिक- जातीय संगठनों, धर्मों तथा आन्दोलनों की जाति-धर्म-समाज सुधार सम्बन्धी पत्र- पत्रिकाएँ निम्नलिखित थीं -

1. " आर्य समाज " की पत्र- पत्रिकाएँ

प्रकाशन तिथि (१)	पत्र का नाम (२)	संपादक (३)	स्थान (४)
सन् १८६८ ई०	आर्य-दर्पण	मुंशी बख्तावर सिंह	शाहजहाँपुर
१८७३	आर्य पत्रिका		शिवपुर
१८७६	आर्यभूषण	मुंशी बख्तावर सिंह	शाहजहाँपुर
१८७७	धर्मप्रकाश		कपूरथला

(१)	(२)	(३)	(४)
सन् १८७७ ई०	कवाब	मु० बख्तावर सिंह	शाहपुरा
१८७८	आर्यमित्र	एच०के० भट्टाचार्य	काशी
,,	आर्य-समाचार	कल्याणराय	मेरठ
,,	भारतसुदशा प्रवर्त्तक	पं० गणेश प्रसाद शर्मा	फर्रुखाबाद
१८७९	वैदिक मैगजीन	आर्य सभा	लाहौर
१८८२	धर्मपिता	,,	,,
१८८४	वेद प्रकाश	हीरालाल	कानपुर
१८८६	राजस्थान समाचार	स्वर्णदान	अजमेर
१८८७	आर्यावर्त्त	पं० नौनपाल शर्मा	कलकत्ता-रांची
१८८८	भारत भगिनी	भीखी बहदेवी	लाहौर
,,	आर्यमित्र	बहादुर मल मास्टर मुरामल	मुरादाबाद
१८८९	आर्यजीवन	पं० गजानन राव लाणी	प्रयाग
,,	धर्म प्रचारक	लाला देवराज	प्रयाग
१८९०	परोपकारी	पं० पद्मसिंह शर्मा	आगरा
,,	धर्म प्रचारक	मुंशीराम(श्रद्धानंद)	दिल्ली
१८९६	आर्यभास्कर	आर्यसभा	सोरी
१९००	आर्य सिक	पं० गणेश शर्मा	नरसिंह पुर
,,	दयानंद पत्रिका	तुलसीराम स्वामी	,,

२. सनातन धर्म पत्र-पत्रिकाएँ

प्रकाशन तिथि	पत्र का नाम	संपादक	स्थान
१८५६	धर्मप्रकाश	मनसुखराय	अलवरावाद
१८७१	हिन्दू प्रकाश		कानपुर
१८७३	हिन्दी प्रकाश	धर्मसभा	अमृतसर
••	मर्यादा परिपाटी	पं० दुर्गा प्रसाद	
	स्वाचार	स्कूल	वाराणसी
१८७५	धर्मप्रकाश	पं० शिवदत्त	
		स्कूल	प्रयाग
••	धर्मपत्रिका		••
१८७७	मित्र-विलास	मुकुन्दराम	लाहौर
••	धर्मपत्र	स्वरूपलाल	प्रयाग
१८८०	धर्मनीति तत्त्व	पं० माधोराम भट्ट	पटना
		संपा० छन्न जी	
१८८१	धर्म सभा	अंबिका चरण घोष	
१८८४	धर्म प्रचारक	श्रीकृष्ण प्रसन्न सिंह	काशी
१८८५	••	धर्मपिपासु सभा	जुगाना-मुजफ्फर-नगर
••	भारत पीयूष	बालगोविन्द सिंह	कलकत्ता
••	धर्मप्रकाश	गौरीलाल	मुरादाबाद
१८८७	धर्मसभा समाचार	पं० हरिशंकर	लखनऊ
१८८९	प्रबोधविनोद		मथुरा
••	पटना धर्म सभा	पं० गौरीशंकर शर्म	फर्रुखाबाद

(१)	(२)	(३)	(४)
१८८९	धर्मोद्धार पत्रिका	कुल वल्लभी शास्त्री	काशी
१८९०	निगमागम	निगमागम मण्डली	मेरठ- मथुरा
••	भारत धर्मोद्धा		पूर्णिया
••	ब्रजराज		मथुरा
••	ब्रजमर्त्य		बिठूर
••	सत्य धर्म पत्र	रामप्रसाद दुर्गाप्रसाद	बरेली
••	सत्य धर्म मित्र		बागरा, बरेली
••	सुदर्शन-चक्र	पं० ठाकुर प्रसाद शर्मा	मथुरा
१८९२	मित्र वृन्दावन	पं० बन्शीलाल	वृन्दावन
••	गार्हस्थ जीवन	बा० रामनारायण	अयोध्या
१८९३	विचार पैदान्त		नागपुर
१८९७	सनातन धर्म पताका	पं० रामस्वरूप गौड़	मुरादाबाद
••	धर्मोद्धा	धर्म सभा	बंबई
••	निगमागम चन्द्रिका	निगमागम मण्डल	मथुरा
••	भारतोपदेशक	ब्रह्म नंद सरस्वती	मेरठ
१८९८	सनातन धर्म		सहारनपुर

3. जैन धर्म सम्बन्धी पत्र-पत्रिकाएँ

१८८७	जैन पत्रिका	जैन सभा	प्रयाग
१८८४	जीयालाल प्रकाश	जीयालाल प्रकाश	फर्रुखनगर
••	जैन	••	••
••	जैन-बोधक	रावजी सखाराम दोशी	शोलापुर

(१)	(२)	(३)	(४)
१८९१	जैन प्रभाकर	पं० गोपी नाथ	लाहौर
१८९२	जैन हितैषी	बाबू पन्नालाल	मुरादाबाद
१८९७	जैन भास्कर	पियालाल जैन	कन्हलनगर
१९००	जैन मित्र	गोपीनाथ बरैया	बंबई

4. जैनाई मिशनरी पत्र

(१)	(२)	(३)	(४)
१८६१	ज्ञानप्रकाश	मिशनरी मुख पत्र	किन्दरा
१८६३	लोकमित्र	,,	,,
१८६६	[illegible]	,,	बंबई
१८७१	मयूर गजट	,,	मेरठ
१८७१	सायंकाल गजट	,,	सहारनपुर
१८७३	मौल समाचार	,,	बरेली
१८६६	दूत पत्रिका	,,	रांची
१८८४	अबला हितकारक	अमेरिकन मिशन	लखनऊ
१८९६	[illegible] विद्या प्रचारक	पियालाल जी मुख्य	लाहौर
		जी पूर्वमान	

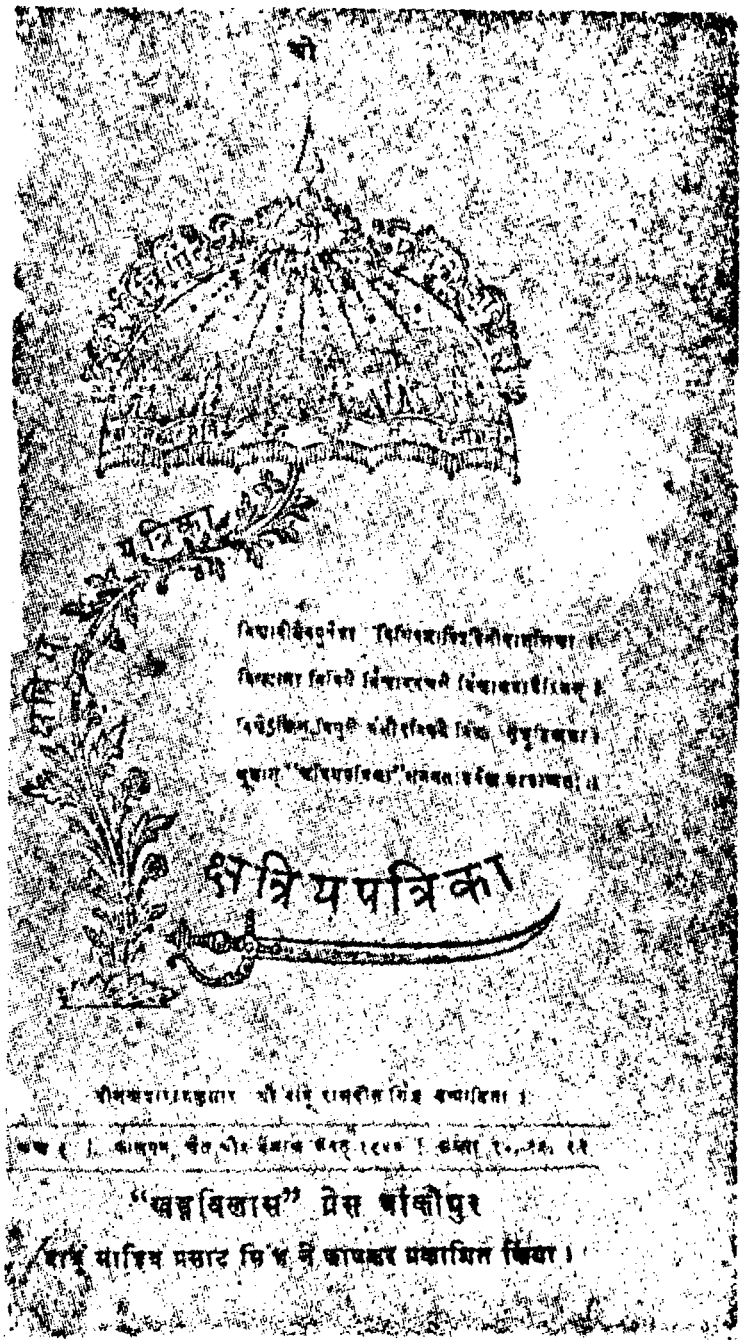

श्री

पत्रिका

क्षत्रियपत्रिका

"खड्गविलास" प्रेस बाँकीपुर

बाबू माहिम प्रसाद सिंह ने छापकर प्रकाशित किया।

क्षत्रिय पत्रिका का प्रथम पृष्ठ

5. जाति-विशेष की पत्र-पत्रिकाएँ

(१)	(२)	(३)	(४)
१८७८	कायस्थ समाचार	डा० सच्चिदानंद सिंह	प्रयाग
१८८१	क्षत्रिय पत्रिका	बाबू रामदीन	औरंगपुर
१८८४	कायस्थ व्यवहार	बाबू लाल जी	प्रयाग
,,	कुलीन समाचार		मथुरा
,,	कान्यकुब्ज प्रकाश	पं० बलभद्र मिश्र	कन्नौज
१८८८	स्त्री हितकारी	पं० रामनारायण	मथुरा, आगरा
,,	स्त्री अधिकारी	हर प्रसाद	मथुरा
१८८९	कायस्थ पत्रिका	मुंशी देवी प्रसाद	कन्नौज
,,	कायस्थ-उपकारक		
,,	कायस्थ उपकारक	नारायण प्रसाद	आगरा
,,	श्री कान्यकुब्ज हितकारी	पं० बाबीलाल शुक्ल	इलाहाबाद
,,	जाट समाचार	बाबू कन्हैयालाल सिंह	आगरा
,,	कायस्थ उपकारक	लाला हितलाल	,,
,,	मिथिला नीतिप्रकाश		मिथौपुर
१८९०	कायस्थ पंच		प्रयाग
,,	ब्राह्मण समाचार	प्रताप नारायण	मुजफ्फरनगर
,,	कायस्थ पत्रिका	कर्ण कायस्थ जाति	दरभंगा
१८९२	क्षत्रिय हितैषी	ठा० दरनाथ सिंह	आगरा
१८९३	भट्ट भास्कर	पं० गौरी शंकर भट्ट	फर्रुखाबाद
,,	कायस्थ कार्यालय प्रकाश	राय देवीप्रसाद पूर्ण	कानपुर
१८९४	कायस्थ कौमुदी	पं० गोकुलानंद	मुजफ्फरनगर

(१)	(२)	(३)	(४)
१८९४	[illegible]	पं० देवी प्रसाद दीक्षित	आगरा
,,	[illegible]	बाबू [illegible]	[illegible]
१८९५	[illegible]		मेरठ
,,	[illegible]		
,,	ब्राह्मण समाचार	[illegible]	[illegible]
,,	[illegible]	[illegible]	आगरा
१८९६	[illegible]	पं० [illegible]	,,
,,	[illegible]	[illegible]	मुरादाबाद
१८९७	[illegible]	[illegible]	[illegible]
१८९८	[illegible]	बाबू [illegible]	
		[illegible]	[illegible]
,,	[illegible]	[illegible]	
१८९९	[illegible]	[illegible]	काशी
,,	[illegible]	[illegible]	[illegible]
,,	[illegible]	[illegible]	[illegible]

उपर्युक्त तालिकाओं के अवलोकन से पता लगता है कि लगभग सभी सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक संस्थाओं तथा धर्मों ने पत्रकारिता के माध्यम से भारत के नवजागरण में सक्रिय हिस्सा लिया था। वस्तुतः ये सभी प्रकार की पत्र- पत्रिकाएँ तत्कालीन सा- सेवा एवं नव-युग के आह्वान की ही परिचायक हैं। इस काल में लगभग २२ आर्यसमाज, ३३ सनातन धर्म तथा ८ जैन धर्म के पत्र प्रकाशित हुए। उस [illegible] युग में जहाँ एक ओर आर्यसमाज, सनातन धर्म

और जैन धर्म के बीच परस्पर द्वन्द्व और संघर्ष थी, वहीं ईसाई मिशनरी तथा अन्य धर्मों की पत्र- पत्रिकाओं में तार्किक वाद-विवाद चरम सीमा पर पहुँच चुका था। अपने- अपने धर्म की रक्षा तथा प्रचार के लिए किये गये वैचारिक धर्म- युद्धों ने पुनरुत्थान आंदोलन के संपूर्ण समाज को बना दिया था। तत्कालीन पत्रों ने अपने अपने क्षेत्रों में पाठकों को उत्तेजित कर धार्मिक- सामाजिक सुधार की राह दिखायी तथा धर्म और समाज में प्राचीन आवश्यकताओं और मूल्यों के अनुरूप सुधार और पुनर्व्याख्या का नवीनीकरण किया। सभी पत्रकार एक ही महान् यज्ञ के समर्पित साधक थे जो देश को पूर्ण रूप से जागृत करने के प्रयत्न में जुटे हुए थे।

उपर्युक्त तालिका से यह भी विदित होता है कि इस काल में विभिन्न जाति- उपजातियों के पत्रों का विकास भी तीव्र गति से हुआ था जिसका कारण यह था कि भारतीय समाज अनेक जातियों और उपजातियों में विभक्त था। प्रत्येक जाति की पृथक् विशेष शैली, स्वर, रीति-नीति, आदर्श और मान्यताएँ थी। जाति- व्यवस्था को धर्म का समर्थन प्राप्त था। फलस्वरूप जातिगत सद्भाव पर आधारित अनेक संस्थाओं की स्थापना से जाति धर्म कैसा मजबूत हुई। जाति विशेष के हितों की रक्षा-साधन और प्रचार के लिए अनेक पत्र- पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। "आर्य समाज" (१८७५) धर्म सुधार आन्दोलन में जाति व्यवस्था का विरोध न कर चारों वर्णों पर आधारित वैदिक धर्म और समाज को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया था। जातियों पृथक् अस्तित्व- प्रतिनिधित्व और सुधार की जागरूकता तथा साम्प्रदायिक शक्तियों के विकास से भी धर्म और जाति-भक्ति को बढ़ाने में मदद मिली।

इन जातीय पत्रों का प्रकाशन किन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए हुआ था ? इसका विवेचन तत्कालीन जातीय पत्र "चतुर्वेदी पत्रिका" (१८९५) की उपलब्ध प्रति[१], के आधार पर किया जा सकता है। यह "चतुर्वेदी

१- "चतुर्वेदी पत्रिका" की माइक्रोफिल्म, नेहरू मेमोरियल लाइब्रेरी, नयी दिल्ली में सुरक्षित है।

कोल्हियेत " वाराणसी की मुख्य पत्रिका थी जिसकी नीति, मूल्य तथा उद्देश्य आदि का परिचय इस प्रकार दिया गया है- " महाशयो, आपकी सेवा में उपस्थित होने का यह मेरा प्रथम दिवस है। मैं चाहती हूँ कि आपकी स्वतन्त्र रूपी आभूषणों से प्रतिमास आभूषित करूँ - इसका मुख्य उद्देश्य है कि कुलीन स्त्रियों में विद्या की वृद्धि होकर उनकी सब प्रकार से उन्नति और जो जो रीतियाँ उनके समाज में प्रचलित हैं उनमें शोधन होना चाहिए।"[1]

वस्तुतः उस समय स्त्री प्रकार के पत्रों ने चाहे उनका स्वरूप राष्ट्रीय हो या धर्म- समाज- आदि सुधार सम्बन्धी, उन्होंने विभिन्न धर्मों और समाज की रूढ़ि परंपराओं की बुद्धि के निकष पर परख कर उनको समाजोपयोगी सार्थक रूप प्रदान करने की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी थी। अतः तत्कालीन विभिन्न पत्रों में धर्म- समाज-सुधार आन्दोलनों के स्वर सदैव परिपुष्ट आध्यात्मिकता तथा राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत रहे थे। सर्वप्रथम तत्कालीन धार्मिक- सामाजिक सुधार आन्दोलनों की पृष्ठभूमि में हिन्दी पत्रकारिता की प्रतिक्रिया तथा उस पर पड़े प्रभावों आदि का विवेचन करना समीचीन होगा।

3. तत्कालीन धार्मिक- सामाजिक वैचारिक आन्दोलनों से उस समय तीन बुद्धिवादी दृष्टिकोण उभरे थे - १- " ब्रह्म समाज " में केशव चन्द्र सेन ने पश्चिमी विचारधारा के समकक्ष बनने के लिए भारत के अधिक से अधिक पश्चिमीकरण का समर्थन किया था। " हिन्दी प्रदीप " मासिक ने इस मत के प्रति प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा गया था, " ब्रह्म समाज कहो चाहती है कि किसी तरह हिन्दूपन को शीघ्र मूलक से दूर हो।"[2]

१- १ मार्च १८९५, पृ० १

२- हिन्दी प्रदीप, नवंबर १८७८ पृ० २१

हिन्दी पत्रकारिता और साहित्य में इस संकुचित अभारतीय विचारधारा को कभी महत्त्व नहीं दिया गया। २- दूसरी चिन्तन धारा दयानंद सरस्वती द्वारा प्रतिपादित " आर्य समाज " की थी जिसके अनुसार " वेद " ही सर्व-सम्मत ज्ञान-विज्ञान और विकास से अभिन्न होते हैं। वे प्रमाणित और अबाध हैं। वेदों से अतिरिक्त जो भी ज्ञान और चिन्तन है वह भारतीय होने पर भी ग्राह्य नहीं हो सकता। इस विचार धारा ने हिन्दू धर्म की आक्रामक स्वरूप देकर ईसाई, इस्लाम, जैन, बुद्धिस्ट आदि धर्मों के विरुद्ध अभियान छेड़ दिया था। " आर्यसमाज " का आधार संकीर्ण और दृष्टिकोण कट्टरतावादी था हिन्दी पत्रकारिता ने इस संकीर्ण पक्ष का कभी समर्थन नहीं किया। हिन्दी के संपादकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने दयानन्द से लिखित शास्त्रार्थ ने ६४ तर्क पूर्ण प्रश्न पूछ कर " दूषण पालिका " प्रकाशित की थी।[1] " हिन्दी प्रदीप " ने आर्यसमाज के अन्य धर्मों के प्रति नकारात्मक कट्टरतावादी दृष्टिकोण की भर्त्सना की थी "[2] वे मनुस्मृति और महाभारत में जुड़े हुए श्लोकों को प्रामाणिक मानते हैं। अवशिष्ट सब पुस्तकों को आधुनिक और कल्पित कहते हैं। पुराणों को तो गप्प ही ठहराते हैं। षट्- दर्शनों के प्रणेता शंकराचार्य को भी मिथ्या बताते हैं तो और अन्य दार्शनिक किस गिनती में हैं। वेद भाष्य के कर्त्ता सायणाचार्य महीधर तथा मोक्षमूलर को भ्रान्तिमुक्त करते हैं। सामाजिक बातों में वर्ण विवेक का रखना आवश्यक मानते हैं- विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह के बदले नियोग की व्यवस्था करते हैं।[3] "

" भारत जीवन " साप्ताहिक में दयानंद के धर्म सम्बन्धों पर जोरदार कटाक्ष किया गया[3] - " दयानंदियों की गणिमा अपरंपार

१- भारतेन्दु ग्रंथावली (भाग ३) पृ० ६३३-६८

२- हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८७६ पृ० २१

३- भारत जीवन , ३० जनवरी १८८८ पृ०३

है——।

छटे ये धर्म के चक्र कुछ अब औरों को छटाते हैं।
कहीं देश की उन्नति हो के फल्ला ये गीत गाते हैं।
कहीं नाम ले देवों का गवारों को फँसाते हैं।
कहीं पंडित आर आया तो फौरन दुम दबाते हैं।
कहीं शास्त्रार्थ करने को बेशर्मी से सिर उठाते हैं।"

जैन धर्म के अनुयायियों से भी " आर्यसमाज " के द्वारा उनके धर्म पर तीव्र प्रहार करने पर तथा वाद-विवाद छिड़ गया था " मित्र विलास " (लाहौर) ने दोनों के मतों की छाप कर दयानंद सरस्वती पर तीखी टिप्पणी की थी , "" हमें आश्चर्य है कि स्वामी जी उस पुस्तक का नाम " तो क्या नहीं रखते जिसमें से उन्होंने श्लोक निकाले हैं फिर किस प्रकार भड़क- भड़क कर शास्त्रार्थ करने को उचित होते हैं ? यदि कुछ विद्या का ज्ञान उनमें है तो क्यों नहीं पुस्तक का नाम बताकर जैनियों का घर पूरा करते । वृथा टरने से कुछ नहीं हो सकता । यदि आपमें सामर्थ्य है तो क्या दीजिए भी वैसे उनसे शास्त्रार्थ कीजिये । यदि आप दोनों में से एक भी नहीं करेंगे तो वास्तव आप पर अवश्य होगी —— जैसे लोग केवल आपको किसी बातों का प्रमाण मानते हैं यदि आप यह नहीं दे सकते तो आपका अविवेकी और अन्यायपूर्ण कौन होगा ।[१] ""

उपर्युक्त कुछ उदाहरणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन पत्रों ने " आर्यसमाज " के व्यापक दृष्टिकोण का कभी समर्थन नहीं किया किन्तु " आर्य समाज " के प्रजातांत्रिक भावना " समाज सुधार, एकता, शिक्षा मानवों में सत्य विश्वास जगाने की अविस्मरणीय भूमिका की बार- बार सराहना था । " आर्यसमाज " मानव समानाधिकार स्वराष्ट्र प्रेम तथा भारतीय

१- मित्र विलास , २४ जनवरी १८८९ पृ० २०३

भाषा को गौरव देने वाला प्रतिष्ठित आन्दोलन था उसके सुधारात्मक, भाषा सम्बन्धी तथा राष्ट्रीय उन्नयन के विस्तृत के लिए हिन्दी पत्रकारिता में प्रयोग का स्वर हो गूँजता है। इस प्रकार केशव चन्द्र की दृष्टि में आत्मकुन्ठता और दयानन्द में यथार्थ के प्रति पराङ्मुखता और अतिवादिता थी।

तीसरी चिन्तन धारा रामकृष्ण मिशन में राम कृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द की थी। इनका दृष्टिकोण अधिक उदात्त, एक समाजोपयोगी तथा सार्थक था जो आध्यात्मिक- भौतिक, पूर्व और पश्चिम दोनों पक्षों के श्रेष्ठ चिन्तन से समन्वित था। वेदान्त से गृहीत इस विचारधारा ने मानव की प्रकृति का चरम उत्कर्ष और सारी वसुंधरा के उपभोग को सार माना है। इसने सनातन हिन्दू धर्म को सुसंस्कृत उदात्त रूप में प्रस्तुत कर उसकी गरिमा और बौद्धिक दृष्टि प्रदान की। राम कृष्ण मिशन ने सभी धर्मों की बुनियाद एक बताकर तथा मानव-सेवा, राष्ट्र भक्ति को महत्व देकर नव चेतना जगायी थी जिसका प्रभाव निश्चित रूप से हिन्दी पत्रकारिता पर पड़ा था। थियोसफी, प्रार्थना समाज सभा (१८७२) "लोक हितवादी" आदि की धार्मिक आस्थाएँ भी पत्रकारिता की प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप से प्रभावित कर रही थी। "देश की भलाई तो ऐसे सोसाइटियों और सभाओं से हो सकती है जिनमें केवल पोलिटिक्स बातों पर विचार और बहस हो वैसे "प्रार्थना समाज सभा" है। सो ऐसी सभा करने की अभी यहाँ के लोगों में हिम्मत नहीं हुई और सभाओं से हमें क्या लाभ।"[१]

उपर्युक्त विवेचन पत्रकारिता में बढ़ती नवचेतना और धार्मिक- राजनीतिक जागृति और परिपक्वता को दिग्दर्शित करता है।

उपर्युक्त सब विचारधाराओं से समन्वित सांस्कृतिक

१- हिन्दी प्रदीप, फरवरी १८८० पृ० ३

धार्मिक पुनरुत्थान को विभिन्न वर्गों में विभाजित कर इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है :

4. धर्म और जीवन के प्रति स्पष्ट उदात्त दृष्टिकोण

नवोत्थान काल की पत्रकारिता में भारतीयता और आधुनिकता, राजनीति और धार्मिक सामाजिक मान्यताओं को परस्पर अन्योन्याश्रित तथा पूरक माना गया। उसने जीवन को एक मान कर राष्ट्रीय भावना को विशेष फलक प्रदान किया था। "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित लेख "समाज का सुधार पोलिटिकल शास्त्र का पुस्तकाग्र है (मोरल रिफार्म इज दि बेस्ट बोन आफ दि पोलिटिकल स्ट्रैप) में कहा गया "सब तो यों है कि सच्चे राजनीतिक सुधार या मुल्की शास्त्र के लिए समाज संशोधन प्रधान और मुख्य सहायक है।"[1] इसी प्रकार धर्म और राजनीति के परस्पर सम्बद्ध मानते हुए उन्हें राष्ट्रीयता का मूलाधार बताया गया, "जब भी कोई धर्म "धर्म है जो राजनीतिक बुनियाद पर नहीं है या जिसका लगाव राजनीतिक विषयों से बिल्कुल नहीं है। बल्कि इस तरह का मजहब कौमियत (नेशनलिटी) को धर्म से उठा देता है--- आपस की सहानुभूति, बंधु, प्रेम, दया या शांति को बढ़ाने का उपाय आदि धर्म का मुख्य अंग है और यही उद्देश (पोलिटिकल) राजनीतिक विषयों का भी है।"[2]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने धर्म और संस्कृति को व्यापक उदात्त अर्थों में ग्रहण किया था। वह किसी सम्प्रदाय-विशेष से संबद्ध न होकर मानव धर्म और राष्ट्र-धर्म के रूप में निरूपित किया गया है, "एक

१- हिन्दी प्रदीप- अक्टूबर, १९०० पृ० २२

२- वही, जनवरी-दिसम्बर १८९९ पृ० १४-१५

उन्नतियों का मूल धर्म है। अतः सबसे पहले धर्म को ही उन्नति करनी उचित है। देखो, अंग्रेजों की धर्म- नीति और राजनीति परस्पर मिली है, इसी उनकी दिन-दिन कैसी उन्नति है। उनकी पाने दो, अपने हीन हाँ कैसे, तुम्हारे यहाँ धर्म की आड़ में नाना प्रकार की नीति, स्वार्थ-गठन, वंचक आदि भरे हुए हैं--- उन लोगों ने धर्म नीति और स्वार्थ को दूध पानी की भाँति मिला दिया है।"[1]

अतः धर्म का स्वरूप रूढ़िवादी रूप में न फंस कर एक स्पष्ट राष्ट्रवादी धर्म के रूप में उभर रहा था।

६. धर्म का उदात्त स्वरूप और बुद्धिवादी व्याख्या

तत्कालीन लेखकों ने धर्म को बुद्धि की कसौटी पर कस कर ही धार्मिक सिद्धान्तों और आख्यानों को अपनाने पर बल दिया उनका मत था कि धार्मिक मतों और सिद्धान्तों का युगानुरूप शोधन तथा सामयिक सन्दर्भों के अनुसार पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए। "सरस्वतीनिधि" (कलकत्ता) पत्रिका में प्रकाशित "धर्म" की बौद्धिक व्याख्या में वैज्ञानिक आधुनिक चेतना को कोई मिलती है, "प्रकृति के उत्कर्ष साधन का नाम धर्म है और स्थूल विचार से प्रकृति दो प्रकार की है: एक आभ्यन्तरिक और दूसरी बाह्यिक। मति, उपचिकीर्षा, न्यायपरता, उपमिति, चिन्ता और अभिलाषा प्रकृति आभ्यन्तरिक प्रकृति और परमाणुओं के संयोग-वियोग, रूपान्तर, व्याप्ति और संचरण बाह्यिक प्रकृति है। मनुष्य लोग आभ्यन्तरिक प्रकृति के उत्कर्ष साधन में प्रवृत्त होके किस प्रकार गुण सम्पन्न के प्रति मति, विपन्न के प्रति

१- बालाबोधिनी, बनारस, १८७८

दया, दरिद्र को धन दान, एकाकीपन और निर्दोष दाम्पत्य आदि कार्यों का अनुष्ठान करते हैं--- अतः दोनों प्रकार के उत्कर्ष करना ही मनुष्य का उचित कर्तव्य है।[1]"

हिन्दी पत्रों ने ईसाई धर्म की बुद्धि के निकष पर कस कर ही मिशनरियों के धर्म प्रचार का खण्डन किया था।[2] अनुमान एक सप्ताह हुआ कि "इंडियन मेल" नामक पत्र में एक एंग्लोइंडियन प्रोटेस्टेंट महाशय ने यह बात प्रकाश की थी कि भारतवर्ष में सभी ऐक्य ही स्थापित है कि जब स्पष्ट देखा क्रिश्चियन ही जाते और केवल यह धर्म सत्य है। -- प्रथम फ्रान्स और जर्मनी दो क्रिश्चियन हैं, क्यों लड़ा करते हैं? आयरलैंड और प्रोटेस्टेन्ट दोनों क्रिश्चियन हैं क्यों सदा झगड़ा करते हैं। दूसरी बात अर्थात् प्रोटेस्टेंट मत की स्थापना के लिए--- जो कुछ थोड़ा संग्रह किया है उसे क्रमशः प्रकाश करते हैं--- उसे हम किसी द्वेष या ईर्ष्यावश, नहीं लिखते केवल सत्य का ध्यान देकर प्रकाश करते हैं। केवल बाइबिल के प्रमाणों में परस्पर विरोध दिखलायेंगे? ईश्वर अपने कामों से प्रसन्न होता है फिर परमेश्वर ने हर एक वस्तु पर जिसे उसने बनाया था, दृष्टि की और देखा बहुत अच्छी है। (उत्पत्ति १, ३१)।

ईश्वर अपने कामों से असन्तुष्ट होता है तब आदमी के पृथ्वी पर उत्पन्न करने से ईश्वर पछताया और उसे शोक हुआ[2] (उत्पत्ति ७, ६)। अतः प्रत्येक धार्मिक मत-मान्यता पर बौद्धिक वाद-विवाद करना तथा उसकी बुद्धि की कसौटी पर जाँच परख कर ही स्वीकार करना तत्कालीन पत्रकारिता की विशिष्टता थी।

हिन्दी पत्रकारिता में धर्म का धर्म निरपेक्ष

१- सारसुधानिधि, २७ जनवरी १८७६ पृ० ३४-३५

२- भारत जीवन, १७ मार्च १८८४ पृ० २

संप्रदाय वि ने व्यापक चित्रण हुआ है। "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में प्रकाशित "हरान शरीफ", "पंचपवित्रात्मा" तथा "अनुकूल और प्रतिकूल" (जनवरी १८७६) आदि रचनाएँ मुख्य धर्म के वास्तविक स्वरूप को पहचानने की एकता पैदा करती हैं। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ सभी धर्मों के पाठकों में राष्ट्रीय ऐक्य, एकरूपता, बंधुता आदि के लिए उदात्त धार्मिक दृष्टिकोण निर्मित करना चाहती थी। उन्होंने भारतीय स्वाधीन परंपराओं का भी बोध मुझे कर अंध-अनुकरण नहीं किया।" "अब एक बार आँख खोल कर देश और एकता सोचिए कि कितनी बातें उन बुद्धिमान ऋषियों ने कैसी बनाती और उनमें देश और काल के भी अनुकूल और उपकारी हो उनको ग्रहण कीजिए। ---- वैष्णव शाक्त इत्यादि नाना प्रकार के मत के लोग आपस का वैर छोड़ दें। यह समय इन झगड़ों का नहीं। हिन्दू, जैन मुसलमान सब आपस में मिलिए।"[1]

धर्म को आधुनिक संदर्भों के अनुकूल पुनर्व्याख्या करते हुए "हिन्दी प्रदीप" में लिखा गया "धर्म ऐसा होना चाहिए जिस पर चल कर समाज में बल आवे।---- धर्म धृ धातु से बना है जिसका अर्थ धारण या रक्षा है धर्म पर चलने से हमारी रक्षा नहीं हुई तो हम धर्म नहीं मानेंगे। ------ जिस बात से देश की उन्नति हो वही धर्म है।--।"[2]

८. धर्म के प्रति इहलौकिक दृष्टिकोण

तीव्र भौतिक परिवर्तनों तथा बौद्धिक जागरण ने धर्म का काया कल्प कर दिया था। "जागरण युग" में धर्म का मुख्य ध्येय

१- भारतेन्दु ग्रंथावली (तीसरा भाग) पृ० ६०१

२- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १९०० पृ० ५

मोक्ष प्राप्ति या परलोक सुधारना नहीं रह गया था, उनका ध्येय राष्ट्रीय उन्नयन और परस्पर सद्भाव और एकता की भावना जागृत करना था। "हिन्दी प्रदीप" ने धर्म के इसी मूल प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए लिखा था "बहुत से लोग मानते हैं कि धर्म केवल परलोक के साधन के लिए है, हमारे इस जीवन से कोई सरोकार नहीं है--- ऐसा मानने वालों की यह बड़ी भूल है जो अपने इस जीवन को बिगाड़ कर परलोक बनाने की फिकिर में है।"[1]

आधुनिक धर्म का मर्म समझाते हुए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र कहते हैं - "जब पेट भर खाने को ही न मिलेगा तो धर्म कहाँ बाकी रहेगा, इस जीव मात्र के सहज धर्म उदर पूरण पर अब ध्यान दीजिए। ---- उपासना एक हृदय की रत्न वस्तु है उसको आर्य मात्र में फैलाने की कोई आवश्यकता नहीं।--- भीतर तुम्हारे चाहे जो भाव और कैसी उपासना हो ऊपर से एक आर्य मात्र रहो। धर्म सम्बन्धी उपाधियों को छोड़ प्रकृत धर्म की उन्नति करो।"[2]

7. धार्मिक कर्मकाण्ड तथा वाह्याडम्बरों की भर्त्सना

तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता ने ब्राह्मणों, मठाधीशों, साधु-सन्यासियों और ढोंगियों के कपटाचरण को खूब कर पोल खोली है। धार्मिक चरित्रहीन व्यक्तियों के नैतिक ह्रास की ओर इंगित करते हुए "बिहारबन्धु" ने लिखा था - "बड़ा धिक्कारो कलता है कि कलकत्ते में एक बहिरो टोले में एक कनफटा बाबा की बार थे और स्त्रियों के साथ बलात्कार देते थे। एक नौजवान लड़की लड़का होने की दवा देने को उनके पास गई, वे उसको लेकर पस पिए। आखिर पकड़े गो गए अब हवालात में बन्द हो हैं।"[3]

१- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १९०० पृ० २१

२- भारतेन्दु ग्रंथावली, तीसरा भाग पृ० ८०१-२

३- बिहारबन्धु ११ अगस्त १८७४ पृ० १३६ (जिल्द २ नं० २८)

" हिन्दी प्रदीप " ने हिन्दू धर्म की कमजोर नस पर हाथ रखते हुए कहा- "" हिन्दू की कौम कहाँ तक " डिजेनेरेट " पतित और नष्ट- भ्रष्ट हो गयी है कि जिन्न और पंचायतन पूजन को कौम बड़े शीतला मानती है तेकर भूत-प्रेत पिशाच-डाकिनी शाकिनी वाले पियाँ गाती, पियाँ इमाम हुसैन तक को पूजती हैं फिर भी हम अपने धर्म के महत्व को समझ में पूरते नहीं समाते।[1] ""

" हरिश्चन्द्र मैग्जीन " (१५ फरवरी १८७४) में संपादक भारतेन्दु ने कहा कि धार्मिक कर्मानुष्ठान और आडंबरों ने वास्तविक धर्म लोप कर दिया है। " अनेक कोटि देवा- देवताओं का माहात्म्य, छोटी छोटी बातों में ब्रह्म हत्या का पाप और तुच्छ तुच्छ बातों में बड़े बड़े यज्ञों का पुण्य और ब्रह्म ज्ञान और मूल धर्म छोड़ कर उपधर्मों के आग्रह ने भारतवर्ष से वास्तविक धर्मों का लोप कर दिया।--- धर्म हमारा ऐसा निर्बल और पतला होगया है कि केवल स्पर्श से या एक बुलबुल पानी से मर जाता है। कच्चे गडे हुए घड़े की दशा हमारे धर्म की हो गई है।[2] ""

इन पत्र-पत्रिकाओं में धर्म के मर्म को गहरी छान-बीन की गई है तथा धार्मिक वर्जनाओं पर निर्भीक भाव से विचार किया गया है जिससे उनका धर्म के प्रति क्रान्तिकारी वायुत दृष्टिकोण का पता चलता है। धर्म संप्रदाय सम्बन्धी कमजोरियों को छिछोरापन कहते हुए हिन्दी प्रदीप के संपादक ने लिखा था[3]- "" आप सांख्य दर्शन के अनुसार चलते हैं, आप द्वैतवाद के सिद्धान्त मानने वाले हैं, आप अद्वैतवादी हैं। सच पूछिए तो हम सब दर्शनों को एक मानते हैं क्या भया जो एक ही बात दूसरे से जोड़ नहीं

१- महानिबन्धमाला (दूसरा भाग) पृ० १०८
२- हरिश्चन्द्र मैग्जीन , १५ फरवरी १८७४
३- हिन्दी प्रदीप, जून १८९४ पृ० १०६

नहीं जाती। यह यह निश्चय है कि सब एक ही बात की तीव में लगे हैं तो एक दूसरे के सहायक हैं।"

8. धार्मिक सद्भाव

भारतेन्दुकाल में हिन्दू- मुसलमान मुहर्रम आदि पर्व मिल कर मनाते थे। हिन्दी मुसलमान मुहर्रम में पर रहते थे। "बिहारबंधु" ने (१६ जनवरी १८७८) पटना के मुहर्रम के विषय में लिखा था - "पटने में हिन्दू लोग मदद न करें तो यहाँ मुहर्रम ही न हो। बजाय यह है कि मुसलमान में हिन्दियों की इतनी पहुँच नहीं है कि क्या हिन्दी मदद करेंगे, बाकी तोपें, गोले ये सिखों के सर्दार- पलाए हुए हैं। यह मुहर्रम के लिए पटने का नाम मशहूर होने की वाजह सिर्फ हिन्दू ही हैं।"[1]

"हिन्दू प्रकाश" ने "मुहर्रम" पर्व का वर्णन इस प्रकार किया था- "यह मेला बिहार पटने में बड़ी धूमधाम से होता है-- ताजिया का निकला दिन ही से आरम्भ होता है पर इतने अधिक निकलते हैं कि आधी रात से भी अधिक समय बीत जाता है--- पटने के पटनियाँ सिर्फ हिन्दू हैं कि धूमधाम से ताजिए निकालते हैं और सारे रास्ते छाय छाय करते छाती पीटते दरगाह तक जाते हैं।"[2]

4.2. समाज सुधार सम्बन्धी नव-चेतना

1. १९ वीं शताब्दी का राष्ट्रीय जागरण केवल भौतिक तथा राजनीतिक क्षेत्रों तक परिसीमित नहीं था, उसमें समाज की आध्यात्मिक- सांस्कृतिक- चेतना का स्पन्दन भी जुड़ा हुआ था। भारत

१- बिहारबंधु, १६ जनवरी १८७८ (जिल्द ६ नं० ३) पृ० १

२- हिन्दू प्रकाश २८ नवम्बर १८८४ पृ० ४-५

उस काल में एक ऐसे संक्रमणकालीन दौर से गुजर रहा था जब पुरातन रूढ़ि परंपराओं तथा अभिजात संस्कारों का सम्मोहन टूटने लगा था और धर्म के प्रति आस्था डगमगाने लगी थी। भारत के सामाजिक जीवन के जो पुरातन तत्व थे वे काफी मूल्यवान थे, उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते वे, होकर अपनी कर्मठता और मौलिक शक्ति खो चुके थे। उच्च शिक्षित वर्ग पाश्चात्य सांस्कृतिक- प्रतिमानों एवं नवीन यूरोपीय सभ्यता को आत्मसात् कर भारतीय परंपरा के बोझ से मुक्ति पाने को व्याकुल था। भारतीय समाज का ढाँचा तोड़ डाला गिराया, उसके अन्तर्बाह्य स्वरूप में आमूल परिवर्तन की कहानी कह रहा था। समाज विस्फोटक बिंदु पर पहुँच चुका था। ऐसे समय में चिंतनशील रचनाकारों ने अपनी पत्र- पत्रिकाओं के माध्यम से टूटते-मूल्यहीन होते समाज को मार्मिकता, सामाजिक अन्तर्विरोधों का सजीव चित्रण कर उसे आत्म-विश्लेषण और शोधन के लिए प्रेरित किया था। तत्कालीन पत्रकारिता ने समाज की हर दुखती रग को छेड़ा था, जिसे पत्रकार ने भी जिया और भोगा था। उसने सामाजिक दायित्व वहन करने में पूरी ईमानदारी और वैज्ञानिक चिन्तन का सहारा लिया था। तत्कालीन पत्रकारिता की जीवन्तता और प्रासंगिकता उसकी गहरी जीवन- सम्पृक्ति में ही मानो जा रमती है।

तत्कालीन पत्रकारिता का मूल ध्येय युग की आवश्यकताओं के अनुकूल समाज का यथोचित शोधन संस्कार, परिष्कार और जागरण करना था। भारतीयों में आधुनिक मानसिकता का बीजारोपण करना था। अतः समाज के जीवन, तेज और वर्चस् के जागरण के लिए उसने गतरोध से सामाजिक कुसंस्कारों और अन्ध परंपराओं के निष्कासन के लिए आन्दोलन चलाया था। उस काल में व्याप्त जाति व्यवस्था, अनेक वैवाहिक कुसंस्कारों, पर्दा प्रथा आदि सामाजिक समस्याओं के विरुद्ध व्यापक अभियान छेड़ कर उसने सामाजिक जन- जागरण का प्रवर्तन किया था। . समा-

कि समाचारों के विरुद्ध व्यापक अभियान छेड़ कर उन्हें सामाजिक जन-जागरण का प्रारम्भ किया था। अतः सामाजिक-चेतना के उद्बोधन में जितनी भूमिका तत्कालीन समाज-उन्नायकों राजा राममोहन राय, केशव चन्द्र सेन, दयानन्द सरस्वती, रानाडे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर आदि की रही उनसे अधिक नहीं तो उनके समकक्ष उस युग के पत्रकारों की भी रही।

2. सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अभियान

सम्पूर्ण भारतीय समाज बाल विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, सिजरापन आदि सामाजिक कुप्रथाओं से जकड़ा हुआ था। हिन्दी पत्रकारिता ने तत्कालीन सामाजिक संस्थाओं के साथ मिलकर इन्हें समूल नष्ट करने का अभियान चलाया था।

1. बाल विवाह

हिन्दी पत्र पत्रिकाओं ने बाल-विवाह को सभी भारतीय राष्ट्रीय हानि तथा सामाजिक पतन की गहराई में विलीन किया था[1]। उस समय कन्या का विवाह ५ से १० वर्ष की आयु में कर देने की प्रथा थी। पाठक साहित्यकारों ने इसके विरुद्ध आवाज उठायी थी। "हरिश्चन्द्र मैगजीन" में प्रकाशित श्री शरण कृत "बाला विवाह प्रहसन" (२४ अप्रैल, १८७०) सम्भवतः बाल विवाह पर पहला नाटक था। इसके प्रारंभ में ही नटी सूत्रधार का हाथ पकड़कर कहती है - "कहो क्या ? तुम्हें नहीं मालूम कि मेरी ६ वर्ष की एक कन्या हो चुकी है जिसके लिए

:- "बाल्य विवाह की प्रचलित कुरीति के रहते हमारी अपनी बल-वीर्य क्षय, पराधीनता, सैन्य पौरुष और श्री की वृद्धि की इच्छा करना भूल है।"

- हिन्दी प्रदीप- जून- जुलाई, १८९९ पृ० ६

तुमने अभी तक कोई उत्तम वर नहीं ढूंढा , अभी सन्देह में संसार के कोई पदार्थ मुझे नहीं भाते । विशेषकर मैं जब देखती हूँ कि आजकल पाँचवें-सातवें ही वर्ष में लोग अपनी कन्या का विवाह कर देते हैं फिर भला सोचना कहाँ रहा ? " पीयूष प्रवाह " के संपादक अंबिकादत्त व्यास ने " बाल - विवाह " कुप्रथा पर कटाक्ष करते हुए " हमराव " नामक स्थान का व्यापार प्रकाशित किया था- " यहाँ एक लड़की का दो ही बरस की उम्र में ब्याह हुआ है । अब वह तीन बरस की हुई है पर नंगी फिरा करती है और यही हाल उसके दुलहे का भी है । (अभी की गुड़िया- गुड्डे का खेल कहते हैं ।)"[1]

अतः इस काल की पत्र- पत्रिकाओं ने बाल-विवाह की सामाजिक विसंगतियों पर भरपूर वार किया था । " हिन्दी-प्रदीप " के संपादक ने इस कुप्रथा को बखिया उधेड़ते हुए कहा था- " समाज में अनुचित शब्द की कोई परिभाषा परिभाषा नहीं है । जैसे समाज में बाल्य विवाह की प्रचलित कुरीति को कोई बुरी और अनुचित नहीं मानता । पर वह बालिका जिसका विवाह अत्यन्त छोटी उमर में कर दिया गया कदाचित् विधवा हो गई और कामदेव की अग्नि वेदना के परवश हो व्यभिचार में तत्पर हो गई तो समाज के स्त्री लोग उसे बुरा कहने लगते हैं और उससे घिनाते हैं।---
--- अब कहाँ तो उसमें उस बालिका बेचारी का क्या अपराध ? आप समाज की कुरीति क्यों न दूर कर डालें---- पर यहाँ तो एक दुर्विचार सवार है १० वर्ष को न ब्याहोगे तो कन्यादान का पुण्य न होगा , मैं का दान कहलावेगा और विवाह के पहले कहीं रजो दर्शन हो गया तो पूरते नरक में ढकेल दिये जायेंगे ---।"[2]

उन दिनों तत्कालीन प्रकाशित पुस्तिकाओं

१- पियूष प्रवाह- २५ अप्रैल १८८४ पृ० १८ (भाग १ संख्या ३)

२- हिन्दी प्रदीप- जून जौलाई १८९९ , पृ० ६

भारतबन्धु।

THE

BHARAT BANDHU.

A Weekly Journal of Literature, Science, News and Politics, &c.

PUBLISHED EVERY FRIDAY.

गमयतु जनमोहं सच्चिदानन्दरूपः। वितरतु भवमुक्तिं वासनाबन्धतापः
सभवतु मम पथ्या शिक्षाविश्वगोपः। प्रहरतु हृदयस्थध्वान्तमन्तः प्रदीपः

VOL V
No 32
पंचम भाग।
संख्या ३२

विद्या बुद्धि नय नीति नय पावन परम उदार। दिनदिन भारतबन्धु बढ़ करहु देश उपकार।

ALIGARH, 19nd AUGUST शुक्रवार १९ अगस्त अलीगढ़ सन १८८१

Price
मूल्य

आज नगर के गोस्वामी महाराज के कारागार वास पाने से सब भरतखंड निवासी वैष्णवों का हृदय दुःखित हुआ है—बम्बई प्रान्त के भाटियों की तो सुनते हैं अवस्था दया है—बहुत लोगों ने दूध दुहने भोजन का परित्याग किया—बहुत लोगों ने व्यापारी धंधे छोड़कर शोकसागर में प्रवेश किया दुकान हाट बंदकर दी जितना दुःख उनके भक्तमाने थोड़ा है क्योंकि वे गोस्वामी महाराज को देव भावसे सेवाकरते हैं—स्त्रियोंकी वेदना पुरुषों से भी प्रबल है—निदान ऐसा कोई कठोर चित्त न होगा जिसको गोस्वामी महाराज की विपत्ति देखकर दुःख न हुआ हो—कारण इस विपत्ति का जो हमने इस समय तक सुना है वह संक्षेप से इस भांति वर्णन किया जाता है कि आज नगर के डाकखाने से एक बड़ा मूल्य पारसल कहीं को रवाने हुई थी पोस्टमास्टरने उसमें से धनतो निकाल लिया पैसे भरकर बोझ पूरा कर दिया जब पारसल वाले के पास वह पारसल पहुंची उसको खोल चाबीपर बैठे हुए हुआ—तलाश करने से मालूम हुआ कि आज नगर की पोस्टमास्टर की चाबाकी है—जब उस पोस्टमास्टर से पूछा गया उसने अपने अपराध को स्वीकार किया और उसके साथ महाराज को भी लपेटा कि महाराज का ऋण मुझे देना था सो इनके कहने से यह अपराध किया है सुनते हैं उस पारसल का कुछ द्रव्य या मूल्य महाराज के यहां निकला निदान महाराज पर यह अपराध अंगरेजी जज के निकट निश्चय होगया महाराज और उनके भक्तोंने सब प्रकार की चिन्ताकी और असंख्य धन व्यय करना चाहा परन्तु काल की सी आज्ञा किसी भांति न टाल सकते हैं कि बम्बई प्रान्तके अनेक वैष्णवों ने भी माननीय गवर्नर को देख एक निवेदन पत्र भेजा था परन्तु प्रयोजन किछु न हुआ अब श्रीमहाराजाधिराज गवर्नर जनरल की कृपा दृष्टि की लोगों को अभिलाषा है उसी आशा पर महेश जी और उनके भक्त क्यों तक काल खोपकर रहे हैं अभीतक उनको यह निश्चय नहीं हुआ कि उक्त महाराज वास्तव में अपराधी थे या इस भावसे कि किसी ने उनपर यह दोष लगाया था क्योंकि ऐसे महात्माओं के ऊपर ऐसा अपराध लगाने से विशेष कोई लाभ विदित है—यदि अपराध यथार्थ है तो हम निकट उनके भक्तोंको दुःखी होने कोई अवसर नहीं है परन्तु उपाय पर अवश्य है—हमारे धर्मोपदेशक

और रूढ़िवादियों में वर- कन्या की विवाह आयु तथा सामाजिक कुप्रथाओं के शोधन में सरकार का हस्तक्षेप हो या नहीं ? इन प्रश्नों को लेकर तीव्र विवाद की स्थिति थी। "कविवचन सुधा" का मत था - इस कुप्रथा के विरुद्ध उठाया कदम हिन्दू धर्म में हस्तक्षेप नहीं है क्योंकि मनुस्मृति और अन्य हिन्दू धर्म शास्त्रों में विवाह की आयु २६ वर्ष मानी है।[1] "हिन्दुस्थान"[2] (कालाकांकर, दैनिक) "अल्मोड़ा अखबार"[3], "भारत बंधु"[4] आदि ने इस कुप्रथा को समाप्त करने के लिए सरकारी हस्तक्षेप को उचित ठहराया था। किन्तु "सज्जन विनोद"[5], "प्रयाग समाचार" ने सरकारी हस्तक्षेप के प्रति कड़ा विरोध प्रकट किया था। बंगाली सरकार ने "बाल विवाह" को रोकने के लिए १८९१ में एक कानून बनाया था। "भारत जीवन" ने इसे अन्यायपूर्ण बताते हुए महारानी विक्टोरिया के १८५८ की घोषणा के विपरीत कहा- "यह समझना कठिन है कि सरकार इतनी शीघ्रता से इस बिल को क्यों पास करना चाहती है ? जबकि यह हिन्दू धर्म के विपरीत है और सारे भारत में इसका विरोध हो रहा है।"[6] परंपरावादी पत्रों में "लिक्ष्मी समाचार" ने भी इस संवैधानिक कदम को भारतीय धार्मिक रीति-रिवाजों में सीधा हस्तक्षेप बताया था। तथा इसके विरुद्ध मोटिंग करके सरकार को

१- कविवचन सुधा, मार्च, १८८३, उद्धृत रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब १८८३ पृ० २४५

२- हिन्दोस्थान, १४ जनवरी १८९१, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर---- १८९१ पृ० ३८

३- अल्मोड़ा अखबार २६ दिसम्बर १८९३, रिपोर्ट आन नेटिव---- १८९३, पृ० १०

४- भारतबंधु, २९ जून १८७८ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स जुलाई-दिसम्बर १८७८ पृ० ५७७

५- सज्जन विनोद और "प्रयाग समाचार" २४ मार्च १८८६ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स १८८६ पृ० २६०

६- भारतजीवन, ६ फरवरी १८९१ (मार्क्सीफिल्म, नेहरू लाइब्रेरी नई दिल्ली)

रमण पर पैदा करने की कला था[1]। किन्तु ऐसे कट्टर पंथी पर्दों की संख्या अधिक नहीं थी। और समाज-सुधार संगठनों तथा नेताओं के बाल विवाह के विरुद्ध सराहनीय कार्यों में एम० बी० मालाबारी के दो प्रकाशित नोटिस " नोटिस आन इन्फैंट मैरिज इन इंडिया " और " एनफोर्स्ड विडो हुड " महत्वपूर्ण थे। " हिन्दुस्तान " ने मालाबारी की मथुरा मीटिंग का विवरण प्रकाशित करते हुए लिखा था - "" इस प्रथा को समाप्त करने के लिए वहां एक कमेटी गठित की गई और मालाबारी का प्रयास अवश्य फल लायेगा[2]। नेशनल सोशल कांफ्रेंस " मीटिंग (२६ दिसम्बर, १८८९ बंबई) में भी प्रस्ताव पास किया गया था कि विवाह के समय कन्या की आयु कम से कम १४ वर्ष होनी चाहिए[3]।

" हिन्दी प्रदीप " ने " बाल विवाह " के अभियुक्तों के लिए जुर्माना आदि लगा और उस विवाह को नाजायज करार करने की युक्ति सोची थी- " जब तक गवर्नमेंट इसका एक सख्त कानून न बना देगी कि जो लोग १४ या १२ वर्ष के नीचे कन्या , २० या १८ वर्ष के पहले लड़के का विवाह करें, उन दोनों के अभिभावकों पर जुर्माना किया जाय और वह विवाह नाजायज समझा जाय, तब कदाचित असर होवे[4]। ""

१- " हिन्दी समाचार " १७ जनवरी १८९१, उद्धृत रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स इन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब पृ० ४९-५०

२- " हिन्दुस्तान " (कालाकांकर) १८ मार्च १८८५ रिपोर्ट आन नेटिव--- १८८५ पृ० २२२

३- होम डिपार्टमेंट प्रोसिडिंग्स प्रोग्रेसिव जनवरी, १८९१ (न० १५६ २)

४- हिन्दी प्रदीप , अप्रैल , १८९० पृ० २१-२२

"भारत मित्र" ने २ जून, १८७८ के अंक लेख में लिखा था "जो देश से बाल विवाह उठा देने के लिए प्रेसिडेन्सी विभाग के स्कूल इन्स्पेक्टर ने एक उपाय स्थिर किया है जो बालक विवाहित हैं वो कलकत्ते के विश्वविद्यालय में प्रवेशिका परीक्षा न देने पावें, इस प्रकार का एक आज्ञा करना उचित है"[1]। "भारतबंधु" ने भी इसके प्रस्ताव का समर्थन किया था।[2]

1. विधवा विवाह

उस युग में विधवा- विवाह को लेकर काफी तनाव की स्थिति और पक्ष- विपक्ष में वाद- विवाद था। "भारत जीवन" (२१ अप्रैल, १८८४) ने लिखा था "भारतवर्ष में २ करोड़ से भी अधिक हिन्दू विधवा हैं जिनमें से ३६ लाख, बारह हजार एक सौ सात (३६ २२ १०७) विधवा पश्चिमोत्तर और अवध प्रदेश में हैं। अर्थात् २ सौभाग्यवती के पीछे एक स्त्री ऐसी है जो वैधव्याग्नि से दग्ध है। इन ३६ लाख विधवाओं में से ३१ लाख ऐसी हैं जिनकी अवस्था ३० वर्ष से भी कम है।"[3] इनकी समाज ने जीवन के हर सुख से वंचित कर दिया था। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर आदि के प्रयत्नों से हिन्दू विधवा विवाह अधिनियम १५ जनवरी १८५६ को पारित हो गया था लेकिन कूपमण्डूक समाज पर इसका प्रभाव बहुत कम पड़ा था। अतः अनेक हिन्दी पत्र- पत्रिकाओं ने हुल्लड़ के साथ ठीक से हट कर विधवा विवाह के लिए आह्वान किया था। "कोई भी ऐसा न होगा जो आठ विधवाओं के

१- भारतमित्र, २ जून १८७८

२- भारतबंधु, २१ जून १८७८, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन०डब्ल्यू० पी० १८७८ पृ० ५७७

३- भारतजीवन, २१ अप्रैल १८८४

आरंभनाद में व्याप्ति न होता हो--- आप लोगों ने वेद-शास्त्र की परिपाटी और मर्यादा का लंघनात कर डाला केवल बाल विधवाओं का गला रेतने में तुम सब शास्त्र के विचारों और मर्यादा वाले कहलावोगे--- विधवा विवाह के प्रतिपालियों---- क्या पाराशर ऐसे- वैसे मुनि ने चिल्लाने साफ साफ विधवा विवाह की आज्ञा दी है। "कलौ पाराशरो स्मृतिः" इस वचन से उसी का प्रचार होना चाहिए---- लीक- लीक गाड़ी चले लीकें चले कपूत। "लीक छोड़ तीनों चले शायर सूर सपूत।"[1]

हिन्दू कन्याएँ अधिकतर अल्प वयु (८-९ वर्ष) में ही विधवा हो जाती थीं। यदि विवाह योग्य वयु पर पहुँचने पर कभी उनके ऊँच-नीच हो जाय तो वे भ्रूण- हत्या करने को विवश होतीं। "कविवचन सुधा" (११ मार्च १८७८[2]) तथा "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में प्रकाशित "भ्रूण- हत्या" (मार्च, १८७५) लेख में भारतेन्दु ने इस कुप्रथा के विरुद्ध सरकार से कानून की माँग की थी "हम सर्कार से, अपने सब आर्य भाइयों से हाथ जोड़ कर निवेदन करते हैं इसको सब लोग एक बेर चित्त देकर और हठ छोड़ कर सुनें। यदि सर्कार कहे कि हम धर्म विषय में नहीं बोलते तो उसका पहले हमसे उत्तर सुन ले--- प्रजा के प्राण की रक्षा राजा को सबसे पहिले मान्य है। वैसे ही जो हम कहेंगे उसमें भी प्रजा के प्राण से संबंध है। अभी अखबार में छपा नाले पर से एक लड़की नाले में से निकली है--

---

१- हिन्दी प्रदीप, नवंबर, १८८२ पृ० २३

२- "गर्भ निरोध के ऐसे दुरात्मक कदम उठाने के पश्चात् भी यदि कोई महिला गर्भवती हो जाती तो वह गर्भपात करने का प्रयास करती। यदि गर्भपात में असफल हो जाती तो उस अवैधानिक शिशु को भूखा मारने का प्रयास करती।"

- कविवचनसुधा, ११ मार्च १८७८

ऐसी हत्या सारे हिन्दुस्तान में यदि सब पकड़ी जायें और गिनी जायें तो प्रति महीने में एक हजार होती है। इस हत्या के कारण और दोषवाली कौन लोग हैं? हमारे ही ब्राह्मण और धर्माभिमानी लोग। यदि वह पौनर्भव सन्तति को निंदा न करते उसका अनुमोदन करते तो यह हत्या क्यों होती? यह न हमने कभी कहा है, न कहेंगे कि बल से स्त्रीका पुनः विवाह हो परन्तु जो कन्या हो बला में विधवा हो गई है या जिसको काम चेष्टा हो उनका विवाह क्यों न हो? क्या हमारे धर्माभिमानी पंडित और ब्राह्मण उस प्रकृति के नित्य और प्रबल प्रवाह को भी अपने हठ से रोका चाहते हैं? ---- समुद्र का वेग किसने रोका है?--- कौन शक्ति मुनि जिस वेग को नहीं रोक सके आपके पुरखे ब्रह्मा पराशर अन्य कौन जिस आतुरता को नहीं सह सके उनको ये स्त्रियाँ सहें? "[1]

"आर्या[2]", "अल्मोड़ा अखबार[3]" आदि ने भी इसके लिए कानून को गाली की थी। "प्रयाग समाचार[4]" ने १८ जनवरी १८८५ में कायस्थ पाठशाला में हुई मीटिंग का हवाला देते हुए विधवा विवाह के प्रति समर्थन व्यक्त किया था। आर्य समाज की पत्रिका "आर्य दर्पण" ने कहा था कि विधवाओं ने अपनी दयनीय दशा का अनुभव किया है और उन्होंने शिकायत की कि विधुर कितनी ही बार विवाह कर सकता है जबकि विधवा को यह अनुमति नहीं है।[5] "ब्राह्मण", "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका",

---

१- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, मार्च १८७५ पृ० १६५-१६६

२- "आर्या" १ जून १८७८, उद्धृत रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, नार्थवेस्ट० पी० एण्ड पंजाब, १८७८ पृ० ५१८-१९

३- अल्मोड़ा अखबार, ६ अक्टूबर १८८४, रिपोर्ट आन --- १८८४ पृ०६०२

४- प्रयाग समाचार २१ जनवरी १८८५ रिपोर्ट आन--- १८८५ पृ० ६

५- आर्यदर्पण, अप्रैल १८९२, रिपोर्ट आन--- १८९२ पृ० १५८

" भारत जीवन " आदि ने " विधवा विवाह " के समाचारों पर हर्ष व्यक्त किया था ; तथा इसे प्रोत्साहित किया था[1]।

3. अनमेल वृद्ध विवाह तथा बहु विवाह

" आर्य दर्पण " (आर्य समाज की पत्रिका) ने अनमेल विवाह के विरुद्ध लिखा था कि हिन्दू धन के लालच में अपनी अल्प आयु वाली लड़की का विवाह अधिक आयु के पुरुष से कर देते हैं। अतः इस प्रकार की प्रथा को रोकने के लिए कदम उठाने चाहिए[2]। इस विवाह का दुष्परिणाम यह होता था कि पति शीघ्र मर जाता था और उस लड़की को वैधव्य का नारकीय कष्ट झेलना पड़ता था। " प्रयाग समाचार " ने इसे दबाने के लिए बालराय से अनुरोध किया था[3]। " भारत जीवन " में एक पाठक ने इस प्रथा के विरुद्ध आवाज उठाते हुए लिखा था -" " मैं अपनी देश-बिरादरियों से प्रार्थना करता हूँ कि यदि ८० वर्ष के बूढ़े से ८ वर्ष की कन्या का विवाह हुआ तब के दिन वह विधवा हुए रहती हैं ? मानो कि उनके विधवा होते ही विधवा विवाह कर दिया गया तो तीस वर्ष की उमर तक उनके कितने विवाह संभव हैं ? अब कहिये कि प्रथम विधवा विवाह प्रचार होना या कुछ विवाह रहित होना (कि जिसमें विवाह निज लालच और कन्या वाले की ओर मूर्खता से कोई भी बाध्यता नहीं है) उचित है।" " (का० प्र० कारस्थ)। " " हिन्दी प्रदीप " ने भी इस दुष्कार के खिलाफ आवाज उठायी थी। " विहारबन्धु[4] " ने " चिट्ठीपत्री " स्तम्भ में तथा " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका[5] " में

१- श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका , १५ मार्च, १८७५ पृ० १६६

२- आर्यदर्पण , मार्च १८८१, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर--- १८८१ पृ०२०६

३- प्रयाग समाचार, २८ मई १८८३, रिपोर्ट आन--- १८८३ पृ० ४६०

४- भारत जीवन , १८ जनवरी, १८८७ पृ० ६

५- विहारबन्धु, २७ सितम्बर,१८८३ तथा ४ अक्टूबर १८८३

प्रकाशित " वधूस " नाटक में बहुविवाह के दुष्परिणामों को दिखाया गया है।

4. दहेज प्रथा

हिन्दी पत्रकारिता ने विवाह के अवसर पर दहेज लेने- देने की भर्त्सना कर समाज और सरकार का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया था। " हिन्दी प्रदीप " ने कान्य कुब्ज ब्राह्मणों में व्याप्त इस कुचलन के विरुद्ध आवाज उठाते हुए आग्रहपूर्वक कहा था -" ऐसे समय में जबकि फेशन और टैक्स के बोझ से देश का देश उबाड़ हो रहा है। ऐसे बहुत थोड़े से आदमी निकलेंगे जो रोटी- पूरी हों और खाने-पीने से सुखी हों।--- ऐसी दशा में कान्य कुब्जों की कन्याओं का ब्याह एक बहुत बड़ी मुसीबत हो रही है।-- सच तो यह है कि ये लोग बड़े लालची हैं।--- जो करार में कुछ भी कम मिला तो लड़की वाले को बड़ी दुर्दशा करते हैं। --- लड़के की गिरी रख कर कर्ज लेते हैं।--- लड़का क्या है बल्कि Landed Property उसे समझना चाहिए।"[1]

" कविवचन सुधा " ने भी सरकारी सहायता की अपेक्षा रखते हुए कहा था- " ब्राह्मणों के इस वर्ग में लड़की का विवाह तब तक नहीं होता जब तक लड़की का बाप वर के बाप को दान के रूप में अच्छी राशि नहीं देता। निर्धन मां- बाप की लड़कियाँ बुढ़ापे तक कुंवारी बैठी रहती हैं।[2] उनका यौवन कष्टप्रद और दयनीय है, दहेज- प्रथा निर्धनता का कारण बन गयी थी। " भारतेन्दु " (हरीश्चन्द्र) ने लिखा था कि विवाह में अत्यधिक अपव्यय से भारतीय निर्धन होते जा रहे हैं। सरकार को इसमें

१- हिन्दी प्रदीप, नवंबर १८८२ पृ० २३

२- कविवचन सुधा २१ मार्च, १८७७ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब १८७७ पृ० ३६६

[illegible] कर उन्हें नष्ट होने से बचाना चाहिए[1]। बाद के समान तब भी दहेज प्रथा, हत्या का कारण बन जाती थी। "आर्यदर्पण" के अनुसार लखिया प्रसाद कान्यकुब्ज ब्राह्मण ने अपनी पुत्री की हत्या इसलिए कर दी कि वह दहेज के ५०० या ६०० रुपये नहीं दे पा रहा था[2]। "मित्र विलास" ने भी कान्यकुब्जों में प्रचलित दहेज प्रथा की भर्त्सना की थी[3]।

अनेक भारतीय तथा सामाजिक संगठनों ने सभाएँ बुलाकर इसके विरुद्ध आन्दोलन चलाया था। "नागरी नीरद" (मिर्जापुर) ने जौनपुर के मजिस्ट्रेट द्वारा राजा शंकर दत्त दुबे के घर में हुई (२७ मार्च १८९२) एक मीटिंग में विवाह खर्च में कटौती करने के प्रस्ताव को प्रकाशित किया था[4]। भारतीय पत्रिकाओं "जाट समाचार"[5] (जनवरी, १८९२) "कायस्थ अखबार"[6] (२४ सितम्बर १८८८) आदि में विवाह-व्यय में कटौती के समाचार प्रकाशित किये थे।

3. नारी-समस्याओं के प्रति आधुनिक प्रगतिशील दृष्टिकोण

युग युग से प्रताड़ित-अपमानित नारी वर्ग के

१- भारतबंधु १३ जून १८७८ रिपोर्ट आन---- १८७८ पृ० ५३७
२- आर्यदर्पण, फरवरी, १८९५ रिपोर्ट आन---- १८९५ पृ० १२७
३- मित्रविलास, १ जुलाई १८७८ रिपोर्ट आन---- १८७८ पृ० ५८१-८२
४- नागरी नीरद, ६ अप्रैल १८९३ रिपोर्ट आन-----
५- कायस्थ समाचार २४ सितम्बर १८८८ रिपोर्ट आन---- १८८८ पृ०५४६
६- जाट समाचार- जनवरी १८९२ रिपोर्ट आन --- १८९२ पृ० २५

प्रति इन पत्रिकाओं की संवेदनशीलता और जागरूकता उनकी चेतना की परिचायक है। ये स्वाधीन विचारों, प्रजातांत्रिक एवं मानवतावादी मूल्यों की प्रस्थापित करने वाली पत्रिकाएँ थीं। उन्होंने नारी को पुरुषों के समान अधिकार, सम्मान और प्रतिष्ठा की अधिकारिणी घोषित किया। उस युग में नारी के प्रति समाज की मानसिकता रूढ़िवादिता सामन्ती-बोध संयुक्त थी। "हिन्दी प्रदीप" पत्रिका के संपादक बालकृष्ण भट्ट का स्पष्ट मत था "बाहर हम जितनी ही तरक्की करें, बड़े से बड़ा इम्तिहान पास कर उठना और कुल-रपति के प्रतिनिधि हो जायें स्त्रियों की दशा में जब तक परिवर्तन न होगा कुछ न हो सकेगा[1]"।

अनेक नारी-समस्याओं- पर्दा प्रथा, शिशु-हत्या, स्त्री अशिक्षा आदि पर विचार कर इन पत्र- पत्रिकाओं ने नारी की विडम्बना-पूर्ण हीन- स्थिति का जिम्मेदार पुरातन धारणाओं और बकवासी तत्वों को ठहराया था। "पण्डितों ने अपनी पोथियों में स्त्रियों को हर तरह से घटाया है--- स्त्रियों को सिवा लौंडी और दासी बनाये रखने के उन्हें किसी काम का न रखा। अपने आधीन रख सब तरह का अत्याचार और जुल्म उन पर करना उचित समझा--- हम उन पंडितों को क्या समझायें--- ये आपके घर की शोभा हैं, संसार की सार पदार्थ हैं।[2]"

1. पर्दा-प्रथा

नारी की स्वतंत्रता का हनन करने वाली पर्दा प्रथा का चलन मुगल काल से माना है। "समय विनोद सत्संयुक्त सुदर्शन समाचार" पत्रिका ने कहा - "वास्तव में पर्दा भी हमारे इस भारत-खण्ड में न था-- समय की महिमा से इस देश के राजा बल हीन होने लगे तो यवनों का राज्य

१- हिन्दी प्रदीप, जून १८९४

२- वही, जौलाई- अगस्त, १८९५ पृ० १०

इस भरत खण्ड पर हुआ। --- जिसकी स्त्री या कन्या दर्शनीय देखी या उसके पण्डिता होने की चर्चा सुनी बलात्कार से उसे पकड़ कर ले गये। जब बादशाहों को यह दुर्मति हुई तो उनके अनुचरों के अन्याय का क्या कहना है। --- एक हमारी प्रसिद्ध पण्डिता बाग्भट्ट जी ने अपनी कन्या सम्पूर्ण शास्त्र पढ़ा कर ऐसी पण्डिता बनाई कि उस समय पाण्डित्य में कोई उसकी बराबरी नहीं कर सकता था --- जब उस लड़की के विद्यावती के समाचार उस समय के यवन बादशाह ने सुने तो अपने गणों को उसके हरने की आज्ञा दिई --- जब इस प्रकार भरतखण्ड में अनीति फैली तो लोगों ने अपनी अपनी लड़कियों को पढ़ाना बंद कर दिया और दुष्ट बादशाहों को अनीति से परदा भी श्रेष्ठ श्रेष्ठ मनुष्यों में होने लगा।[1] "हिन्दी प्रदीप" ने इस पर्दा प्रथा के विरुद्ध जोरदार आन्दोलन किया था - "" हम अपने आपको इस बात का बड़ा फक्र समझते हैं कि हमारी भतुराएँ सूर्यपत्या हैं अर्थात् सूर्य भी उनका मुख कभी नहीं देख सकते, धिक् हमारे लानत इस फक्र और ऐसी पर --- मसल है " राम बहू कौरे जाय पिन कौवा देख डराय।" घर में बहू जो ३ हाथ का घूंघट काढ़ गिन गिन पांव रखें बाहर निकलती है त्रिविक्रम के समान कहीं एक पांव में तीनों लोक नाप आवें तीर्थों में जवान स्त्रियों के नहाने धोने या मन्दिरों में जाना बड़ी बेपरदगी है पर क्या किया जाय ? अंध परंपरा में यह कुरीति समाहित है।[2]"

2. स्त्री-शिक्षा पर बल

नारी-सुधार के प्रति जागरूक अभिव्यक्ति सर्व-प्रथम भारतेन्दु काल में ही दिखाई देती है। नारी की जड़ता, अज्ञान और

१- समय विनोद तत्वसंयुक्त सुदर्शन समाचार १५ मई १८७६ पृ० ४

२- हिन्दी प्रदीप, जून, १८९४

बन्धविश्वासों को तोड़ने के लिए हिन्दी पत्रकारिता ने निरन्तर प्रयत्न किया। उन्होंने स्त्री-शिक्षा को महत्व देते हुए उसे अनिवार्य बताया। "बिहार बन्धु" (१३ फरवरी १८७८) ने हिन्दुस्तान के पतन का कारण स्त्री अशिक्षा को बताते हुए लिखा - "शास्त्र में स्त्री को पुरुष- अर्धांग लिखा है। जो विचारने की बात है कि आधा अंग जिसका मुख रहेगा वह कभी शान्ति नहीं हो सकता और देखना चाहिए कि सिर्फ इसी रोग से हिन्दुस्तान को ऐसी दशा है कि अब घरों सब देश वालों से हम लोग ज्यादा खराबी हाल में हैं।[1]" "हिन्दी प्रदीप" ने समाज की प्रगति का उत्तम स्त्री-शिक्षा को बताया- "स्त्रियों के शिक्षित और सीखिए हुए बिना समाज की सुपराइट बाहरी चमक-दमक बुना पीतल कलई के समान है। हिन्दुओं में स्त्रियाँ न कभी पढ़ाई जायेंगी, न उनकी निकम्मी समाज किसी गत को होगी।[2]"

समाज में नारी पुरुष के लिए दोहरे मान-दण्ड, दोहरे मूल्यों एवं आचरणों के विरुद्ध मोर्चा बड़ी को पी। उस युग के सामाजिक अन्तर्विरोधों, विसंगतियों और यथार्थ का चित्रण इस विरोधाभास में बखूबी व्यक्त हुआ है- "बाबू साहब कुंवान तोड़ विलायत को राह विचारने के लिए कदम उठाये हुए हैं बहुजाल घर बैठी गोबर पाथती रही। बाबू साहब लाला साहब मिस्टर सी एण्ड सी कहे जाने की उमंग में फूले नहीं समाते, सलाहन काँजा छनो हो रही जाई। बाबू साहब आर्यसमाजी और ब्रह्मसमाजी हैं फिलोसफी में अपना आँखल बराबर कायम करते हैं, घर में बहू जो मूल फूलनी समाज को प्रिजीडिट है।[3]"

पाठीन पत्रिका "साहित्य पत्रिका" में "जवा-

१- बिहारबन्धु, १३ फरवरी, १८७८ पृ० ४

२- हिन्दी प्रदीप, नवंबर १८८२ पृ० २३

३- वही, जून, १८९४

फिर लाल पाठक की प्राचीन कविता में नारी की दयनीय दशा पर संकेत किया गया है- "दारा गण को लति दया, दुख भरि बाकत नीर।
पाते भारत दीन लखि, किमी रमणी बिनु धीर।।" १

"रूपय विनोद" (पाक्षिक, नैनीताल) के एक आलेख "कन्याओं की शिक्षा अवश्य चाहिये" में कन्या-अशिक्षा से होती हानि की चर्चा करते हुए उनके अज्ञानान्धकार को दूर करने पर जोर दिया। "हमारे स्वदेशीय लोग अपनी कन्या का वध दो प्रकार से करके आप अपने सिर पाप चढ़ाते हैं- प्रथम यह कि छोटी सी अवस्था में अपनी कन्या का विवाह ज्योतिषियों, नाइयों और ब्राह्मणों के विश्वास पर बिना देखे-भाले अज्ञात कुरूप और अज्ञानी लड़के के साथ कर देते हैं दूसरा यह अपनी कन्याओं को शिक्षा पर ध्यान नहीं देते, कुछ रहते हैं। हम लोगों का काम है स्वदेशी भ्रातृओं के उपकारार्थ अपनी बुद्ध्यानुसार उन्हें शिक्षोपदेश करें- यह शोक की बात है कि हमारे अज्ञान लड़कियों को नहीं पढ़ाते। कहते हैं जो वे पढ़कर हो जायेंगी तो उनका चाल चलन नष्ट हो जायेगा इत्यादि अनेक प्रकार की निर्मूल शंका करते हैं। हम उनसे प्रार्थना करते हैं कि लड़कियों का पढ़ाना-लिखना आज नई बात नहीं, यह हमारे देश की प्राचीन रीति है। --- आप लोग न्याय की दृष्टि से विचार करें कि स्त्रियों के पढ़ने- लिखने से चलन बिगड़ना या सुधरता है --- लड़कियों को शिक्षा देने से अनेक उत्तम फलों का प्रादुर्भाव होता है।" २

3. कन्या-विक्रय तथा वेश्या-वृत्ति

भारत में १८७३ ई० में कलकत्ता में ६८८१ पंजीकृत

१- नागरिक पत्रिका - नैनीताल, मुन्सि १०, संवत् १९४० पृ० २१७

२- रूपय विनोद साप्ताहिक मुरादाबाद समाचार १५ मई १८७६ पृ० ३-५

वेश्याएँ थी। कलकत्ता में जून- जौलाई १८७४ तक ६४५५ वेश्याओं का पंजीकरण हुआ था। इन आँकड़ों के अतिरिक्त अधिकतर ऐसी वेश्याएँ भी थी जिनका पंजीकरण पुलिस के गाँठ-गाँठ के कारण नहीं हो पाया था।[1] देश में फैले इस व्यापार के विषय में " सत्य-विनोद " ने तीव्र भर्त्सना कर सरकार से इसे बंद करने की माँग की थी - "" यह केवल दुराचार ही नहीं शास्त्र में शूद्र को कन्या-विक्रय का निषेध है- अब तो बहुधा ब्राह्मण ,पत्री, वैश्यों ने तो यह पेशा ले लिया। रुपया के लालच से अपनी आत्मजा कन्या को चौर- उच्चका, काना-लंगड़ा , शराबी कबाबी कोई हो उसके हवाले कर देते हैं अपनी कन्या का सुख-दुःख कुछ नहीं देखते हैं--- अपनी बेटी से व्यभिचार कराते हैं। बेटी के बदले रुपया लेना शास्त्र में साफ कन्या-विक्रय लिखा है।[2]"" भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वेश्या समस्या पर व्यंग्यात्मक " वेश्या-स्वराज " लिखा था।[3] हिन्दुस्थान (कालाकाकर) ने भी डायर के बाम्बे क्रानिकल " से प्रकाशित पत्र में भी डायर सरकारी कर्मचारियों द्वारा ऐसे शर्मनाक कार्यों के लिए कटु आलोचना की थी।[4] " प्रयाग समाचार " ने भी " अन्याय" देश में कौड़ियों लिया के लिए भेजी जा रही वेश्याओं की पीड़ा सही थी।[5]

4. जाति-वर्ण व्यवस्था

जाति प्रथा हिन्दू धर्म का ताँत ढाँचा थी---

१- विद्यारत्नेंदु , १८ मई, १८७४ , २२ जौलाई १८७४ और ६ जून, १८८४

२- सत्य विनोद , १ मई १८७६

३- भारतेन्दु ग्रंथावली (तीसरा भाग) पृ० ८४३-४५

४- हिन्दुस्थान १३-१४ जून १८८८ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स ---- १८८४ पृ० ८४

५- प्रयाग समाचार, १८ जून १८८८ रिपोर्ट आन---- १८८८ पृ० ३८४

आदमी का सामाजिक अस्तित्व उसी जन्म पर निर्भर था, न कि उसकी योग्यता और सम्पत्ति पर।[1] "जन्म" सामाजिक विभाजन का आधार होने के कारण जाति अपरिवर्तनीय थी। जाति-वर्ण व्यवस्था अलोकतांत्रिक प्रकृति पर थी और विषमता का बोध पक्ष करने के कारण सामाजिक-आर्थिक स्वाधीनता में रोड़े अटकाती थी- "हिन्दी प्रदीप" पत्रिका ने जाति-प्रथा को बदलते समय के प्रतिकूल तथा देश की प्रगति में अवरोधक बताया, "एक समय था जबकि जाति पाँति का कड़ा २ होना धर्म का प्रधान अंग था---- इस समय जाति पाँति के झगड़े ही पर देश की कमजोरी और हानियों का दारमदार जा लगा है।"[2] समाज में एक भोजन, स्वजातीय विवाह, सामाजिक असमानता, व्यवसाय के चुनाव में स्वाधीनता का अभाव आदि जाति-व्यवस्था की प्रबल प्रवृत्तियाँ थी - "कभी हम भी सभ्य स्वाधीन और महान होंगे ---- हमारे समाज में जो कुछ दोष हैं और जो वास्तव में दोष रूप होकर भी गुण माने जाते हैं वे पूर्वजों के और सभ्य जाति के लोगों में भी क्या थोड़े ही समझे गये हैं। स्त्रियों को न पढ़ाना, बाल्य-विवाह, एक भोजन का न होना जिन्हें हम अपनी जाति में एक बड़ी श्रेष्ठता की बात मान बैठे हैं वे किस सभ्य जाति में समादरित हैं।"[3] जाति प्रथा से हुई। ब्रह्मसमाज और प्रार्थना समाज ने जाति प्रथा की भर्त्सना की उसके विपरीत आर्य समाज ने चार वर्णों पर आधारित जाति व्यवस्था को पुनरुज्जीवित किया। सामाजिक - सांस्कृतिक पिछड़ेपन और गुलामी का मूल कारण जाति व्यवस्था बताया गया -" जाति भेद, वर्ण भेद संप्रदाय भेद ने समाज को महारोगी, निर्बल और जीर्ण कर डाला किन्तु पराधीनता पिशाची के चंगुल में पड़े हुए इन अवगुणों को हटाने का उपाय क्या नहीं किया गया।"[4]

१- ए० आर० देसाई, पूर्व उद्धृत पृ० २०२

२- हिन्दी प्रदीप, फरवरी- मार्च १८९६ पृ० ५५

३- विद्यार्थी, १३ फरवरी १८८८ पृ० ४

४- हिन्दी प्रदीप, जुलाई १८८६ पृ० ३२-३३

5. अस्पृश्यता

बहुत हिन्दू समाज के बहिष्कृत- तिरस्कृत और थे जिन्हें सार्वजनिक कुएँ, मंदिर, पठन-पाठन के उपयोग का अधिकार प्राप्त नहीं था। शूद्रों के लिए साधारण अपराध में भी कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। उन पर सामाजिक-उत्पीड़न- अन्याय धर्म सम्मत माना जाता था। उन्नीसवीं शताब्दी में प्रबुद्ध भारतीयों ने इस अमानवीय प्रथा के विरुद्ध रोष प्रकट किया और अनेक सुधार संगठनों तथा राष्ट्रीय कांग्रेस आदि ने भी अस्पृश्यता-उन्मूलन के लिए शिक्षा- प्रसार पर जोर दिया। हिन्दी पत्रकारिता ने भी इस ओर सराहनीय कार्य किया था। "हिन्दी प्रदीप" संपादक का मत था अन्त्यज जाति में भी पैदा हुआ हो और नेकचलन है, जो वही कुलीन है।[1] इस पत्रिका ने निम्नलिखित श्लोक पर पाठकों की राय पूछी थी,

"जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासे भवेत् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।"

इस वाक्य में क्या सत्य है?---- पहला वाला वाक्य है? हमारे ब्राह्मणों में से लोगों का इस पर क्या सिद्धान्त है?[2] "बाला-बोधिनी" में भारतेन्दु ने स्पष्ट कहा था- "जाति में कोई छोटा ऊँचा हो चाहे नीचा हो एकता आदर कीजिए- छोटी जाति के लोगों का तिरस्कार करके उनका जी मत तोड़िए।"[3] गांधी जी ने इसी मत को आगे बढ़कर आन्दोलन का रूप दे दिया था।

6. निःशुल्क श्रम या बेगार प्रथा

पुलिस, राजकीय अधिकारी तथा उच्च वर्ग

१- हिन्दी प्रदीप, मार्च १९०६

२- वही, १८६९

३- बालाबोधिनी, जनवरी १८७८

निर्धन असहाय लोगों से बेगार कराना अपना एक एकाधिकार थे। "ब्राह्मण" पत्रिका ने इस अमानवीय शोषण के विरुद्ध आवाज बुलन्द की थी। "" तारीख २६ सितम्बर को लाला दुर्गाप्रसाद कसाब का बुन्दो नामक कहार किसी कार्य को बजार जाता था राह में उसके दो- तीन सिपाही जो वालमियाँ के पुत्र थे, मिल गये और पकड़ लिया। उन्होंने इस निरपराध दीन पराये नौकर को बेगार की असभ्य क्यारिटी पर पकड़ा था उन्हें क्या डर था ?--- लोक का विश्वास है कि इन गरीबों को क्यों बिना अपराध ऐसी दुर्दशा के साथ पकड़ते हैं और उनकी इच्छा के विरुद्ध उनसे काम लेते हैं। गुलाम बनाने में और इनमें क्या भेद है ? ---- बेगार लोग ठीक उन्हीं के स्पृश्य घटों और बिनों बरंच कभी २ महीनों पराये बंधन में रहते हैं। इस बेगार का भयंकर दुःख जमींदारों, व्यापारियों, गाड़ी वालों, पर्चियों, राजों, कहारों आदि से पूछा जाना चाहिए कि वे इनके नाम से कैसा थर थर काँपते हैं।[1]

7. रिश्वत, मदिरा- मांस- वृत्ति

कलियुग राज में वर्तमान भारत के समान रिश्वत, सिफारिश, मदिरा-मांस वृत्ति का प्रचलन खूब था। "ब्राह्मण" ने समाज के नैतिक पतन की ओर इंगित करते हुए लिखा था- "" क्या कोई ऐसा भी विचारशील पुरुष होगा जो रिश्वत को बुरा न समझे- हमारी समझ में तो जैसे चोरी करना, डाका डालना और जुआ खेलना है, वैसा ही यह भी है। --- हम पूछते हैं कि क्या इस लाने वाला अपने कर्तव्य से कुछ अधिक करता है--- बरंच और अत्यादि से इसकी इतनी दुष्टता और निर्लज्जता अधिक होती है कि वे उल्टे उल्टे पराया पर पालते हैं और यह उल्टा चोर कुत्वाल को डाँटे

१- ब्राह्मण, १५ मई, १८८३ पृ० २७

का सेवा करता है------ सरासर यह कि नीति, बुद्धि और धर्म के यह काम निस्सन्देह विरुद्ध है---- कुछ दिनों से हमारे देश में इसका ऐसा प्रचार हो गया है कि मूर्खों को कौन कहे पढ़े- लिखे लोग भी इस प्रत्यक्ष पाप से किंचित मात्र लज्जा और घृणा नहीं करते---- विशेषतः रेल पर तो स्त्रियां बोतलों में नोपायोंको भरा रखी हैं बिना कुछ छुपाये पिण्ड को छूना कठिन।[1] राधा विनोद " ने भी समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार और भिखारियों पर कुछ वार किया था[2]।

मदिरा से सरकारी राजस्व की बहुत अधिक आय थी[3]। मद्य-निषेध पर तत्कालीन हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, ब्राह्मण, पियूष प्रवाह, " हिन्दी प्रदीप " में पर्याप्त सामग्री प्रकाशित हुई थी। भारतेन्दु ने " करुणा विलाप ", " मदिरा स्वराज, वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति " आदि में इन सामाजिक दुर्बलताओं पर भरपूर व्यंग्य बाण मारे थे।

8. संयुक्त परिवार का विरोध

संयुक्त परिवार व्यवस्था भारतीय समाज की एक विशिष्टता रही है किन्तु हिन्दी कवियों ने भी आत्म-निर्भरता और स्वाधीन चिंतन की भावना के सिर पाठक आया " पारिवारिक अकर्मण्यता (जाइंट फैमिली) आत्म निर्भरता और स्वाधीन- चिंतन का प्रधान कारण है- हमारे देशों के भी मां- बाप भावुक कर अपने लड़कों को परमात्मोपासकों बना देते हैं---- बाप मां यदि संतान की पूरी उमर बाबाने से उन्हें अलग कर दें---- तो दोनों सुखी रहें। --- प्राचीन काल में १२ से २४ वर्ष ब्रह्मचर्य का

१- ब्राह्मण, १५ मई १८८३ पृ० ३०

२- " कलियुग देवता की भिखारिन देवी और भ्रष्टा सुंदरी उनकी दोनों स्त्रियों ने अपनी चाल ढाल से ऐसा मोहित किया है कि मानो सब उनके दास हो गये। जिनने भिखारिन देवी की उपासना तथा सौन्दर्य को यह धन-धान्य पूर्ण लोगया---

यही प्रयोजन था।[१]..

इस प्रकार समाज के सभी संगठन और पत्रकारिता माध्यम सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों के बस लेकर उनकी जड़ें तोड़ने में लगा हुआ था। वस्तुतः इस संधि-स्थल पर खड़ा समाज इतनी अधिक समस्याओं से झूझ रहा था कि उन सभी का वर्णन करना यहाँ संभव नहीं है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि जागरण-युग में सामाजिक- सांस्कृतिक उथल-पुथल से भारतीय समाज का आंचल विकराल समस्याओं से भरा हुआ था। पत्रकारों ने अपनी सारी बौद्धिक विचार-शक्ति, साहस और शिल्प- साधना इन झूझने में लगा दी थी।

१. तत्कालीन पत्र- पत्रिकाओं में जो सांस्कृतिक- धार्मिक- सामाजिक नव-चेतना प्रतिबिंबित हुई, वह सार रूप में इस प्रकार है :

१- जीवन की स्थूलता से ऊपर उठने का प्रयास।

२- पुरातन मूल्यों को आधुनिक नवीन संदर्भों के साथ संयुक्त करके जीवन को परिपोषित बनाना। समाज को परिवर्तन-विमुखता और दीन- भाव से मुक्त करके उसमें आत्म-विश्वास और आत्म- गौरव की भावना भरना।

३- पारलौकिक दर्शन से भिन्न इहलौकिक विचारधारा की प्रतिष्ठा एवं मानवता को महत्त्व देना।

४- परम्परागत मान्यताओं के प्रति नकार और उपेक्षा का भाव।

५- विगत की अनुभूतियों और अनुभवों पर उन्हें पूर्ण दृष्टि।

१- हिन्दी प्रदीप, जोशी- अगस्त १८८६ पृ० ३३

६- [illegible] से हट कर सांस्कृतिक मूल्यों से जुड़ने का प्रयास।

७- पाठकों की मानसिक भूख, काव्य भाव, भाव्योपयोगिता और पलायनवादी मनोवृत्ति से हटाकर नव- जीवन दृष्टि की अभिव्यंजना।

८- धार्मिक स्तर पर धर्म की नव प्रतिष्ठा।

९- टूटते- संघर्षरत समाज के प्रति दायित्वपूर्ण कलात्मक दृष्टि।

१०- भारतीय मूल्य आदर्शों एवं मान्यताओं के प्रति आस्था।

विवेच्यकालीन हिन्दी पत्रकारिता में मुखरित उक्त चेतनाओं ने उत्कालीन सामाजिक एवं सांस्कृतिक वातावरण का यथार्थ बोध कराया है। इनके क्रांतिकारी संपादकों ने अपनी प्रगतिशील विचारधारा के योग से नव भारत के निर्माण में एक ऐसी भूमिका निभायी जो परवर्ती राष्ट्रीय आन्दोलन और पत्रकारिता के लिए वरदान सिद्ध हुई।

पाँचवा अध्याय

पत्रकारिता : राजनीतिक-सामाजीकरण

१- राजनीतिक जन-जागरण

२- आर्थिक जन-सेवा

5.1. पत्रकारिता : राजनीतिक अनुशीलन

पत्रकारिता राष्ट्र की आत्मा और जीवनी शक्ति को पुनर्जीवित करने का सशक्त माध्यम है। वह राष्ट्रीय जीवन की समस्त गतिविधियाँ, उत्सवों, अनुभूति, चाहुति और ज्ञान का दर्पण होती है। राष्ट्र के दुःख- सुख में निर्धारित होकर शामिल होती है इसलिए उसकी गहरी सहानुभूति, सहभागिता और आस्था अपने देश की जनता के साथ होती है, न कि शासकों के प्रति। यह राष्ट्र के हितों की वास्तविक रक्षक होती है। अतः " हैंसार्ड काल " की हिन्दी पत्रकारिता का तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक नव जागरण में क्या मौलिक अवदान रहा ? कैसे और किस रूप में उसने इस दायित्वपूर्ण भूमिका को वहन किया ? उसकी वैज्ञानिक जाँच- परख विस्तृत फलक और राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में होनी चाहिए।

राजनीतिक जन-जागरण में भूमिका

1- बदलते राष्ट्रीय संदर्भ

१९ वीं सदी के नवजागरण के पूर्व लोग वर्तमान समय के तूफानों और उलटफेर से बेखबर गुबरे हुए मुर्दा लोगों की जिन्दगी जिया रहे थे जिसमें कोई उत्साह, उमंग और कशमकश नहीं थी। सर्वत्र संतोष, शांति, निराशा और बेबसी की भावना व्याप्त थी। सर्वत्र चिंतनी की, समाज की स्थगित शक्ति, वाणी, वाकांक्षा तथा आकुलता खो चुक गया था। समाज एक पंगु बौनी- बंधायी सोच पर आकर थम गया था।

किन्तु १९ वीं शताब्दी के क्रांतिकारी परिवर्तनों और नवजागरण की तेज लहर ने पराधीन भारतीय जीवन की संपूर्ण चिन्तन

धारा का रुख ही बदल दिया था। विदेशी शिक्षा संस्कृति तथा ब्रिटिश शिक्षा पोषक साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के गहरे आघात ने भारतीय जन-मूल्यों, सामंती परिवेश और सामाजिक विसंगतियों पर गहरे प्रश्न चिह्न लगा दिये थे। सौंक मानस की जड़ता टूटी थी। उन्हीं इस प्रहार ने आत्म-विश्लेषण और वैचारिक आत्म-मंथन के लिए प्रेरित किया था। तीव्र गति से बदलते इतिहास के विमूढ़ित जन-समुदाय को नये सोच, नये आत्माभिमान और नये ज्ञान की ज्योति ने सही मार्ग सुझाया था- उस युग के छोटे- छोटे प्रकाशित पत्र- प्रदीपों ने।

२- सर्वप्रथम तत्कालीन राष्ट्रीय अवधारणा को स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक न होगा। भारत में १९ वीं शती में जो राष्ट्रीय अस्मिता और भारतमाता की धारणा उभरी थी, वह यूरोपीय रैनेसाँ, आधुनिक तथा प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता के भिन्न रूप में थी। पहले अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध निज भाषा, निज संस्कृति निज उत्पादन, अस्मिता के उन्नयन और स्वाधीनता के प्रश्न से जुड़ा हुआ था। भारत में उस समय अधिक से अधिक "भारतीय" बनने की भावना, अधिक से अधिक धार्मिक- सामाजिक सुधार और अतीत के सांस्कृतिक गौरव के प्रति जागरूक सम्मानीय अभिव्यक्ति तत्कालीन जागरण और राष्ट्रीयता के प्रारूप थे।

३- राजनीतिक चेतना का प्रस्फुटन - राजनीतिक स्वरूप परिवर्तित होने के साथ पत्रकारिता का रूप और चरित्र भी बदल जाता है। यहाँ मार्गरीटा बार्न्स का कथन महत्त्वपूर्ण है कि भारतीय पत्रकारिता के विकास की कहानी भारतीय राष्ट्रीयता के विकास की कहानी है। "सुशासन" से "स्वशासन", "स्वराज्य" से "पूर्ण स्वतन्त्रता" की

१- मार्गरीटा बार्न्स - द इण्डियन प्रेस (एन्ड्रीसन्स) पृ० १३-१४

यात्रा क्रमशः विकसित राजनीतिक चेतना के प्रस्फुटन का इतिहास है।

१८५७ के जन- विद्रोह (गदर) से लेकर १९०० ई० के बीच का समय तीव्र आर्थिक जन- असंतोष और राजनीतिक चेतना के उभार का काल रहा। १८५८ में भारत ब्रिटिश साम्राज्य का उपांग बना दिया गया। " विदेशी शासन ने लोक हितकारी वेश धारण कर अपने रूप को ढकने का प्रयत्न किया और सुधार और प्रगति के अभिरक्षण का रूप धारण किया।[१] " ब्रिटिश रणनीति में आमूल परिवर्तन हुआ। सन्‌ १८७० के पश्चात् से साम्राज्यवाद के कारनामों , मद्य सरकार कायोल (१८७३) दमनकारी वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट (१८७८) आर्म्स एक्ट (१८७९) इलबर्ट बिल (१८८३) कॉन्सिल सुधार कानून (१८९१) लगातार सूखों और भयावह दुर्भिक्षों की लंबी शृंखला आदि ने विस्फोटक स्थिति पैदा कर दी थी। राजनीतिक चेतना अग्नि को प्रज्वलित रखने के लिए हिन्दी के प्रबुद्ध साहित्यकारों और निर्भीक पत्रकारों ने स्वयं पत्र पत्रिकाएँ प्रकाशित कर राष्ट्रघाती ब्रिटिश नीतियों , ध्वंसात्मक प्रभावों तथा अमानवीय शोषक- चरित्र को अनावृत्त किया तथा भारतीयों में नयी राजनीतिक मानसिकता का संचरण किया।

अतः तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता के माध्यम से राजनीतिक- आर्थिक गतिविधियों को पारदर्शक सन्दर्भ उजागर हो उठती हैं। इस काल की पत्र- पत्रिकाओं के हजारों अंकों में यदि कोई स्पष्ट विचार धारा उभर कर सामने आती है तो वह है- उनकी अदम्य राष्ट्रीयता और ब्रिटिश शासन के प्रति तीखी विद्रोह की भावना। भारतेन्दु युगीन पत्र-पत्रिकाएँ पराधीन भारत के राजनीतिक- सांस्कृतिक जागरण, राष्ट्रीय चिन्तन एवं

१- डा० ताराचन्द - भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन का इतिहास (दूसरा भाग) पृ० ४१९

परिषद के प्रामाणिक वक्तव्य और ज्वलंत चित्र हैं। हिन्दी-पत्रकारिता ने अनेक गंभीर राजनीतिक प्रश्नों और विषम समस्याओं पर निरन्तर चिंतन-विश्लेषण चर्चा और वाद-विवाद करके राष्ट्रीय जीवन में एक नया मोड़ और राजनीतिक झंझावात ला दिया था।

4- सुनियोजित व्यूह-रचना का भेदन

ब्रिटिश कूटनीतिज्ञ शासकों ने सुनियोजित व्यापक प्रचार-तंत्र द्वारा निरन्तर यही मौलिक भ्रम जाल फैलाया था कि वे भारत में शांति, सुव्यवस्था और सभ्यता के विस्तार के लिए शासन कर रहे हैं, अपने आर्थिक हितों के लिए नहीं।[1] किन्तु तत्कालीन अधिकारी वर्ग ने इस मिथ्या भ्रान्त प्रचार का खण्डन करके यह सिद्ध किया था कि समूह सभ्य भारत को पददलित असभ्य देशों की पंक्ति में पहुँचाने में अंग्रेजी शासकों की अहम भूमिका को नकारना असंभव है। "मित्र विलास" (लाहौर) ने इसी व्यूह-रचना का भेदन करते हुए अंग्रेजी हुकूमत की सच्चा खोला था :

१- (क) "कुछ काल पहले अंग्रेज लोग---- यही चिल्ला कर सदा कहते कि हम स्वयं हिन्दुस्तान की वृद्धि के निमित्त विचार करते हैं--- उन्हीं के कहने के अनुसार हिन्दुस्तान की वृद्धि का समय आने वाला तो ली जो एक तरफ रहा पर प्रतिदिन मूर्खता, दुर्भिक्षता और दैन्य प्राप्त होता जाता है--- हम लोग उनकी माया से मोहित हो गये और हम लोगों को अपनी हानि प्रत्यक्ष न पड़ी।"

- कविवचन सुधा- ८ फरवरी १८७४

(ख) देखिए जे० ए० डाकन, एंपीरियल, ए स्टडी (तीसरा संस्करण) पृ० २८७

(ग) और देखिए रजनी पाम दत्त- आज का भारत (इंडियन सेंटिनेरियल रिपोर्ट पृ० ७) पृ० ४५

"जननीजन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

THE MITTRA VILASA LAHOR.

इसपत्रका मूल्य
पेशगी
वार्षिक अग्रिम २॥)
६ मासिक १॥=)
मासिक ३)
प्रति ।)
वार्षिक पश्चात् २॥)
६ मासिक २।=)
मासिक ।=)
प्रति ।)

मित्रविलास

लाहौर

"सत्यमेव जयते नानृतम्"

नित्य नित्य हित करदेशको वृत्तप्रकाश प्रकाश
मित्रविलास विलास यह मित्रविलास विलास
छोड़ और दुर्व्यसन सब रीति यह दृढ़ विश्वास
करो कोन मिल मित्रजन मित्रविलास विलास

इसपत्रका मूल्य
डाकसे
वार्षिक अग्रिम ३=)
६ मासिक २॥)
मासिक ।=)
प्रति ।)
वार्षिक पश्चात् ४)
६ मासिक २=)
मासिक ।=)
प्रति ।)

खण्ड ४ | सोमवार ४ अक्तूबर सन १८८० | संख्या १२

VOL. IV.] MONDAY :- OCTOBER 4, 1880. [No. 12.

मित्रविलास

लवपुरः- ४ अक्तूबर सन १८८०

हिंदुस्थान अंग्रेजोंके राज्यका एक बड़ा अंश है। यद्यपि अंग्रेज परातलपर चारों ओर फैले हैं और सब ओरका थोड़ा २ अंश इनके पास है परंतु हिंदुस्थान सा बड़ा राज्य कहीभी नहीं है। अंग्रेजोंका अपना देश अर्थात् "ग्रेटब्रिटन" एक छोटासा टापू है जो लंबाई चौड़ाईमें कदाचित् हिंदुस्थानके पंचमांशके तुल्यभी नहीं। ऐसे एक छोटेसे द्वीपके अधिपति होकर इन लोगोंने अपनी विद्याबुद्धि और चातुरीसे शनैः २ हाथ मारे और अवदेखलो चतुर्दिकमें यह लोग दिखायी देते हैं और चतुर्दिकमें इनका अधिकार छाराहै। यद्यपि यह लोग बड़े भाग्यशाली हैं और सारे और भाग्यने इनका संगदिया परंतु जितना इनका उच्चभाग्य हिंदुस्थानमें दिखायी दिया उतना कहींभी दृष्टिगोचर नहुआ। सौदागरोंके एक दलका आकर ५०००००० वर्गमील के एक राज्यको अपने हस्तमें करना किसको सत्य प्रतीत होनाथा? कौन इसबातका प्रमाण मानभी कर सकता? हिंदुस्थानदेश धन धान्यसे पूरित उर्वरा भूमि और फलवान वृक्षोंसे आच्छादित और विविध सुंदर सरोवरोंसे सुशोभित कौन कह सकता था कि एक सौदागरोंके दलके अधिकारमें चलाजायगा? परंतु देवकी चरणा अचिंतनीय है बड़ेको छोटा और छोटेको बड़ा बनाना उसके आधीन है। हिंदुस्थानमें ऐसे २ पराक्रमी बलशाली राजा महाराजोंके रहते किसको निश्चय हो सकताथा कि यह छुट से सौदागर इसदेशको संपूर्ण

" हिन्दुस्तान क्वीन के राज्य का एक बड़ा अंश है------क्वीन का अपना देश अर्थात् ग्रेट ब्रिटेन एक छोटा टापू है जो लंबाई- चौड़ाई में कदाचित् हिंदुस्तान के फैजाबाद के तुल्य भी नहीं, ऐसे एक छोटे से टापू के अधिपति होकर इन लोगों ने सर्व: २ लाभ पाने । --- लंदा-नगरों का एक दल जाकर २३००००० वर्गमील के एक राज्य को अपने लाभ में करना जिसको सत्य प्राप्त होता था------ कौन मानता था कि कोई भी यह लंदा नगर की हम लोगों से गिड़गिड़ा कर लंदा से आते और एक भूमि के लिए हमारे पांव छूते थे, कभी की हमें लोगों पर पातालीय जनों की न्यारें या धमकी और हम लोगों की बहनों- बेटों की न्यारें मारते और मारते रहेंगे । ------- जिन दिनों यह हिंदुस्थान देश किसी यूरोपीय के नीचे नहीं था, सारे धरातल पर बड़ा धनी माना जाता था--- परंतु वह धन कहाँ गया ? केवल पुराने क्वीनों के अत्याचार और आजकल के क्वीनों के बहुधा से लूट लूट गया और लुटता जा रहा है । ------ यद्यपि क्वीन पुरुष में उच्च पदवी राजा है परन्तु वह पदवी एक हिंदुस्थान के कारण है । यदि हिंदुस्तान क्वीनों के पास न हो तो वह भी ग्रीस इटली की नाईं एक छोटे राजा गिने जावें । ------ हिन्दुस्थान से और किसी को अपना लाभ नहीं जितना कि क्वीनों गवर्नमेंट को । "

डा: बालमुकुन्दलाल पत्र- पत्रिकाओं ने क्वीनों राज की कपटपूर्ण भरी उक्तियों के फंदे में न आकर भारतीय दुर्दशा का नग्न रूप उजागर कर उनके भारतीयों को गण्य और उन्नत बनाने के जाली मुहाँटों को बेनकाब कर दिया था । जिस दरिद्र आंग्ल कंपनी ने अपार धन कमाने के प्रलोभन से १६०० ई० में समृद्ध भारत की धरती पर पदार्पण किया

१- मित्रविलास , ४ अक्टूबर, १८८० पृ० ८६-९१

था वह अपनी कुटिल चाल- रचना से भारत की विपन्नता और दूसरों के कगार पर पहुँचा १८५६ ई० तक अपराजित एवं केन्द्रीय सत्ता बन चुकी थी। "हिन्दी प्रदीप" ने बड़ी निर्भीकता से अंग्रेजी राज की वास्तविक देन को तुलना पूर्वक तुलनात्मक रूप करते हुए मर्मस्पर्शी चित्रण चित्रित किया था - "" कानून की कुर्ती कैसी होती है, कोई जानता नहीं था। पुलिस अत्याचार कैसा होता है, मानो स्वप्न को ख्याल थे। ईसा और मसीह का कहीं प्रादुर्भाव भी तब तक नहीं हुवा था।----- हर चीज अनोखी थी कि पूरा प्रदेश २० आदमी के कुनबे वाला १० या १५ रुपये में साल गुजारा था---- वैसा ही सब तरह का रोजगार, देशी वस्तुओं का चलन, देशी कारीगरी को नाज रहने से देश में धन समाता नहीं था।---- कुछ ही दिन गुजरे हो गये। अब के स्थान बड़ा से बड़ा अभिमान पाकर ठिकाने लिये चीख मारते न फिरते थे----- विलायत की सभ्यता सब ओर टाँग पसार रही है। रेल हिन्दुस्तान के नस नस में व्याप गयी---- देशी कारीगरी, देश वस्तुओं का रोजगार एक सत्यानाश हो गया। स्त्रियाँ नौकरी और सेवा के कोई जीविका नहीं रह गई।"[1]

इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता ने अपनी विस्मयकारी चित्रण- शक्ति और स्वाधीन लेखनी के सहारा केवल भाषा में अंग्रेजों के लोक हित विरोधी के ढोंग और असली स्वार्थों की पोल खोली थी। तथा उनकी लुटेरी प्रवृत्ति के विरुद्ध जनता जगाने में वह निरन्तर गतिशील रही।

5. राज-नीति के विरुद्ध उद्घोष

औपनिवेशिक शोषण के हर क्षेत्र में भारतीयों को

१- हिन्दी प्रदीप- नवंबर- दिसंबर १९०० पृ० २८-२९

हीन और तुच्छ समझते थे। उनकी बराबरी के स्तर पर पद, वेतन और सम्मान न देकर रंग-भेद नीति को प्रश्रय देते थे। इस विभेद नीति की कटु भर्त्सना लगभग सभी पत्रों ने की थी " हम देखते हैं कि गवर्नर जनरल से लेकर जिले के कलेक्टर और जज तक सब श्वेत ही श्वेत भर रहे हैं। देशी लोगों को कहीं एक बोल्डा भी देखा नहीं मिलता।"[1]

अपने को श्रेष्ठ जाति का समझने वाले गर्वान्धित अंग्रेज शासक भारतीयों को पग पग पर अपमानित और तिरस्कृत करके उनकी भावना आहत करना अपना अधिकार समझते थे। सरकार के पक्षपाती, गौरांग शासकों के भारतीयों के प्रति घृणित दुर्व्यवहार और जाति- विद्वेष की मुखर अभिव्यक्ति देते हुए " सभ्य विनोद " (नंदलाल) में प्रकाशित एक लेख " अब तो मान- अपमान साहिबों के मुख में है " में संपादक ने कहा - " बहुधा देखा गया है कि साहिब लोग जिनके साथ में न्याय रूप लाल की आंखें रहती हैं किसी समय अपने लाभ को छोड़ कर ऐसे बिगड़ते हैं कि उक्त आंखों को छोड़ मामानी कर बैठते हैं-- और यह समझते हैं कि हमारी इच्छा ही न्याय है, हमारी मुट्ठी ही सन्निबंध है, हमारा गाली देना ही सद्धर्म है और हमारा हस्तक्षेप करना ही सम्मान है। ऐसे लोगों ने कई भले मानुस अपमान ग्रहण कर चुके हैं---- इन महाशयों के बीच यह परिपाटी प्रचलित है कि जिस मनुष्य से वे विचित्र हुए---- जन्होंने उनके सिर में उपानह रखवाया---- या जूता उनके हाथ में पकड़ाया। इसी दुर्गतिपूर्वक उसे सर्वसाधारण के दृष्टिगोचर कर कचहरी के सभी कटु वाक्य प्रहार से सर्वथा मान रक्षित कर देते हैं। उनका क्रोध केवल हिन्दुस्तानियों के विरुद्ध होता है और कर्तार गौर वर्ण का होता है। यहाँ उसने उसका प्रचार देखा था

१- हिन्दू प्रकाश, मार्च, १८८५ पृ० ९३

हुआ है उनको अपमान पात्र सर्वथा निरपराधी ज्ञात हुआ है[1]।

भारतीयों को यीरोप कमिश्नर या लेफ्टिनेंट या अन्य श्वेत अधिकारियों से मिलने के लिए जूता उतारने का आदेश था[2]। उन दिनों भारतीयों को श्वेतों द्वारा बात-बात पर मारना पीटना आम बात थी[3]। "भारतजीवन" ने श्वेतों के इस अमानवीय दुष्कृत्य पर तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए प्रश्न पूछे थे- "क्या देशी मनुष्य नहीं होते ? क्या उनके हाथ-पांव और हृदय नहीं है ? क्या देशियों को मारने से चोट नहीं लगती ? कदाचित् हमारे गौरांग प्रभु रेल की गोलियां हैं[4]। -- --- आश्चर्य यह इन बातों को देखकर भी गवर्मेण्ट यही पूछती है कि प्रजा असंतुष्ट क्यों है।" ऐसे अपमानपूर्ण व्यवहार से जनता का रोष बढ़ा था और पत्रों ने उन्हें झकझोर कर जगा दिया था।

रेल-व्यवस्था में भी श्वेत अधिकारियों के लिए अलग डिब्बे और अधिक सुविधाएं उपलब्ध थी। तत्कालीन पत्रों ने भारतीयों के लिए समानाधिकार पर जोर देते हुए तीखे कटाक्ष किये थे- "क्या कारण है कि छोटे दर्जे की गाड़ियों में गोरे मुसाफिरों के लिए एक कमरा अलग रख दिया जाता है कि कोई काला आदमी उसमें न बैठने पावे, वहीं दूसरे और पहले दर्जे की गाड़ियों में कोई गाड़ी अलग नहीं लगाई गई जो सिर्फ हिंदू-

---

१- सम्पा विनोद तत्त्वसुधा सुदर्शन समाचार, १ अगस्त १८७६ पृ० ३-५

२-(क) मेरठ गजट, २५ मार्च १८७६, उपयुक्त रिपोर्ट आन नेटिव स्कूल पेपर्स (एनएडब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब) पृ० १४२

(ख) नया राजस्थान, १६ जुलाई १८७६, वही १८६७ पृ० ३६७

३- स्टेट डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसिडिंग, ८ सितम्बर १८६४ (नं० २६-३० ए)

४- भारत जीवन (साप्ताहिक) बनारस, १० मार्च १८८४ पृ० ३

स्त्रियों के लिए तो यह ऐसे बातों का निरा अविवेक और अन्याय है, जो राजा बहादुर को काले आदमियों के साथ बैठने में घृणा है तो क्या हिंदुस्तानियों को अंग्रेजों के मुंह की शराब की फफक और कच्चे मांस की दुर्गन्धि और उनके भ्रष्ट और दुष्टाचरण पीसते हैं? — इस निश्चय से कह सकते हैं कि जो पहले और दूसरे दरजे की गाड़ी हिंदुस्तानियों के लिए अलग कर दी जाय और अंग्रेज लोग उसमें बैठने न पावें---- जब तक अंग्रेज लोग ऐसा लोगे का घमण्ड छोड़ हिंदुस्तानियों के भाई की भांति न मिलें।"[1]

अतः अंग्रेजों के भारतीयों के प्रति शासक-सुलभ घृणित रंगभेद भाव ने इन पीड़ों के बीच को खाई की ओर बढ़ा कर दिया था।

1. न्याय- व्यवस्था में रंगभेद

मानव समानाधिकार और समान न्याय व्यवस्था का उद्घोष करने वाली अंग्रेजी सत्ता की सारी असलियत और नस्ली भेदभाव को पीस " इलबर्ट- बिल- विवाद " (१८८३), बागरा के " फ्रेजर केस " कोलार के " फेनासेन " तथा हुरेन्द्र नाथ बनर्जी आदि सैकड़ों न्याय के मामलों में खुल कर सामने आगयी थी। न्यायालयों में अंग्रेजों को बड़े से बड़ा अपराध और कुकर्म करने पर मामूली सा दंड दिया जाता। भारतीय पक्षियों के साथ बलात्कार जैसे कुकर्म करने पर भी अंग्रेज साफ छूट जाते थे क्योंकि अंग्रेजी न्यायाधीश उनके ही पक्ष में न्याय करके उनको साफ बचा लेता था।[2] भारतेन्दु ने

१- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १८८२ पृ० ३-४

२-(क) कायस्थ समाचार, दिसम्बर १९०१ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स इन० डब्लू० पी० १९०१

(ख) हिन्दोस्थान १३-१४ जून १८८८, पत्री पृ० ३८२-८४

सर्वोच्च न्याय व्यवस्था के विरुद्ध आवाज उठायी[1]।

2. इलबर्ट बिल- विवाद

न्याय- व्यवस्था में एक नई नीति भारतीयों में हीनता और निराशा के भाव भर रही थी। सन् १८७३ ई० की फौजदारी दण्ड संहिता के अनुसार किसी यूरोपीय नागरिक के विरुद्ध मुकदमें की कार्यवाही वही ही यूरोपीय न्यायाधीश ही कर सकता था। " हिन्दी प्रदीप " संपादक ने इस विभेद पर तीखा विरोध प्रकट करते हुए कहा था, " वही कानून, वही दफा, वही कोड। उसी इंडियन पिनल कोड से हिन्दुस्तानियों की सजा दी जाय उसी से गोरों को। तब उठधर्मी न छोड़ — इसी कौन दलील और इंसाफ है कि गोरों का मुकदमा हिन्दुस्तानी जज या मेजिस्ट्रेट न फैसला किया करें।[2]"

सन् १८६९ में " सिविल सर्विस परीक्षा " में उत्तीर्ण चार भारतीयों में से बिहारी लाल गुप्ता ने लार्ड रिपन से इस न्याय सम्बन्धी असमानता को समाप्त कर यूरोपीय जजों के समान भारतीय जजों को न्याय करने का अधिकार देने की अपील की थी। परन्तु लार्ड रिपन ने कौंसिल के विधि सदस्य मि० इलबर्ट से इस विधेयक को तैयार कर लेजिस्लेटिव कौंसिल में प्रस्तुत करने को कहा[3]। बहुतेरे कौंसिल और प्रायः सभी प्रान्तीय सरकारों ने इस बिल को स्वीकृति दे दी थी किन्तु इस विधेयक के विरुद्ध देशी भारतीय समाज और यूरोपियों ने घृणित प्रचार किया[4] और लार्ड

१- भारतमित्र ३० दिसंबर १८८०, वही १८८०

२- लोम डिपार्टमेंट एडमिनिस्ट्रेटिव प्रोसिडिंग्स जनवरी १८८० न० ४४ (ए)

३- लोम डिपार्टमेंट, जुडीशियल प्रोसिडिंग्स, दिसंबर १८८२ (न० २२१-३६ ए)

४- प्रयाग समाचार, अक्टूबर १८८३ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्लू० पी० १८८३ पृ० ८३० ।

रिपन को अपमानित किया। ५ फरवरी १८८३ को इसके विरोध में कलकत्ते में यूरोपियन ऐंग्लो जाति के प्रतिनिधियों के विलाप सभा आयोजित की गई। फलस्वरूप लार्ड रिपन को इस बिल का संशोधन करके रूप बदल देना पड़ा जिसके अनुसार यूरोपियन अपराधियों को यह अधिकार था कि वे चाहें तो जूरी उनके मामलों की सुनवायी कर सकती है और जूरी के आधे से अधिक सदस्य यूरोपियन होंगे।

हिन्दी पत्र- पत्रिकाओं ने प्रतिक्रिया स्वरूप इलबर्ट बिल को जारी कराने के लिए तीव्र आन्दोलन प्रारंभ किया। "प्रयाग समाचार" ने १ अक्टूबर १८८३ को इलाहाबाद में इलबर्ट बिल के समर्थन में हुई सभा की कार्यवाही का समर्थन किया[१]। "कविवचन सुधा" ने "ब्रिटिश बोर्ड की जबरदस्ती" लेख में डाक्टर बेल के मुकदमे में अन्याय और पक्षपातपूर्ण फैसले के विरुद्ध आवाज उठायी- "" बंगाल, बंबई, मद्रास, पंजाब और पश्चिमोत्तर देश में कोई भी ऐसा जिला न होगा जहाँ अंग्रेजों की जबरदस्ती का प्रचार न हो ---- न्यायालयों में न्याय करने के बदले उनके भारतीय मेजिस्ट्रेट खुशामदी प्रकट करते हैं और अन्यायार के लिए दण्ड मिलने के बदले और एक दरजा बढ़ा दिया जाता है जिसका परिणाम आज के दिन ऐसा देखने में आता है कि हिन्दुस्तानियों को वे तिरस्कार समझते हैं और जो नाच जो " आता है, नचाते हैं। भारतवर्ष की प्रजा का दुःख कोई नहीं सुनता। ---- यह लोक का विचार है कि यूरोपियन अधिकारी ऐसे अन्याय और अन्धेर का आचरण करें। यदि किसी पर उतने दोषों का अपराध लगाया जाता जितने कि डाक्टर लालिब ने किये तो इससे अधिक दण्ड मिलता[२]।""

१-

२- कविवचन सुधा, १४ दिसम्बर सन् १८८४ ई० पृ० २-३

८. सिविल सर्विस आदि में भारतीयकरण की मांग

इंडियन सिविल सर्विस अंग्रेजी राज का सबसे प्रतिष्ठित प्रशासन तंत्र समझा जाता था। १८३३, १८५३ के चार्टर एक्ट, १८५८ के विक्टोरिया के घोषणा पत्र तथा १८६१ ई० के "इंडियन सिविल सर्विस एक्ट" में बिना किसी भेदभाव के सिविल सर्विस परीक्षा में निर्वाचित भारतीयों को सभी उच्च पदों पर नियुक्त करने का आश्वासन दिया गया था। किन्तु व्यवहार में १८६३ में सत्येन्द्र नाथ ठाकुर (टैगोर) ने जब यह प्रतियोगिता उत्तीर्ण कर ली तो १८६६ में अंग्रेजी सरकार ने घबराकर इस परीक्षा में बैठने की आयु घटा-बढ़ा कर २१ साल कर दी। १८६९ में पुनः चार भारतीयों ने इंग्लैंड में जाकर यह स्पर्धित परीक्षा उत्तीर्ण कर ली, तब भारतीयों के लिए सिविल सर्विस के पदों से वंचित करने के लिए परीक्षा में प्रवेश की आयु १९ वर्ष कर दी।[१]

हिन्दी पत्रकारिता ने मुखर हो इस परीक्षा प्रवेश की आयु को बढ़ाने और भारत में ही इन परीक्षाओं को कराने के लिए सुरेन्द्र नाथ बनर्जी आदि को सहयोग देकर जबरदस्त अभियान चलाया था। "भारत जीवन" ने इस अन्यायपूर्ण रंग-जाति विभेद नीति का डटकर विरोध करते हुए कहा- "पाठकों को विदित होगा कि सिविल सर्विस वह परीक्षा है जिसमें उत्तीर्ण होने से विलायत हो या स्वदेशीय मनुष्य बड़े बड़े ओहदों

१- लीग डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, वर्ष १८९६(ए) में भारतीयों के लिए परीक्षा प्रवेश की आयु इस प्रकार दी गयी है -

वर्ष	आयु	वर्ष	आयु
१८५८	१८ से २३	१८६०	१८ से २२
१८६६	१७ से २१	१८७७	१७ से १९
१८८३	१७½ से १९½	१८९१	२१ से २३

के कर पाते हैं। यह परीक्षा पहिले २२ या २३ वर्ष की अवस्था में होती थी तब उसमें बहुत से हिंदुस्तानी पास होने लगे, भारत की यह उन्नति कतिपय संकीर्ण हृदय, क्रीच महाशयों से देखी न गई सो २१ वर्ष की हद बांध दी और जब उसमें भी स्वदेशीय उत्तीर्ण होने लगे तो १६ वर्ष की अवस्था का नियम कर दिया---- विचारने की बात है कि बिचारे हिंदुस्तानियों को कितनी दिक्कत उठानी पड़ती है। यदि यह कहा जाय कि अंग्रेज तथा हिंदुस्तानी दोनों के लिए एक ही अवस्था का नियम हो तो चिढ़ने की कोई बात नहीं है तो भी इच्छा पूरी नहीं पायी जाती है।[१]"

इस प्रकार सत्ताधारी अंग्रेजों ने भारतीयों में अपना दबदबा, आतंक, प्रतिष्ठा और साम्राज्यवादी आर्थिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भारतीयों को बराबरी के स्तर पर पद, वेतन और प्रतिष्ठा नहीं देते थे। उच्च पदों पर उनका एकाधिकार था। "सत्य विनोद" अंग्रेजों के न्यायप्रियता और बराबरी के दावों की असलियत और मूल रूप में हिन्दू- मुसलमानों को उच्च पदों पर स्थान अधिकार की चर्चा करते हुए अंग्रेजी सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था -" उत्कृष्ट गुणशालिनी श्रीमती महारानी को भारतवर्षीय प्रजा राज्य प्रबन्ध में जज या कलक्टर आदि उच्च पद क्यों नहीं पाती ? क्यों उनके लिए सिविल सर्विस के दरवाजे को बंद कर गई है---- क्या सम्राज्ञी पुत्रियों में एक पांच भी इस योग्यता के नहीं हैं जिनको ऐसे २ पद दिये जाँय। हां, इस बात से तो मैं सहमत हूँ कि भगवान ने उनका कमरा गोरा नहीं किया और काले वर्णों ने उन्हें पराधीन कर रखा है---- श्रीमति की यह मंशा है कि भारतखंड की जो सम्पत्ति जो कुछ अवशिष्ट बची है वह भी हम लोगों के प्रारब्ध के कारण न रहने पावे नहीं तो इन उच्च पदों का दान हमें भी न करती ? ---- लाखों रुपया जो कर

१- भारतजीवन, १८ मई, १८८४, पृ०४१

पास रु० २ अपना आश्रित यहाँ से विलायत ले जाते हैं, उनका कुछ भाग यहीं न रह जाता। ---- सन् १८४८ में जब यह देश कंपनी के हाथ से छूट महारानी के अधीन हुआ उस समय घोषणा ने कहा कि इंग्लिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों को समदृष्टि से देखेंगी यह बात केवल कथन मात्र थी ? -- अकबर आदि राज्य---- की स्थिरता का मुख्य कारण यही था कि अकबर हिन्दू- मुसलमान दोनों को बराबर राज्य के उत्तम पद देता था।[1]"

"काशी पत्रिका" ने भी भारतीयों के लिए सिविल सर्विस विभाग के सभी दरवाजे बन्द करने वाली अन्यायपूर्ण नीति के विरोध में प्रश्न उठाते थे- "क्या सिविल सेवा के लिए परीक्षा उत्तीर्ण करने के अतिरिक्त और भी कोई गुण हैं ? जो हजारों भारतीय बुद्धि, न्याय, साहस और चारित्रिक गुणों से परिपूर्ण होने पर भी उन्हें वंचित कर दिये गये हैं जैसे सूर्य के समक्ष मोमबत्ती का प्रकाश धुंधला पड़ जाता है।[2]"

१८६१ में एन० डब्ल्यू० पी० में सरकारी सेवारत भारतीयों की संख्या कुल ६५६ थी।[3] १८६७ में वायसराय ने न्यायक सेवा और सैनिक कचहरियों के जजों के पदों पर भारतीयों की नियुक्तियों को

१- सभ्य विनोद- तत्वयुक्त सुदर्शन समाचार, १ मार्च १८७७ पृ० १

२- "Are the candidates for the civil service required to possess any other qualifications except to the examination. Are there not thousands of educated Natives before whose intelligence, judgement, courage, justice and moral conduct the abilities of the best civilians fall into insignificance, like the gleams of a candle before the resplendency of the Sun ? Kashi Patrika, 15 January 1877, Report on Native News paper Jan. 1877 and Home Deptt. Judicial June 1878 file No.81 (B) page 32.

३- स्टेट सेक्रेटरी, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, मई १८६६ (ए)

घोषणा की[1]। किन्तु ये घोषणाएँ केवल कागज पर ही दम तोड़ती रहीं।

पत्र-पत्रिकाओं द्वारा तीव्र गति से अभियान चलाने पर विवश होकर अंग्रेजी सिविल सरकार ने भारतीयों की सरकारी सेवा में बिना कानवेंट की परीक्षा के एक भारतीय ६ यूरोपियनों की नियुक्ति का आदेश दिया जिस पर तीव्र कटाक्ष करते हुए "हिन्दुस्तान"[2], आदि पत्रों ने आंदोलन की गति को तेज करने का सुझाव दिया। "हिन्दुस्थान"[3], "मित्र-विलास"[4], "भारतबन्धु"[5] आदि पत्रों ने सिविल सर्विस के नये नियमों के प्रति निराशा प्रकट करते हुए उसे पक्षपात पूर्ण बताया। जौनपुर, कानपुर, लखनऊ, इलाहाबाद आदि स्थानों में हुई सभाओं और विद्वानों द्वारा प्रेषित स्मृति-पत्रों और पत्रकारिता द्वारा जब यह आन्दोलन तीव्र गति से बढ़ा तो मजबूर होकर सरकार को "सिविल सर्विस कमीशन" की नियुक्ति करनी पड़ी किन्तु इस कमीशन में यूरोपियन का बहुमत था और सम्पूर्ण भारत का ६ भारतीय प्रतिनिधित्व कर रहे थे[6]। "हिन्दुस्थान" आदि पत्रों ने इस कमीशन के प्रति नैराश्य प्रकट की।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने साथ ही यह अभियान

१- होम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, अक्टूबर १८८७ न० १०५ (२)

२- हिन्दुस्तान, २४ मई १८८४, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स १८८४ पृ० ३५२,४३४

३- मित्रविलास, १६ जनवरी १८८६, वही पृ० ५७

४- भारतबन्धु, १६ जनवरी १८८६, वही पृ० ५७

५- भारतजीवन १ नवंबर १८८६

६- हिन्दोस्थान, १५ मार्च १८८८, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू० पी० एण्ड पंजाब १८८८ पृ० २००

भी चारों ओर से बताया था कि उक्त परीक्षा भारत और इंग्लैंड दोनों स्थानों में साथ साथ हो। " अलीगढ़ इंस्टीट्यूट गजट ", " दोस्त-ए-हिन्द " " पायनियर " आदि पत्र वहाँ दोनों स्थानों में परीक्षा कराने का विरोध कर रहे थे क्योंकि एम० डब्लू० पी० के सेक्रेटरी आफ स्टेट ने उक्त प्रस्ताव यह कह कर रद्द कर दिया था कि भारत में ये परीक्षाएँ ईमानदारी से नहीं हो सकतीं और मौखिक परीक्षा में भी कठिनाई होगी।[1] वही अन्य पत्रों ने इस प्रस्ताव की अस्वीकृति को राष्ट्रीय स्तर पर कटु आलोचना की। देश के छोटे-बड़े शहरों में सभाओं का आयोजन किया गया। उदाहरणार्थ ३० जून १८९४ में कालाकांकर में हुई देशोपकार सभा में एक स्मृति पत्र तैयार कर इस प्रस्ताव पर सेक्रेटरी के निर्णय की कटु निंदा की गई।[2] भारतजीवन[3] ने स्पष्ट शब्दों में कहा " शान्ति और शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। इसका प्रमाण सेक्रेटरी आफ स्टेट की अस्वीकृति से स्पष्ट हो जाता है। आन्दोलन के फलस्वरूप विवश होकर इंग्लैंड की संसद को दोनों स्थानों में परीक्षा कराने का विधेयक पारित करना पड़ा।[4]

भारतीयों को वेतन भी स्थान पर पर कार्यरत अंग्रेजों को अपेक्षा बहुत कम मिलता था। " भारतबन्धु ", " मित्रविलास " " हिन्दी प्रदीप " आदि अधिकांश पत्रों ने भारतीयों के प्रति दुर्भावना और विभेदनीति को मुखर किया था - " " पर फर्क अंग्रेजी सिविलियन और हिंदुस्तानी सिविलियन में यह रहेगा कि हमारा इनका अंग्रेजों की अपेक्षा पक्का रहेगा और तनख्वाह इन्हें अंग्रेज सिविलियन की (दू पर्ट) दो तिहाई दी जाएगी।[5]

१- होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, १ नवंबर १८९३ न० ५६(ए)

२- हिंदोस्तान- ४ जुलाई १८९४, रिपोर्ट आन--- १८९४ पृ० २८९

३- भारतजीवन, ११ जून १८९४

४- होम डिपार्टमेंट पब्लिक प्रोसीडिंग्स, अक्टूबर १८९३ न० २११-२२२(बी)

५- हिन्दी प्रदीप, मार्च १८९५

वेतन पर आदि में यह विभेद केवल सैनिक सर्विस में ही मौजूद नहीं था बल्कि शिक्षा, न्याय, सिपाही आदि हर क्षेत्र में विद्यमान था -" जाति पक्षपात की प्रथा ने यहाँ के जजों को न्याय की ओर से दूर उठा रखा है- क्या कारण है कि जिस काम के लिए एडवोकेट को १२०० मिलता है उसी पर हिन्दुस्तानी को केवल ३०० मिले।"[1]

" मालवा अखबार " ने यूरोपीय सेना के मुकाबले स्थानीय सेना की अधिक सस्ती असन्तोषजनक , अशिक्षा लक्षण बताते हुए समान वेतन सुविधाओं और सम्मान की मांग करते हुए कहा कि यदि सरकार स्थानीय सेना का वेतन यूरोपियन सेना जितना बढ़ा दे और उनके भोजन पर भी उतना ही ध्यान दे तो हिंदुस्तानी भी असन्तोष और अशिक्षा में कम नहीं होंगे। यूरोपियन अफसर अपने साथियों को उत्साहित कर उनके साथ दयालुता का व्यवहार करते हैं जबकि हिंदुस्तानी सिपाहियों से हर बात गुस्से और गाली से कही जाती है। हम किसी ऐसे अंग्रेजी अफसर को नहीं जानते जो भारतीय सिपाहियों किसी कार्य सम्मोद और सन्तोष से करने को कहता हो, बिना कष्ट हुए। अतः ऐसी सेना को घटाना अन्याय है।[2]

अतः इस काल की उपर्युक्त पत्र- पत्रिकाओं ने जनता के सामने अंग्रेजों के हर रंग-भेद, दुराचरण और निष्पक्ष न्याय को बखूबी खोला था और रंग भेद नीति की भर्त्सना करते हुए कहा था- देश का काला रंग एक ऐसा गुनाह हम लोगों के गले बंध गया है कि जिसका प्रायश्चित किसी तरह नहीं हो सकता चाहे हम कितनी विद्या और कुशलता कुछ २ सम्पन्न कुशल-

---

१- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १८७८ पृ० १-७

२- मालवा अखबार , ६ मार्च १८७० रिपोर्ट आन नेटिव स्टूडेन्ट्स

एन० डब्लू० पी० पृ० १६७० पृ० १२०-२१

बन क्यों न हो जाई पर हम काले हैं।[1]

7. राष्ट्रीय एकता और सद्भाव के प्रति आग्रह

जागरणकालीन पत्रकारिता ने फूट परस्त भावनाओं और परस्पर सद्भाव के अभाव को ही भारतीय पतनकारा और देशोन्नति न होने का मूल कारण बताया। " अमीर और रईसों की ओर अदृष्टि और आपस का विरोध ही देशोन्नति न होने का कारण है। जिस देश में रैय्यत की ओर राजे- महाराजे और धनाढ्यों की दृष्टि होती है तो बेपरिश्रम ही उसकी साथ उन्नति हो जाती है।[2] "

राष्ट्रीय एकता में सबसे बड़ी बाधा शिक्षित वर्ग की अंग्रेजी सत्ता के प्रति राजभक्ति और चाटुकार वृत्ति थी। " कविवचन सुधा " ने अंग्रेजों के गुणगान में लिखे भारतीयों की भर्त्सना करते हुए लिखा " निश्चय इसी यह साहिब को मुलाकात किसी काम न आवेगी और ये (केवल लंबी लंबी बातों वाली) कमेटियाँ देश का कुछ हित न करेंगी— जब तुम्हारा एकता चित्त एक है तो कमेटी ही के क्या होगी— दरबार की कुरसियों की मान का कारण न समझो।[3] "

" सारसुधा निधि " ने निज- हित- चिंतन और तुच्छ स्वार्थों में लीन भारतवासियों को राष्ट्र- चिंतन की ओर उन्मुख करते हुए समझाया, " हे प्रिय भारतवासियों। यह न समझो कि भारत- दुर्भाग्य से हमको क्या। हमारा तो एक प्रकार निर्वाह होता है।---- भारत के दुर्भाग्य को अपना दुर्भाग्य और भारत के सौभाग्य को अपना सौभाग्य समझो। नहीं तो भारत का दुर्भाग्य कदापि दूर नहीं होगा।[4] "

१- विचार बंधु तथा हिन्दी प्रदीप, अगस्त १८७८ पृ० १५ (काले रंग को कलोल)

२- रमण विनोद तत्त्वयुक्त सुदर्शन समाचार १ सितम्बर १८७६

राष्ट्रीय एकता और एकभाव के लिए शिक्षा के महत्त्व को निरूपित करते हुए "विद्यारम्भ" ने लिखा "देश बढ़ती और भलाई का उपाय सिर्फ मेल और एक दूसरे के साथ मोहब्बत करना है। ---- बड़े दुःख की बात है कि हमारे देश के बाशिन्दों के दिल में अखलाक या मोहब्बत का प्रीति बहुत ही कम देखने की मिलती है। बल्कि उल्टा छोटा- बड़ा, नीच-ऊँच, गरीब- अमीर के सबब से कितनी डाह, ईर्ष्या और नफरत है कि अक्सर बात की बात में एक दूसरे से फसाद और दंगा-फसाद होता ही रहता है। इसका सबब सिर्फ जाहिलपन और मूर्खता है जब तक विद्या रूप सूर्य का उदय न होगा तब तक देश की भलाई न होगी।"

भारतीयों में राष्ट्रीयता के अभाव और आपसी वैमनस्य के कारण धर्म, जाति, वर्ण भेद आदि की सीमा से ऊपर उठ कर राष्ट्रीय स्तर पर विदेशी आक्रमणकारियों का एकजुट रूप में मुकाबला करने की प्रवृत्ति नहीं थी। "उचित वक्ता" ने "देशीय एकता" पर जोर देते हुए चीन जाति की राष्ट्रीय एकता का दृष्टान्त प्रस्तुत किया और भारतीयों से आपसी मतभेद भुलाकर उनका अनुकरण करने को कहा- "एकता" जिसके अभाव से यह कार्य भारतवासी मुष्टि प्रमाण लोगों के फलस्वरूप हो रहे हैं-- बावजूद जो औरेब लोग भारतवर्षियों पर योजनाबद्ध बरत रहे हैं और एकता का अभियान कर रहे हैं वो मारते हैं इसका क्या कारण है वही "एकता" -- हम यह नहीं कहते कि इंग्लैण्ड में एक दूसरे का शत्रु नहीं है और उनमें आपस में मार-पीट, दंगा- फसाद नहीं होता। हमें तो ये उनके मो एक कांटे बराबर है तो उनके बीच क्या है? "जातीय एकता" इंग्लैण्ड का कोई साधारण शत्रु के उपस्थित होने से भारतवासियों की न्यायें उन्होंने संकीर्ण हृदय के परिचय नहीं दिये हैं। उनके बीच एक दल शत्रु के पक्ष में दूसरा दल विपक्ष

१- विद्यारम्भ ~~[illegible]~~ १८ अगस्त१८७७ पृ० १४३-४४

में नहीं खड़े होते। उस समय वे लोग इंग्लैण्ड के शत्रु को साधारण शत्रु जान क्या शत्रु, क्या मित्र सभी एकत्र बद्ध परिकर हो इंग्लैण्ड के साधारण शत्रु के विरुद्ध में उत्तोत्तेजन होते हैं।[1] "भारत में स्थिति ठीक इसके विपरीत थी। प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम में इसी जातीय एकता के अभाव में अंग्रेजों के मात खानी पड़ी थी।

"हरिश्चन्द्र मैगजीन" ने भी धर्म जातिविभिन्नता के बीच जातीय एकता की भावना का प्रतिपादन किया।[2] "हिन्दी प्रदीप" ने अनैक्य और स्वार्थ को त्याग कर "एकता" और "सद्भाव" को राष्ट्र जागरण के लिए एक मात्र संजीवनी बताया "अलगाव। जब भी एक मिलकर एकता को अपने चित्त में स्थान दो--- जब भारत की भूमि ऐसी सभी अपने काबू में न रह सकी तब स्वभाव ही की बंगल सभी को कौन कहे-- अतीव भारत संतानों के अलगे रहना न समझ "एकता" भारत के सारी समुद्र में जा डूब मरी। उसके साथ ही उद्यम, साहस, शौर्य एवं हिन्दू भिन्न हो गए। मातृ-स्नेह, स्वानुभूति देशानुराग की कहीं गंध भी न रह गई। बैर और फूट के वृक्ष बहुतात से उग आए--- फिर कैसी उधर ब्रिटिश सिंह के पंजे की छाप---- इस दुर्दशा का बीज कहाँ है? भारत क्षेत्र में एकता का उन्मूलन और विभिन्नता- विटप के बीज का एक और बो जाना। ---- अब हमारे लिए वही एकता ही एक संजीवनी औषधि है जो हमें फिर जिला सकती है।[3]"

१- उचित वक्ता, २३ जुलाई १८८१

२- "अब हम लोगों को यही उचित है कि धर्म और व्यवहार को एक मानें। तैंतीस करोड़ मनुष्य तैंतीस करोड़ देवताओं की अलग अलग मानी पर यहाँ व्यवहार का काम पड़े एक एक ही जाती और जब अपने चित्त की बातें आवें तब एक ही आवाज हो।"

- हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ अप्रैल १८७४

३- हिन्दी प्रदीप, अप्रैल १८८८ पृ० १३

इस प्रकार तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने विविध विधाओं, काव्य, अर्थपूर्ण रचनाओं और संपादकीय टिप्पणियों के माध्यम से राष्ट्र की सुप्त आत्मा को जगाने के लिए परस्पर एकता और स्वभाव के स्वर को गुंजरित किया।

8. स्वदेशी आन्दोलन

१८५७ ई० के पश्चात् भारत की राष्ट्रीयता में "राजनीति" का प्रवेश होता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पत्रिकाओं के द्वारा पहली बार उनमें आर्थिक प्रश्न जोड़े जाते हैं।[1] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र स्वदेशी आन्दोलन और राजनीतिक आर्थिक चेतना के सूत्रधार हैं। "भारत में विदेशी पूँजी के शोषण के सबसे पहले आलोचक हैं, उनके साहित्य का मूल स्रोत देश-भक्ति है।"[2]

हिन्दी पत्रकारिता ने देश की ब्रिटिश आर्थिक दोहन से बचाने और देश को आत्म निर्भर स्वावलंबी राष्ट्र बनाने के लिए स्वदेशी वस्तुओं के उत्पादन- उपभोग पर जोर देकर राष्ट्र की राजनीतिक धारा को नया मोड़ दिया था। राष्ट्रीय कांग्रेस और गांधी जी के उदय से पूर्व ही हिन्दी पत्र- पत्रिकाओं ने विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार और निज उद्योग- शिल्प आदि की उन्नति के लिए अभियान छेड़ दिया था।

१- कहत के कवनवत कुलन गो, कहँ कहँ के लोग।
जिन २ धन गो घटत है, बाढ़त है दुख रोग ।। ५७ ।।
भारतोन फसल बिना चलत न कुछ नहिं काम।
परदेसी सुलतान के मानहु भए गुलाम ।। ५८ ।।
वस्त्र काँच कागज कलम, चित्र सिलाँने आदि।
आवत सब परदेस सों निसदिन जहाजन लादि ।। ५९ ।।

- भारतेन्दु का ऐश्वर- हिन्दी प्रदीप, नवम्बर १८७७ पृ०११

२- डा० रामविलास शर्मा- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ०३५

भारतीय विदेशी वस्त्र तथा अन्य आकर्षक वस्तुओं की ओर आकर्षित हो रहे थे। देश के हस्त शिल्प तथा वस्त्र उद्योग नष्ट प्रायः हो चुके थे। देश में एक भी छोटी वस्तु का उत्पादन भी नहीं होता था। ऐसे विषम परिवेश में हिन्दी पत्रों द्वारा स्वदेशी आन्दोलन का प्रचार करना एक चुनौती पूर्ण कार्य था। "हिन्दी प्रदीप" ने धर्म प्रधान भारत में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार के लिए बड़ा ही मनोवैज्ञानिक उपाय सुझाया था। "देशी वस्तुओं का बर्त्तना धर्म का एक अंग मान लिया जाए और सीधी सादी स्त्रियों को सुझा दिया जाय कि विलायती के कपड़े पहनोगी तो नरक जाओगी जो कितना ही देशी वस्तु काम में लाओगी उनके लिए उतना ही स्वर्ग में जाना सुलभ हो जाता है---- यह प्रथा ही देश में दारिद्र फैलने का विदेशी वस्तु का आदि कारण है। देश के धन को घुन लग गया है।[1]

सम्पूर्ण भारत विलायती वस्तुओं से पटा पड़ा था। भारतीय व्यापार- उद्योग को प्रोत्साहन देने के लिए १८७४ में कुछ राजाओं तथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तथा तदीय समाज के सदस्यों ने विदेशी वस्त्र न पहनने का संकल्प लिया था। "बिहार बंधु" ने इस घटना का उल्लेख करते हुए भारतीयों में स्वदेशी वस्तु के प्रति ललक पैदा करने का प्रयास किया---- "कई एक राजाओं ने यह बाना लिया है कि कभी विलायती कपड़ा न पहिनेंगे ताकि देशी सौदागरों बढ़े। यह बात अच्छा ही भला है। --- हां इतना शक नहीं कि थोड़े जिनको विलायत कपड़ा की चाट पड़ गई, न छोड़ेंगे ---- ऐसे आदमियों से कोई बात नहीं। ---- पर हां, जिनके मन में देश की उन्नति की चाह है जिनका चित्त हिन्दुस्तान की दुर्दशा के लिए कलपता है---- वे जरूर इस राय के होंगे कि जरूर एक कोई ऐसे- ऐसे कामों में कमर

१- हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १९०५ पृ० १

यदि तो फिर क्यों हम लोग विलायती चीजों के गुलाम लटके रहें। बाबो। अब भी चेतो।[1]"

"भारत सुदशा प्रवर्तक" ने भारतीय सम्पन्न उद्योगपतियों को निज उद्योग और शिल्प सम्मान लौटने के लिए प्रेरित किया। "भाइयो। यदि हम करो तो क्या हुई भी नहीं बना पाओगे? सब धन पात्र महाशय अपने उदार चित्त से निज निज नगर व ग्राम में शिल्प कला खुलवा दें और उनमें नाना प्रकार के वस्त्र जो कि विदेशान्तर से आते हैं, बुनवावें। ऐसा करने से बहुत से निर्धन लोगों को रोटी मिलेगी और वे थोड़े से काल में धनी हो जायेंगे।[2]"

"सुबोधिनी" ने भी बेरोजगारों की समस्या के समाधान तथा देश के धन की रक्षा के लिए स्वदेशी वस्त्रों के प्रयोग पर जोर दिया। साथ ही यह भी कहा कि विलायती वस्त्र मुर्दा हड्डी के बनते हैं जिसे भारतीय डर कर उनका बहिष्कार कर दें "हम लोगों को चाहिए कि मुरदा हड्डी का बना हुआ कपड़ा कदापि न पहिनें।--- और तो हम कहते हैं कि अपने निज देश के बने हुए कपड़े जो उस मुर्दा हड्डी के कपड़े से कहीं बढ़ कर पुष्ट होंगे पहनना चाहिये जिससे न केवल देश के धन की रक्षा, बिचारे दुखी जुलाहों की रक्षा होवेगी। देश हितैषी विदेशी की तिलांजली देकर गढ़ों ही का बना वस्त्र पहनें और यह न देखें कि यह मोटा है या पतला, छोटा है या बड़ा। परन्तु स्वयं पुष्टता को देख धन की रक्षा करें।[3]"

"नागरी नीरद" ने देश की आर्थिक दशा

१- विद्यार्थी, १४ अक्टूबर १८७४ पृ० ३८

२- भारतसुदशाप्रवर्तक, अगस्त १८८२

३- सुबोधिनी, १५ नवम्बर १८८३ (भाग १, अंक १)

सुधारने और विपत्ति से बचाने के लिए अपने ही देश में आवश्यक उपयोगी सामग्री के निर्माण तथा स्वदेशी उत्पादन के महत्त्व को निरूपित किया, "यह बात अब किसी से छिपी नहीं है कि जब तक देश की आवश्यक सामग्री देश ही में नहीं बनती और देश के अभाव की स्वयं वही देश नहीं पूर्ण करता तब तक उस देश की दशा कभी संतोषजनक नहीं हो सकती। वर्ष नित्य के कार्यों की आवश्यक सामग्री रुपया देकर विदेश से मंगाने से देश का धन और रक्त निकला जाता है और इस विपत्ति से बचने का उपाय यही है कि अपने देश की आवश्यक वस्तुओं के बनाने का प्रबन्ध भी देश में ही किया जाय।[1]"

"उचितवक्ता" ने सम्पादकीय लेख "देशी वस्तु क्यों नहीं पसन्द आती ?" में किन्हीं भारतीय रईसों पर तीखा कटाक्ष किया था[2] और कहा "देशी वस्तुओं का देश में आदर की आवश्यकता है— "विलायती कल की बनी सस्ती वस्तु की प्रतियोगिता में देशी हाथ की बनी वस्तुओं की कदर में लाने लग जाने से अवश्य देश की हीन दशा में परिवर्तन हो सकता है---- भारतवर्ष की दरिद्रता का मूल कारण यही है।[3]"

१- नागरी नीरद, २८ जून १८९४ ई०

२- "विलायती वस्तु ऐसी पसन्द आती है कि मानो भोली जगदीश्वर ने अपने निज हाथ से बना कर भेजी हो, आजकल कौन सा राजा व मनुष्य सभ्य कहा जाता है-- जो अपनी स्वदेशी रीति और चाल ढाल को छोड़ विलायती ग्रहण करे। सर्वसाधारण को कौन कहे बड़े बड़े महाशय जिन्हें आर्य देश की उन्नति की आशा करने में आती है" उन्हीं को राज रोग से ग्रस्त रहता है जैसे पीलिये का रोग अपने गुण से मनुष्य को सर्वांग पीला कर देता है।-- तात्पर्य यह कि इन महाशयों की कोट बूट पतलून और मो बीबी हैं. आदि पहरना और पानी छोड़कर बुटिया शराब आदि आचरण करने से गारनमेण्ट आफ इण्डिया सी०आई० आदि का टाइटिल न देगी।" उचितवक्ता।

३- उपरिवत्, १६ जनवरी १८९५

इस प्रकार स्वदेशी आन्दोलन कृषकों के आर्थिक शोषण की परिणति था। "स्वदेशी आन्दोलन" के लिए अनेक अधिवेशनों (महाराष्ट्र अधिवेशन १८८७) तथा समितियों का गठन और आयोजन किया गया। जिनमें भारत में तकनीकी शिक्षा और भारतीय उत्पादन को प्रोत्साहित तथा भारतीय कला-शिल्प विद्या की समुचित उपयोग पर बल दिया गया।[1] "भारत जीवन" के अनुसार विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए बंगाल प्रान्त में जोरदार बहिष्कार आन्दोलन हुआ जैसा कि नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सिज (एन० डब्लू० पी०) में पहले ही हो चुका था।[2]

१९ वीं शताब्दी के अंतिम चरण तथा देश में स्वदेशी के प्रति आग्रह और बहिष्कार आन्दोलन गहरा और देशव्यापी हो गया था। "साहित्य सरोज" ने "स्वदेशी वस्तु प्रचार" शीर्षक लेख में लिखा "यह मनोहर मौसम का लक्षण है कि चारों ओर स्वदेशी वस्तु प्रचार" करने का आन्दोलन हो रहा है।[3] "ब्राह्मण" ने विदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर खेद प्रकट करते हुए स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग की सिफारिश की।[4]

उपर्युक्त कतिपय पत्रिकाओं के उद्धरणों से अंदाजा लगाया जा सकता है कि स्वदेशी प्रचार और विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का जोरदार आन्दोलन चलाकर उन्होंने भारतीय जनता को कैसे जागृत और प्रभावित किया था और इस आन्दोलन में उनकी भूमिका अविस्मरणीय है।

१- ओम डिपार्टमेंट, पब्लिक प्रोसीडिंग्स, अप्रैल १८८८ न० १७६-७८ (२)
२- भारतजीवन, २२ दिसंबर १८९२, २३ मार्च १८९६
३- साहित्य सरोज, १५ अप्रैल १८९६
४- ब्राह्मण, १५ फरवरी, हरिश्चन्द्र सीरीज २ (खण्ड ३, अंक १२)

9. स्वायत्त शासन के प्रति निष्ठा

" रैकेन " काल में देश के संवैधानिक प्रशासन में भारतीयों को उचित प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं था। १८४९ के पश्चात् साम्राज्यवादी नीति के कारण स्वशासन और लोकतंत्रीकरण की दिशा में कोई बड़ा कदम नहीं उठाया गया। केवल लार्ड रिपन का इस दिशा में प्रशंसनीय योगदान रहा था। वस्तुतः " विधान परिषद् " (लेजिस्लेटिव कौंसिल) के अधिकार और शक्ति सीमित थी, वे केवल कानून बनानेवाली समितियाँ मात्र थी उनका उद्देश्य भारतीयों की प्रतिनिधि सभा प्रतिनिधि शासन की स्थापना करना नहीं बल्कि भारतीय जनता का और उच्च वर्ग की भावनाओं का सुराग प्राप्त करना था।

हिन्दी पत्रकारिता ने स्वशासन के लिए आन्दोलन चला कर विधान परिषद्, प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल तथा ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व की माँग की तथा शिक्षित वर्ग को संवैधानिक अधिकारों के प्रति सचेत किया।

उत्तर प्रदेश (तब नार्थ वेस्टर्न प्रोविन्सेज) में प्रान्तीय लेजिस्लेटिव कौंसिल की स्थापना की माँग करते हुए " आर्यमित्र " ने कहा कि बंबई, कलकत्ता और मद्रास के समान यहाँ भी लेजिस्लेटिव कौंसिल स्थापित[1] की जाय तो लेफ्टिनेंट गवर्नर को प्रशासन चलाने में सहयोग मिल जायेगा। आन्दोलन के फलस्वरूप बाबूराय ने एक संयुक्त कानून तो और राजा शिव प्रसाद को विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया था किन्तु

१- आर्यमित्र, २४ जनवरी १८७६ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्ल्यू० पी० १८७६ पृ० ७२

ये दोनों ही ब्रिटिश नीति के समर्थक थे। हिन्दी पत्रों "कविवचन सुधा", "काशी पत्रिका", "हिन्दी प्रदीप", "हिन्दुस्तान" आदि ने इनकी चाटुकार प्रवृत्ति की भर्त्सना की थी। उन्हें भारतीय हितों के लिए आवाज उठाने में असमर्थ पाकर "हिन्दी प्रदीप" ने कटाक्ष किया था- "अंग्रेज तो हम यही कहेंगे कि यह सरकार की तरफ से हम हिन्दुस्तानियों के पक्ष में कौन सा न्याय है कि हर एक मुल्की इनिजाम में वही पूछे जाते हैं जो अच्छी तरह कसौटी पर कस लिए गए हैं कि ये निरी सैरसाही के जोश में पड़ कर मुल्क को पूरी हुल्लड़ कर रहे हैं। उसमें भी तुर्रा यह कि सरकार जो अब हिन्दुस्तानियों को हर एक बात में पूछने लगी और हर तरह के अधिकार इन्हें देवेगी, हम तो पहले ही अपना माथा ठोक कर बैठ रहे थे, जब सुना था कि लोकल सेल्फ गवर्नमेंट की प्रोविंशियल कमिटी के मेम्बर कई नई उपाधिवाले राये बिठ गए हैं उनमें राजा शिव प्रसाद भी ठूंस दिये गये हैं।"[1]

"उचितवक्ता" ने भी राजा साहब के स्थान पर बाबू हरिश्चन्द्र या लाला श्रीनिवासदास के निर्वाचन की मांग लार्ड रिपन से की थी।[2]

"सारसुधानिधि" ने भारतवर्ष में प्रतिनिधि शासन की प्रणाली की आवश्यकता पर जोर देते हुए कांग्रेस के जैसा- जिस भाव तथा तत्कालीन व्यवस्था पर प्रश्न चिह्न लगाते हुए व्यंग्य किया "अब जब तक शासन प्रणाली का पूरा संशोधन नहीं होगा कदापि सुशासन करने में गवर्नमेन्ट समर्थ नहीं होगी---- जिस दिन प्रेस एक्ट विधिवद्ध हुआ था उस दिन कांग्रेस में महाराजा योगेन्द्र मोहन ठाकुर उपस्थित थे। परन्तु वह स्थिति

१- हिन्दी प्रदीप, दिसम्बर १८८२ पृ० १५

२- उचित वक्ता, २४ मार्च १८८३

लाला गोपाल के और क्या कर सकते थे---- यदि विचार करके देखो तो उन नाम मात्रों के लाला गोपाल मेम्बरों से क्या कार्य सिद्ध हो सकता है--- काश अब भारतवर्ष में प्रतिनिधि- शासन- प्रणाली की अत्यंत आवश्यकता है।"[1]

तत्कालीन पत्रों ने यह भी मांग की कि लेजिस्लेटिव कौंसिल के सिर सदस्यों की मनोनीत न करके चुनाव द्वारा निर्वाचित किया जायें।[2] "प्रयाग समाचार" ने प्रस्ताव की कि कौंसिल के सदस्यों का चुनाव जनता की इच्छानुसार होना चाहिए।[3] "हिन्दी प्रदीप" ने "लेजिस्लेटिव कानून बनाने सभा का उद्देश्य" तथा "लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट" (मई १८८२) लेखों में इस आत्मशासन प्रणाली के लागू होने पर प्रसन्नता प्रकट की, "श्रीमान लार्ड रिपन ने "लोकल सेल्फ गवर्नमेण्ट" आत्मशासन प्रणाली के सिर हाल ही में जो एक नया रिजोलूशन स्थानीय गवर्नमेण्ट के अधिकारियों के पास लिख भेजा है उसके देखने से मालूम होता है कि लार्ड रिपन साहब की दिलोजान से मंशूर है कि यह आत्म शासन प्रणाली किसी तरह हम लोगों में भी चल निकले" पर अभी इसीका दिल्ली दूर है यह तो तब होता जबकि स्थानीय अधिकारी भी लार्ड रिपन साहब के समान तन मन से इसकी ओर उतारू होते। मगर है अकेले चने ने कभी भाड़ फोड़ा है।[4]"

ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व

ब्रिटिश संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व के लिए

१- सार सुधानिधि, १८८० के १४

२- भारतमित्र, २३ जुलाई १८८६ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स इ० डब्ल्यू० पी० १८८६ पृ० ४५३

३- प्रयाग समाचार, अगस्त १८८६, रिपोर्ट आन--- १८८६ पृ० ६५६

४- हिन्दी प्रदीप, मई १८८२ पृ० १७-१८

सत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने समर्थन किया था। "उचितवक्ता" ने "अब भारतवासियों का सर्वप्रथम प्रधान कर्तव्य क्या है ?" शीर्षक (२ जून १८८३) में संसद में भारतीय प्रतिनिधित्व न होने पर भारतीय कितनी अवहेलना का अनुभव करते हैं लिखा था -"" विलायत में हम लोगों की ओर से प्रतिनिधि न रहने के कारण कितनी हानि हो रही है उसके समझाने की आवश्यकता नहीं है। वैसिर आज यदि हमारी ओर से विलायत में कोई प्रतिनिधि होता तो क्या हुरेन्द्र बाबू को अन्याय विचार के कारण आज तक जेल में पड़ा रहना पड़ता ? कदापि नहीं।--- आज हमारा प्रतिनिधि विलायत में नहीं है, इसी से हम भारतवासी अब अपने को न्यारे बैठे हुए निहार रहे हैं और कुछ कर नहीं सकता, पिंजरे के पंछी की तरह फड़फड़ा रहे हैं।[1]

"हिन्दुस्थान"[2] ने भारतीयों को उपेक्षित करते हुए उत्तेजना दी थी कि वे स्वयं आन्दोलन करें और ब्रिटिश संसद में प्रवेश हों। पत्रकारिता के आन्दोलन के कारण ही दादा भाई नौरोजी को १८८६ में ब्रिटिश संसद में प्रतिनिधित्व मिला था।

इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता निर्भीक स्वायत्त शासन संबंधी लेखों प्रकाशित कर भारतीय जनता को संवैधानिक अधिकारों और प्रतिनिधि शासन के प्रति सचेत करके भारत में लोकतंत्रीय व्यवस्था की आधारशिला रही।

10. सांप्रदायिकता के विरुद्ध चेतावनी

सांप्रदायिकता एक आधुनिक प्रवृत्ति है जिसका

१- उचितवक्ता, २ जून १८८३

२- हिन्दुस्थान, २० जून १८८४ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन० डब्ल्यू० पी० १८८४ पृ० ४३८

उद्भव और विकास अंग्रेजी राज में १८५७ के पश्चात् साम्राज्यवादी नीति "फूट डालो राज करो" तथा "विभेद नीति" के फलस्वरूप हुआ। मुगलकाल में साम्प्रदायिकता के स्तर पर हिन्दू- मुस्लिम टकराहट के दृष्टान्त नहीं मिलते। १८५७ का प्रथम स्वातंत्र्य- समर भी इन दोनों ने मिल जुल कर लड़ा था। किन्तु जन- विद्रोह के बाद अंग्रेजों ने शासन के स्थायित्व के लिए धर्म, जाति, सरकारी पद, भाषा, आजीविका, सम्मान प्राप्ति तथा गो- हत्या के नाम पर हिन्दू मुसलमानों को उद्भ्रान्त कर उन्हें संकीर्ण दायरों में बांट दिया था और उनके बीच विद्वेष और प्रतिद्वन्द्विता को तूल कर फैलाया था।

अंग्रेज अधिकारियों तथा उनके चाटुकारों ने स्वार्थ- वश साम्प्रदायिक वैमनस्य फैलाने के लिए यह ऐतिहासिक भ्रम फैलाया था कि मुगल आक्रान्ता मुसलमानों ने भारतीय जीवन, धर्म और संस्कृति को हर स्तर पर नष्ट भ्रष्ट कर दिया था, सभ्य अंग्रेजी शिक्षित जाति ने भारत में आकर शांति और सुशासन स्थापित किया तथा भारतीयों को उन्नत और सुसंस्कृत बनाया। इस मिथ्या धारणा को जोड़ते हुए तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं ने तीखे कटाक्ष किये थे। "हिन्दी प्रदीप" ने इसका दूसरा ही पक्ष उजागर होता है, "जैसे कोई चिड़िया बच्चा देने के समय अपना सोता कहाँ बना लेती है और भय बीत जाने पर फिर फल देती है। वैसे इस देश को जो अपना घर ही समझते हो नहीं इसमें उन्हें वैसी कथा कोई ही सकती है।--- मुस- लमानों के राज्य में---- भारतवासी के मन में यह निश्चय था कि एक राज सिंहासन को छोड़कर और सब बड़े बड़े पद उन्हीं के अधिकार में हैं। दिल्ली- श्वर को छोड़कर और सब बड़े २ पद उन्हीं के अधिकार में हैं। दिल्लीश्वर के प्राणप्रिय सखा बीरबल व वैसे ही थे, प्रधानमंत्री टोडरमल कोई दूसरा न था। सेनापति मानसिंह भी वैसे ही थे। उन्हें यह संतोष हो गया था

कि मुसलमान चाहे कितना परोपकार करें, या कितना प्रजा को लूटें तो भी वे लोग हिन्दुस्तान छोड़ कहीं और नहीं जा सकते। हिंदू और मुसलमान दोनों मिल कर ऐसे सुखान हो गए कि जिसमें से ही सौदागर का सब प्रेम हो गया और कोई पास कल होगि- व्यापार भी दोनों को एक ही हो गई।--- और वे (अंग्रेज) केवल रुपया कमाने को निकट ही आते हैं और ज्यों ही लाखिरलाख रुपया कमा चुके उन्हें हुए--- भारतवासी ने मुसलमानों के राज्य में अनेक कष्ट और यन्त्रणा सही, यह सत्य है--- वे भी प्रजा का रुधिर शोषण करते थे किन्तु वह रुधिर भारत क्षेत्र को ही उर्वरा करता था।[1]

"उचितवक्ता" ने अंग्रेज शासकों के अत्याचारों की मुसलमान के शासकों से स्पष्ट तुलना कराया।[2] कविवचन ने अंग्रेजी सरकार को गहरी लालच की कायरिता कहते हुए भारतीयों को सचेत किया था, "मुसलमान लोग अंग्रेजों की अपेक्षा गुणवान अवश्यही थे परन्तु वे लोग इस देश के निवासी थे--- उनके अपव्यय से भी इस देशवासियों का उपकार ही होता था।--- बीस करोड़ भारतवासियों पर पचास लाख अंग्रेज शासन करते हैं परन्तु इन्हीं लोगों के अत्याचार से सब भारतवासी गण दुःखी हो रहे हैं।[3]"

अंग्रेजों ने सरकारी पदों में विभेद-नीतियों अपना कर सांप्रदायिक वैमनस्य को भड़का दिया था। "हिन्दी प्रदीप" ने पश्चिमोत्तर देश के हिन्दू और सरकारी नौकरी में सरकारी रिपोर्ट को प्रकाशित किया

१- हिन्दी प्रदीप, फरवरी, १८८८ पृ० ४-५

२- उचितवक्ता, जनवरी १८८४

३- कविवचन सुधा, ६ जुलाई, १८७४

था। सरकारी की उच्च पदों की जो फिहरिस्त प्रति तीन महीने पीछे निकलती है उसमें नीचे लिखे अनुसार हिन्दू और मुसलमान उम्मेदवारों की संख्या मालूम होती है -

नाम - उहदा	हिन्दू	मुसलमान
डि० कलक्टर और		
एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर	३५	३०
तहसीलदार	८८	६१
सदर अमीन	७	१२
मुन्सिफ	३३	३८
पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट	०	१
असि० सुपरिन्टेन्डेन्ट	०	२
इन्स्पेक्टर	५५	५६
कुल	२९६	२३२

पश्चिमोत्तर देश में २६५६६०६८ हिन्दू और ४१८६४४८ मुसलमान रहते हैं। इस हिसाब से मुसलमानों से हिन्दू ६ गुने अधिक हैं। इस हिसाब से प्रति ४० हिन्दुओं के साथ ४७ मुसलमान या न्यूनाधिक प्रति ६ हिन्दुओं के साथ ७ मुसलमान सरकारी की उहदों पर और यह व्यवस्था इस दशा में है कि जब संख्या के हिसाब से ४ मुसलमानों के साथ ७५ हिन्दू होने चाहिये।[1]

भारत में हिन्दू- मुस्लिम मुहर्रम आदि का साथ मिलकर मनाते थे।[2] किन्तु "गो- हत्या" के प्रश्न पर कोई सरकार

१- हिन्दू प्रकाश, दिसम्बर १८७७

२- विहारबन्धु १६ जनवरी १८७८ पृ०१

हिन्दुस्तान प्रकाश २५ नवम्बर १८८५ पृ० ५-६

के पक्षपातपूर्ण व्यवहार उदासीनता और स्वार्थपरक साम्प्रदायिक भावना को भड़काने के कारण समय समय पर कई साम्प्रदायिक दंगे हो जाते थे। "मित्र-विलास"[1], "हिन्दी प्रदीप"[2], "सारसुधानिधि"[3], "भारतेन्दु"[4], "भारत-जीवन"[5] आदि ने हिन्दी हेतु प्रकाशित करके साम्प्रदायिक सद्भाव बनाये रखने के लिए सरकार से अपील की थी।

"हिन्दी प्रदीप"[6] ने ब्रिटिश सरकार की साम्प्रदायिकता के लिए गहरी आलोचना की थी।

11. उर्दू- हिन्दी विवाद - प्रोत्साहन की भर्त्सना

सरकार हिन्दी-उर्दू भाषा विवाद को धर्म और जाति से जोड़कर उनमें अलगाव - टकराव को प्रश्रय दिया। सरकार भाषा सम्बन्धी निर्णयपूर्ण नीति के विरुद्ध आक्रोश पूर्ण आलोचना करते हुए "हिन्दी प्रदीप" ने आक्रोशपूर्ण आलोचना के रीति बार किए थे-"" अन्धे पीसे कुत्ते खाय " अन्धेर नगरी का सा यह विवाद यहाँ के शिक्षा विभाग में बना ही है--- उर्दू- फारसी की इतनी कदर कि उनमें मौलवियों की संख्या भी शिक्षा विभाग में अधिक और पाठशालाएँ भी बड़ी बड़ी फटकारें। हिन्दी-नागरी के व्यापक दो को बल एक ही रहे, उन्हें भी मानसिक यातनाएं मौलवियों को सेवा आधी। बाद। मनोष्ट को कैसी उदारता प्रकट होती

१- विशेष द्रष्टव्य - मित्रविलास ४ अक्टूबर १८८०

२- ,, - हिन्दी प्रदीप १ अक्टूबर १८८८, दिसम्बर १८९२ और जून १८९३

३- ,, - सार सुधा निधि १८८० अंक ३४

४- ,, - भारतेन्दु ६ अगस्त १८९१

५- ,, - भारत जीवन ७ नवम्बर १८८७

६- हिन्दी प्रदीप जुलाई १९०६ पृ० १३

जो इस देश की मातृभाषा समझी जाती है उसकी वृद्धि की और सरकार की पक्षपुष्टि। इसे भारी ठोकर दी है---- हिन्दू मात्रे, हम हिन्दी, बालकों, निरक्षरों, करने के फलाने पड़े हैं। अब हम यहाँ के प्रमुख स्कूल और कालेजों के मौलवी और पण्डितों की मासिक तनख्वाह लिखते हैं।[1]

कालेज	मासिक तनख्वाह	
आगरा कालेज	मौलवी	८०)
	पण्डित	५०)
बनारस	मौलवी	८०)
	पंडित	६०)
थौर्न कालेज	मौलवी	३००)
	पण्डित	२००)

इस प्रकार ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण विभेद नीति ही भाषा-विवाद का मूल कारण थी। "हिन्दी प्रदीप" ने उर्दू को हिन्दी का ही रूप घोषित करते हुए लिखा- "यह कौन नहीं जानता है कि उर्दू कोई दूसरी वस्तु है। हम मुसलमानों को उर्दू भी उतनी ही हिन्दी का पा- त्र है - आश्चर्य यह कि इन नाटकों का मूल- गौत्र एक ही रहा। समय समय पर इसका रूप, रंग और भेष अलबत्ता पलटता गया।"[2]

इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि जन-भाषाओं के बीच कोई विरोध नहीं था। स्वीकृत- पकार दोनों भाषाओं में समान रूप से विचार व्यक्त करती है।

१- हिन्दी प्रदीप, दिसम्बर १८८८

२- वही, फरवरी, १८८५

12. भारतीयता के प्रति आग्रह

भारत राष्ट्र के कार्यान्वयन एवं राष्ट्र-निर्माण की प्रक्रिया में एक विलक्षण विरोधाभास उभर कर सामने आता है कि लगभग एक शताब्दी पूर्व देश पराधीन था किन्तु भारतीय अपने स्थायी मूलभूत अधिकारों की मांग कर भी अधिक शिक्षा तथा बौद्धिक-सांस्कृतिक दृष्टि से स्वतन्त्र थे। आज देश प्रभुसत्ता सम्पन्न स्वाधीन गणतंत्र है किन्तु वैचारिक-सांस्कृतिक तथा तकनीकी दृष्टि से पश्चिम का अधिक गुलाम होकर जैसे निज राष्ट्रीय गरिमा तेज और निज गौरव को खो बैठा है। राष्ट्र को अंग्रेज और पश्चिम की बाद जैसे क्यों आकृष्ट हो गयी है, उसकी राष्ट्रीय संस्कृति मुरझाया: हो चुकी है।

इसके विपरीत १६ वीं शती में ईसाई सत्ता के सांस्कृतिक मूल्य-और- मर्यादाओं के समक्ष भी जब भारतीय गुलामों की भयावह स्थिति में अपने को हीन, कमजोर और असहाय अनुभव कर रहे थे, उस समय भी तत्कालीन मुस्लिमों स्वतन्त्र पत्रकार तथा जागरूक साहित्यकार वर्ग ने राष्ट्रीय सत्ता और विकास के लिए पश्चिमी बौद्धिक-सांस्कृतिक प्रतिमानों का अंधानुकरण नहीं किया था, उन्होंने पश्चिम के आधुनिक राष्ट्रोपयोगी तत्त्व को आत्मसात् कर 'भारतीयता' के प्रति पूर्ण समर्पण और आस्था व्यक्त की थी। उन्होंने समझ लिया था कि ईसाइयों द्वारा गुलाम भारत की सांस्कृतिक-कला-साहित्यिक चेतना तथा सत्ता को निर्बल करने उसे सांस्कृतिक, आर्थिक, मानसिक तथा शारीरिक हानि की लीलता किया जा रहा है। भारतीय साहित्य, शिल्प, कला तथा इतिहास के विषय में अनर्गल प्रचार कर ईसाई सभ्यता तथा आर्थिक साम्राज्यवादी ढांचे को उभारा जा रहा है तथा उन्होंने भारतीयों को यह भी समझा कर आया कि विश्व के नवीन

जन आविष्कार, श्रेष्ठ मानवीय मूल्य तथा आधुनिक उपलब्धियाँ ब्रिटिश साम्राज्य-वाद की देन नहीं हैं, वे तो मानव जाति की दीर्घ ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया और पूर्व-पश्चिमी देशों के शोषितों के अनुभवों की परिणति हैं।" हिन्दी प्रदीप " ने भारतीय को इस नई रोशनी से आगाह कर उनके भ्रम को तोड़ा था " हमारी नई रोशनी वाले सुशिक्षित एक एक का होकर यही चिल्ला रहे हैं कि जो कुछ बुद्धि विद्या, विज्ञान हिन्दुस्तान में आया वह एक पश्चिम वालों की उदारता का फल है। इसी सिद्धान्त पर दृढ़ विश्वास रख ये सुशिक्षित जन, जिन्हें सुशिक्षित करके हमारी जीभ लम्बाती हो है, अपनी हरीतों को तो विदेशियों की कुरीतें अंगीकार करते जाते हैं और जितने जो अपने को हिन्दुस्तानी कहते शरमाते हैं--- पर दूर दृष्टि फैलाय कर देखो तो उन एक बातों का फल यहाँ ही पाया जाता है। एक पुश्त ही यहाँ के पण्डार में थोड़ा-२ नीच- लंगोट और बैल वाले मालदार बन गये।"[1]

" समय विनोद " ने भी भारतीयों की दुर्दशा, का कारण विदेशी सत्ता के प्रति दास्य भाव बताया - " एक वह समय था जबकि यह भारतखण्ड अखण्ड प्रतापशाली था।--- विद्या और कला कौशल में प्रथम गिना जाता था, इसके विपरीत अब उसकी यह दशा है कि यहाँ पाले एक भाँति क्षीण हो रहे हैं। शिल्प, चातुरी और कलाओं में बिलकुल ही दास्य भाव, मजदूरी करना मोक्ष मानने की उत्तम योजिका माने हुए हैं।— जिन लोगों ने अंग्रेजी पढ़ाई हुई थी वे स्वल्प वेतन वाले आर या ऐसे की नौकरी में सन्तुष्ट थे--- इस जीवन को सुख की पराकाष्ठा माने बैठे हैं। ---- विचार कर देखो कितना हमारा सुख और आराम को बाधा है वे कोई भी यहाँ भी बना हुआ नहीं है अत्यन्त छोटी बाधा हुई तक भी एक

१- हिन्दी प्रदीप, जौलाई १८८२

न हो सका था। --- बात है सम्भवतः। क्योंकि जो हमारे देश के पास सम्पन्न अन्य ही कुछ बुरे नहीं थे जो इन कृषकों का शोषण देशोन्नति का बड़ा भारी काम समझ सम्पूर्ण पैदावारों का बड़ा भाग लेते थे।[1]

इस प्रकार से पत्र-पत्रिकाएँ प्रायः न सांस्कृतिक स्वरूप देशी परंपराओं, देशी उद्योग, शिल्प, जातीय भाषा और भारतीय संस्कृति को सच्चा समर्थक और प्रचारक थी किन्तु कभी भारतीय मूल्यों का उन्होंने कभी भी समर्थन नहीं किया। उन्हें सदा अंग्रेजियत भारतीय स्त्रीयों सभ्यता के पीछे पागल होकर दौड़ लगा रहे थे। उनमें भारतीय जीवन मूल्यों के प्रति नकार घृणा और उपेक्षा का भाव प्रकट हुआ था उन सम्पादकों एवं पत्रकारों ने सांस्कृतिक संरक्षण के पक्ष लेकर भारतीय जातीय-गौरव की यह भावना दृढ़ संकल्प होकर पुष्ट की थी कि "हम भारतीय हैं" "स्त्रीयों से कम नहीं हैं", ये नवोदित उदगार और विचार राजनीतिक चेतना के ही प्रतीक रूप थे।

5.2 आर्थिक-चेतना

1. शासकीय शोषण तंत्र का निर्भीक उद्घाटन

१८५७ के पश्चात् ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासन तंत्र में बहुविध प्रकारों से भारतीय जन जनता का सुनियोजित वैज्ञानिक शोषण किया गया। स्त्रीयों सरकार ने अपनी आवश्यकताओं आर्थिक हितों की पूर्ति के लिए भारतवासियों के रक्त की एक-एक बूँद, उनकी सुख एवं समृद्धि शोषित की थी, "भारतवर्ष को स्त्रीय राजपुरुषों ने शोषण कर लिया है इतना दुख है कि यह अब अस्थि चर्म विशिष्ट हो गया है। इसके पहाड़ में

१- सम्पादकीय , १ नवम्बर १८७५

रुपया- माँस का रेशमात्र भी नहीं रहा---- भारतवासी को अब इस प्रकार दुर्दशा-पन्न कर लीज महाशय महाकष्ट में पड़ गए हैं। लीजों को अब ऐसी शंका हो गयी है कि भविष्य में भारतवासी से किसी प्रकार का लाभ तो दूर रहा, वरन् इनका घर से रुपया देकर पोषण करना पड़ेगा।[1]

१६ वीं सदी में भारतीय रेल, सड़कें, खानें, व्यापार व्यवस्था पर इंग्लैंड का एकाधिकार था। भारतीय जनता को हर तरफ से लूटा जा रहा था। ऐसे में पत्रों ने भारतीय उन्नति के लिए विभिन्न उपाय सुझाये। उचित वक्ता में देश की उन्नति के लिए तीन उपाय सुझाये "प्रधान: तीन तरह से देश की उन्नति की जाती है। पहिला कृषि कार्य, दूसरा वाणिज्य तीसरा राजनैतिक सामर्थ्य।--- हम लोगों के वाणिज्य व्यवसाय खोलने से लीजों जाति का अनिष्ट ही होता है, से सब लोग विचार कर उचित लाभ का इस विषय में सहायता करना उचित है।[2]

तत्कालीन पत्रों ने भारतीय की अवस्था के आर्थिक अंतुल पर भी रोष प्रकट किया था।

२. लीजि प्रशासन की कठोर आलोचना

१६ वीं सदी की ब्रिटिश सरकार की तत्कालीन पत्र- पत्रिकाओं ने उस युग की एक लीला, अपव्ययी गवर्नमेंट कहा।[3] देश का धन बेरहमी से अनुत्पादक- अनुत्पादक कार्यों में लीजी अधिकारियों द्वारा व्यय किया गया था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने कविवचनसुधा के २५ जून, १८७०

१- उचितवक्ता ११ सितम्बर १८८०

२- वही

३- हिन्दोस्तान, २५ नवम्बर १८६७, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर --- पृ० ७३८

के अंक में प्रकाशित लेख " ब्रिटिश रूल इन इण्डिया " में सर्वत्र प्रशासन और लूट को उद्घाटित करते हुए लिखा था-- "" वर्तमान समय में एक पूर्ण दुनियाँ लूट चल रही है भारत के प्राकृतिक स्रोत लूट कर उसे कंगाल बना दिया गया है। निर्धन यूरोपियन जिनके लिए इंग्लैंड में झोपड़ी को एक बड़ी विलासिता थी, भारत में सौन्दर्य युक्त बंगले उपवन से घिरे महलों को प्राप्त कर लेते हैं जिनको इंग्लैंड में सुख सामग्री को रखने में समर्थ हो सकते हैं। वह जीव जो अपने देश में एक मुट्ठी अन्न पाने में असमर्थ था वह यहाँ दुर्लभ विलास सामग्री को पा लेता है। वह जो एक नौकर से अपने को बात नहीं कर सकता था यहाँ वह एक दर्जन गुलाम रखता है और उनको मारता पीटता है। ये यूरोपियन जो इस देश में आते हैं--- धन ये लिया निवृत्त लेकर जाते हैं। उदाहरणार्थ उनको केवल १ लाख पौंड वार्षिक लिया होगा है। " हिन्दोस्तान " ये ने लिया और वार्षिक प्रशासन में शान्ति प्रशासन की भर्त्सना की, काबुल युद्ध में भारत को २६,६०६ पौंड खर्च का भार वहन करना पड़ा था जबकि इंग्लैंड को सिर्फ ८००० पौंड।[1]

इस प्रकार भारतीय कुल सम्पत्ति इंग्लैंड जा रही थी। " अल्मोड़ा अखबार " ने कहा कि यूरोपियन अधिकारी जो अपने देश में केवल ५००० से ६००० रुपये प्रति वर्ष कमाते थे, वे भारत में वही ४ लाख रुपये प्रति माह प्राप्त करते हैं।[2]

" उचितवक्ता " ने बोल्ट सरकार के मैलिशास खर्च को देखते हुए लिखा - "" इंग्लैंड के राज मंत्री जो वेतन लेते हैं, हम लोगों के

१-भूमण्डल पर एक अधिक प्रजा एक अधिक लाभ गवर्नमेंट ने पहले पढ़ो। गवर्नमेंट इतना अधिक रुपया ८० को जगह चार लड़ाई-सालसे में उठाती है कि जिसी प्रजा हिन्दुस्तान को जब बहुत निर्धन हो गई है- " हिन्दी प्रकाश फरवरी मार्च १८९२ ई० पृ० ११

२- अल्मोड़ा अखबार, ३० अक्टूबर १८८२ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स इन० डब्लू० पी० १८८२ पृ० ७२६

गवर्नर जनरल उनकी अपेक्षा प्रायः पाँच गुनी अधिक वेतन लेते हैं। वस्तुतः इंग्लैण्ड यदि भारतीय राज्य शासन का परित्याग नहीं करेगा तो उन्हें यह परित्याग करना होगा। यदि भारतवर्ष प्रभु कामेन्द्र होता तो ब्रिटिश लोग बन्दी बन्धोनुसार भारतवर्ष के रुपये अपव्यय कर सकते थे, परन्तु भारतवर्ष तो कामेन्द्र नहीं है, यह अब लोगों ने जान लिया होगा। प्रति पाँचों वरस भारत में दुर्भिक्ष होता है। एक वर्ष वर्षा न होने पर त्राहि - त्राहि होने लगती है।[1]

सरकारी दौरों, दरबारों में भी हुल कर धन-व्यय किया जाता था जिसकी सीधी आलोचना पत्रों ने की थी।[2]

3. अतिशय कर बाहुल्य मँहगाई की निंदा

उत्तर २६ वर्ष तक में निर्धन एवं कृषक वर्ग पर करों का अतिशय बोझ लाद दिया गया था। विभिन्न करों जकात टैक्स, लाइसेंस टैक्स, नमक कर आदि इतने अधिक रूपों में कर- व्यवस्था की गरीब भारतीयों पर थोपा जा रहा था। पत्र-पत्रिकाओं ने कर, लगान, मँहगाई के विरुद्ध तेज गति से अभियान छेड़ दिया था - "हिन्दुस्तान की गरीबी पर ध्यान दीजिए जो जो कर अब गवर्नमेन्ट लेती है, वही उनके लिए अति से अति है। ---- अधिक लज्जा की और क्या दूसरी बात होगी कि प्रजा का प्राण और बूंद- बूंद के लोहू के समान धन इस समय अनेक टैक्सों के द्वारा उगा-ली है।[3]

१-उचितवक्ता, ११ सितम्बर १८८०

२- हिन्दोस्थान ११ सितंबर १८८५ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स १८८५ पृ० ७०३

३- हिन्दी प्रदीप मार्च १८८६ पृ० ६

टिक्कस किनहि जबरन लेही । जो बहुधा पेटागिन मे मरही ।
तिन पर एहि बहु भारो । जो पोषो कर लेहो बारो ।।

वस्तुतः कर सम्बन्धी समस्त्री स्त्री पत्रों में बहुतायत से प्रकाशित हुई थी -" भारत सुधानिधि " (१६ जून १८७६ तथा १७ नवम्बर १८७६), " आनंदकादंबिनी " १८८५ (माला २, मेघ ८,९) " भारतेन्दु " १८ फरवरी , २० मार्च -१६ जुलाई १८८६) , कविवचन सुधा (१६ नवंबर १८७६) , विद्यारत्न (फरवरी १८६४) " समय विनोद " (दिसम्बर १८८६) के अंकों में अनेक टैक्सों को भार की रेखांकित किया गया ।

हिन्दोस्थान ने " इनकम टैक्स " की रिपोर्ट (१८९६-९७) प्रकाशित करते हुए इनकम टैक्स उच्च अधिकारी वर्ग पर बहुत कम और गरीबों पर अधिक लगाने का आरोप लगाया[1] ।

भारतसुधानिधि ने इनकमटैक्स के दूसरे प्रस्ताव का विश्लेषण करते हुए टैक्सों सम्बन्धी दूसरे प्रस्ताव में भयावह विभीषिका को चित्रित किया है- " " हमारे राजस्व मंत्री सर जान स्ट्रैची महोदय ने दूसरा उपाय रखी भी प्रकारान्तर से इनकम टैक्स लगाना पाया । जब हमने इसको फलक मात्र देखी थी । अब इस ने उसका भयंकर रूप दिखायी देने लगा है । इसके देखने से ऐसा जान होता है कि शरीर भी टूट जाता है, हृदय कांपने लगता है और अन्धकार झूमने लगता है । पाठक । इस भयंकर विकट टिक्स के जन्मदाता राजस्व सचिव जान स्ट्रैची महोदय की युक्ति की देख के कर विस्मय और दुःख दोनों उत्पन्न होते हैं[2] ।

" समय विनोद " ने " भूमिशिष्ट टैक्स पर आक्रोश

१- हिन्दोस्थान, १० नवंबर १८९७ रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स एन०डब्लू० पी० १८९७

२- भारतसुधानिधि - ८ दिसंबर १८७९ pg० ४२

प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा था---" इस बल्लीटे में म्युनिसिपैलिटी की ओर से जो घरों पर टैक्स नियत किया गया उससे इस नगर के निवासी अति खिन्न हैं और कहते हैं कि यहां टैक्स से जो सनकर टैक्स मसा था जिसकी चोट प्राय इन्हीं पारों के ऊपर पड़ती थी जिन्हें टके की तो प्राप्ति नहीं परन्तु जिनके भाग्यवान पिता समय पाय बड़े २ भवन निवासार्थ बनवा गये हैं जिन बिचारों को उन्हें प्रज्वलित करने को तेल तक नहीं जुड़ता- ऐसे लोगों से---- यदि यथार्थ टैक्स लिया जाय तो क्यों कर वे बिचारे आपत्तिग्रस्त न होंगे।[1]"

इस प्रकार विभिन्न प्रकार टैक्सों के समाज का हर वर्ग परेशान और त्रस्त था लेकिन ब्रिटिश सरकार बाँस मुंह कर नमक कर, और टैक्स आदि बढ़ाती जाती थी। हिन्दी पत्रों ने करों का प्रतिरोध का तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की है जो बन्धन नहीं मिलती। "बड़ी बात भला हिन्दुस्तान किसी बात में भी इंग्लैंड की बराबरी कर सका--- हिन्दुस्तान इंग्लैण्ड से घाटे और बातों में तुलना न करे पर टैक्स देने में उससे बढ़ चढ़ कर न हुआ।[2]"

4. क्रय-शक्ति का ह्रास

ब्रिटिश शासन के निरन्तर शोषण, टैक्सों और जल्दी जल्दी होने वाले कालों ने भारतीयों की क्रय शक्ति को बिल्कुल समाप्त कर दिया था। काल का मुख्य कारण उत्पादन का कम होना नहीं था, बल्कि भारतीयों की क्रय शक्ति का रुक जाना था -" काल जो दूसरे तीसरे वर्ष का पेरला है और लाखों मनुष्य भूखे मर जाते हैं सो इसी नहीं कि यहां

१- सम्पत्तिविनोद, दिसम्बर १८७६

२- हिन्दी प्रदीप, अगस्त १८७९

उपज को कमी है---- किन्तु दरिद्रता के कारण पेट न रहने के कारण हरोड़ नहीं रहते लाखों आदमी भूखे मर जाते हैं, राज कर्मचारी अच्छी तरह से जानते हैं कि हमारी शासन प्रणाली भारत के लिए अति भयंकर है परन्तु कोई इस बारे में कुछ किया नहीं जाता तो आखिर किसे (भारतीय) दुर्बल है।"[1]

आधुनिक मूल्य प्रतिमानों की दृष्टि से देखें तो भारत में मँहगाई कदापि नहीं थी। फिर भी क्रय शक्ति के अभाव तथा सरकार की निर्यात नीति के कारण अन्न का कृत्रिम अभाव पैदा हो गया था। हरिश्चन्द्र मैगजीन में पत्रों में प्रकाशित " केम्पिन इन बंगाल " लेख में दुर्भिक्ष स्थिति का यथार्थ अंकन हुआ है।[2] बिहार में तत्कालीन अन्न की दर प्रति रुपया इस प्रकार थी।[3]

जिला	गेहूँ	जौ	चावल उत्तम	चावल साधारण
पटना	१६॥ सेर	१६।।। सेर	१२ सेर	१६ सेर
गया	१९	१७।	८	१०

" हिन्दी प्रदीप " ने उस युग की मँहगाई की चर्चा करते हुए लिखा - "" कि गृहस्थी का पालन पोषण आराम से १० रुपये की आमदनी में होता था वहाँ अब हर एक चीजों के मँहगे हो जाने से २५) रुपये की आमदनी पर भी खर्च नहीं चलता।"[4]

इस प्रकार अकाल, कहाँ, मँहगाई से सीधी

१- हिन्दी प्रदीप, जुलाई अगस्त १८८९ pp० ३३

२- हरिश्चन्द्र मैगजीन १५ मई १८७४ pp० २१५

३- बिहारबन्धु २८ अप्रैल १८७४ pp० ४६

४- हिन्दी प्रदीप , जुलाई १९०६ pp० ६

होती प्रजा की यथार्थ दशा का ऐसा मार्मिक चित्र यदि किसी को देखना हो तो १९ वीं शती की पत्रिकाओं से अच्छी सामग्री अन्यत्र नहीं मिलेगी।

5. बेरोजगारी, दुर्भिक्ष, महामारी आदि के प्रति आक्रोश

पढ़े लिखे बेरोजगार युवा वर्ग की दुर्गति का चित्रण प्रायः सभी पत्रों ने किया था। "हिन्दी प्रदीप" "सारसुधानिधि", भारतेन्दु, हरिश्चन्द्र मैगजीन, ब्राह्मण आदि ने प्रखर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए इसका जिम्मेदार अंग्रेजी सरकार को ठहराया था। "सारसुधानिधि" ने नौकरी की दुर्दशा शीर्षक में पढ़े लिखे भारतीयों का यथार्थ अंकन किया था- "आजकल लिखे पढ़े लोग बेकार फिरते हैं कि उनकी संख्या करना कठिन है। यदि किसी को एक आदमी का प्रयोजन होय तो उस काम के आकांक्षी दस उपस्थित होते हैं। हाय! उनकी ऐसी दशा देखने से चित्त में ऐसी ग्लानि होती है कि ---- भारत संतान एक मुष्टि अन्न के लिए लालायित हो रहे हैं और उनकी आँखे बदले लाल फूली और गाल प्रायः होते हैं। फिर भी यहाँ वालों को कैसा नहीं होता कि कुछ व्यवसाय करें। क्या इन लोगों ने एक नौकरी ही को मुख्य पुरुषार्थ समझ रखा है।"[1]

१९ वीं सदी में हर प्रान्त में पड़े दुर्भिक्षों से लाखों लोग भुखमरी का शिकार होकर काल के गाल में समा गये। सन् १८६०, ६६, ६८, ७३, ७६, ७७, ८८, ९०, ९६, १८९९, १९०० के दुर्भिक्ष अन्न शक्ति के अभाव, विपन्नता के कारण हुए।

"कविवचनसुधा"[2] ने बंगाल के दुर्भिक्ष के मूल

१- सारसुधानिधि (वर्ष तीन अं० ४५)

२- कविवचन सुधा, १६ फरवरी १८७४

कारण पर प्रकाश डालते हुए कहा- " बंगाल का दुर्भिक्ष क्या है ? केवल जनसंख्या के बोझ का फल है क्या कारण है कि दिन दिन मंहगी बढ़ती जाती है जो अन्न का मूल्य १२ रु में बिकता था वो अब मूल्य ८ रु० बिकने लगा--- और मूल्य पूर्व अन्न ४० रु० का बिकता था अब उसका मंहगाई कहाँ हो गया ?

दुर्भिक्षों के बाद कृषकों ने मनमानी उग्र रूप धारण कर लेती थी जिसका भयावह चित्रण " द बंगाल फेमिन " में हुआ है।

6. राष्ट्रीय पत्रकारिता के बदलते तेवर

राष्ट्रीय अभिलेखागार (नेशनल आर्काइव्ज)के प्रामाणिक गुप्त दस्तावेज और नेटिव प्रेस रिपोर्ट इसको बताते हैं कि तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता को स्वतन्त्र विस्फोटक लेखों एवं क्रांतिकारी विचारधारा अंग्रेजी सरकार के लिए चुनौती बन गयी थी। सरकार उन सभी देशी भाषा के पत्रों को प्रतियों के आपत्तिजनक अंशों का साप्ताहिक अनुवाद करवा कर दमनात्मक कार्यवाही करती थी। तब भी तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में साहसिक चरित्र निर्भीक उग्र राष्ट्रीयता के तेवर साफ दिखलायी दे जाते हैं।

इस प्रकार राष्ट्रीय नवजागरण के तीव्र संघर्ष और अंग्रेजी सत्ता के विरुद्ध जनमत-निर्माण कर विद्रोह के साथ मरने वाली तत्कालीन पत्रकारिता के पवित्र आकांक्षाओं और प्रयासों को सराहना को जानी चाहिए कि राष्ट्र हित के लिए उन्होंने अपने अस्तित्व को भी मिटना नहीं की थी। उन्होंने टूटना मंजूर किया लेकिन किसी के सामने झुकना नहीं।

१- हरिश्चन्द्र मैगजीन १५ मई १८७४ पृ० २१५

छठा अध्याय

रूपात्मक एवं भावात्मक साहित्य

१- रूपात्मक साहित्य

२- भावात्मक साहित्य

6."रचनात्मक एवं ज्ञानात्मक साहित्य "

पत्रकारिता एक ऐसा सुविस्तृत, सुमिश्रित जनमाध्यम है जिसमें रचनात्मक साहित्य की समग्र विधाएँ-नाटक, निबंध,कविता आदि तथा ज्ञानात्मक चिंतन के विविधआयाम समाहित और संप्रेषित होते हैं। "जागरण-काल" की हिन्दी पत्रकारिता का कलेवर भी सर्जनात्मक एवं ज्ञानात्मक सामग्री से आपूरित था। अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं के संपादक ओजस्वी पत्रकार होने के साथ प्रतिभासम्पन्न सर्जनाकार भी थे। हिन्दी गद्य-पद्य और भाषा को आधुनिकता और साहित्यिक छवि प्रदान करने में इन संपादक-रचनाकारों का प्रदेय अविस्मरणीय है। क्या उनके साहसिक रचनात्मक प्रयासों एवं निःस्वार्थ जन-समर्पित ज्ञान-निष्ठा को नकार कर आगे बढ़ जाना साहित्य की ऐतिहासिक-विकास-प्रक्रिया को झुठलाना नहीं होगा? भारतेन्दु काल की पत्रकारिता देश के साहित्य भाषा, ज्ञान, कला आदि की जागरूक रक्षक और सर्जक थी। उसके प्रभावों का विश्लेषण एवं मूल्यांकन तत्कालीन जीवन, युगीन साहित्यिक परिवेश और राष्ट्रीय दशाओं के ऐतिहासिक परिपार्श्व को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए, न कि आधुनिक अभिव्यंजना - सूत्रों का आग्रह लेकर, उनकी रचनात्मक चेतना और गद्य के स्वरूप निर्माण में उनकी भूमिका को बिल्कुल ही नजर अन्दाज कर दिया जाय।

1. "आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सन् 1903 में इलाहाबाद से "सरस्वती" का संपादन शुरू किया। हिन्दी गद्य साहित्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका तभी से महत्वपूर्ण समझी जानी चाहिए, क्योंकि इसके पूर्व भारतेन्दु काल में या उससे भी पहले जो समाचार-पत्र निकलते थे, वे राजनीतिक चर्चाओं तथा हिन्दी प्रचार के साधन तो थे लेकिन हिन्दी गद्य के स्वरूप निर्माण या परिष्कार में उनका विशेष योग नहीं था"- शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी गद्य साहित्य,पृ0।170-171।

पत्रकारिता और साहित्य के बीच मूल विभाजक रेखा भावात्मक सर्जनात्मकता की होती है। साहित्य सर्जनात्मकता की सघनतम कलात्मक प्रस्तुति है, पत्रकारिता सामान्यतः यथार्थ भावबोध को हल्के सर्जनात्मक स्पर्श के साथ संप्रेषित करने की कला है। भारतेन्दु काल के संपादक-लेखकों ने साहित्य और पत्रकारिता(दोनों जनमाध्यमों)के मौलिक अंतर को बहुत कुछ मिटा कर उनमें घनिष्ट अंतरंग संबंध स्थापित कर दिया था। तात्पर्य यह कि तत्कालीन पत्रकारिता केवल "राजनीतिक-चर्चा" और "भाषा-प्रचार का साधन मात्र" न थी उसमें भाव संकुल संवेदना, रचनात्मक कलाकारिता और हिन्दी-हिंदुस्तान के लिए गहन प्रतिबद्धता झलकती है।

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ठोस भाषा- गद्य-पद्य निर्माण के लिए निम्नलिखित गद्य-पद्य रूप और विविध विषय समन्वित रचनाएँ मिलती हैं -

1. आधुनिक साहित्यिक विधाएँ - निबंध, उपन्यास, कविता आदि
2. ज्ञानात्मक साहित्य - इतिहास, विज्ञान, दर्शन संबंधी लेख आदि

1. आधुनिक गद्य और गद्य- वृत्तों का उदय :

"नवजागरण काल" [1851-1900 ई0] को आधुनिक गद्य-निर्माण-युग कहें तो अत्युक्तिपूर्ण न होगा। इस "गद्य-काल" में खड़ी बोली गद्य का कविता से अलग एक आत्म-निर्भर, स्वतंत्र निज-अस्तित्व और साहित्यिक-कृतित्व उभरा। खड़ी बोली गद्य जो अब तक केवल जन-जीवन के दैनिक कार्यों और अन्य आवश्यक गतिविधियों से जुड़ा हुआ था, उस गद्य को जागरणकालीन संपादक-लेखकों ने सर्जना के स्तर तक ऊपर उठाया और उसका संस्कार और परिष्कार करके उसे नयी अर्थवत्ता प्रदान की।

इस युग के रचनाकारों ने गद्य का प्रयोग विपुल ज्ञानात्मक चिंतन, गतिशील विचार-वैभव, आधुनिक भाव बोध और भौतिक युगीन यथार्थ को

वाणी देने के लिए किया था क्योंकि यह सब मध्ययुगीन पथ में कहना सम्भव ही नहीं था। इस जागरण-युग में "काल की गति के साथ — भाव और विचार तो बहुत आगे बढ़ गये थे पर साहित्य पीछे ही पड़ा था। — देश काल के अनुकूल साहित्य निर्माण का कोई विस्तृत प्रयत्न तब तक नहीं हुआ था। — हिन्दी साहित्य अपने पुराने रास्ते पर ही पड़ा था। भारतेन्दु ने उस साहित्य को दूसरी ओर मोड़ कर हमारे जीवन के साथ लगा दिया।"[1]

अतः भारतेन्दु और उनकी पीढ़ी के साहित्यकारों ने हिन्दी साहित्य और भाषा को पुराने ढर्रे से निकाल कर उसे नव-युग और नव-जीवन से जोड़ा। इसके लिए उन्होंने स्वयं पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित कर ऐसे जानदार, धाराप्रवाह निर्मल गद्य और गद्य-कृतों को जन्म दिया, जैसा सरस जीवंत गद्य परवर्ती युग में मिलना दुर्लभ हो गया। इन पत्रिकाओं के सहयोग, स्वाधीन तथा जनानुभूति से रचे-बसे मौलिक गद्य को निबंध, कहानी, रेखा चित्र आदि गद्य-विधाओं में वर्गीकरण करने के लिए आज भी आधुनिक समीक्षकों को उलझन का सामना करना पड़ता है। यद्यपि इस प्रारंभिक खड़ी बोली गद्य में कुछ कमियाँ, कुछ अव्यवस्था और कुछ निर्माण-काल की भूलें मिलती हैं किन्तु क्या इसीलिए इस काल के पत्रकारिता-साहित्य की रसात्मकता, लालित्य और मौलिक विचार शक्ति को विस्मृत कर दिया जाय?

इस काल में ज्ञान- विज्ञान तथा तर्क-विश्लेषण के बढ़ते प्रभाव, परिवर्तित युग मान्यताओं, बढ़ते आर्थिक दबावों के कारण यथार्थ परक आदर्शवादी चित्रण की माँग बढ़ गयी थी जिसको आधुनिक यथार्थवादी

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 415

गद्य-वृत्त नाटक, निबंध, उपन्यास आदि ही पूरा कर सकते थे। अतः इस नवचेतित युग में गद्य के विविध रूपों का विकास युग की अनिवार्यता थी जिसकी पूर्ति हिन्दी पत्रकारिता ने पूर्ण दायित्व और निष्ठा के साथ की थी।

हिन्दी गद्य की विकास-यात्रा को सक्रिय गतिशीलता इसलिए भी मिली थी क्योंकि बढ़ती जन-जागृति के साथ बौद्धिक उन्मेष मध्ययुगीन सामंती-राजदरबारी परंपराओं का ह्रास, जीवन के प्रति ऐहिक दृष्टिकोण तथा आधुनिक नव-सुधार की चेतना की लहर जनमानस में फैलने लगी थी।

"जागरण युग" की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, साहित्य के संदर्भ में यह कहना गलत न होगा कि तब का अधिकांश साहित्य आज के समान पृथक् विधा के रूप में नहीं लिखा गया था। संपादक- साहित्यकार सामाजिक राष्ट्रीय दायित्वों की पूर्ति के लिए तथा सभी वर्ग के पाठकों की अभिरुचि को ध्यान में रखते हुए पत्रिका-सामग्री में साहित्य और भाषा के स्तर पर नये-नये प्रयोगों का रचना-विधान करते थे। इन्हीं मौलिक प्रयोगों और उद्भावनाओं से नवीन साहित्यिक विधाओं का प्रस्फुटन और विकास हुआ था। उनको महज औपनी साहित्य की कृत्रिमतापूर्ण देन कह देना इन संपादक-साहित्यकारों की मौलिक-प्रतिभा के साथ अन्याय करना होगा।

2. नाटक :

"जो देश सभ्यता की जितनी ही अंतिम सीमा को पहुँचता है वहाँ उतना ही अधिक नाटक का प्रचार पाया जाता है।"[1] "हिन्दी प्रदीप" के संपादक-साहित्यकार पं० बालकृष्ण भट्ट ने देश की सभ्यता का निकष "नाटक" को माना था।

---

1. "हिन्दी प्रदीप", मई-जौलाई, 1904 पृ० 40-41

"नाटक प्रगतिशील जीवन का चित्र है, अजगर की भाँति जीवन व्यतीत करने वालों के जीवन का नहीं।"[1] अतः "जागरण युग" के उस गतिशील काल में यदि नाटक विधा से आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवर्त्तन होता है तो कोई "विलक्षण बात" प्रतीत नहीं होती। भारतेन्दु युग में पहली बार साहित्य ने राजसी वैभव के कल्पनालोक से उतर कर जीवन की यथार्थ कठोर भूमि का स्पर्श किया था। जनता की स्वाभाविक बोलचाल में युगीन जन-जीवन के कार्यकलापों तथा परिवर्तित समाज के अन्तर्विरोधों और समस्याओं की साकार प्रस्तुति नाटक के माध्यम से ही हो सकती थी। भारत के अधिसंख्य निर्धन, अशिक्षित जन-समुदाय से प्रत्यक्ष संपर्क नाटक के माध्यम से ही सम्भव था। अतः इस सशक्त कला-रूप का प्रयोग करके भारतेन्दु युग के लेखकों ने युग की नई समस्याओं और राष्ट्रीय विचारधारा को मंच प्रदान किया।

रंगमंच के प्रति जनसामान्य की रुचि पारसी नाटकों द्वारा जागृत हो चुकी थी। तत्कालीन साहित्यकारों ने ऐतिहासिक-पौराणिक तथा सामयिक कथानक लेकर, अनेक मौलिक-अनूदित नाटकों एवं व्यंग्यात्मक प्रहसनों द्वारा भद्दे पारसी नाटकों से जनता का ध्यान हटाया और उनकी रुचि परिमार्जित करने की चेष्टा की। इस सस्ते व्यावसायिक रंगमीचय मनोरंजन की चुनौती का सामना करने के लिए इन नाटककारों ने एक ओर अशिक्षित जनता के लिए मेलों-ठेलों में शिक्षाप्रद मनोरंजक नाटकों का मंचन किया, दूसरी ओर शिक्षित वर्ग के लिए इन्हें पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित

1. डा० कृष्ण लाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृष्ठ 194-195
2. "विलक्षण बात यह है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रवर्तन नाटकों से हुआ" -आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पूर्व उद्धृत, पृ० 415-416
3. "नाटकों से हम लोगों का यत्न यह था कि लोगों को तबियत ऐसे बेहूदे खेल-तमाशों से रोक सुसभ्य विनोद की ओर रुजू करते सो इन पारसियों ने चौपट कर डाला-- इन पारसियों ने नाटक को जो सभ्य समाज का परमोत्कृष्ट विनोद था, बिगाड़ कर भांड-पतुरियों के तमाशों से भी विशेष कर डाला-- इनको केवल रुपया कमाने से मतलब है"- संपादक बाल कृष्ण भट्ट, हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1883, पृ० 19

करया तथा स्वयं रंगमंच-संस्थाएँ स्थापित करके "नील देवी", "अन्धेरनगरी" "भारतदुर्दशा" आदि नाटकों में स्वयं अभिनय किया।[1]

भारतेन्दु ने हिन्दी भाषा के विशुद्ध नाटकों के रचना काल का प्रारम्भ लगभग 1858 ई० माना है। प्रारंभिक नाटकों में "महुष नाटक" तथा "शकुंतला नाटक" उल्लेखनीय बताये हैं।[2] हिन्दी-पत्रिकाओं में प्रकाशित पहला नाटक या प्रहसन कौन सा था? आज यह प्रामाणिक रूप से कहना कठिन है क्योंकि उस काल की सभी प्रारंभिक पत्र-पत्रिकाएँ आज उपलब्ध नहीं हैं। जागरण-कालीन पत्र-पत्रिकाओं में प्राय: निम्नलिखित नाट्य-रूप प्राप्त होते हैं।

1. प्रतीकवादी प्रहसन
2. हास्य-व्यंग्य प्रधान समस्या एकांकी
3. मनोरंजक संवाद-वार्त्ता
4. पौराणिक एवं ऐतिहासिक नाटक
5. अनूदित नाट्य-रूपान्तर

उपर्युक्त सभी प्रकार के नाट्य-रूपों को प्रयोग करके भारतेन्दु युगीन नाटककार हिन्दी में स्वतंत्र नाटक विधा और रंगमंच के लिए ऐसी मौलिक नाट्य-पद्धति की प्रस्थापना करना चाहते थे जो नव-युग के जागरण तथा हिन्दी की प्रकृति के अनुरूप हो। उन्होंने हिन्दी रंगमंच की बुनियाद तैयार करने में संस्कृत, पश्चिमी नाटक-पद्धति, पारसी तथा लोक- नाटकों से अनेक तत्व ग्रहण किये थे। आधुनिक नाटक को हिन्दी-भाषी रंगमंच, पत्रकारिता, थियेटर और साहित्य आदि सभी कसौटियों पर खरा उतारने

---

1. ब्राह्मण, खण्ड 4, संख्या 4-5
2. "महुष नाटक बनने का समय मुझको स्मरण है आज पचीस वर्ष हुए होंगे जबकि मैं सात वर्ष का था"-भारतेन्दु ग्रंथावली "नाटक प्रथम भाग" पृ० 788

के लिए उन्होंने अपने विवेक से प्राचीन नाटक पद्धति में युगानुकूल परिवर्तन कर यथार्थवादी विषय वस्तु और नव-अभिव्यंजना के प्रति आग्रह दिखलाया था।[1] इन सभी नाटक-रूपों के द्वारा वे लोक-सुधार लोक-रंजन, लोक-शिक्षण तथा लोक जागरण लाना चाहते थे।[2]

1. प्रतीकवादी प्रहसन[3] :

इस काल के परतंत्र नाटककारों का आक्रोश कभी प्रतीकात्मक प्रहसन का रूप धारण करके निकला था, कभी हास्य व्यंग्य पूर्ण संवादों या एकांकी के रूप में व्यक्त हुआ था।

प्रतीकात्मक शैली में लिखे प्रतिनिधि प्रहसनों में "एक रोगी एक वैद्य" [हिन्दी प्रदीप, मार्च 1879] "भारतदुर्दशा" [1880 हरिश्चन्द्र चन्द्रिका] "अंधेर नगरी द[1881 ई0 वही] "भारत दुर्दशा रूपक [आल्हवा "परिहास प्रथम" [आनन्द कादम्बिनी, फाल्गुन सं0 1945] "भारत सौभाग्य" [वैष्णव पत्रिका] "मार्जार-मूषक"[सारसुधानिधि, 3 मार्च 1879] आदि थे। इनकी प्रतीक-व्यंजना और प्रयोजन स्पष्ट है।

"हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित "एक रोगी और एक वैद्य" में "वैद्य"अंग्रेजों का और "रोगी" भारत का प्रतीक है। वैद्य कहता है -"हम हैं वैद्यों के वैद्य, महावैद्य, सब वैद्यों के गुरु घण्टाल। रोग की बात लिखवाँ ले।

1. "अब नाटक में कहीं आशी:प्रभृति नाट्यालंकार, कहीं प्रस्तावना, कहीं विलोभन कहीं सफेट, कहीं पंच संधि या ऐसे अन्य विषयों की आवश्यकता नहीं रही। संस्कृत नाटक की भाँति इनका हिन्दी नाटक में अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्न पूर्वक रखकर हिन्दी नाटक लिखना व्यर्थ है।" वही पृ0 755-56
2. "आजकल की सभ्यता के अनुसार नाटक रचना में उद्देश्य फल उत्तम निकलना आवश्यक है-अर्थात नाटक पढ़ने व देखने से कोई शिक्षा मिले"- वही, पृ0 773
3. प्रतीकवादी नाटकों को "अन्यापदेशिक" भी कहा गया है किन्तु प्रतीक और अन्यापदेश के अर्थ में मौलिक अंतर है। अन्यापदेश अंग्रेजी के एलीगरी का समानार्थी है। अन्यापदेश तथा प्रतीक दोनों में प्रस्तुत और अप्रस्तुत में धर्म अथवा प्रभाव का साम्य है"-डा0रामचन्द्र तिवारी, हिन्दी गद्य की प्रवृत्तियाँ पृ0 4।

क्या ताकत जो हमारी कराज सूरत देखते ही झटपट रोग तन के बाहर न हों —"।

ये प्रतीकात्मक शैली में लिखे प्रहसन अपने तीखे कटाक्ष, रोचक संवाद, सटीक हास्य और राष्ट्रीय भाव बोध के कारण अत्यन्त प्रभावशाली और मनोरंजक बन गये है इनके आधार - विषय सामयिक राजनीति और सामाजिक समस्याओं से संबद्ध होने के कारण राष्ट्रीय-उन्मेष में सहायक हैं। "मार्जार-मूषक" प्रहसन में भी प्रतीक - व्यंजना का आश्रय लेकर तत्कालीन शासक-शासित संघर्ष को ही मूर्त्त किया गया हैं - "मूषक-प्रभो। आप चाहे मारो चाहे खा जाओं। सच्ची बात तो यही है कि हमारी आपकी प्रीति कैसी। आपके डर के मारे जो कहो सो हम हाँ कर दें। मार्जार- [अत्यन्त क्रोध से] तो दुष्ट पाखंड क्यों हमारा सिर नाहक खाली किया। देख अभी इस कृतघ्नता का फल तुझको चखाता हूँ"।[2]

उपर्युक्त प्रतीकवादी प्रहसन में परिष्कृत भाषा, मनोरंजक वार्तालाप शैली के द्वारा तत्कालीन भारतीय मानसिकता और अंग्रेजों की तानाशाही मनोवृत्ति पर पैना कटाक्ष किया गया है।

भारतेन्दु कृत "भारत दुर्दशा" नाटक में भारत दुर्दैव अंग्रेजी राज का प्रतीक है अन्य प्रतीक पात्र रोग, आलस्य, मदिरा आदि के द्वारा भारत के अधःपतन का चित्रण करना ही उनका ध्येय था। भारतेन्दु लिखित "अंधेर नगरी " भी अंग्रेजी राज्य के यथार्थ जीवन का लोक-प्रतीकों के माध्यम से सशक्त चित्रण हुआ है। इनका राष्ट्रीय दृष्टिकोण, सटीक हास्य, प्रतीक शैली और पात्रानुकूल भाषा नाटककार की नवविकसित संवेदनशीलता की परिचायक हैं। "घूरन साहेब लोग जो खाता। सारा हिंद हजम कर जाता" आदि लोक गीतों के माध्यम से "भारतेन्दु ने "यहाँ दिखलाया है कि पुराने

1. हिन्दी प्रदीप, मार्च, 1879 ई0
2. वार सुधानिधि 3 मार्च, 1879 ई0

लोक-संस्कृति के रूपों को राजनीतिक चेतना जगाने के लिए किस तरह इस्तेमाल करना चाहिए। "जितनी गहरी राजनीतिक सूझ-बूझ है, उतनी ही ऊँची उनकी प्रहसन कला है"।[1]

कहीं कहीं इन प्रतीकात्मक प्रहसनों पर नौटंकी का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है "परिहास प्रकम" में बदरी नारायण चौधरी "प्रेमघन" ने विलक्षण शैली, पात्रानुकूल बोली का प्रयोग करके इस लोक-नाटक का रूप दिया है। इस प्रहसन में "आर्या" भारत का और उसके चार पुत्र- चार वर्ण , "सिंह" - क्षत्रिय, गदहा-काकुस और "भालू"- रूस का प्रतिनिधित्व करते हैं। आर्या- हे भगवान । तू क्यों मुझसे रूस रहा है कि पहले तो मेरी इस देह द्रव्य-देहली देहली को मुसलमान मुस-मुस कर वैसे ही मुस लिये। गोरे मुंह ने मुस-मुस कर मुस के मिस मुस बना दिया, तो भी तुम सन्तुष्ट न हो यह प्रज्वलित अग्नि का भयानक रूप को भी ठूँस रहा है।

पहिला लड़का [आश्चर्य, चौंके] [नाक में एक छुटकी सुंघनी का सुड़ेड़ कर] अरी मैया। ये तू क्या बके ! नाम सुनी तुलसीदास की वा चौपाई कू-"कोइ नृप होय हमें का हानी। चेरि छांड़ि नहि होइब रानी"।। सो हमें का सो क्या पड़ी बोरौंवे। सिंह -[स्वगत]--पः टिवारट के बहाने से लाडुमार ... ...

-- → डौलट का रोब-रोब आना-- हरेक ठौर पर किसना रुपिय: इण्डिया से आटा - इतना बरा हकूमत-- अलबत्ता कुछ अफगानिस्तान तक छोड़ेंगा पर नई। क्यों नई इण्डिया।"[2]

---

1. डा०रामविलास शर्मा, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पृ० 20,21,96,99
2. आनन्द कादम्बिनी, फाल्गुन सं० 1945 वि०

2. हास्य-व्यंग्य प्रधान एकांकी- "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित कुछ प्रहसनों में "नई रोशनी का विष" में पाश्चात्य सभ्यता की चमक-दमक से स्तब्ध और पगलाये भारतीय युवाओं की दुर्गति का सजीव चित्र खींचा गया है। पात्रों की ओछी में बोलचाल से एकांकी में स्वाभाविकता आ गयी है। "पतित पंचम" (अगस्त, 1888) के पाँच पात्र ओछी सरकार के पाँच चाटुकारों राजा शिव प्रसाद, पयोनियर साहब, जमींदार कारिंदों और सर सैयद का प्रतिनिधित्व करते हैं। "आचार विडम्बन (दिसंबर, 1899) पाखंड, अंध परंपरा आदि रूढ़ियों पर गहरी चोट की गई है। "कहर सूम की एक नकल" (अप्रैल-जून 1895) में कृपण व्यक्ति के चित्रांकन द्वारा धन-संचय को ही जीवन का लक्ष्य मानने वालों पर कटाक्ष कर हास्य की सृष्टि की गई है। "शिक्षादान" (अक्टूबर, 1878) एकांकी उद्भ्रांत समाज की विडम्बनाओं पर्दा प्रथा, वेश्यावृत्ति, नारी अशिक्षा तथा वैवाहिक कुसंस्कारों को उघाड़ कर रख देता है। उस युग की नारी की अन्तर्वेदना मालती के इन शब्दों में उभरी है - "नारी के समान घिनौना जन्म किसी का न होगा - सूर्य देव भी जिसका मुख कभी न देखते हों, न हवा अंग का स्पर्श कर सकती हो, वह नारी सती, कलावती, पतिव्रताओं में मुखिया समझी जाती है लिखने पढ़ने से चरित्र बिगड़ जाता है - आठ वर्ष में ही हमें ब्याह देते हैं सो भी बना देखे भाले।"[1]

अन्य पत्रिकाओं के प्रमुख व्यंग्यात्मक प्रहसनों में "ब्राह्मण" पत्रिका के "ज्ञानचन्द्र और प्रेमचन्द्र (15 जौलाई 1883) जुवारी जुवारी (खण्ड 1, संख्या 4) "दूध का दूध पानी का पानी" (15 अगस्त 1883) "कलिकोप" आदि थे। इनके आधार-विषय भी सामाजिक- जागरण से संबंधित रहे हैं।

"भारतेन्दु" (वृन्दावन) पत्रिका में प्रकाशित संपादक राधाचरण गोस्वामी के प्रहसन "बूढ़े मुँह मुहांसे", "तन मन धन श्री गोसाई को अर्पण"

1. हिन्दी प्रदीप "नवम्बर, 1878

आदि का सांप्रदायिकसद्भाव, किसान जमींदार संबंध-समस्या तथा निर्भीक सामाजिक चेतना आधुनिक भंगिमा लिये हुए है। संपादक जी का शिष्ट हास-परिहास, बेधड़क राजनीतिक-सामाजिक चिंतन, पैना मार्मिक व्यंग्य उनके प्रहसनों को उत्कृष्ट श्रेणी प्रदान कर देता है।

जागरण-युग के सभी प्रहसन-रूप सामयिक विसंगतियों और सामाजिक-सांस्कृतिक-राजनीतिक प्रश्नों को निर्भीक तथा सरस व्यंग्यात्मक शैली में उठाते हैं और उनके अंतरंग यथार्थ को पूरी तरह उजागर कर देते हैं। शिल्प की दृष्टि से तो नहीं, भाव और कथ्य की दृष्टि से आधुनिक पहचान बनाते हैं। भाषा की रवानी पात्रानुकूल है। इनमें अनेक पात्रों के स्केच खींच कर सामाजिक उद्देशन को और अधिक मुखर बना दिया है। ये प्रहसन कहीं-कहीं आधुनिक पत्रकारिता के फीचर्स से मेल खाते हैं। संवेदनात्मक वस्तुओं का स्तर कहीं-कहीं सतही लगता है। हर प्रहसन में उपदेश पूर्ण समाधान, समाज सुधार, क्रान्तिकारी विचार और हास-परिहास की चेतना भरपूर है। "भारतेन्दु युग के पत्र-साहित्य में -- नेता जिस बात को मुँह से कहने में डरते थे, उसे हिन्दी लेखक लिख कर छपवा देने में संकोच नहीं करते थे।"[1]

3. मनोरंजक संवाद :

...-साहित्य के जटिल रूपों में प्रायः पाठकों की अभिरुचि नहीं बन पाती। इस बात को भारतेन्दु युगीन संपादक - नाटककारों ने अच्छी तरह समझ लिया था। उन्होंने अपने पत्र-साहित्य में दो मानवी-पात्रों या मानवीकरण पात्रों के बीच प्रत्यक्ष वार्तालाप शैली में नवजागृत चेतना व्यक्त करने का नया चलन निकाला था। ये रोचक संवाद-वार्ता

---

1. भारतेन्दु युग, पृ० 88

आधुनिक कहानी, निबंध नाटक, एकांकी आदि की श्रेणी में स्थान नहीं पा सकते। ये संवाद आधुनिक रेडियोवार्ता, दूरदर्शन के लघु-वृत्त चित्र या पत्रों की साक्षात्कार-वार्ता से मिलते-जुलते रूप प्रतीत होते हैं। "पियूष प्रवाह" में इस प्रकार की संवाद-वार्ता "अखबारी प्रहसन" के नाम से छपी थी.।[1]

"हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में प्रकाशित "सबैजात गोपाल की" [15 नवंबर 1877] "बंसत पूजा" [मई 1874] आदि में तत्कालीन किसी अहम् सामाजिक समस्या को उठा कर उनके पक्ष-विपक्ष में स्वाभाविक वार्तालाप शैली में विचार-विश्लेषण हुआ है। ये संवाद समाज के विविध वर्ग दो जीवंत पात्रों का प्रतिनिधित्व करते है। उदाहरण स्वरूप ["सबैजात गोपाल की" संवाद-वार्ता में एक क्षत्री और एक पंडित के संवादों द्वारा तत्कालीन सामाजिक जागरण-जाति-वर्ण व्यवस्था का विघटन, श्रेष्ठ ब्राह्मण- पुरोहित वर्ग के अध: पतन को व्यंग्यात्मक भाषा में उद्घाटित कर समाज को उद्वेलित किया गया है -

क्षत्री- महाराज देखिए। बड़ा अंधेर हो गया कि ब्राह्मणों ने व्यवस्था दे दी कि कायस्थ भी क्षत्री हैं। कहिये अब कैसे-कैसे काम चलेगा।

पंडित- क्यों, इसमें क्या दोष हुआ? "सबै जात गोपाल की" और फिर यह तो हिन्दुओं का शास्त्र पनसारी की दुकान है और अगर कल्प वृक्ष है इसमें तो सब जात की उत्तमता निकल सकती है। पर दक्षिणा आपको बाएँ हाथ में रख देनी पड़ेगी फिर क्या है ; फिर तो "सबै जात गोपाल की"।[2]

---

1. [क] पियूष प्रवाह, 25 जून., 1884
   [ख] डा० शांति प्रकाश वर्मा ने इस प्रकार के संवादों को आलाप नाम दिया है - प्रताप नारायण मिश्र की हिन्दी गद्य की देन पृ० 103-104

2. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, 15 नवंबर 1877

उपर्युक्त संवाद-वार्ताओं में रचनाकार का वाक्-चातुर्य तथा बुद्धि-चातुर्य दोनों झलकते हैं। उस समय हिन्दुओं के श्रेष्ठतम वर्ग ब्राह्मण तथा ओच अधिकारी वर्ग आदि की अवमानना और आलोचना करना कोई हँसी-खेल नहीं था। अन्य प्रतिनिधि पत्र-संवाद-वार्ताओं में "भारत वर्ष और कलि" " समय विनोद । मई 1876] "सिर मुंडाते ही ओले पड़े [वही] "एक रोगी एक वैद्य"[सारसुधा निधि 9 जून 1879] "दो दूर देशी" [हिन्दी प्रदीप, मई 1878] "हिन्दुस्तान और अफगानिस्तान"[वही, जनवरी 1879] "इंग्लैंडेश्वरी और भारतजननी"[हिन्दी प्रदीप मार्च, 1878] आदि थे। "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित अंतिम दो में देवों का मानवीकरण करके ब्रिटिश-शोषण को रोचक संवादों के रूप में प्रस्तुत किया गया है।[1]

उपर्युक्त संवादों में राष्ट्रीय उद्बोधन सीधे निरूपित है। उस समय जब सामान्य पाठक सरल-सहज अनुभूति की खोज में नौटंकी जैसे माध्यम की ओर झुक रहा था ऐसे परिवेश में उत्तेजक सुबोध संवाद ही पाठकों को जगा सकते थे। इस मौलिक संवाद-वर्ता के प्रयोग में नाटककार ने नयी जमीन तोड़ी है।

4. ऐतिहासिक-पौराणिक नाटकों की रचना :-

-- -> इस नवोत्थान काल में युग के प्रतिकूल, अस्वाभाविक और असंगत नहीं मानी जा सकती। भारतीयों के धार्मिक संस्कारों और मनोवृत्तियों के अनुरूप पौराणिक कथानक और पात्रों के माध्यम से ही युगीन समस्याएँ सहज ग्राह्य बन सकती थी। भारत का अतीत गौरवमय और

---

1. भारतजननी- [स्वगत] तुम्हारे लड़के तो सब कुछ टोकर ले गये अब मांस बची है उसी को काट काट खांय। उन्हें हमारी मांस सौंधी लगती है [प्रकाश] हमारे पुत्रों का क्या वे बेचारे भुंजी भुंग हुई हैं। उन्हें जितना दबाओगी दब जायेंगे" हिन्दी प्रदीप मार्च, 1878 पृ0.11

वर्तमान दुर्लभ था। पराधीन देशवासियों में निराशा, जड़ता दूर करके आत्म-विश्वास, साहस और गौरव का अहसास विगत वीर जन-नायकों एवं महापुरुषों के आदर्श चरित्र ही करा सकते थे।

पत्रिकाओं के प्रतिनिधि ऐतिहासिक- पौराणिक नाटकों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "सत्य हरिश्चन्द्र" नाटक "काशी पत्रिका" के संपादक बाबू बालेश्वर प्रसाद के आग्रह पर बालकों के शिक्षण के लिए लिखवाया था, वही "नील देवी" गीति रूपक का प्रकाशन नारी-वर्ग को स्वाभिमान, साहस की उत्प्रेरणा देकर अस्मिता की पहचान कराने के उद्देश्य से लिखा गया था। "कीर्तिकेतु नाटक"[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका 15 नवंबर 1873] "धनंजय विजय" [अनूदित वही 15 मार्च-दिसंबर 1874] "प्रहलाद नाटक" [15 मार्च 1874] "तप्ता संवरण नाटक" [वही 15 फरवरी 1874] आदि भी ऐतिहासिक पौराणिक संदर्भों को लेकर विरचित है। "बाला बोधिनी" में "मुद्राराक्षस" [अनूदित] धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुआ था। इन नाटकों के गीत अति मधुर और भावानुरूप है। भारतेन्दु के इन नाटकों का मंचन भी स्थान-स्थान पर हुआ था, वे जनता में पर्याप्त लोकप्रिय हुए थे।

हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित सात पौराणिक एवं दो ऐतिहासिक नाटकों में पौराणिक नाटक "बृहन्नला" [सितंबर 1881- जनवरी 1882] "सीता बनवास" [अक्टूबर 1882] "दमयंती स्वयंवर" [जौलाई-अगस्त 1892 जनवरी-मार्च 1893] "मेघनादवध "[नव.1894] "सिरातार्जुनीय" [अक्टूबर, 1899 चार अंकों में]"शिशुपालवध" [मई-दि. 1903] "वेणुसंहार" [कार्तिक सं0 1966] आदि में अतीत का सजीव अंकन किया गया। "ब्राह्मण " मासिक में प्रकाशित ऐतिहासिक नाटक "हठी"हम्मीर" [दिसंबर 1887] का अभिनय भी किया गया था। "संगीत शाकुन्तल"[ब्राह्मण]

गीति-रूपक "अभिज्ञान-शाकुन्तल" का छायानुवाद है। इन संवादों में आधुनिक कविता के समान एक लय और संगीतात्मकता के दर्शन होते हैं[1]-

राजा - फिर ठिठक रहा हाँफता हुआ पैसा कर आधा मुँह।
सारथी- अपवरी घास को भी कैसा पथ में बिखराया है।
राजा- अहा फिर भागा।
सारथी- फिर ठहरा।

ये नाटक आधुनिक संदर्भों और नवजागरण की चेतना से गुथे हैं।उनमें आधुनिक नाटकों के समान संघर्ष की तीव्रता और अन्तर्द्वन्द्व नहीं दिखायी देता। भारतेन्दु के नाटकों पर की गई टिप्पणी प्रायः अन्य सभी नाटकों पर भी खरी उतरती है -

"भारतेन्दु जनता को रिझाना जानते थे, रिझाने के साथ सुधार के लिए उसे उत्तेजित करना भी जानते थे। उन्होंने बड़ी-बड़ी मनोवैज्ञानिक उलझनें खड़ी नहीं की, उनके चरित्र-चित्रण में अध्ययन करने के लिये मोटी मोटी गुत्थियाँ नहीं है - नाटककार अपने व्यंग्य का अंकुश लिये उसे प्रगति पथ पर ढकेलता दिखाई देता है उनकी साध बड़ी है,साधन छोटे हैं कभी वे उतावले भी हो जाते हैं परन्तु अधिकतर उनके स्वर में आशा और उत्साह है वह अपने पाठक में एक सबल प्रेरणा उत्पन्न कर सकते है- वह प्रत्येक भाव को प्रत्येक पात्र को वाणी देने में समर्थ है सरस्वती साधना से अधिक यह उनकी समाज-हित साधना का ही परिणाम है।"

अतः इन नाटकों के माध्यम से वीर जननायकों की वीरता, देश-प्रेम और स्वाभिमान आदि का चित्रण कर जन-चेतना और गौरव को उद्दीप्त करना नाटककार का अभीष्ट था। वस्तुतः तत्कालीन युग में पाठक अतीत में झांक कर यह जान लेना चाहता है कि पूर्व पुरुषों ने भी

---

1. डा० शांति प्रकाश वर्मा, प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी-गद्य को देन पृ० 96

ऐसी बात कही या नहीं। वह नवीनता के प्रति आकृष्ट तो है किन्तु विगत गौरव के प्रति निष्ठा एवं आस्था का स्पन्दन भी उसमें है यथार्थ और कल्पना, पुरातन और नवीन का द्वन्द्व नाटकों में सर्वत्र छाया हुआ है।

ऐतिहासिक नाटकों में अधिकांश अनूदित रचनाएँ ही अधिक थीं। यथा हिन्दी प्रदीप में प्रकाशित "पद्मावती" बंग कवि माइकेल मधुसूदन के नाटक का सफल रूपान्तर है। संपादक भारतेन्दु प्रताप नारायण, बालकृष्ण भट्ट आदि सभी उस युग के सफल नाटककार और रूपान्तरकार थे। इन नवीन रचनाकारों की सम्पूर्ण कला कृतियाँ उनके सामाजिक और आंतरिक दबावों की उपज थीं। ये कलाकार जनता माध्यमों द्वारा भारतीय संस्कृति की उपलब्धियों, आदर्शों को विभिन्न विधाओं में गुंथकर संप्रेषित कर रहे थे। इनका महत्त्व इनकी साहित्यिक उपलब्धियों के कारण उस समय इतना नहीं था जितना वे राष्ट्रीय हित चिंतक के रूप में उभरे और लोकप्रिय हुए थे। तत्कालीन नाटक साहित्य प्राचीन और आधुनिक भावबोध और जीवन को संवहन करने में सक्षम है। उनके भावबोध को आधुनिकता तरी और संवेदना युक्त है।

3. कथा-साहित्य :

उत्तर 19 वीं शती की नवविकसित औद्योगिकता, भौतिक यथार्थ और जन-जागरण के कारण जटिल होते जीवन को मध्य युगीन काव्य-परंपराएँ चित्रित करने में असक्त सिद्ध हो रही थी। अतः समाज के यथार्थ परक जीवंत चित्रण तथा जागरण की मांग को पूरा करने के लिए कथा-साहित्य का आविर्भाव हुआ था। हिन्दी में कथा-साहित्य का उत्स संस्कृत कथा-साहित्य "कादम्बरी", "दश कुमार चरित", "वैताल पचीसी" आदि से नहीं माना जाना चाहिए क्योंकि इन दोनों आत्मा

और देह में मौलिक अंतर है।

उपन्यास और कहानी सामयिक जीवन के यथार्थ और अतीत के वैभव को मुखर करने के सर्वश्रेष्ठ माध्यम है क्योंकि इस कला-रूप में कल्पना और संभाव्यता के साथ यथार्थ को उद्घाटित करने के अद्भुत सामर्थ्य होती है। इसलिए जन-जागरण में कथा-साहित्य का दायित्व उत्तरोत्तर गहनतर होता गया है। इस विधा ने तत्कालीन पाठकों का मनोरंजन करने के साथ राष्ट्र-निर्माण, समाज-सुधार तथा मौलिक साहित्य-सर्जन में पूरा हाथ बटाया था।

3.1. हिन्दी में "उपन्यास" का आगमन तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ था। हिन्दी के प्रथम आधुनिक उपन्यास के रूप में लाला शिवासदास के "परीक्षागुरू" (1882 ई0) को प्रतिष्ठा मिली है, किन्तु यदि इस काल की प्रारम्भिक पत्र-पत्रिकाओं का अवलोकन किया जाय तो इस प्रथम स्थान का अधिकारी कोई और उपन्यास माना जायेगा। उदाहरण स्वरूप "हिन्दी प्रदीप" की प्राप्त संचिकाओं में "रहस्य कथा" (अपूर्ण) उपन्यास का प्रकाशन नवम्बर 1879 ई0 से ही हो चुका था।[1] अतः साहित्य के इतिहास में प्रामाणिकता लाने के लिए पुरातन पत्र-पत्रिकाओं का अध्ययन-विश्लेषण करके ही कोई अवधारणा बनायी जानी चाहिए।

डा0 राम विलास शर्मा ने ठीक ही कहा है " उस समय जैसे निबंध और नाटक प्रधानतः पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे, उसी प्रकार तबकी कहानियाँ और उपन्यास भी बहुत करके पत्रों की जिल्दों में ही पढ़ने को मिल सकते हैं"[2]।

---

1. "इस प्रकार प्रस्तुत लेखक की दृष्टि में यही हिन्दी का पहला उपन्यास प्रमाणित होता है"- मधुकर भट्ट, बाल कृष्ण भट्ट व्यक्तित्व और कृतित्व पृ0 237

2. डा0 राम विलास शर्मा - भारतेन्दु युग, पृ0 133

"हिन्दी पत्रकारिता में उपन्यास लेखन सम्भवतः "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में प्रकाशित "मालती" [फरवरी 1875] से प्रारम्भ हुआ था "जिसमें ईश्वर-वंदना और प्रकृति-वर्णन पुराने आलंकारिक ढंग के हैं- कथा में कोई विशेषता न होते हुए भी घटना-वैचित्र्य की कमी नहीं है और कहने का ढंग खूब रोचक है।"[1] भारतेन्दु ने "पूर्ण प्रकाश चन्द्रप्रभा" का प्रकाशन भी कराया था। "सारसुधा निधि" में "तपस्विनी" [12 मई 1879] वैष्णव पत्रिका में "बरीआ गुरु" आदि छपे थे।

हिन्दी प्रदीप" में भी अनेक उपन्यास धारावाहिक रूप में प्रकाशित हुए थे-

1. रहस्य कथा उपन्यास [अपूर्ण] नवम्बर 1789-मई 1882 ई0
2. गुप्त-वैरी [मई 1880-जुलाई 1883]
3. उचित दक्षिणा [दिसंबर 1884]
4. नूतनब्रह्मचारी [पुस्तक भी प्रकाशित] फरवरी 1886-अप्रैल 1886
5. सद्भाव का अभाव [फरवरी 1889-अगस्त 1892]
6. वो अज्ञान रूपसुवाना [पुस्तक भी प्रकाशित] जुलाई-अगस्त 1890-फरवरी-मार्च 1895
7. हमारी झड़ी [अप्रैल-मई-जून 1892 ई0]
8. रसातल यात्रा [मई-जून 1892 ई0]
9. बृहत्कथा [अनूदित आख्यायिका] [मार्च 1899]

उपर्युक्त उपन्यासों की रचना-प्रक्रिया में जीवन और परिवेश का यथार्थ-बोध शब्द और दृश्य बिम्बों के माध्यम सजीव रूप में उभरा है। उस युग के सांस्कृतिक, आर्थिक-सामाजिक जागरण और समस्याओं को को इनमें आदर्शोन्मुख अंदाज में अंकित किया गया है। तत्कालीन जनिक

1. भारतेन्दु युग, पृष्ठ 125

वर्ग के दोहरे मूल्यों, पाश्चात्य शिक्षा की ध्वंसात्मक भूमिका, समाज में फैले भ्रष्टाचार, ढोंग एवं अनेक सामाजिक कुरीतियों को ये उपन्यास प्रभावशाली रूप में उठाते हैं।

इन सामाजिक उपन्यासों के सभी अच्छे-बुरे पात्र काल्पनिक लोक से उद्भूत न होकर तत्कालीन जीवन और समाज से जुड़े मानवीय जीव हैं। "रहस्य कथा" के धनुषधारी और तिलकधारी, "गुप्तवैरी" का पाखंडी गोंसाई, योगनाथ, नाहर सिंह और उग्रयुवती दुरम्मदा, "उचित दक्षिणा" के प्रतिष्ठित वकील बाबू गजानन राय, "नूतनब्रह्मचारी" का विनायक राव, 'सद्भाव के अभाव' के हरिदास और माई जी, "सौ अजान एक सुजान के सोमनाथ सिद्धिनाथ और चन्द्रशेखर तथा "रसायन यात्रा" का "एकलिंग" आदि सभी भारतीय समाज के हर वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। "हमारी घड़ी" में नायिका घड़ी का मानवीकरण कर उसी के मुँह से अपनी आत्मकथा कहलवायी गयी है।[1]

तत्कालीन अधिकतर उपन्यासों की रचना नैतिक सदाचरण समाज सुधार और चरित्र-निर्माण के ध्येय को को लेकर की गई थी। "सद्भाव का अभाव" उपन्यास का प्रारम्भ ही भारतीय समाज की दुर्दशा और अनैक्य को लेकर किया गया है, "स्नेह मैत्री, करुणा उपकार सिधाई आदि साधुभाव का अभाव हो गया। ईर्ष्या, निर्दयता, वंचकता, स्वार्थ-साधन, दंभ और संताप आदि दुर्गुणों का हाट गरम हुआ - पति-पत्नी में सच्चा प्रेम, बाप-बेटे और भाई-भाई से स्नेह की बेल उखड़ गई। अपना स्वार्थ अपनी भलाई, अपना महत्व आदि का समुद्र उमड़-घुमड़ शील, संकोच, सुशीलता सहानुभूति को सब ओर से डुबो दिया।"[2] उपर्युक्त वर्णन आज भी प्रासंगिक और सटीक लगता है।

---

1. "घड़ी का अपना हाल कहना कुछ अप्राकृतिक सा तो अलबत्ता मालूम होता होगा पर पढ़ने वाले यदि धीरज के साथ पढ़ेंगे तो आगे बढ़कर इस उपन्यास को बहुसरोचक पावेंगे-हिन्दी प्रदीप, अप्रेल-मई-जून, 1882 ई0
2. वही, फरवरी 1889 ई0

सामाजिक उपन्यासों के अतिरिक्त इन पत्रिकाओं में उपन्यास विधा का एक और रोचक मनोरंजक तिलस्मी और जासूसी उपन्यासों का उभरा था। किशोरी लाल गोस्वामी ने 1898 ई0 "उपन्यास" मासिक पत्र निकाल कर लगभग 65 उपन्यास प्रकाशित कराये थे जिनमें सामाजिक, तिलस्मी, ऐतिहासिक सभी प्रकार के थे शुक्ल जी के अनुसार "और लोगों ने भी मौलिक उपन्यास लिखे पर वास्तव में वे उपन्यासकार न थे और जीवन लिखते-लिखते वे उपन्यास की ओर भी जा पहुंचे थे पर गोस्वामी जी ने तो एक क्षेत्र अपने लिए चुन लिया और उसी में रम गये।"[1]

बाबू देवकी नंदन खत्री के ऐयारी - उपन्यासों "चन्द्रकान्ता" और "चन्द्रकान्ता संतति" [1891 ई0] ने हिन्दी को हजारों पाठक दिये थे। ये क्लासिक रचनाएँ किस्सा तोता-मैना, दास्तान-ए-अमीर-हमजा, तिलिस्म-ए-होशरुबा आदि ग्रंथों की अगली कड़ी थी। लेखक खत्री जी को जागरण कालीन दायित्व को पूरा न कर सकने का पूरा अहसास था, "मेरे कई मित्र आक्षेप करते हैं कि मुझे देशहित पूर्ण और धर्म भावमय कोई ग्रन्थ लिखना उचित था, जिससे मेरी प्रसरणशील पुस्तकों के कारण समाज का बहुत कुछ उपकार व सुधार हो जाता। बात बहुत ठीक है परन्तु एक अप्रसिद्ध ग्रंथकार की पुस्तक को कौन पढ़ता? - विक्रय के लिए जैसे एक गंभीर भाषा का प्रयोजन होता है, वैसे ही विशेष पुरुष का भी।"[2]

उपर्युक्त अंश से स्पष्ट है तत्कालीन समाज की क्या अभिरुचि और प्रतिक्रियाएँ थीं? युग की क्या माँग थी। खत्री जी को इसीलिए इन ऐयारी उपन्यासों की लोकोपयोगिता और असंभव अयथार्थ कल्पना के महत्व को सिद्ध करने के लिए कहना पड़ा था। गोपालराम गहमरी ने 1900 में "जासूस" मासिक पत्र प्रकाशित किया जो 30 वर्ष तक चलता रहा।

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ0 459
2. लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ0 186

जागरण-युग [1851-1900 ई0] के लगभग सभी सामाजिक ऐतिहासिक, अनूदित उपन्यासों में समाजबोधन और चरित्र निर्माण की प्रवृत्ति प्रधान है। उनकी हर रेखा में उपदेशों का रंग विद्यमान है। उपन्यासकार में एक तीखी झुंझलाहट और समाज के रवैये के प्रति झुंझलाहट है, एक सीधी सच्ची राह दिखाने की कटिबद्धता है जो पाठकों को प्रभावित करती है बुरे पात्रों को अंत में सद्वृत्त दिखाया गया है। इनमें पाश्चात्य आयातित मूल्यों को नकार कर शुद्ध भारतीय सांस्कृतिक विरासत और समाज के कठोर यथार्थ को सरल शैली और पात्रानुकूल भाषा में व्यक्त किया गया है इनका कला-पक्ष सर्वथा निर्दोष नहीं कहा जा सकता। उपन्यासकार का पाठकों से निश्छलतापूर्ण वार्तालाप और प्रत्यक्ष संबोधन इन उपन्यासों की स्वाभाविकता में कमजोरी बन गया है किन्तु यह पाठकों से आत्मीयता को भी दर्शाता है।

जागरण युग में उपन्यासों का निर्माण अधिक नहीं हुआ, जितना अन्य विधाओं का हुआ था। भारतेन्दु ने स्वयं एक पत्र में लिखा था- "जैसे भाषा में अब कुछ नाटक बन गये हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप या हमारे पत्र के योग्य सहकारी संपादक जैसे बाबू काशिनाथ व गोस्वामी राधा चरण जी को भी उपन्यास लिखें तो उत्तम हो।"[1]

भारतेन्दु काल में उपन्यास-रचना के प्रति उपेक्षा भाव के कारण तथा तत्कालीन पाठकों के दृष्टिकोण और प्रतिक्रिया को लक्ष्य करते हुए डा0 श्री कृष्ण लाल का मत है "अर्ध-शिक्षितों की संपत्ति होने के कारण उपन्यास साहित्य घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे। पिता अपने पुत्रों को और भाई अपने छोटे- भाई बहनों को उपन्यास पढ़ने से रोकते थे।"[2]

---

1. डा0 राम विलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ0 124
2. डा0 श्री कृष्ण लाल, आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास पृ0 289

वस्तुतः पाठकों में धारावाहिक रूप से प्रकाशित पढ़ने की अभिरुचि और धैर्य विकसित नहीं हो पाया था। तत्कालीन अधिकांश उपन्यासों के अपूर्ण रहने का कारण भी सम्भवतः यही था। इसके अलावा शायद तत्कालीन उपन्यासकारों को भी लंबे धारावाहिक उपन्यास लिखने का अभ्यास नहीं था।

इन प्रारंभिक उपन्यासों का महत्व इतना अवश्य रहा कि इन्होंने तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक सांस्कृतिक समस्याओं और ज्वलंत प्रश्नों को मध्यम बुद्धिजीवी वर्ग और साधारण समुदाय तक पहुँचा कर "नवजागरण" की आधार भूमि बनाने में सहायता दी। प्रेमचन्द्र आदि के उपन्यासों का आदर्शोन्मुख यथार्थवाद परिवेश का चित्रण और नवीन-पुरातन का द्वन्द्व इन्हीं प्रारंभिक उपन्यासों की विकसित कड़ी मालूम होता है। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में, "यथार्थ चित्रण की यह वही भूमि है जिस पर प्रेमचंद ने कथा साहित्य में विशाल प्रसाद का निर्माण किया था।[1] इन उपन्यासों के माध्यम से आगामी पत्रकारिता में भी एक आदर्शोन्मुख यथार्थवादी दृष्टि, नवमानवीय-मंगिमा और देश-चिंतन को विस्तृत फलक प्राप्त हुआ। इस पत्रों के उपन्यास साहित्य में सामाजिक चेतना, संक्रमणकालीन समस्याएँ अस्मिता की रक्षा, औपनिवेशिक सत्ता के प्रति विरोध व्यक्त हुआ है जो प्रायः यथार्थवादी उपन्यास चित्रण की आधार भूमि कही जा सकती है।

2. कहानी :

"जागरण युग" में आधुनिक कहानी का विकास नहीं हुआ था। इस काल में कहानी-कला पृथक् साहित्यिक विधा के रूप में विकसित न

---

1. भारतेन्दु युग, पृ० 127

होकर निबंधों और प्रहसनों के माध्यम से मुखरित हुई थी। इन संपादक-साहित्यकारों में कहानी को विधा के रूप में स्वतंत्र प्रतिष्ठा देने की सक्षमता नहीं आ पायी थी। सम्भवतः इसका कारण यह रहा हो कि हिन्दी के किस्से-कहानी को शिक्षित जन समुदाय अच्छी नजर से नहीं देखता था। डा० राम विलास शर्मा के अनुसार -

"निबंध का ढाँचा अत्यन्त लचीला होने के कारण भारतेन्दु युग में कथा-साहित्य का विकास होते-होते रह गया। "कालिदास की सभा","एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न", राजा भोज का सपना, "स्वर्ग में विचार-सभा का अधिवेशन", "यमपुर की यात्रा" आदि रचनाओं में कहानी के अनेक तत्व विद्यमान हैं।"[1]

कुछ पत्र-पत्रिकाओं की रचनाओं में कहानी की रूपरेखा के स्पष्ट लक्षण दिखायी देते हैं। उदाहरण स्वरूप "अमृत- प्रवाह में संपादक अंबिका दत्त व्यास द्वारा लिखित "धूर्त डरपोक" में कहानी का बनता-बिगड़ता रूप देखिये -

"एक बिचारे डरपोक बंगाली को किसी छोटे से जंगल से होकर जाना पड़ा। क्या करे बिचारा मन ही मन धुकुर-धुकुर करता और चौकन्ना हो चारो ओर ताकता था। वह पत्ते खड़कने पर चमका उठता और खरगोश को देखने पर भी थिथिपाता किसी तौर से लटपटाता हुआ चला ही जाता था कि सामने से आता एक सिपाही देख पड़ा। बस उसकी कान तक घुमी हुई डाढ़ी, बत्तीकर बनी हुई तिरछी पांग, घूलती हुई, कत्ती पीठ पर पड़ी टाल और हाथ में बंदूक देखते ही बंगाली बाबू के प्राण सूख गये। एकाएकी बिचारे के मुंह का पानी हो गया और चट पित्ता कर आँख फाड़ , दाँत निकाल प्रदर्शनी के खिलौने की तरह ठठक कर खड़ा हो गया"...[2]

---

1. भारतेन्दु युग, पृ० 133
2. अमृत प्रवाह, 25 मई 1884 पृ० 3-4

उपर्युक्त अंश में "हितोपदेश", दादी-नानी की लोक-कथा की सी सरसता और कथ्य-रूप है। भाषा का घोलमनापन तथा रेखा चित्र की सी भंगिमा देखते ही बनती है।

इसीप्रकार इस काल की स्वप्न-कथाओं[1] "एक अनाथ का वृतान्त" "एक अनोखा स्वप्न"[हिन्दी प्रदीप जनवरी 1897] , "एक अद्भुत अपूर्व स्वप्न[हरिश्चन्द्र चन्द्रिका] आदि निबंध कहानी के बीच की अथवा की रचनाएँ कहा जा सकता है। इसके अलावा "हिन्दी प्रदीप" में छपी "बेकार की नकल", "भारतेन्दु" में "अलकचन्द्र" आदि को कहानी का प्रारंभिक रूप माना जा सकता है। हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में "कादम्बरी" [15 मई म1874] का अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था।

4. निबंध :

आधुनिक "निबंध" विधा को साहित्य में प्रौढ़ विकसित गद्य का निकष माना गया है। हिन्दी में इस विधा को सर्वथा पश्चिम की देन सत्य से मुख मोड़ना होगा।[2] वस्तुतः जागरण काल की पत्र-पत्रिकाओं के कलेवर की निरन्तर आपूर्ति तथा तत्कालीन परिवेश में नवजागरण की मांग ने "निबंध" जैसे निर्बन्ध कला-रूप को जन्म दिया। स्वतंत्र निबंध लेखन की परंपरा न तो संस्कृत साहित्य में थी न बंगला में। हिन्दी निबंधों का विकास आधुनिक हिन्दी के प्रारंभिक संपादक-निबंधकारों द्वारा

---

1. डा० नगेन्द्र ने स्वप्न कथाओं को स्वप्न लौकिक साहित्य [यूटोपियन] कहा है जिसमें राष्ट्र का नव निर्माण, आदर्श समाज की परिकल्पना, यथार्थ की आलोचना और समाज की दुर्बलताओं का दिग्दर्शन कराया जाता है उनके अनुसार-"मानव कल्याण की भावना ही स्वप्न लौकिक साहित्य का मूल मंत्र है।" - डा० नगेन्द्र, मानविकी परिभाषिक कोश [साहित्य खण्ड] पृ०
2. "निबंध का आधुनिक रूप पश्चिम की देन है"- डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० 13।

हुआ डा० रामविलास शर्मा ने उचित ही टिप्पणी की थी, "बंगला में उपन्यास, कविता, नाटक आदि के लिए आदर्श मिल सकते हैं, परन्तु प्रतापनारायण मिश्र आदि के से निबंध हिन्दी की अपनी उपज हैं"।[1]

अतः हिन्दी निबंधों का लेखन किसी रूढ़ साहित्यिक विधा के रूप में न होकर, संपादक की पाठकों से द्विधा रहित बातचीत के ढंग पर प्रारंभ हुआ था। इस नव-युग के निबंध कार- संपादक जन-जीवन से लगाव महसूस कर बिना किसी दुराव के, जी खोलकर, जीवन और राष्ट्र के सभी पहलुओं पर उद्गार व्यक्त करते थे। तब वे नहीं जान पाये थे कि अनजाने में ही वे इस सशक्त आधुनिक विधा "निबंध" का अंकुरण कर रहे हैं। इसका उन्हें किंचित भी आभास होता तो वे अपने निबंधों के लिए अन्य शब्दों - कभी आशय[2] कभी प्रस्ताव या लेख और कभी प्रबंध आदि का ही निरंतर प्रयोग न करते। आज उनकी वे रचनाएँ जो "निबंध" समझ कर पढ़ी और पढ़ी और पढ़ायी जाती हैं उनका प्रकृत रचना-विधान सायास न होकर सहज था उन्होंने "निबंध" विधा के रूप में अभिव्यक्ति के माध्यम का चयन करके कभी लेखनी नहीं उठायी। डा० राम विलास शर्मा के शब्दों में "उस समय के निबंधों का रूप और आकार अस्थिर था परन्तु इसीलिए कहानी से लेकर गंभीर चिंतन तक का माध्यम बन सका"।[3]

अतः इन निबंधों में आधुनिक कहानी, आलोचना, रिपोर्ताज, रेखाचित्र आदि विधाओं का भावी स्वरूप और संभावनाएँ प्रतिबिंबित होने लगी थी।

---

1. डा० राम विलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ० 82
2. "अबकी बार इसके कई आशय इसके उत्तम और पढ़ने के लायक हैं- हिन्दी प्रदीप, जौलाई 1882 ई०
3. डा० राम विलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ० 82

इस काल की सैकड़ों पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हजारों निबंध अधिकतर ललित रचनाओं, संपादकीय आलेखों तथा लेखों के रूप में प्रकाशित हुए थे। कुछ प्रतिनिधि पत्र-पत्रिकाओं के प्रमुख निबंधों के आधार पर निबंधों की नव-चेतना और वैशिष्ट्य को विश्लेषित करना अधिक समीचीन होगा।

पत्र-पत्रिकाओं में विषय- वैविध्य और शैली की दृष्टि से विविध आधुनिक निबंधों का मुद्रण हुआ था-

1. मनोवैज्ञानिक निबंध
2. आत्म-व्यंजक
3. समीक्षात्मक
4. राजनीति-संस्कृति प्रधान निबंध

1. मनोवैज्ञानिक निबंधों में अंतस के मनोभावों की तर्कपुष्ट सरस मार्मिक अभिव्यक्ति होती है। " इन भावों की अन्तर्यात्रा के लिए निकलती है बुद्धि पर हृदय को साथ लेकर।"[1] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की अन्तर्यात्रा से पूर्व ही भारतेन्दु तथा अन्य निबंधकारों ने दुःख सुख की मूल अनुभूतियों की अन्तर्यात्रा प्रारंभ कर दी थी।

"भावित ज्ञानादिक से क्यों बढ़ी है? [हरिश्चन्द्र मैगजीन 15 नवम्बर 1877] मनोयोग", "आत्मगौरव", "ममता" [खण्ड 7 अंक 3] "चिंता" [खण्ड 9 अंक 5]"धोखा"[खण्ड 9 अंक 9], "स्वार्थ"[खण्ड 6 अंक2] "विश्वास" [खण्ड 8 अंक 6] आदि "ब्राह्मण"[कानपुर] में प्रकाशित हुए थे जो संपादक की सर्जनात्मक क्षमता का परिचय देते हैं। "हिन्दी प्रदीप" में 35 से अधिक मनोवैज्ञानिक निबंधों का प्रकाशन हुआ था। इनमें से कुछ "सहानुभूति"[अक्टूबर 1891] "भय और समुचितादर"[मई 1880] प्रीति

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, चिंतामणि [निवेदन]

[जून 1880] "भक्ति" [जून-जौलाई 1899] "आशा" [जनवरी 1886 ई०] धैर्य [जून 1889] आदि थे। इन मनोवैज्ञानिक निबंधों में मनोभावों का आधुनिक तर्कसंगत विश्लेषणात्मक निरूपण हुआ है -"भय और समुचितादर ये दोनों एक दूसरे पृथक हैं। भय का अंकुर दिल की कमजोरी से फलता है, जब हम दूसरे के रोब में आय डर के मारे हाँ में हाँ मिलावें और जी में यही समझे हौवा है काट ही लेगा, इसरो इसकी भरपूर उपूजा सम्मान करते जाँय तभी भला है। - समुचितादर अर्थात् दूसरे का संभ्रम या आदर अपनी सीमा के बाहर हो, भय के साथ जाकर जहाँ न मिल गया हो।"[1]

"जागरण काल" के मनोवैज्ञानिक निबंधों का विश्लेषण करने पर कहा जा सकता है कि भावी निबंधों की मार्मिक व्यंजना, भाव-भाषा-शैली इनसे प्रभावित हैं। आचार्य शुक्ल के निबंध इन्हीं का विकसित रूप प्रतीत होते हैं। इन निबंधों को स्पष्टतः परिभाषित, व्याख्यायित और सूत्रबद्ध करके राष्ट्रीय जन-जीवन के उदाहरणों से भावों की मर्मभेदी जाँच-परख की गई है। " दूसरे के दुःख से दुःखी और सुख से सुखी होने का नाम सहानुभूति है"[2] " प्रीति एक ऐसी मनोवृत्ति है जो स्वभावतः विश्वास-परायण सरल स्वच्छ- दर्शना, क्रूर वृत्ति शून्या, एवं कुसुम सदृश कोमला और संसार की सार-वस्तु है।"[3] आगे चल कर शुक्ल जी ने इसी सूत्र-पद्धति को ग्रहण कर मनोभावों का सैद्धान्तिक विवेचन किया था।

इस नवोत्थान काल के निबंध "नूतन श्रम साध्य उपलब्धि" न होर सहज उच्छल आवेग से पूर्ण जीवंत रचनाएँ है। तत्कालीन निबंधकार संपादक अपने पाठकों को एक आचार्य के समान अपनी ज्ञान-गरिमा से अभिभूत नहीं करना चाहते। वे तो पाठक के साथ मित्र के स्तर पर सहजतादात्म्य

---

1. हिन्दी प्रदीप, मई 1880, पृ० 4
2. वही, मार्च अप्रैल 1903, पृ० 1-2
3. वही, जून 1880 पृ० 22

स्थापित कर उन्हें आत्मीय स्वर में जीवन और राष्ट्र के यथार्थ तथा साहित्य की रसात्मकता से परिचय कराना चाहते थे। इन निबंधों में बौद्धिक विचार सम्पन्नता सर्वत्र व्याप्त है तथापि विचारों की वह "गूढ़ गुंफित-परंपरा"- नहीं मिलती।

2. आत्मव्यंजक निबंधों में निबंधकार किसी अनुभूति, किसी दृष्टिकोण को पाठकों के समक्ष रख उसे अंतरंग सादृश्य का अनुभव कराता है। नवोत्थान काल की सभी निबंध-रचनाओं में एक सर्वव्यापक गुण "वैयक्तिकता" या व्यक्तिगत विशेषता है किन्तु इनकी "वैयक्तिकता" परिवेश से कट कर विकसित नहीं हुई थी इन आत्मव्यंजक निबंधों का स्पष्ट उद्देश्य "एसे" के पितामह माइकेल मॉंतेन के समान सिर्फ "मैं" को रेखांकित करना नहीं था, बल्कि किसी राष्ट्रीय समस्या को स्वच्छन्द भाव-वैभव और निजी-संस्पर्श के साथ चित्रित कर संप्रेषित करना था। युग के साथ जुड़ कर "उनका मन सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने में लगा हुआ था।"[1] इन व्यापक राष्ट्रीय हितों की पूर्ति में उलझा रचनाकार-संपादक अपनी ही धुन में, अपनी ही रौ में बहता चला जाता है और साथ ही अपने आत्मीय पाठकों को कुछ उलाहना, कुछ उद्बोधन और कुछ उपदेश देता चलता है - "देखी गई बिहारियों की देखी गई। तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारी समझ, तुम्हारी बालचाल तुम्हारी चाल-चलन, तुम्हारी रुचि, तुम्हारी उन्नति और तुम्हारी करतूत सब मत कहलवाओ, सब देखी गई।

पुराने पुण्यों से, बड़ों के आशीर्वाद से, ग्रहों के बल से, धर्म की सहायता से, देश हितैषियों के उद्योग से और गवर्नमेण्ट के परम अनुग्रह से तो किसी किसी प्रकार बिहार की कचहरियों में हिन्दी हुई है और तुम फिर उर्दू चलाना चाहते हो। छी: छी: बस देखी गई"।[2]

---

1. डा० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ०10

2. पीयूष प्रवाह, 1891

पत्र-पत्रिकाओं के कुछ श्रेष्ठ प्रतिनिधि वैयक्तिक निबंधों में "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में प्रकाशित "ईश्वर बड़ा चित्रकार है", लेखी प्रज्ञा लेखी" [कविवचन सुधा 802 संख्या 5 कार्तिक शुक्ल सं0 1921] मित्र विलास खण्ड 8 सं0 40 19 जून 1885 आदि है हिन्दी प्रदीप" में छपे "खटका" [मई 1896], टोल के भीतर पोल" [जनवरी 1903] लौ लगी रहे [सितम्बर-दि0 1900] "बात" [जून 1883] [द] [नवंबर 1900] आदि है। सार सुध: निधि में प्रकाशित "तुम्हें क्या" जहाँ तहाँ होरी तथा "ब्राह्मण" में प्रकाशित "चित्त" [खण्ड 6 अंक 6] [बुद्ध" [खण्ड 6 अंक 8] पंच परमेश्वर खण्ड 6 अंक 12] "दाँत" [खण्ड 5, अंक 9] आदि है। इनमें "मन की बहक ,भाषा की चुलबुलाहट, चित्रण शैली, राष्ट्रीय प्रेम तथा राष्ट्र-निर्माण की उमंग छलकी पड़ती है।

3. समीक्षात्मक निबंध :

साहित्य के समीक्षात्मक और ललित निबंध में वही अंतर है जो कविता और शास्त्रीय राग में, "साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद" और "मजदूरी और प्रेम" जैसे निबंधों में है। इन प्रकार इन में मुक्त-विभेद कल्पना और विचार, सरस आत्मीय उन्मुक्त सौन्दर्य-प्रवाह और पांडित्यपूर्ण श्रम साध्य सैद्धान्तिक विवेचन का है। समीक्षात्मक निबंधों में बुद्धि प्रधान, निर्वैयक्तिक तथा क्रम बद्ध विवेचन होता है, जबकि वैयक्तिक निबंध में तरलता, आत्मीयता, काव्यात्मकता की सहज स्फुरित उन्मुक्त उड़ान अधिक होती है।

जागरण-युग की पत्र-पत्रिकाओं के प्रमुख आलोचनात्मक निबंधों में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित ["संगीतसार" [संख्या 10 2875] "हिन्दी प्रदीप" में मुद्रित "उपमा", "रूपक", "ब्रह्मनन्द सहोदर", "सावनी छन्द", "काव्यामृत रसास्वादन", "शब्द की आकर्षण -शक्ति", "उपन्यास",

"अरिस्ट छन्द ", "रसाभास" आदि थे। "ब्राह्मण" में प्रकाशित "अपशब्द","खड़ी बोली का पद्य","सार सुधानिधि में मुद्रित "साहित्य" ।13 जनवरी 1879। "विचार की उन्नति"। 25 अक्टूबर 1884। आदि इसी श्रेणी के संयत गंभीर निबंध हैं।

समीक्षात्मक निबंधों का सध्या स्वस्थ और वस्तु निष्ठ दृष्टि कोण "नागरी प्रचारिणी पत्रिका"।1897 ई0। के निबंधों में सर्वाधिक मुखर हुआ है। इसके गुढ़ गुंफित निबंधों में "नागर जाति और नागरी लिपि की उत्पत्ति ।1898 ई0। भारतवर्षीय भाषाओं की जाँच ।1899ई0। "पाली भाषा"।1900।"गद्य-काव्य मीमांसा"।1897। आदि हैं। इनमें निर्दाक्षिती और आत्मीयता के सन्दर्भ पर विषय का गंभीर तथ्य पूर्ण सारगर्भित तटस्थ विवेचन किया गया है। "हिन्दी प्रदीप" के और "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के निबंधों के बीच का रोचक अंतर स्पष्ट करने के लिए दोनों भाषा संबंधी निबंधों की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

"भाषा भी संसार की इतर चैतन्य सृष्टि का नियम मानती है। इस कारण जैसे पौटने से गदहा घोड़ा नहीं हो सकता उसी तरह बाहरवालों का संपर्क भी बहुत कुछ हानिकारक नहीं हो सकता— परिवर्तन के बीज तो भाषा में आप ही भरे हैं क्यों कि संस्कृत से प्राकृत हुई और प्राकृत से वर्तमान हिन्दी।"[1]

तुलनात्मक अध्ययन के लिए "नागरी प्रचारिणी पत्रिका के "राष्ट्रभाषा"।1898। निबंध का कुछ अंश प्रस्तुत है। - "एक राष्ट्रीयता के लिए।एक राज्य 2 एक धर्म 3 एक बोलीवा भाषा 4 और एक जाति इन चारों की अत्यन्त आवश्यकता है --- युनाइटेड स्टेट्स की बात से

---

1. हिन्दी प्रदीप, जून, 1885, पृ0 5-6

यह सहज ही लक्षित हो सकता है वहाँ भिन्न 2 धर्मावलम्बी, भिन्न 2 जाति तथा भाषा वाले बसते हैं तो भी वे एक राष्ट्र की संज्ञा पाने के योग्य हैं - क्या ओबी हमारी राष्ट्रभाषा हो सकती है?- किंचित सूक्ष्म विचार करने और भाषा शास्त्र विशारदों को मीमांसा का परिशीलनकरने से यह बात तत्क्षण असम्भव बोध होने लगती है - 1881 की मनुष्य गणना की विवरणी से ज्ञात होता है कि उस समय भारत की 25 कोटि प्रजा में केवल 2 लाख अंगरेजी बोलने वाले थे- सम्पूर्ण भारत वर्ष में ओबी भाषा प्रचलित होने के लिए 75 से लेकर 50000 पचास हजार वर्ष तो लगेंगे परन्तु नितांत सरल एवं सुबोध हिन्दी को एक भाषा बनाने के लिए लगभग सात आठ सौ वर्ष लगेंगे।"

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि "राष्ट्रभाषा" आंकड़ों से पुष्ट सविवेचित तर्क प्रधान विषय परक निबंध है जबकि "भाषाओं का परिवर्तन" पाठकों के जाने-पहचाने लोक जीवन के दृष्टान्तों को लेकर व्याख्यापित हुआ है। दोनों की दृष्टि में मौलिक विभिन्नता है।

4. हास्य-व्यंग्यपूर्ण संस्कृति प्रधान निबंध :

नवजागरण काल से पूर्व हिन्दी भाषा में हास्य व्यंग्य प्रधान साहित्य का अस्तित्व नहीं के बराबर था। भारतेन्दु युग के पत्रकारिता-साहित्य में पहली बार हास-परिहास, उमंग उल्लास से भरपूर विनोद पूर्ण खिलखिलाहट सुनायी पड़ती है। ये खिलखिला देने वाले निबंध विषम परिवेश और रचनाकार की द्वन्द्वात्मक क्रिया-प्रतिक्रिया की उपज प्रतीत होते हैं। निबंधकारको आतंकित मनःस्थिति, अपमानित परतंत्र जिंदगी से उपजा आक्रोश सीधा रास्ता न पाकर हास्य-व्यंग्य के रूप में फूट निकला था। उस काल की राजनीतिक प्रतिक्रियाओं, सामाजिक

पुनरुत्थान और धार्मिक वाद-विवादों में इन संपादकों ने सक्रिय भाग लिया था। अतः जीवन समस्याओं के समाधान के लिए उन्हें हास्य-व्यंग्यात्मक शैली में अनेक निबंध अपनी पत्र-पत्रिकाओं प्रकाशित किये थे। जागरण कालीन प्रतिनिधि निबंधों में बाँचये पैगम्बर, "मथुरा की यात्रा" [हरिश्चन्द्र मैगजीन, 15 दिसंबर 1873] स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन [मित्र विलास, 19 जून 1885] "मिस्टर बुट" [भारतेन्दु, 1884 ई0] मेला-ठेला" [भारतेन्दु, 28 जून 1885] "जी हजूर" [अमृत प्रवाह [10 अगस्त 1891] "पंच महाराज" [हिन्दी प्रदीप अप्रैल 1880] "होली है" [आत्मप्रकाश, खण्ड 9, संख्या 9] आदि सैकड़ों की संख्या में प्रकाशित हुए थे। हास्य-व्यंग्य और भरपूर जिंदादिली इस काल के निबंधों की प्रमुख प्रवृत्ति रही थी। "भारतेन्दु" [वृन्दावन" पत्रिका में प्रकाशित संपादक राधाचरण गोस्वामी द्वारा लिखित "मि0बुट" [1884] में हास-परिहास पूर्ण अंदाज में लिखित पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण में रत भारतीय युवाओं का व्यंग्य चित्र देखिए-

"मिस्टर बुट, आप हैं हमारे प्यारे, आँखों के तारे, लोगों के दुलारे, आप है काले विलायती साले, अँधेरे घर के उजाले, उन्नीसवी सदी के साले, आप हैं अनमोल, गोलमगोल, पोलमपोल, साली टोल-मिस्टर बुट- आपकी उन्नति है वह भी आपके प्रताप से, फिर देखिये भारत वर्ष की जो उन्नति हुई है वह भी आप ही के प्रताप से। और विलायत के बड़े-बड़े सौदागर दिल्ली के बढ़िया दुकानदार, कलकत्ते के चीना बाजार की जो इतनी उन्नति हुई वह भी बुरा न मानिये आप ही के [न कहूँगा शरम आती है] प्र-प्र-प्रताप से। मिस्टर बुट आपकी एक ही जाति है - आप काले-गोरे दोनों है। मिस्टर बुट- आपको हम क्या खिताब दें आप ही कोई बढ़िया खिताब पसंद कर लें। - आपको

रिश्वत का छोटा भाई कहें तो अनुचित नहीं क्यों कि जैसे रिश्वत सर्वत्र वैसे ही श्रीमान भी सर्वत्र- जहाँ ओबी भाषा अथवा ओबी राज्य है वहाँ सर्वत्र आपकी उपासना होती है। अतएव आप ओबी शास्त्र-समूह के पक्ष और बृटिश गवर्मेन्ट के प्रधान तायत है -

पूरा निबंध अनौपचारिक शैली , जीवंत भाषा में सांस्कृतिक विडम्बनाओं पर अचूक वार करता है ये निबंध पथभ्रष्ट हो रहे भारतीयों में नवीन वैचारिक आग भड़का देते हैं।

उपर्युक्त सभी वर्गों के निबंधों के अवलोकन से यह धारणापुष्ट होती है कि इन निबंधों में निज तत्व, सहज उल्लास के साथ राष्ट्रीय-नवचेतना और वैज्ञानिक तार्किक चिंतन भी है जो पाठकों को आधुनिकता के पीछे आँख मूंद कर अनुकरण करने से बचाता है। निबंधकार आत्मीय शैली में हर विषय का साधिकार, सारगर्भित परिचय देकर सजीव आम भाषा में अपना मत प्रकट करना चाहता है। संपादक-निबंधकार अपने पांडित्य को उच्च साहित्यिक विरासत के साथ संलग्न कर, आधुनिक भाव-भंगिमा की कलात्मक आत्मीय प्रस्तुति के द्वारा पाठकों को सही राह दिखाना चाहता है। इन निबंधकार-पत्रकारों का मूल्यांकन एडीसन तथा स्टील आदि कह कर करना अतिशयोक्ति पूर्ण असंगत उचित नहीं कही जा सकती।

5. समालोचना :

साहित्यिक समालोचना में सर्जना से तादात्म्य स्थापित कर उसके समग्रभाव आत्मा और सौन्दर्य को मुखर कर पाठकों को साक्षात्कार कराने का तलस्पर्शी प्रयास निहित होता है। समीक्षक रचना में बिखरे सौंदर्य की गुणवत्ता , मूल संवेदना की सूक्ष्म विवेचना तथा मूल्यवान

तत्वों की अर्थ मीमांसा करता है। वह कृति के रचना तंतुओं और मूल-बिन्दुओं को संतुलित भाषा, मार्मिक सटीक शैली में अभिव्यंजित कर पुनः सर्जन करता है।- आलोचना "पत्रकारिता" का भी जनोपयोगी आवश्यक अंग है। पत्रकार विष्णुदत्त शुक्ल के शब्दों में,"आलोचना का जहाँ एक मतलब यह होता है कि उसके द्वारा जनता को हानि-लाभ की बातें बताई जायँ और उसे उचित परामर्श दिया जाय, वहाँ उसका उद्देश्य यह भी है कि जनता की रुचि परिष्कृत की जाय, उसका ज्ञान बढ़ाया जाय।"[1]

जागरण कालीन"[1851-1900] प्रारंभिक समालोचना का स्वरूप पत्रकारिता के "जनोपयोगिता","जनहित"तथा "जन जागरण" के लक्ष्यों की पूर्ति के लिए निर्मित हुआ था । इस काल की आलोचना का रचना-विधान रूढ़िगत गुण-दोष-निरूपण पद्धति पर आधारित था। वह आधुनिक स्तर पर रचना की अंतर्वृत्तियों की सूक्ष्म-परख कर, अच्छा-बुरा मत देकर निर्णयात्मक मूल्यांकन करती थी। तब तक आलोचना पर यूरोपीय कलावाद और अभिव्यंजनावाद भी हावी नहीं हो पाया था।

अतः "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक हिन्दी समालोचना अपने नये रूप में अवतरित नहीं हुई थी।[2] उसकी दिशाएँ अस्पष्ट थी। डा० नगेन्द्र का मत है "भारतेन्दु युग में हिन्दी-आलोचना का आरम्भ पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किन्तु आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण इस काल में नहीं मिलता। "हिन्दी प्रदीप" [1877-1910 ई०] ही एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत गंभीर आलोचनाएँ प्रकाशित करता था।[3]

---

1. शिवदान सिंह चौहान, हिन्दी गद्य साहित्य पृ० 157
2. विष्णुदत्त शुक्ल, पत्रकार कला, पृ० 161
3. नन्द दुलारे वाजपेयी, आधुनिक साहित्य पृ० 326
4. डा०नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 486

पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित समालोचना के निम्नलिखित रूपों में आधुनिक नव-जागरण के दर्शन होते हैं -

1. पुस्तक और पत्रिकाओं की परिचयात्मक समालोचना।
2. आधुनिक विधाओं-नाटक आदि की निर्णयात्मक समीक्षा।
3. पुरातन साहित्य, शास्त्र सिद्धान्तों का पुनर्मूल्यांकन तथा तुलनात्मक विवेचन।
4. पुस्तकों की भूमिका के रूप में लिखी आत्म-समीक्षा ।
5. ऐतिहासिक समीक्षा आदि।

1. परिचयात्मक पुस्तक-पत्रिका समीक्षा :

जागरण युग के संपादक विज्ञापित या आलोचनार्थ आयी पुस्तक या पत्रिका का निर्मम सटीक परिचय देते थे। तब किसी विषय-विशेषज्ञ को नियुक्त करके पुस्तक-समीक्षा कराना सम्भव नहीं था। उस समय संपादक ही हिन्दी भाषा और साहित्य के मर्मज्ञ विशेषज्ञ माने जाते थे। उस समय पुस्तक-समालोचना लिखना शुष्क शिष्टाचार न होकर गंभीर दायित्व भरा कर्तव्य था। ये संपादक पाठकों को युगानुकूल, उपयोगी, देश भक्तिपूर्ण पुस्तकों तथा ज्ञानवर्द्धक पाठ्य-सामग्री के चयन में मार्ग-दर्शन कर उचितानुचित का बोध कराते थे। वे जानते थे कि स्थायी पुस्तकों का समकालीन तथा भावी पाठक पर अमिट प्रभाव पड़ता है। अतः प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाएँ पुस्तकों का गुण-दोष युक्त विवेचन तथा निष्पक्ष-निर्मम विश्लेषण करती थी। राधाचरण गोस्वामी कृत "प्रेम बगीची" पुस्तक शीर्षक "बगीची" शब्द की अशुद्धता पर "ब्राह्मण" संपादक प्रताप नारायण मिश्र की तीखी आलोचना का रौद्ररूप कर द्रष्टव्य है -"अगस्त के "भारतेन्दु" में आपने एक पुस्तिका दी है। उसका नाम "प्रेमबगीची" रखा है। क्या नाम रखने के लिए कोई संस्कृत शब्द नहीं जुड़ता था।

"प्रेमवाटिका" बुरा था, जो एक अरबी का शब्द सो भी महाम्महा अशुद्ध रखते हैं। गोस्वामी जी को भली-भाँति ज्ञात होगा कि यह शब्द बाग है जिसको "बागीचा" कहते हैं। बागीचा भी अशुद्ध है, पर शहर के अपढ़ लोग बोलते हैं - जिसमें भी बगीची। ह ह ह खतरानियों की बोली। इस अशुद्ध और बनाने शब्द को पोथी में लाते समय यह ध्यान नहीं रहा कि हम लोक क्या समझेंगे। हम आशा करते हैं कि हमारे मित्र आगे से ऐसी बातों पर ध्यान रखा करें।"[1]

उपर्युक्त अंश से स्पष्ट है कि तत्कालीन संपादक शुद्ध भाषा के निर्माण, के प्रति कितने सजग-सचेत थे।

"आर्य समाज" के सिद्धान्तों से पूर्ण सहमत न होने पर भी पुस्तक-समालोचना में संपादकों ने राष्ट्र-हित को सर्वोपरि महत्व देकर, निष्पक्षता के साथ आर्य समाज के समाज सुधार और राष्ट्र-जागरण आदि की प्रशंसा की थी। "हिन्दी प्रदीप" के संपादक ने स्वयं संस्कृत के उद्भट विद्वान होते हुए पंडितों की संकीर्ण विचार धारा और स्वार्थ साधना की सराहना नहीं की, " हमारे पास "अबोध निवारण" नामक छोटी सी पुस्तक बनारस से आयी है। इसमें दयानंद का खंडन कर पुराना रामरसरा गाया गया है। पर वही निरी पंडिताई के ढंग पर, दयानंद के आशय पर कोई दृष्टि नहीं है। - पर निरे संस्कृत पंडितों की भी सराहना नहीं कर सकते। दयानंद चाहे बहुत बुरे हों, देश के फायदे और शोधन के लिए बहुत प्रयत्नचित्त हैं। पण्डितों की मोटी तोंद किस काम की आँख में पुर शोक प्रणा के लुटने के"[2]

विज्ञापित पुस्तक " शंकर-मत्त-प्रकाश" एवं "मित्रविलास" [लाहौर] के संपादक का मत था-" न्याय और फिलोसफी को इसमें

1. ब्राह्मण, खण्ड 3, संख्या 7
2. हिन्दी-प्रदीप, सितंबर 1880 पृ0 24

कूट-कूट कर भर दिया गया है। अहा।हा।क्या- क्या तर्क हैं जिसके पढ़ने से सिर चक्कर खाता है और बुद्धि चकराती है।- इस पुस्तक के पढ़ने से यह तो स्पष्ट हो जाता है कि इस हिंदुस्तान में एक समय ऐसा भी था जब अफलातूं और अरस्तु के से विद्वान फंकाराये फिरते थे। आश्चर्य तो यह है कि इतनी सूक्ष्म बातें इसमें लिखी गई हैं। तो भी हिंदी इसकी इतनी सरल कि पढ़ते देर नहीं और आशय समझ में आ जाता है। — दाम कुल 2-00 रु० डाक- मसूल वगैरह चार आने।"[1]

अतः ग्रंथों की आलोचना में सत्यवादिता, निर्भीकता और सौहार्दपूर्ण झलकती है।

पत्रिका-समीक्षा :

पत्र-पत्रिकाओं के संपादक एवं दूसरे को परस्पर अपनी पत्रिकाओं का आदानप्रदान कर बदले में भेजा करते थे। यही कारण था कि सारे पत्र-संपादक एक किसी ज्वलंत समस्या को उठाकर उस व्यापक विचार-विमर्श करते थे। धीरे-धीरे यही विचार आंदोलन का रूप धारण कर लेते थे। खड़ी बोली नागरी लिपि को अदालती भाषा बनाने के लिए आंदोलन का रूप-निर्माण ऐसे ही हुआ था। हिन्दी-हिन्दुस्तान के हितों की उपेक्षा करने वाले पत्रों की खूब खाल खींची जाती थी। उदाहरणार्थ "पायोनियर और स्टेट्समेन"- सावन के अंधे को हरी ही हरी सूझती है ठीक ऐसा ही हाल पायोनियर का है। स्टेट्समेन अथवा अखबार जो सच्चा हाल प्रजा की पीड़ा और अकाल का लिखते हैं,उसे यह अपनी कलेजदराजी के जोर से झूठा ठहरा कर स्टेटमेन को घुंघ-2 का ताना और गालियाँ देता है। - एडिटर साहब बंगले के बाहर कभी पाँव रखते तो

---

1. मित्र-विलास, 24 जनवरी 1881 पृ० 206-207

प्रजा की पीड़ा का हाल उन्हें मालूम होता। हमारी सरकार इसी की बात का प्रमाण मानती है। खैर जो हो स्टेटमेन से निष्पक्षपात और सच्चे प्रजा के उपकारी को धन्यवाद है।"[1] ब्रिटिश समर्थक पत्रों की "पायोनियर" [अंग्रेजी] के समान तीव्र भर्त्सना की जाती थी।

"ब्राह्मण" में "हिन्दुस्थान" [दैनिक] की समीक्षा करते हुए लिखा था "श्री युत राजापाल सिंह जो महामान्य ने विलायत जाकर हम लोगों के हितार्थ एक मासिक पत्र निकाला है। इसका नाम "हिन्दोस्तान", भाषा अंगरेजी और हिन्दी, गुप्त निर्भयत्व, निष्पक्षत्व, देश हितैषित्व है।-[2] कभी कभी इन्हीं आलोचनाओं के कारण परस्पर पत्रिकाओं में तू तू मै मैं भी हो जाती थी।

उपर्युक्त परिचयात्मक समालोचना से स्पष्ट कि इनमें विज्ञापनों से होने वाली आय को तनिक भी महत्व न देकर समाज और देश के प्रति दायित्व को सर्वोपरि समझा जाता था। संपादक पाठकों में साहित्य और भाषा के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण तथा राष्ट्रीय-चिंतन का निर्माण करना चाहता था। आलोचना की कसौटी देश-हित तथा जनोपयोगिता थी। समालोचना में गांभीर्य, सूक्ष्म-विशेषताओं का उद्घाटन नहीं है तथापि वे गलत जानकारी से युक्त अनुत्तरदायी निष्कर्षों और उलझन भरी प्रस्थापनाओं से पाठकों को नहीं बहकाती। उनमें सच्चाई, ईमानदारी और स्पष्टता है।

: आधुनिक साहित्य, नाटक आदि की निर्णयात्मक आलोचना :

इस नवयुग की पत्र-पत्रिकाओं ने समसामयिक नव- विधाओं की समालोचना पर सबसे अधिक बाण साधे थे। आधुनिक समीक्षा की जन्मदात्री

---

1. हिन्दी प्रदीप, अगस्त 1878 पृ03-5
2. ब्राह्मण, खण्ड2। संख्या 10

पत्रिका हिन्दी-प्रदीप में निम्नलिखित समीक्षात्मक रचनाएँ प्रकाशित हुई -

1. चन्द्रलाल और गुरु गोवर्धन दास के अभिनय की आलोचना [अक्टूबर 1877]
2. लाला श्री निवास दास रचित 'रणधीर प्रेम मोहिनी' नाटक की समीक्षा -[मार्च 1878]
3. नाटकाभिनय [जनवरी 1880 पृ0 2-3]
4. नीलदेवी फरवरी, 1882 पृ0 12-13
5. परीक्षागुरु [दसिंबर, 1882 पृ0 12-13]
6. मुद्राराक्षस [अप्रैल, 1883 पृ0 3]
7. नेक सलाह [अगस्त 1886 पृ0 18-19]
8. सच्ची समालोचना संयोगिता स्वयंवर की [अप्रैल 1886 पृ0 17]
9. एकांत वासी योगी [मई 1886 पृ0 14
10. हिन्दी कालीदास की आलोचना [अगस्त 1886 पृ0 14]
11. बंग- विजेता [अगस्त 1886 पृ0 14
12. नैषध-चरित चर्चा [सितंबर 1900 पृ0 19-20]

इनमें अधिकांश विज्ञापन के लिए आयी परिचयात्मक समीक्षाएँ है। आधुनिक आलोचना का प्रारंभिक स्वरूप "संयोगिता स्वयंवर", नीलदेवी "परीक्षागुरु" आदि में देखा जा सकता है।

आज जिस प्रकार मुक्तिबोध की कविता आदि पर समीक्षा लिखना समकालीन समीक्षकों के लिए चुनौती भरा कार्य बना हुआ है, उस युग में श्री निवासदास द्वारा लिखित नाटक "संयोगिता स्वयंवर" पर समीक्षा लिखना संपादकों के लिए आलोचनात्मक लेखन-क्षमता को परखने की कसौटी और चुनौती भरा कर्तव्य बन गया था। "ब्राह्मण" पत्रिका के संपादक प्रताप नारायण मिश्र के पास जब यह नाटक-पुस्तक

विज्ञापन के लिए नहीं पहुँची तो उनकी प्रतिक्रिया इस प्रकार रही, "हम नहीं जानते हमारे पास क्यों नहीं आया भेजने वालों की पाठ पप्पी हो या किसी डाकखाने की डैकेती हो। - जब सब के सभी पत्र उस पर अपनी सम्मति दे चुके हैं तो हम भी अपनी निष्पक्ष राय देने से क्यों चूके"।[1]

"हिन्दी प्रदीप" में "संयोगिता स्वयंवर" नाटक के समस्त पक्षों का अनुशीलन कर तीखी प्रतिक्रिया और व्यंग्यात्मक, धारदार खरा विश्लेषण प्रस्तुत किया था " लाला जी यदि बुरा न मानिए तो एक बात आपसे धीरे से पूछे कि आप ऐतिहासिक नाटक किसे कहेंगे? क्या किसी पुराने समय के ऐतिहासिक पुरावृत्त की छाया लेकर नाटक लिख डालने से ही वह ऐतिहासिक हो गया ? - आपके नाटक में राजा, मंत्री कवि यहाँ तक कि संयोगिता बेचारी भी अपना पांडित्य प्रकाश करने के यत्न से हैरान हो रहे हैं। भला बताइये यह कौन सा ढंग भाव दरसाने का है।- हम समझते हैं, ग्रन्थकार महाशय बीबी संयोगिता को [पण्डित प्रताप नारायण मिश्र के "कलि कौतुक" वाली] शराब शोरों की महफिल में भेज देते तो शराब की तारीख में सबसे बीस संयोगिता ही की स्पीच रहती। सच है जो पहली मुलाकात में मर्द के आगे ही सुरापान की इच्छा प्रकट करे उसके सद्भावात और जज्बात कहाँ तक पाक हो सकते हैं। - छि: ऐसा ही नाटक ऐतिहासिक कहलाने योग्य है।"[2]

"ब्राह्मण" पत्रिका में श्री धर पाठक की कविता "उजड़ग्राम" की आलोचना लिखते हुए संपादक ने लिखा था, "उजड़ग्राम" कविवर गोल्डस्मिथ कृत "डिजर्टेड विलेज का पद्यमय अनुवाद है।- भाषा का माधुर्य कविता का लावण्य, सहृदय मनोहरित्व इत्यादि गुणों के अतिरिक्त

---

1. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल, 1886 पृ0 17,18

योरोपीय विचार का एतद्देशीय लोगों को पूर्ण स्वाद देने की सच्ची दक्षता दिखाई है।"[1]

"परीक्षा गुरु" की समीक्षा अधिक तर्क संगत, स्वाभाविक एवं संयत भाषा में की गई थी।

अतः अधिकांश पत्रिकाओं में इन आधुनिक विधाओं की गुण-दोष निरूपण पद्धति द्वारा राष्ट्रीय-हित की दृष्टि से समीक्षा की गई थी। हिन्दी आलोचना की सुखमय स्थिति के लिए इन पत्रिकाओं को उचित श्रेय दिया जाना चाहिए।

3. पुरातन साहित्य, सिद्धान्तों का पुनर्मूल्यांकन :

भारत में प्राचीन साहित्य शास्त्र की सैद्धान्तिक समीक्षा की समृद्ध रीतिवादी पद्धति विरासत रूप में पहले से ही विद्यमान थी। किन्तु आधुनिक विकसित होते साहित्य की समीक्षा के लिए नये आलोचना मूल्यों, दृष्टि और व्याख्या सूत्रों की आवश्यकता थी। भारतेन्दु युग में आधुनिक साहित्य स्वयं निर्माणावस्था में था। अतः समालोचना के लिए जरूरी परिष्कृत लंबी साहित्यिक पृष्ठभूमि और प्रौढ़ दृष्टि विकसित कैसे हो पाती। फिर भी इस जागरण युग में हिन्दी-प्रदीप', 'भारत मित्र', "आनंदकादम्बिनी", "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" "छत्तीसगढ़ मित्र" आदि के गंभीर समीक्षात्मक निबंधों एवं टिप्पणियों का ऐतिहासिक महत्व असंदिग्ध है।

हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित भारतेन्दु का "नाटक अथवा दृश्य काव्य", "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित "वेद" [अप्रैल 1878] "गीता सार समुच्चय" [सि0 1903] "सप्तशती स्तोत्र और भगवत गीता [अप्रैल-जून 1897]

---

1. ब्राह्मण, खण्ड 6 संख्या 6

"काव्यामृत रसास्वादन", "ब्रह्मानन्द सहोदर", महाकवि भवभूति[जु0 अगस्त-1893] आदि लगभग 42 संस्कृत कवियों तथा ग्रन्थों का पुन-र्मूल्यांकन मिलता है। "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" में प्रकाशित "समालोचना" [1897] निबंध, "भारत मित्र" में प्रकाशित संपादक बाल मुकुन्द के अनेक लेख और "छत्तीसगढ़ मित्र" [1900 ई] की समीक्षात्मक टिप्पणियों में शास्त्रीय आलोचना की आधुनिक भंगिमा और ढंग दिखायी देने लगे थे।, "विद्वानों का यह काम नहीं है कि वे केवल दोष प्रकाशित करने पर ही कमर बाँध ले। यदि पुस्तक में कुछ गुण हों तो उस पर भी विचार होना चाहिए- समालोचक को उचित है कि वह गुणदोष सप्रमाण सिद्ध करें।"[1]

यद्यपि इस काल में किसी नवीन समालोचना आदर्शों की उद्भावना नहीं हुई थी तथापि समालोचना पद्धति आधुनिक ऐतिहासिक दृष्टि और व्यवहारिक आलोचना पद्धति से युक्त है "साहित्य जन समूह के हृदय का विकास है" आलोचनात्मक लेख में संपादक ने लिखा है " साहित्य जिस देश के जो मनुष्य हैं उस जाति की मानसी वृत्ति के हृदय का आदर्श रूप है जो जाति जिस समय, जिस भाव से परिपूर्ण या परिप्लुत रहती है वह सब उनके भाव उस समय की साहित्य की समालोचना से अच्छी तरह प्रकट हो सकते हैं।"[2] उपर्युक्त लेख में "हिन्दी प्रदीप के संपादक ने ऐतिहासिक-विकास के सिद्धान्त को मानते हुए साहित्य की शाश्वतता पर प्रश्न चिह्न लगाये हैं।

तुलनात्मक आलोचना की आधार-शिला भी इसी पत्रिका से रखी प्रतीत होती है।"कालिदास और भवभूति" में तुलनात्मक दृष्टि पूर्ण समीक्षा का प्रारंभिक रूप देखिये, " कालिदास से भवभूति इस बात में अवश्यता विशिष्ट माने जा सकते हैं कि कालिदास चेष्टा करने पर भी दूसरा रस

1. छत्तीसगढ़ मित्र, 1900ई0
2. हिन्दी प्रदीप,

वैसा न लिख सके जैसा श्रृंगार रस लिखा पर भवभूति ने वीर चरित्र में वीरता को पूरी तरह दिखला दिया है।"[1]

भूमिका के रूप में लिखी समीक्षा का प्रारंभिक रूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पुस्तकों की भूमिकाओं, प्रतापनारायण मिश्र की "ब्राह्मण" पत्रिका में प्रकाशित संगीत "शाकुंतल नाटक", "श्रीमानस विनोद" तथा सौ अजान एक सुजान" आदि उपन्यास आदि की भूमिका में मिलता है। "ब्राह्मण" पत्रिका ने "संगीत शाकुंतल नाटक" की भूमिका में लिखा था, "संस्कृत मात्र सच्चे जी से मानते हैं कि "काव्येषु नाटकाः श्रेष्ठा नाटकेषु शकुन्तला- यद्यपि हमारे लेखनी में इतनी शक्ति नहीं कि कवि के भावों को सरसता के साथ पूरा-2 दिखला सकें, पर इसमें कोई सन्देह भी नहीं कि संस्कृत के गूढ़ आशय यदि अन्य भाषा में दरसाये जा सकते हैं तो हिन्दी में दरसाये जा सकते हैं। - हमने कहीं कहीं मुख्य ग्रंथ का आशय कुछ कुछ घटा-बढ़ा दिया है- हिन्दी में कोई ऐसा नाटक नहीं है जिसे सचमुच गीति-रूपक कहा जा सके।"[2]

इस काल की समालोचना के विविध रूपों को देखकर कहा जा सकता है कि तत्कालीन आलोचना में भाषा, रूप तथा गुण-दोषों पर अधिक ध्यान दिया गया है। तथापि उसमें आधुनिक तड़कभरी भाषा, चमत्कारी उक्तियों और शब्दों के मायाजाल बुनती हवाई समीक्षा की तरह उलझाव और अस्पष्टता नहीं है। उसमें वैचारिक स्पष्टता, व्यवस्था के साथ रचनात्मक उर्जा, सृजनशीलता और देश-हित के प्रति प्रतिबद्धता है। इनमें आवेग, उत्तेजना, आधुनिक बुद्धिवादी दृष्टिकोण की विवेक-निष्ठा तथा स्वाधीन-चिंतन विद्यमान है। यह आधुनिक युग के साहित्य और विरासत को ईमानदारी से पुनर्मूल्यांकित करती हैं।

---

1. हिन्दी प्रदीप, जून-जौलाई 1899 पृ0 31-32
2. संगीत शाकुन्तल [भूमिका, पृ0 2]

6 रिपोर्ताज[1]:

आधुनिक विधा "रिपोर्ताज" साहित्य और पत्रकारिता का सम्मिलन-बिंदु है हिन्दी का "रिपोर्ताज" फ्रेंच से गृहीत है और अंग्रेजी शब्द "रिपोर्ट" के अधिक निकट है। "रिपोर्ताज" में पत्रकारिता की तथ्यात्मकता के साथ साहित्यिक भाव प्रवणता, कलात्मकता और संवेदनशीलता होती है जो सत्य घटनाओं को सरस और सजीव स्वरूप प्रदान करती है।

हिन्दी में इस आधुनिक विधा का प्रारंभ 1938 ई0 में "हंस" पत्रिका में प्रकाशित शिवदान सिंह चौहान कृत "लक्ष्मीपुरा" नामक रिपोर्ताज से माना गया है।[2] इस पत्रिका में "समाचार और विचार" स्तंभ में अनेक मनोहारी रिपोर्ताज प्रकाशित किये गये थे।

उत्तर उन्नीसवी शताब्दी के निर्माण-काल की पत्र-पत्रिकाओं में "रिपोर्ताज" जैसी स्वतंत्र विधा देखने को मिल जाती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित "दिल्ली दरबार दर्पण"[1877] रिपोर्ताज का एक उत्तम उदाहरण माना जा सकता है। भारतेन्दु ने 1877 के दिल्ली दरबार का वर्णन इतनी अद्भुत कलात्मक प्रभावोत्पादक तथा रोचक शैली में दिया है कि पाठकों के समक्ष वह दृश्य चित्रवत् हो जाता है।

---

1. "रिपोर्ताज शैली में तथ्यात्मक घटना को, रेखाचित्र की भाँति प्रभावी बनाकर, कलात्मकता के शिल्प से उसका विन्यास करते हुए प्रस्तुत किया जाता है। यह "सूचनिका" आँखों देखी घटनाओं की नहीं होती , वरन् इसके द्वारा कानों सुने वस्तुगत तथ्य को भी प्रस्तुत किया जाता है - रमेश चन्द्र मिश्र, समीक्षा सिद्धान्त पृष्ठ 453
2. आचार्य उमेश शास्त्री, हिन्दी गद्य साहित्य का विकास क्रम, पृ0 206

इतिहास प्रसिद्ध "दिल्ली दरबार के चित्रण में ऐतिहासिक प्रामाणिकता, घटना के बाह्य अंतरंग अभिव्यक्ति का सूक्ष्म विश्लेषण पाठक को भरपूर साहित्यिक आनन्द देता है -" बहुत से छोटे-छोटे राजाओं की बोलचाल का ढंग भी, जिस समय वे वाइसराय से मिलने आये थे, देखने में लिखने योग्य है। कोई तो दूर से ही हाथ जोड़े आए और दो-एक ऐसे थे कि जब एडिकॉंग ने बदन झुका कर इशारा करने पर भी उन्होंने न सलाम किया तो एडिकॉंग ने पीठ पकड़कर उन्हें धीरे से झुका दिया। कोई झुक कर उठना ही नहीं जानते थे- कोई खंडा , तमगा, सलाखी और खिताब पाने पर भी एक शब्द धन्यवाद का न बोल सके और कोई बिचारे इनमें से दो ही एक पदार्थ पाकर ऐसे प्रसन्न हुए कि पुत वाइसराय पर अपनी जान और माल निछावर करने को तैयार थे। सबसे बढ़कर बुद्धिमान हमें एक महात्मा देख पड़े - जो बेधड़क बोल उठे कि यह जगह तो सब तीर्थों से बढ़ कर है जहाँ आप हमारे "खुदा" मौजूद हैं। नवाब तुहारू की भी अंगरेजी में बातचीत सुनकर ऐसे कम ही लोग होंगे जिन्हें हंसी न आई हो। नवाब साहिब बोलते तो बड़े धड़ाके से थे, पर उसी के साथ कायदे और मुहावरे के भी सब हाथ-पाँव तोड़ते थे- यह दरबार, जो हिन्दुस्तान के इतिहास में सदा प्रसिद्ध रहेगा, एक बड़े भारी मैदान में नगर से पाँच मील दूर हुआ था। बीच में श्रीयुत का षट्कोण चबूतरा था, जिसकी गुंबदनुमा छत पर लाल कपड़ा चढ़ा और सुनहला रुपहला काम बना था- तोपों की कतार, सवारों की लंबी तलवारों और भालों की चमक, फहरों का उड़ना और दो लाख के अनुमान तमाशा देखने वालों की भीड़ जो मैदान में डटी खड़ी थी, ऐसा समा बाँधती थी जिसे देख जो जहाँ था,वहीं हक्का बक्का रह जाता था"[1]

---

1. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, जनवरी 1877 ई0 के साथ संलग्न परिशिष्ट रूप में प्रकाशित

लगभग 15 पृष्ठों के इस रिपोर्ताज में सूक्ष्म-स्थूल तथ्यों को वास्तविक घटना के साथ पिरो कर जनता के मनोभावों के साथ वर्णन इतनी सजीवता से हुआ है कि उसकी गणना श्रेष्ठ रिपोर्ताजों में की जानी चाहिए। भाषा सुबोध और बोलचाल की है। सरस धारा प्रवाह शैली में ऐतिहासिक यथार्थ जीवंत हो उठा है। "रिपोर्ताज" का प्रारम्भिक रूप अन्य पत्रिकाओं के कुछ लेखों में भी देखा जा सकता है।

7 यात्रा-वृत्त :

"घुमक्कड़ी एक रस है, जो काव्य के रस से किसी प्रकार भी कम नहीं है।"[2] किन्तु यात्रा का सौन्दर्य-बोध पाठकों को कभी कविता का सा रस और आनंद प्रदान करता है, जब कोई रचनाकार यायावरों की भाँति घूमता अपनी यात्रा के अनुभवों, अनुभूतियों तथा प्रतिक्रियाओं को व्यापक जीवन संदर्भ में पुनः सर्जित कर देता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में "यात्रा-वृत्त" का अभ्युदय भी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ था। भारतेन्दु ने अपने विभिन्न स्थानों के यात्रा-अनुभवों को कहीं पत्रात्मक शैली और डायरी शैली में लिख कर "कविवचन सुधा"[2] और "हरिश्चन्द्र चन्द्रिका" में प्रकाशित कराया था।[3] इन यात्रा वर्णनों में उस युग के लोक-जीवन एवं संस्कृति के पीड़ा-मस्ती से भरे

---

1. डॉ०श्री राहुल संस्कृत्यायन, उद्धृत उमेश शास्त्री, हिन्दी गद्य साहित्य का विकास क्रम पृ० 18।
2. "कविवचन सुधा"- "हरिद्वारा "30 अप्रैल 1871 पृ० 10] "तक्षक" श्रावण-कृष्ण 30 सं० 1928 वि पृ० 173] "जम्बूसर" [20 जुलाई, 1872]
3. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका-"सरयूपार की यात्रा"[8 फरवरी, 1879 ई० "वैद्यनाथ की यात्रा" [आषाढ़ शुक्ल 1 सं० 1937] जनकपुर की यात्रा [वही]

चित्र, राजनीतिक भेदभाव आदि विषय विशद् रूप में अंकित हुए हैं। अधिकतर यात्रा-वृत्तों में इतिहास, राजनीति तथा प्रकृति वर्णन से भरपूर साहित्य का अपूर्व संगम दृष्टिगोचर होता है, "दो बजे दिन के पेसेंजर ट्रेन से सवार हुए। चारो ओर हरी हरी घास का फर्श, ऊपर रंग-रंग के बादल, गड्ढों में पानी भरा हुआ, सब कुछ सुंदर- झपकी का आना था कि बौछारों की छेड़ छाड़ शुरू हो गयी- इस धूमधाम में रेल कृष्णा भिखारिका सी अपनी ही धुन में चली जाती थी। सच है सावन की नदी और दृढ़ प्रतिज्ञ उद्योगी और जिनके मन प्रीतम के पास है वे कभी रुकते हैं।- निद्रावधू का संयोग भाग्य में न लिखा था, न हुआ। एक तो सेकेंड क्लास की एक ही गाड़ी- गाड़ी भी ऐसी टूटी-फूटी, जैसी हिन्दुओं की किस्मत और हिम्मत। - जो लोग मामूली से तिगुना रुपया दे उनको ऐसी गाड़ी पर बिठलाना, जिसमें कोई बात आराम की न हो रेलवे कंपनी की बेइंसाफी ही नहीं वरन् धोखा देना है। - लेडीज कंपार्टमेन्ट खाली था, मैंने गार्ड से मिन्नत कहा, न माना और दानापुर से दो बार नीम अंगरेज [लेडी नहीं सिर्फ लैंड] मिले उन्हें बेतकल्लुफ उसमें बैठा दिया। - सचमुच अब तो तपस्या करके गोरी-गोरी कोख से जन्म लें तब संसार में सुख मिले।"[1]

उपर्युक्त भारतेन्दु के यात्रा-अंश से स्पष्ट है कि इन संपादक - रचनाकारों ने ये नये प्रयोग जन-चेतना जागृत करने के उद्देश्य से किये हैं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं के यात्रा-वृत्तों में, हिन्दी- प्रदीप में "गया यात्रा" [मार्च 1894] "कतिकी का नहान" तथा "भारत जीवन" में प्रकाशित "प्रयागराज की यात्रा" [12 मार्च, 1884 ई०] आदि समकालीन समाज में फैले भ्रष्टाचार, असंतोष और साधारण आदमी की पीड़ा को ही मुखर

---

1. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका [उ07 संख्या 4] आषाढ़ सं० 1937

किया है, "खलासी, कुली, सिपाही, जमादार, चपरासी सभी के सभी माँगने वाले ही दीख पड़े— अपनी एक न सुने मानो इनाम के नाम से पूज ही समझिये— क्या रेलवे कर्मचारी सरकारी आदमी नहीं है? क्या ए लोग तनखाह नहीं पाते?— रेलवे गवर्मेन्ट, ने किस नक्शे या कायदे पर इनको अत्याचार का अधिकार दे रखा है?[1] तत्कालीन यात्रा-वृत्त आज भी कितने सच्चे, आनंद दायक और प्रासंगिक लगते हैं। इनकी यथार्थ व्यंजना, धारा-प्रवाह शैली, चित्रात्मकता देखते ही बनती है।

इसी प्रकार जागरण-युग की पत्रकारिता में आधुनिक "डायरी" 'जीवनी' "इण्टरव्यू" साहित्यिक 'पत्र विधा', गद्य-काव्य तथा "रेखाचित्र" आदि का प्रारम्भिक रूप देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ "कलिराज की सभा" जैसे निबंध में सूक्ष्म शब्द चित्रांकन आधुनिक "रेखाचित्र" अथवा "फीचर्स" से मिलता जुलता रूप प्रतीत होता है।

रेखाचित्र तथा फीचर्स क्रमशः साहित्य और पत्रकारिता की आधुनिक विधाएँ हैं। "रेखाचित्र में अनुभूति, भावों और चारित्रिक विशेषताओं को शब्द-चित्रों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। "फीचर्स" में पत्रकारिता की तथ्यात्मकता के साथ किसी घटना-विशेष, विषय-विशेष या व्यक्ति-विशेष के बारे में विस्तृत ब्यौरा और विशेष संवेदन शीलता, कल्पना और कलात्मकता के साथ किया जाता है।[2]

जागरण युगीन हिन्दी पत्रकारिता में अनेक रचनाओं, नाटकों, निबंधों आदि में रेखाचित्र तथा फीचर्स का बीजवपन भी मिलता है।

---

1. भारत जीवन 12 मार्च, 1884 पृ0 10
2. आर्ज फ्रीक्स, न्यूसर्च आफ जर्नलिज्म पृ0 192

उदाहरण स्वरूप "कलिराज की सभा ।हरिश्चन्द्र चन्द्रिका।" मथुर की यात्रा", "बी ल्यूर" ।पियूष प्रवाह, 10 अगस्त 1891। "धूर्त उरपोक" ।पीयूष प्रवाह ।25 मई 1884। "गुप्तठग"। ब्राह्मण, 15 जून 1883। "वर्णन कलियुग देवता का"। समय विनोद ।15 मई-जून 1876। आदि रचनाओं में रेखाचित्र और फीचर्स का बनता बिगड़ता रूप स्पष्ट देखा जा सकता है। "गुप्त ठग" में "फीचर्स" की कुछ विशेषताएँ स्पष्ट उभर कर आती है, "कपड़ा लत्ता, चेहरा मुहरा देखों तो भले मानसों का सा, बातें सुनों तो साक्षात युधिष्ठिर जी का औतार "झूठ बोलना और - खाना बराबर है" यह जिनके ताकिया कलाम है " रामोराम पर" , "धरमोधरम" पर", "जनेऊ क्यम","राम है", "परमेश्वर जाने", - "अरे भैइया रुपया पैसा हाथ का मैल है, "धरम नहीं तो कुछ भी नहीं", दिन भर यही बातें बात-बात में निकलेंगी- गंगा जी के दर्शन का दोनों पहर करेंगें, मन्दिर में घंटों घन्टा हिलावेंगे- कौन जाने धरती के उन, धर्म का पुतला, प्रेम का रूप जो हैं, सो यह आप ही है। पर कौड़ी 2 के लिए सब सतयुग वाली बातें विलेमान हो जाती हैं।"[1]

इसी प्रकार " रेखाचित्र" से मिलता-जुलता चित्र "कलिराज सभा" देखिए- "इज्यूकेटेड हिंदू अवय के सिंधु वेद पुरान की वार्ताओं से बेकाबू - बी०ए०आई०, कलियुग के सगे भाई, बड़े अन्याई, चश्मा लगाये, ओंठों, की खुशामद में जनम गँवाये, पाप कमाये बैठा है। जिसके समीप एक ताला प्यालाधारे, पल्ली मारे, चित्रगुप्त की सन्तान स्वारथ में सुजान, कलियुग के दीवान, अम्मामा बाँधे, जूता पहने, कान में लेखनी खोंसे, पटका कसे, बस्ता और कलमदान पास धरे बैठा है।" इस प्रकार कहा जा सकता है कि रेखाचित्र , फीचर्स के आकर्षक शब्द चित्र तथा कलात्मक सूक्ष्म ब्योरा इन पत्रिकाओं की जीवंत सामग्री थी।

---

1. 1. ब्राह्मण, 15 जून 1883

९ जीवनी तथा आत्मकथा :

जीवनी [बायोग्राफी] में किसी मानव जीवन के अंतरंग- बाह्य सभी रूपों और चरित्र लेखा-जोखा साहित्यिक शैली में प्रस्तुत किया जाता है। "आत्मकथा" लेखक स्वयं अपने जीवन के बारे में लिखता है जबकि जीवनी अन्य व्यक्ति की लिखी जाती है। महान् व्यक्तियों के जीवन चरित लिखने की परंपरा संस्कृत तथा पाश्चात्य साहित्य दोनों में ही पायी जाती है।

"जागरण-युग" [लगभग 1851]- 1900] की पत्र-पत्रिकाओं में "जीवनी" और "आत्मकथा" दोनों ही रूप प्रकाशित हुए थे। सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने विभिन्न पत्रिकाओं में "चरितावली" [सं० 1928- सं० 1937 तक] "बादशाह दर्पण", "उदयपुरोदय", "बूँदी का राजवंश" आदि प्रकाशित कराये तथा महान् राजाओं, कवि, भक्तों आदि की जीवनियाँ प्रस्तुत की। उन्होंने अपनी आत्मकथा "एक कहानी कुछ आप बीती कुछ जग बीती" [कविवचन सुधा वैशाख कृष्ण 4 सं० 1932] में प्रकाशित करनी प्रारम्भ की थी किन्तु काल ने उन्हें पूर्ण होने का अवसर न दिया। इस "आत्मकथा" का प्रारम्भ बहुत ही आकर्षक अंदाज में हुआ था, "हम कौन है और किस कुल में उत्पन्न हैं, आप लोग पीछे जानेंगे। आप लोगों को क्या, किसी का रोना हो पड़े, बतिए जी बहलाने क्से काम है - सं० 1930 में मैं जब तेइस बरस का था, एक दिन खिड़की पर बैठा था, बसंत ऋतु हवा ठंडी चलती थी बाँक फूली हुई- मैं भी जवानी की उमंगों में चूर, जमाने को ऊँच-नीच से बेखबर अपनी रसिकाई के नशे में मस्त, दुनिया के मुहतोड़े सिफारिशियों से घिरा हुआ अपनी तारीफ सुन रहा था—"[1]

अन्य पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रकाशित जीवनियों की संख्या बहुत

अधिक है। "हिन्दी प्रदीप" में महापुरुषों के जीवन चरित, संस्कृत कवियों आदि की जीवनियों में "शिवाजी मरहठे का जीवन चरित" , "स्वामी दयानन्द सरस्वती" ," हेनरी पैट्रिक","हेम्पडन " आदि ऐतिहासिक जीवन चरित्र प्रकाशित हुए। इसी प्रकार "पियूष प्रवाह" में "राजा विक्रमादित्य का जीवन चरित्र [25 फरवरी 1884] तथा "सार सुधा निधि" आदि पत्रिकाओं में भी अनेक जीवनियाँ प्रकाशित की गयी। तत्कालीन "जीवनी साहित्य" जनसामान्य में राष्ट्रीयभावों तथा मानव-आदर्शवादिता" को उद्दीप्त करने के उद्देश्य से लिखा गया था। इन्होंने राष्ट्रीय उद्बोधन भारतीयों में त्याग भाव और उच्च चरित्र के मूल्य जागृत करने में महत्वपूर्ण प्रेरक- तत्व का कार्य किया ।

उपर्युक्त गद्य विधाओं से स्पष्ट है कि राष्ट्रीय नवजागरण के उद्देश्यपूर्ति के लिए तत्कालीन संपादकों ने उन्मुक्त रूप से लेखनी चला कर नवीन विधाओं का बीज वपन किया था।

५.कविता :

कविता लोक संवेदना को वाणी देने वाली स्वतः स्फूर्त भावात्मक चेतना है, जिससे तादात्म्य स्थापित कर सहृदय पाठक मुक्त हृदय से रस, आनंद और सौंदर्य का आस्वादन करता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का मत है, "सच्चा कवि वही है जिसे लोक हृदय की पहचान हो- इसी लोक-हृदय में हृदय के लीन होने की दशा का नाम रस-दशा है।"[1]

जागरण-युग [1851-1900] के कवियों को लोक-हृदय की सच्ची पहचान थी। उनकी कविताएँ लोक-जीवन के वास्तविक धरातल पर खड़े होकर लिखी गई हैं। उनमें ऐसा सम्प्राण जीवन-स्पंदन है जो सहृदय,

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, "चिंतामणि", पृ० 155

राष्ट्रानुरागी भारतीयों को आत्मविभोर कर जागरूक करता था-

भारत ही के भाव रसन मे मगनहु है हैं।
भारत ही की वे वे धुनि ऊँचे सुर गेहैं।।
भारत ही मे लियो जन्म भारत ही रहि है।
भारत ही के भाव धर्म अरु कमहु गहि हैं।[1]

इस काल का अधिकांश काव्य तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुआ था। इन कवि-संपादकों की कविता उनके अनुभूत अनुभवों और क्रिया-प्रतिक्रिया का प्रतिफलन थी। उनकी दृष्टि संकुचित, व्यक्ति परक तथा परिधि से उधार ली हुई नहीं थी। इन पत्रों में प्रकाशित कविता के विषय जीवन और राष्ट्र की व्यापक अनुभूति और युगीन परिवेश से संबद्ध है, इनमें परतंत्र राष्ट्रीय जीवन का संघर्ष, आशा-निराशा, सच्चाई और सादगी से मुखरित हुआ है। इन कविताओं में अनुभूति की गहराई और तरलता का अभाव दिखाया जाता रहा है। वास्तविकता यह है कि उस युग की लोक-कविता में जन समुदाय के व्यक्तित्व और अस्तित्व को गहराई से प्रभावित करने की क्षमता थी।

आज कविता के आधुनिक प्रतिमानों और व्यक्तिवादी अराष्ट्रीय मूल्यों की कसौटी पर इस युग की कविता भले ही आधुनिकता और गहराई के दायरे में न आती हो[2] लेकिन उसमें रीति मुक्तता का आग्रह और प्रगतिशील प्रयोगवादी चेतना की आधुनिकता है। प्रगतिशील चेतना से तात्पर्य मार्क्सवादी चेतना से नहीं है। उसमें यथार्थ अनुभूति की मार्मिक व्यंजना, तल्लीनता और सादगी है। इसमें स्वाधीन राष्ट्र के लिए ठोस नींव के निर्माण की जो तलक उत्साह और दायित्व विद्यमान है, उसके

1. पियूष-प्रवाह, 125 मई 1884 पृ0 6-7
2. प्रो0 कुबेरनाथ राय, "आधुनिक भारतीय कविता", विशाल भारत जून, 1960

समग्र आधुनिक कविता कितनी आस्थाहीन, निस्तेज और राष्ट्रीय चेतना से विमुख जान पड़ती है।

जागरण-युग हिन्दी कविता के लिए भी एक संक्रमण-काल था जिसमें नयी-पुरानी काव्यधाराएँ उद्दाम वेग से एक साथ बहती हुई दिखाई देती हैं। " कुछ लोग नायिकाओं के नख-शिख वर्णन में लगे हैं तो दूसरे प्रतिभावान समस्यापूर्ति में चमत्कार दिखा रहे हैं और अन्य कवि महामारी, अकाल, टैक्स पर लोकगीत रच रहे हैं और कुछ लोग कविता में जय की भाषा के प्रयोग भी कर रहे हैं। तात्पर्य यह कि काव्य साहित्य में व्यवस्था का अभाव है, पुरानी लीकों पर चलने वालें काफी हैं। - ऐसे लोग भी अनेक हैं जो कुछ दिन लीकों पर चलने के बाद नये प्रयोगों की ओर झुक रहे हैं।"[1]

डा० राम विलास शर्मा का उपर्युक्त कथन अंशतः ही सत्य प्रतीत होता है। इस संधि-युग पुराने और नवीन काव्य-साहित्य के रचयिता पृथक्-पृथक् कवि नहीं थे। एक ही कवि अपनी पत्रिका के एक अंक में दरबारी समस्या-पूर्ति या नखशिख वर्णन में लिप्त दिखाई देता है, वही कवि दूसरे अंक में महामारी, अकाल, टैक्स आदि पर खड़ी बोली में लोक-गीत रचता है। उदाहरण स्वरूप भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, "प्रेमघन", प्रताप नारायण मिश्र आदि संपादक-कवि कभी महारानी विक्टोरिया की प्रशस्ति में जमी-आस्मां एक कर देते थे, कभी उसी अंक में वे दुस्साहस पूर्वक राष्ट्र-जननी के प्रति अपना पूर्ण समर्पण व्यक्त कर, ओजी शासन के विरुद्ध विद्रोह का आवाह्वान करते थे। यह अन्तर्द्वन्द्व इस पूरे काल की कविता और ~~कविता और~~ साहित्य में विद्यमान है।

---

1. डा० रामविलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ० 134

अतः इस पुरातन-नवीन के संक्रांति युग में कविता में एक साथ-अतीत के गौरव-चित्र के साथ आधुनिक यथार्थ, दरबारी काव्य-विलास के साथ नव जातीय संगीत, ब्रजभाषा माधुर्य के साथ खड़ी बोली में नव अभिव्यंजना और विक्टोरिया राज की संस्तुति के साथ देश भक्ति पूर्ण गान का विरोधाभास दूर तक समानान्तर चला है। जागरण-काल के संपादक बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। ये निर्भीक पत्रकार, मौलिक गद्यकार होने के साथ-साथ सहज कवि और अदम्य राष्ट्र भक्त भी थे। तत्कालीन हिन्दी कविता नवजागरण और राष्ट्रीय भाव बोध की चेतना से संचालित और उत्प्रेरित है। उसमें राष्ट्रीय उद्बोधन और पुकार का स्वर सर्वोपरि है।

1857 के महत्वपूर्ण ऐतिहासिक जन-विद्रोह [गदर] पर इन राष्ट्र भक्त, निडर पत्रकार कवियों की प्रतिक्रिया इतनी ठंडी और अल्प वर्षों रही ? उनका " यह मौन आश्चर्यजनक है।"[1] उन्होंने जहाँ इस ऐतिहासिक घटना का उल्लेख किया भी है, वह भारतीय राष्ट्रभक्त कवि के हृदय की आवाज प्रतीत नहीं होती। "ब्राह्मण" में प्रकाशित संपादक प्रताप नारायण मिश्र द्वारा लिखित "ग्रेडवा स्वागत" [1889] कविता से तत्कालीन कवि की इस घटना के प्रति प्रतिक्रिया स्पष्ट दृष्टिगत होती है -

सन् सतावन् माहि जबहि कछु सेना बिगरी।
तब राजा दिसि रही सुदृढ़ ह्वै परजा सिगरी।।
ठौर-ठौर निज घर लुटवाये अरु फुंकवाये।
प्रश्न लोय बहु ब्रिटिश वर्ग के प्रान बचाये।।[1]

अधिकांश ब्रिटिश इतिहासकारों ने भी इस स्वातंत्र्य जन-विद्रोह को सिपाही-गदर के रूप में चित्रित किया है क्यों कि तत्कालीन शासक वर्ग इस घटना का उल्लेख इसी रूप में कराना चाहता था। किन्तु इस काल के कवियों के ऊपर कोई आक्षेप लगा कर उसे सत्य मान लेना बड़ी भूल और अन्याय पूर्ण होगा। उसकी तह में जाकर सत्य का पता लगाना अधिक समीचीन होगा।

1. डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय, आधुनिक हिन्दी साहित्य पृ० 250

सन १८५७ ई० का एक इश्तेहार

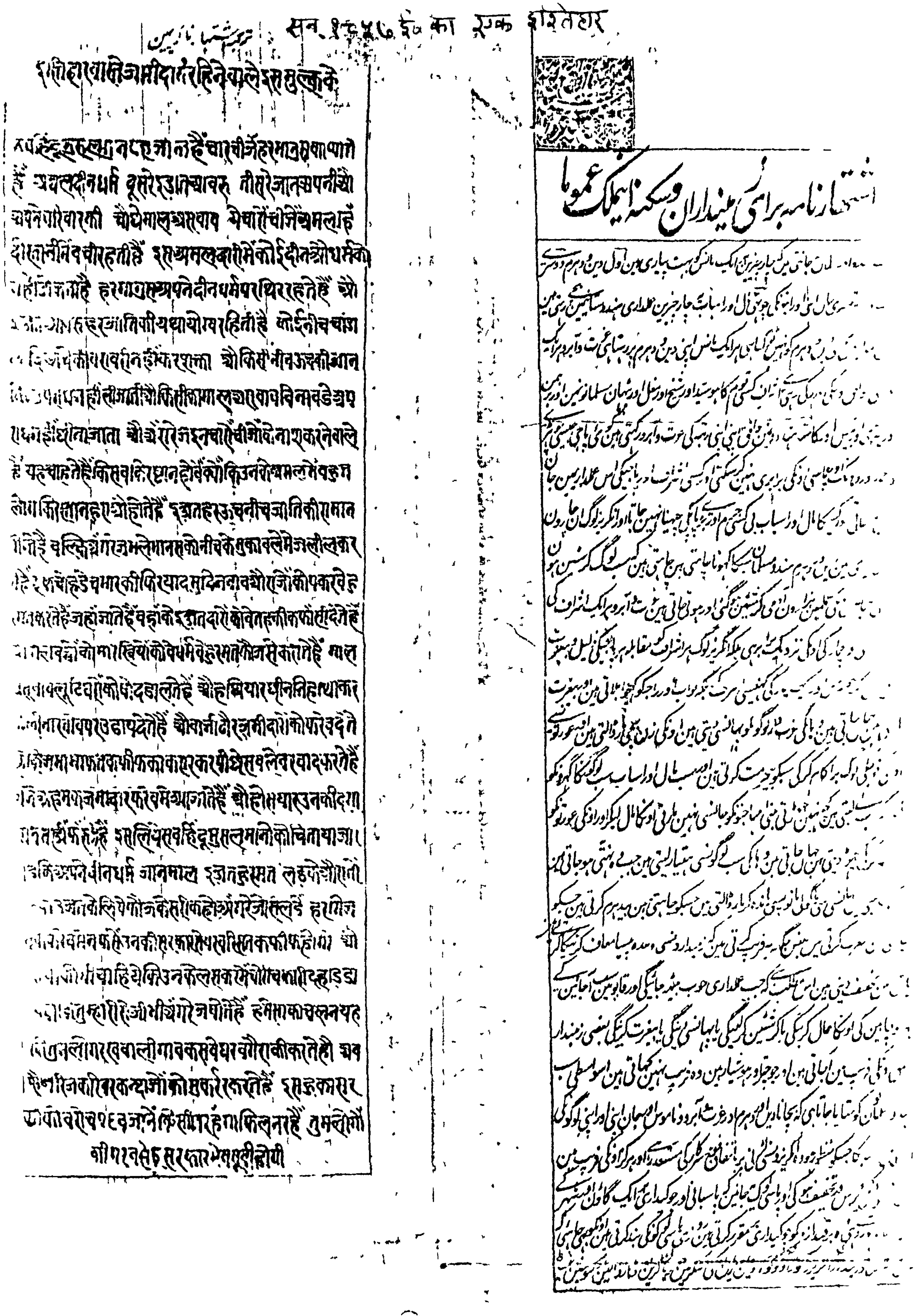

تحریر شمبا ... بریس

इश्तिहार वास्ते जमीदार रहिने वाले इस मुल्क के

सब हिंदू मुसलमान जानते हैं चार चीजें हर मनुष्य को प्यारी
हैं अव्वल दीन धर्म दूसरे इज्जत आबरू तीसरे जान अपनी और
अपने परिवार की चौथे माल असबाब ये चारों चीजें अमलदारी हिं
दोस्तानी में बची रहती हैं इस अमलदारी में कोई दीन और धर्म को
[illegible] हर आदमी अपने दीन धर्म पर थिर रहते हैं और
[illegible] इज्जत आबरू जैसी यथायोग्य रहती है कोई नीच जात
[illegible] की बराबरी नहीं कर सकता और किसी नीच जात की आन
[illegible] हो सकती कि किसी का माल असबाब बिना बड़े अप
राध नहीं छीना जाता और अंगरेज इन चारों चीजों के नाश करने वाले
हैं यह चाहते हैं कि सब किरानी होवें क्योंकि उनके अमल में बहुत
लोग किरानी हुए और होते हैं इज्जत आबरू नीच जाति की बराबर
[illegible]ते हैं बल्कि अंगरेज भलेमानसों को नीच के मुकाबले में जलील कर
ते हैं एक चमार की फिरयाद मुद्दई नालिश और राजों को पकरवे हु
[illegible] करते हैं जहां जाते हैं वहां के इज्जतदारों को बेगार कहारी कराते हैं
[illegible] बच्चों को मार स्त्रियों को बेधर्म बेहुरमत जोर से करते हैं माल
असबाब लूट लेते हैं और हथियार छीन लेते हैं
[illegible] और जमीदारों को फरेब दे
[illegible] माफ करा देने का करार करके बेदखल करते हैं
[illegible] [illegible] हैं और हो सकता है उनकी दगा
[illegible] इसलिये सब हिंदू मुसलमानों को चाहिये
कि अपने दीन धर्म जान माल इज्जत आबरू लड़ने
[illegible] के लिये फौज के साथ हो अंगरेजों से लड़ें हरगिज
[illegible] [illegible] और जो
[illegible] चाहिये कि उन फैलसूफ में [illegible]
[illegible] और [illegible] हैं हमेशा का चलन यह
[illegible] गांव कसबे घर [illegible] करते हो अब
[illegible] कन्याओं को सुपुर्द करते हैं इस कुफ़ार
[illegible] ने लिखा है [illegible] हैं तुम लोगों
की [illegible] सरकार में कबूल होगी

اشتہارنامہ برائی زمینداران و سکنہ ایمُلک عموما

[illegible] جانتی ہیں کہ چار چیزیں ایک مانس کو بہت پیاری ہیں اول دین و دہرم دوسری
[illegible] اور اپنا کنبا جو تہی مال و اسباب چار چیزیں عملداری ہندوستانی میں رہتی ہیں
[illegible] دین و دہرم کو نہیں [illegible] ہر ایک مانس اپنی دین و دہرم پر رہتا عزت و آبرو ہر ایک
[illegible] کسی قوم کا ہو سید اور شیخ اور مغل اور پٹھان مسلمانوں میں اور برہمن
[illegible] اپنی اپنی رتبہ کی عزت و آبرو رکہتی ہیں [illegible]
[illegible] برابری نہیں کر سکتی و کسی [illegible] اس عملداری میں
[illegible] کا مال و اسباب [illegible] چہینا نہیں جاتا اور انگریز لوگ ان چاروں
[illegible] ہندو مسلمان سبکا کہونا چاہتی ہیں [illegible] سب لوگ کرسٹین ہوں
[illegible] آدمی کرسٹین ہو گئی اور ہوتی جاتی ہیں [illegible] آبرو ہر ایک اشراف کی
[illegible] بلکہ انگریز لوگ ہر اشراف کو مقابلہ [illegible]
[illegible] کہتی ہیں [illegible] بے عزت
[illegible] لوگوں کو پہانسی دیتی ہیں [illegible]
[illegible] سب مال و اسباب سب لوگوں کا [illegible]
[illegible] اور ان کا مال لیکر اور انکی عورتوں
[illegible] ہتیار لیتی ہیں جب [illegible] ہو جاتی ہیں
[illegible] جسکو چاہتی ہیں [illegible] کرتی ہیں جسکو
[illegible] زمیندار [illegible] معاف کر
[illegible] عملداری خوب [illegible]
[illegible] کرسٹین کرینگی یا پہانسی دینگی یا بے عزت کرینگی بعضی زمیندار
[illegible] ہوشیار ہیں وہ فریب نہیں کہاتی ہیں اسواسطی
[illegible] دین و دہرم و عزت آبرو و ناموس و جان اپنی اور اپنی لوگوں کی
[illegible] اور ہر ایک ان کی مذہب میں
[illegible] ایک گاؤں و شہر کے
[illegible]
[illegible]

सन १८५७ का एक इश्तेहार

1857 ई0 में हिन्दी-उर्दू के अनेक अनियमित समाचार पत्र और इश्तिहार[1] जनता को क्रांति के विरुद्ध संगठित करने के लिए प्रकाशित हुए थे। हिन्दी-उर्दू में प्रकाशित "पयामे आजादी"[दिल्ली] के संचालक, नाना साहब के परामर्श दाता अजीमुल्ला खाँ और संपादक शिव बेदार बख्त बताये जाते हैं। इसके पहले ही अंक में यह राष्ट्रगीत प्रकाशित हुआ था -

"हम हैं इसके मालिक, हिंदुस्तान हमारा।
पाक वतन है कौम का, जन्नत से भी प्यारा।।
ये है हमारी मिल्कियत, हिंदुस्तान हमारा।
इसकी सहामियत से, रौशन है जग सारा -- ।।
-- आया फिरंगी दूर से ऐसा मंतर मारा,
लूटा दोनों हाथों से प्यारा वतन हमारा।"
आज शहीदों ने तुमको अहले वतन ललकारा
तोड़ो गुलामी की जंजीरें, बरसाओ अंगारा।
हिंदु मुसलमां, सिख हमारा भाई भाई प्यारा,
ये है आजादी का झंडा, इसे सलाम हमारा "[2]

उपर्युक्त कविता से क्या लगता है क्या यह महज सिपाही- गदर ही था? जी0बी0मालेसन ने भी अपनी पुस्तक "दि रेड पेम्फलेट" में "पयामें आजादी" की एक संपादकीय टिप्पणी उद्धृत की है, "हिन्द के बाशिन्दों अरसे से जिसका इंतजार था आजादी की वह पाक घड़ी आन पहुँची है।- हिन्दुस्तान के बाशिन्दे अब तक धोखे में आते रहे और अपनी ही तलवारों से अपने ही गले काटते रहे। अब हमें मुल्क फरोशों के इस गुनाह का कुफ्फारा

---

1. 1857 के ऐसे ही एक इश्तिहार की प्रतिलिपि प्रस्तुत शोध प्रबंध में संलग्न है।
2. संपादक लक्ष्मीनारायण सुधांशु, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, [त्रयोदश भाग] पृ0 137

[प्रायश्चित] करना चाहिए। अंग्रेज अब भी अपनी पुरानी दगाबाजी से काम लेंगे। वे हिंदुओं को मुसलमानों के खिलाफ और मुसलमानों को हिंदुओं के खिलाफ उभारने की कोशिश करेंगे।लेकिन भाइयों। उनके जाल और फरेबों में न फंसना।"[1] इसी पत्र के तीसरे अंक में भारतीय नरेशों से एकता की अपील की गई थी।[2]

इन आजादी के परवानों पत्र संपादकों का लड़ाई के बाद क्या हश्र हुआ? सर विलियम हावर्ड ने अपनी डायरी [दूसरा भाग] में लिखा है " दिल्ली पर कब्जा करने के बाद "पयामें आजादी" के संपादक मिर्जा बेदार बख्त के बदन पर सूअर की चर्बी मल कर उन्हें फांसी दे दी गयी।"[23]

उस काल के पत्र-संपादकों और साहित्यकारों को यह आधार भूमि विरासत में मिली थी। ये संपादक-कवि भी विद्रोहियों के शौर्यपूर्ण कृत्यों का उल्लासपूर्ण पक्षगान कर सकते थे यदि पूर्ववर्ती संपादक-कवियों के भयावह दमन की परिणति उनके सामने न होती। जन-विद्रोह के लगभग 18 वर्ष पश्चात् भी अंग्रेजी-राज के दहलाने वाले आतंक से काँपता, गिड़गिड़ाता, मुंठित "भारत- भिक्षा" माँगता दिखाई देता है-

कठिन सिपाही द्रोह अग्नि जा जरनाबो।
जिन भय सिर नहिं नाखि सक्त कहुँ भारतवासी।।
जाकी कृपा कटाक्ष चहत सिगरे राजागन।
जापद भारत-भुवन लुठत है बस कंपित मन ——।।
—— फूटत हियजिय हर हर कंपत ।।

---

1. उद्धृत, रामअवतार शर्मा, "हिन्दी साहित्य के विकास में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान [1950] अप्रकाशित शोध प्रबंध आगरा विश्व वि0] पृ0 50-52
2. वही, पृ0 52
3. वही, पृ0 52-53

तेज देखि के दूतगुन भंजत ।।
— सौदागर मेहुआ जहाजी।
गोरा परमपती जग काजी।।
सबहि राज सम पूजन करहीं।
सबको मुख देखत ही डर ही ।।
— बजे बृटिश डंका बहुत गहगह शब्द अपार।
जय रानी विक्टोरिया जै युवराज कुमार।।[1]

इस सम्पूर्ण कोरस में भयभीत आतंकित, क्लेश, काँपते भारतीयों और तत्कालीन राजाओं की मनः स्थिति का सजीव यथार्थ उभर आया है। 1857 के पश्चात् इन कवियों को यह अहसास हो चला था कि ओजों से पिंड छुड़ाना अब बहुत मुश्किल है इसलिए जल में रह कर मगर से बैर रखने में कोई बुद्धिमानी भी नहीं थी। इसलिए इन कवियों ने अपने आक्रोश को व्यक्त करने के लिए वाक्-चातुर्य और मिठास भरी कूटनीति का ओजों के समान सहारा लेते हुए ही वह सब कह डाला था जो वे उस परतंत्र स्थिति में सीधे-सीधे नहीं कह सकते थे। उन्होंने नायकों के शौर्य-गीत तो नहीं गाये, पर उनके विरुद्ध कभी एक शब्द भी नहीं लिखा। दिसंबर 1884 की संपादकों की बैठक जो प्रयाग में हुई थी उसमें भी चार प्रस्तावों में एक प्रस्ताव यह पास हुआ था "गवर्नमेंट कार्यों की समालोचना और सब विषयों के लेख मध्यम भाव से लिखें। कटु वचनों द्वारा तीव्र समालोचना करने से कुछ लाभ नहीं होता।"[2]

नीति-कुशल ओजों ने 1857 के पश्चात् भारत को सीधे महारानी विक्टोरिया के साम्राज्य का उपांग बना कर उनका घोषणा पत्र (1858)

---

1. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, मई-सितंबर 1875 (खण्ड 2 संख्या 12)
2. कुम्भ चिंतक (शाहजहाँपुर) 11 फरवरी 1884)

आनन्द कादम्बिनी

मासिकपत्रिका

[illegible]

[illegible] मिरज़ापुर भाद्रपद विक्रमीय सं० १८३८ [illegible] [अङ्क २

कादम्बिनी से आनन्द का धन्यवाद आनन्दकादम्बिनी की ओर से ॥

हे परब्रह्म सच्चिदानन्द घन! आप [illegible] आप की साधारण कृपा, और [illegible] से छोटे २ लाभ, और जो कुछ [illegible] उपकार प्राप्त हैं, सहस्र जिह्वा से भी उनका धन्यवाद असम्भव है; और [illegible] ही कुछ लिखती, कादम्बिनी वही और, वही चन्द्रमा [illegible] वही चकोर, वही [illegible] वही पुष्प, और वही [illegible] वही [illegible], वही [illegible] वही [illegible], और वही कार्य वही कर्ता है; तब किसको कैसा धन्यवाद?

परन्तु मिट बुद्धि और आशा की [illegible] में यह कुछ और का और ही समझ लेते गए; उसे सृष्टिकर्ता और [illegible] ने की सृष्टि, उसे सेवा के योग्य, और अपने को सेवक मान लिया। अपने [illegible] मनोरथों का पूर्ण कर्ता जान [illegible] के प्राप्ति को केवल उन्हीं की कृपा का फल [illegible] कर मान [illegible], और एक छोटे से भी मनोरथ के पूर्ण होने से उसे धन्यवाद देते, तो इतने बड़े मनोरथ सफल होने पर भी हम उसे धन्यवाद क्यों न दें; [illegible]

जारी कर बड़े जोर से यह प्रचार अभियान चलाया था। "जागरण युग" के साहित्यकार-संपादक उपाध्याय बदरी नारायण "प्रेमघन" ने अपनी "आनंद कादम्बिनी पत्रिका" में तत्कालीन भारतीयों की आस्थायुक्त मनः स्थिति, बढ़ते मोहभंग और अंग्रेजों के प्रचार का सच्चा-प्रामाणिक चित्र खींचा था- "बहुत दिनों तक तो अंगरेजी राज- की प्रजा भी भयंकर अत्याचार के स्थान पर शांति की कांति से मोहित हो राम्राज्य का अनुमान करती क्रमशः नित नई उन्नति की आशा लगाये बृटिश गवर्नमेण्ट के गुण-गाती, 1858 ई० वाले महारानी विक्टोरिया के अनुशासन पत्र या विज्ञापन को ब्रह्मलिपि सा अटलमान अपना सर्वस्व समझे थी— प्रथम दिल्ली दरबार में वह बहुत बड़ी बड़ी आशा कर न केवल उन्हीं से हताश हुई वरन् आगे के लिए भी नितांत निराश हो "बदाम्यामं ददामिनः" का अर्थ समझ चली- किसी प्रकार यहाँ के लोगों की सहायता से भारत में ब्रिटिश राज्य स्थापित हुआ जिसका उद्देश्य बारम्बार राजा औ बड़े बड़े राजाधिकारियों के प्रकाश रूप में यही बताया गया कि "हमारा राज्य यहाँ केवल भारत के हित साधन के अर्थ है, अपने लोगों के लाभ के अर्थ नहीं।" क्या यह सब केवल हमारे भोले भाइयों को फुसलाने ही के अर्थ मिथ्या वाग्जाल रचना थी? अवश्य ही इस पर विश्वास करने को जी नहीं चाहता है।"[1]

यही कुछ वजह थी जिसके कारण "प्रेमघन" आदि कवि मोहभंग से पहले इस रूप में अंग्रेजी राज का गुण-गान करते थे-

धन्य तिहारो राज अरो मेरो महारानी,
सिंह अजा संग पियत जहाँ एक हि घट पानी।

किन्तु मोह-भंग के बाद उनकी कविता का रूप-

"देख अलेख अन्न धन उपम सारी संपत्ति ढोती"[2]

---

1. आनन्द कादम्बिनी, 1907 पृ० 11
2. डा० राम विलास शर्मा, भारतेन्दु युग पृ० 153

"पी प्रमाद मदिरा अधिकारी लाज सरम खोती ।
लगे दुसह अन्याय मचावन निरखि प्रजा अति भोती।।[1]

प्रायः तत्कालीन प्रत्येक पत्रिका में बढ़ते मोह भंग, टूटती आशा और विद्रोह की मुखर भंगिमा अंकित हुई थी "ब्राह्मण" पत्रिका की "तृप्यन्ताम्" कविता का व्यंग्य पूर्ण स्वर द्रष्टव्य है -

लैसन इनकम चुङ्गी चन्दा पुलिस बरसा धाम।
सबके हाथन असन बसन जीवन संसय मय रहत मुदाम।।
जो इन हू ते प्रान बचे तो गोली बोलति हाय पड़ाम।
मृत्यु देवता नमस्कार तुम सब प्रकार बस तृप्यान्ताम्।।[2]

लोक-पर्वों "होली" और "दिवाली" के बहाने भी ये जन-कवि जनता में जन-चेतना उद्दीप्त करते थे क्यों कि ये उपादान जनता के जीवन में रचे-बसे थे-

होली
है न दुर्दशा थोरी, कहाँ खेलें हम होरी
रह्यो न राज हमारो तिलभर करत चाकरी कोरी।
पराधीनता में सुख मानत, तानत लम्बी चोरी ।।
बात पुरखन की बोरी।।[3]

इत अकाल उत टिक्स लगायो कर सब पै बरजोरी।
तेज अनाज ठीक कहुँ ना ही परत प्रजा सब होरी।।
भीख मांगत है ते भोरी।।[4]

---

1. वही, पृ0 154
2. वही, पृ0 147
3. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, फरवरी 1874 पृ0 148-149
4. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर 1877 पृ0 8-9

[illegible] में [illegible] लोक-गीत [illegible] [illegible] [illegible] ।

"बिना पिया है बुँदरि पहिने और विधवा है के पान चबाय।
बिन ठाकुर के कुरिया बांधे- तिन कर कुशल न बहुदिन जाय।।
ब्राह्मन है के जो हल जोते- औ राजा है के बेंचे गाय
छबी है के रथ से भागे- तिन पर लोक गीध नहिं छाय—[1]

"हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित उपर्युक्त आल्हा सुमिरनी [बानगी आल्हावालों के लिए] में लोक-गीत अपना समाँ बांध सामाजिक विडम्बनाओं का सटीक चित्रण करता है।

"ब्राह्मण" संपादक ने "आवनी" लोक रूप का राजनीतिक चेतना जगाने तथा इलबर्ट बिल [1883] के लिए, ~~लेकर~~ सरकार तक अपनी आवाज पहुँचाने के लिए साधन बनाया था -

सुनिलाट रिपन के बैन नैन भरिआती ।
यह बिल भई सौति हमारि जरावत छाती —।।
-- तजि देहो हिन्दुस्तान न फिर इत ऐहौं।
भारतवासिन को काटि काटि गरि देहौं।।
-- बलबल छल हमरो एक काम नहिं आवैं।
हरि के प्रताप ते धरमहि निज जाय पावैं।।[2]

अतः इन पत्रिकाओं में लोकगीतों के सभी रूप मिल जाते हैं। इनमें राष्ट्रीय उन्मेष[3] सहज ओजस्वी रूप में समाहित है। भारतेन्दु युग के इन कवि- संपादकों ने सरस लोक-गीतों के विषय में मत था," अब ग्राम कविता पर ध्यान दीजिए। मल्लाहों के गीत, कहारों का कहरवा, विरहा अथवा

---

1. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1890
2. ब्राह्मण, 15 अक्टूबर, 1883 पृष्ठ 9।
3. "टिक्कस लागल रे कस कस के छोड़ अपना रोजगार
टिक्कस लागल आए बादल पागल सब संसार"- हिन्दी प्रदीप
अगस्त 1878

आल्हा आदि सब महाभद्दी केवल गवाँरों की रोचक कविताएँ हैं। उनकी प्रशंसा में यदि हम कुछ कहें तो नागरिक जन जो भाषा उत्तम कविता के रस पान के घमण्ड में फूले नहीं समाते, अवश्य हम पर आक्षेप करेंगे और हमें निपट गवाँर समझेंगे। -- पर इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि कविता के बँधे काफ़िये पर न होने से उनमें कोई गुण है ही नहीं और सर्वथा दूषित है पर उनमें सच्ची कविता का अखरा पाया जाता है अर्थात उनमें चित्त की एक सच्ची और वास्तविक तस्वीर खिंची हुई पायी जाती है और आपकी कथाकथित उत्तम श्रेणी की भाषा-कविता का जहर इसमें कहीं नहीं पाया जाता।"[1]

इसके विपरीत हिन्दी की आधुनिक हिन्दी कविता में कुछ अविकृत काव्य रचना पर जोर दिया जाता है। "लोक परम्परा का साहित्य अशिष्टों का साहित्य है साहित्य को इस अशिष्ट परंपरा का त्याग करके शुद्ध साहित्य होना चाहिए और जो केवल अभिजात साहित्य में सम्भव है।"[2] आधुनिक हिन्दी कविता की संवेदना और दृष्टि व्यापक लोक जीवन से कट कर कितनी संकुचित, शिष्ट और वैयक्तिक कटघरों में बंद होकर भटक चुकी है, कहने की आवश्यकता नहीं। उसमें राष्ट्र के जनमानस को भीतर तक स्पर्श करने की शक्ति नहीं रह गयी है। वह उच्च शिष्ट वर्ग के विलास, पैशन और मनोरंजन की उपभोग सामग्री मात्र बन कर रह गयी है।

भारतेन्दु युग की कविता जनानुभूति और लोक संवेदना पर आधारित है। इन लोकगीतों में राष्ट्रीय लोक मानस को जगाने की ताकत है ये कवि क्रान्तिकारी योद्धा थे जो अपनी कलम से विदेशी शासन को हिलाने की ताकत रखते थे।

---

1. हिन्दी प्रदीप अक्टूबर 1886 पृ0 15
2. रमेश चन्द्र शाह, "वागर्थ", उद्धृत आलोचना अक्टूबर-दिसंबर 1982 पृ0 42

कुछ न डरो न इससे केवल बुद्धि भरम है
सोचो यह क्या है जो कहलाता बम है।[1]

इन कवियों ने "भारत जननी " जैसे लोक-बिंबों को लेकर राष्ट्रीय भावना का अंकन किया है-

क्यों माता मुखमलिन होय रहीं जिय में कहा उदासी।
क्यों घर छोड़ि त्याग आभूषन बैठी है बनवासी।।[2]

देवी -देवताओं की स्तुति में भी देशानुराग अंकित है -
जयति सिंह वाहिनी जयति जय भारत माता[3]

राष्ट्रीय नवजागरण की तीव्र लहर ने साहित्य में जनता की भाषा खड़ी बोली को गद्य की भाषा बनाने के साथ-साथ पद्य में भी उसे प्रतिष्ठित करने का प्रयास किया था। ब्रजभाषा कविता आधुनिक यथार्थ बोध और जटिल राजनीति तथा जीवन को अभिव्यक्त करने में अपने को असमर्थ पा रही थी। भारतेन्दु ने ही सितंबर 1881 के "भारत मित्र" में खड़ी बोली बोली की कविता प्रकाशित कर गद्य-पद्य की भाषा में आधुनिकता और एक रूपता लाने की कोशिश की थी। इस काल के अधिकांश संपादक-कवित ब्रज भाषा कविता के पक्षधर थे किन्तु युग की आवश्यकता को देखते हुए प्राय: सभी संपादक-कवियों ने खड़ी बोली में कविताएँ लिखी और प्रकाशित करायी थी। भारत की वर्तमान दुर्दशा के मूल शोषण तंत्र पर प्रहार कर लोक मानस को उन्हीं की मातृभाषा खड़ी बोली में सचेत करते हुए कवि ने कहा -[4]

---

1. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल 1908 पृ0 37-38
2. हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, दिसंबर, 1877 [भारत जननी" रूपक]
3. हिन्दी बंगवासी, 23 सितंबर, 1895
4. हिन्दी प्रदीप, अप्रैल, 1890 पृ0 16

सोना चाँदी रुई नाज सब सदा लिहत जाता है।
बदले जिसके अस्त्र आदि का घृणित पदारथ आता है।।
परजा भूखों मरे अन्न बिन कुछ नहिं इनसे नाता है।
नया नया निज टिक्कस टटका गढ़ लंदन से आता है।।
गोरी काली प्रजा एक सम कहने की यह बाता है।
काली न्यौछावर गोरी पर साफ साफ दिखलाता है।।"

वही पेजा

उपर्युक्त खड़ी बोली की कविता "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित हुई थी जबकि उसके संपादक भट्ट जी का मत था " पद्य या कविता उसके का नाम है जिस मार्ग पर चल कर भूषण, मतिराम, पद्माकर तथा सूर तुलसी बिहारी प्रभृति महोदय गत कर चुके हैं क्योंकि रस और माधुर्य जो कविता के प्राण है सो इन रूखी खड़ी बोली की कविताओं में आने का नहीं।"[1] किन्तु भट्ट जी ने स्वयं अनेक खड़ी बोली में कविता लिख कर प्रकाशित करायी थी।[2] इसी प्रकार प्रभाभा के पक्षधर श्री प्रताप नारायण मिश्र खड़ी बोली में "संगीत शाकुंतल" की रचना की थी क्योंकि उन्हें अपने युग के जागरण, तथा जीवन को वाणी देनी थी।

---

1. हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर-दिसंबर, 1887 पृ0 54-56
2. "अब तो आई दिवाली मुफलिसी की।
   कर नहीं सकते कुछ अब हम अपने मन की ।।
   था समय इन आर्यों का एक ऐसा।
   वे चमकते जगत में थे रत्न जैसा।।
   रही दौलत ठसाठस देश में जब।
   देश और जनपद समूचा था रहा अपना ही सब ।।
   इस कदर बेबस नहीं थे मान अपना खोय तब।
   हो गये बेघर कफस में बंद मानो हाय सब।
   -हिन्दी प्रदीप, कार्तिक संवत् 1966

खड़ी बोली की कविताएँ प्रकाशित करने में "हिंदोस्थान" [दैनिक, राजा काँकर] अग्रणी था। उसमें प्रकाशित बाबू मुकुन्द गुप्त की कविता "सर सैयद का बुढ़ापा" [अप्रैल- मई, 1890] में हतभाग्य किसानों की तत्कालीन दयनीय दुर्दशा का चित्र खड़ी बोली में साफ उतर आया है -

अहा बिचारे दुख के मारे निस दिन पच-पच मरे किसान
जब अनाज उत्पन्न होय तब सब उठवा ले जाय लगान।।
— जिन बेचारों के तन पर कपड़ा छप्पर पर फूँस,
खाने को दो सेर अन्न नहीं, बैलों को तृण-तूस नहीं
नग्न शरीरों पर उन बेचारों के कोड़े पड़ते हैं,
माल माल कह कर जमराजी भाग की भाँति बिगड़ते हैं।[1]

"जागरण काल" में कविता ही से लोगों का प्रेम अधिक था इसीसे कविवचन सुधा को अखबार होकर भी कवि वचन सुधा" हो जाना पड़ा।[2] इसके बाद "काव्यामृत वर्षिणी [1865] "काव्य सुधाकर" [1897] "रसिक पंच" [1886] आदि कविता पत्रिकाएँ प्रकाशित हुई थी।

सार रूप में कहा जा सकता है कि जागरण-काल की हिन्दी-पत्रकारिता में साहित्य के सभी विधा-रूप आधुनिक आकार और स्वरूप ग्रहण करते दिखायी देते हैं। खड़ी बोली की कविता उच्च कोटि की न होने पर भी अपनी भाव भंगिमा में राष्ट्रीय-संवेदना और आधुनिक बानगी लिये हुए है। क्या उपन्यास, क्या नाटक और क्या आलोचना आदि सभी में स्वच्छन्द रचना कौशल, क्रान्तिकारी आधुनिक दृष्टिकोण, सहज लोक-भाषा और साहित्यिक शैली की आभा देखी जा सकती है।

---

1. हिन्दुस्थान [दैनिक] 6 , 29 अप्रैल तथा 27 मई 1890 ई0
2. बाबू मुकुन्द गुप्त निबंधावली [प्रथम भाग] पृ0 32।

विविध साहित्यिक विधाओं के विश्लेषण से कुछ महत्वपूर्ण तथ्य प्रकाश में आते हैं इन पत्रिकाओं की साहित्यिक सर्जना का आधार व्यापक राष्ट्रीय चेतना और जन-उपयोगिता है। इन विधाओं में साहित्य और व्यापक जीवन मूल्यों की पुनर्व्याख्या का दायित्व वहन किया गया था। सामयिक पत्रकारिता और साहित्य में अंतर नहीं के बराबर समझा जाता था। विषय वैविध्य, यथार्थ राष्ट्रीय चित्रण और मुक्त जन-चिंतन अभिव्यक्ति इन विधाओं का वैशिष्ट्य है।

पत्र-साहित्य में विस्मयकारी उर्वरता, विविधता, ताजगी, ओज नैतिक गांभीर्य एवं प्रफुल्लता के दर्शन होते हैं। अनुभूति की व्यंजना में सादगी, तल्लीनता और विदांदिली है। जन-जीवन के प्रति आत्मीयता और भारत जननी के प्रति श्रद्धा युक्त भावाकुलता है। साहित्य राष्ट्रोन्मुख है। समाज के सुंदर-विकृत सच्चे चित्रों को व्यापक फलक पर उकेरा गया है। उनकी चित्रण-शक्ति श्रेष्ठ नैतिक भावना तथा ज्ञान-पिपासा आश्चर्य जनक है। चिंतन में निराशा से अधिक आशा और आस्था के स्वर हैं।

ये रचनाएँ परंपरा और आधुनिकता के बीच सेतु निर्मित करती हैं। वस्तु और तकनीक परंपरागत होने पर भी सामयिक आधुनिक जीवन और युगीन प्रवृत्तियों का गहरा आकलन किया गया है। देश और परिवेश की बदलती धारा के साथ भाषा और साहित्य को भी युगानुरूप बदलने का प्रयत्न किया गया है।

तत्कालीन साहित्यिक अनुभूति सामाजिक-राजनीतिक सत्य और व्यवहार से विछिन्न नहीं है। आधुनिक युग बोध के साथ बिखरे अतीत और परंपरा का अंकन नये मूल्यों की तलाश के साथ नवीन सभ्यता के दोषों का अनावरण इनके बौद्धिक जागरण तथा युगीन अंतर्विरोधों को गुंजरित करता है। इन विधाओं की साहित्यिक दृष्टि में एक साथ

आक्रोश- व्यंग्य, विद्रोह- आवेग, आधुनिकता- परंपरा और संशय-आस्था लेकर विद्यमान है।

इन रचनाकार संपादकों द्वारा साहित्यिक अनुभूतियों को सर्व ग्राह्य और सर्वसुलभ बनाने की निरंतर ईमानदार कोशिश दिखायी देती है। राष्ट्रीय भावावेगों को पत्रकारिता के माध्यम से सर्वसाधारण तक संप्रेषित करने की व्यग्रता ध्यान देने योग्य है।

रचना-कला अपरिपक्व और विचारगत-प्रयोग और भाषा अपरिष्कृत होने पर भी उनमें सहज प्रवाह, विकासोन्मुख दृष्टि, तथा राष्ट्र के व्यक्तित्व और भावसत्ता को गहराई से प्रभावित करने की क्षमता है। उनमें जनानुभूति के प्रति सहजता और सच्चाई है।

पत्र-साहित्य के पास नैतिक-बौद्धिक गुणों से युक्त अवतारी मानवेतर शक्तियाँ नहीं हैं। वे समाज से जुड़े दुर्बलता से युक्त साधारण जीव हैं। इस साहित्य ने विस्तार से अपने युग को वाणी दी है।उसमें आधुनिकता, ऐतिहासिक चेतना, राष्ट्रीयता, यथार्थ युगीन बोध और आदर्शवादी मूल्यों का समावेश है। विषय राष्ट्रीय समस्याओं से संबद्ध और प्रबल देशभक्ति की भावना से ओत-प्रोत हैं।

6.2. ज्ञानात्मक-साहित्य

सुप्रसिद्ध पाश्चात्य समालोचक डिक्विंसी (De Quincey ने वाङ्मय को दो वर्गों " लिटरेचर आफ नालेज " तथा " लिटरेचर आफ पावर " में विभक्त कर विश्लेषित किया है।[1] " लिटरेचर आफ नालेज " या हिन्दी में " ज्ञानात्मक साहित्य " का विकास उन्नीसवीं शती से हुआ। प्राचीन भारतीय वाङ्मय में " साहित्य " और " साहित्येतर " ज्ञान की परिकल्पना और प्राप्ति " काव्य " और " शास्त्र " के रूप में हुई थी। प्राचीन शास्त्रज्ञों ने दर्शन, व्याकरण, शील, अर्थशास्त्र, काव्येतिहास, नीति, काम, ज्योतिष, गणित तथा आयुर्वेद आदि ज्ञान- शाखाओं का गहन गवेषणात्मक विवेचन कर इन्हें चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया था किन्तु मध्ययुग तक आते-आते भौतिक विषयों के प्रति जिज्ञासा- चिन्तन- शोध तथा तार्किक प्रज्ञा कविता- कामिनी विलास, दरबारी प्रशस्ति-गान तथा पारलौकिक भक्ति के परिवेश में कुण्ठित हो गयी थी। पुनः नवोत्थान काल में पाश्चात्य बौद्धिक चिन्तन- शिक्षा- अनुसंधानों से उत्प्रेरित होकर भारतीयों में विविध ज्ञान-विज्ञान विषयों तथा आधुनिक शिक्षा के प्रति अदम्य अभिरुचि जागृत हुई। तब आधुनिक ज्ञान-विज्ञान केवल अंग्रेजी भाषा के माध्यम से ही उपलब्ध हो सकता था। उस समय प्रेस और पत्रकारिता ने साहित्येतर ज्ञान को जन-भाषा में प्रकाशित कर उसका अभीप्सित विस्तार जन-सामान्य तक कर दिया था।

" जागरण युग " में रचनात्मक एवं ज्ञानात्मक साहित्य परस्पर पृथक थे। ज्ञानात्मक साहित्य ने साहित्य तथा जीवन में आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टि, प्रामाणिकता तथा यथार्थता का समावेश कर बौद्धिक पुनर्मूल्यांकन तथा वैचारिक- मंथन प्रक्रिया को बढ़ावा दिया था। इस काल में हिन्दी खड़ी बोली गद्य घुटनों के बल चल कर अपने पैरों पर खड़ा होना सीख

१- संपादक डा० नगेन्द्र, हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शताब्दी पृ० ४२६

रहा था, ऐसी निर्माणावस्था में समस्त भौतिक ज्ञान-विज्ञान और अनुशासनों की आधुनिक जटिल प्रक्रियाओं, प्रयोगों आदि को आधुनिक वैज्ञानिक शैली और सरल अनभाषा में अभिव्यक्ति करना चुनौतीपूर्ण कार्य था। भारतेन्दु और उनकी पीढ़ी के लेखकों ने इस चुनौती को स्वीकार कर साहित्येतर ज्ञान को अपनी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से सर्व-सुलभ कराया था। तत्कालीन और तदकालीन विद्वानों की आम धारणा यही रही है कि वैज्ञानिक-तकनीकी आदि विषयों के गंभीर सिद्धान्त-निर्धारण-प्रावकल्पना-बोध आदि के लिए हिन्दी में वैज्ञानिक शब्दावली और सक्षम भाषा का सर्वथा अभाव है।[1] तत्कालीन अन्य साहित्यिक पत्र-संपादकों ने भी इस निराधार भ्रान्त धारणा का खण्डन कर उसका करारा जवाब साहित्येतर गंभीर सामग्री प्रकाशित करके दिया था। वे जानते थे कि किसी भी विषय पर मौलिक चिन्तन-विवेचन अपनी भाषा में ही समुचित रूप से हो सकता है। आज भारत में मौलिक अनुसंधान-कार्य इसीलिए नहीं हो पा रहा कि उसको भारतीय मातृ भाषाओं के मूल संस्कारों रूप-प्रकृति और अभिव्यंजना की जमीन और वे पोषक तत्व नहीं प्राप्त होते जो अनुसंधान के लिए आवश्यक होते हैं। विदेशी भाषा कितनी ही अपनी क्यों न हो जाए, क्या वह देश की मिट्टी के मूल संस्कारों और तत्वों को ग्रहण कर सकती है?

1. "भारतेन्दु-युग" में ज्ञानात्मक लेख और निबन्ध आदि पर्याय थे किन्तु इन दोनों के विषय, स्वरूप और प्रकृति में पर्याप्त भिन्नता है। "ज्ञानात्मक लेख" विषय का तथ्यपरक वस्तुनिष्ठ, विषयप्रधान तर्क संगत विवेचन है, जबकि निबन्ध संक्षिप्त, कलात्मक एवं स्वतन्त्र आत्म प्रकाशन है। उसमें निजी दृष्टिकोण, प्रेरणा तथा आत्मीयता होती है। अतः ज्ञानात्मक साहित्य बुद्धि प्रधान आंकड़ों से युक्त तटस्थ साहित्येतर ज्ञान होता है जिसमें लेखक की अन्तर्दृष्टि, निजत्व तथा स्वानुभूति का समावेश

1- "बहुत लोग यह कहा कर कहते हैं कि हिन्दी हो जाने से विज्ञान के पढ़ने पढ़ाने में विघ्न हो जायेगा क्योंकि हिन्दी भाषा में इतने थोड़े शब्द हैं कि वैज्ञानी भावना उसके द्वारा प्रकाश नहीं हो सकती है पर हम उसका यही उत्तर देते हैं कि कोई बात बिना युक्ति के प्रामाणिक नहीं हो सकती है हिन्दी के शत्रु बरबस यह भी कह सकते हैं कि इस संसार में ऐसे भी मनुष्य होते हैं जिन्ह के चार सींग होते हैं पर इसको बुद्धिमान न मानेगा क्योंकि इसका कुछ प्रमाण नहीं है—यों तो अपनी कलम है और अपना कागज। " भारतेन्दु हरिश्चन्द्र
कविवचन सुधा, 29 सितंबर 1873

अपेक्षाकृत अल्प होता है। पुरुषोत्तमदास टण्डन के अनुसार "लेख प्रायः किसी व्यक्ति के किसी वस्तु के व्यापक अध्ययन का नाम है- लेख जानकारी बढ़ानेवाला होना चाहिए तथा उसमें तर्क- वितर्क का उनके निष्कर्षवाले नतीजों का समावेश किया जा सकता है।"[1]

"जागरण युग" में नव-चेतना रचनात्मक-समीक्षात्मक साहित्य में ही नहीं, साहित्येतर ज्ञानात्मक वाङ्मय में भी पर्याप्त रूप से उद्भावित हो रही थी। बौद्धिक जागरण की कल्पना बिना ज्ञानात्मक साहित्य के बिना करना संभव नहीं है। इसलिए तत्कालीन पत्र- संपादकों ने ज्ञानात्मक साहित्य को उचित महत्त्व देकर निम्नलिखित ज्ञानात्मक विधाओं का प्रकाशन किया था :

१- दर्शन, धर्म सम्बन्धी लेख
२- विज्ञान-सम्बन्धी
३- कानून, राजनीति तथा अर्थशास्त्र
४- पुरातत्त्व, इतिहास तथा भूगोल आदि
५- भाषा- चेतना एवं पत्र- संपादन
६- शिक्षा, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान आदि
७- व्यावहारिक ज्ञान- लाभों

2. धर्म- दर्शन सम्बन्धी ज्ञान- लेख

"जागरण-युग" में धर्म और दर्शन से ही भारतीय मनीषा का नवोन्मेष हुआ था। धर्म- दर्शन सम्बन्धी लेखों में पारलौकिक

१-(क) रा० रांगेय रा० बुलाखी- भारतीय पत्रकार कला पृ० १२८
(ख) द्रष्टव्य- हिन्दी साहित्य कोश पृ० ४०७-४०८

दर्शन, पुरातन उत्कृष्ट धार्मिक मर्यादाओं को तर्क की कसौटी पर कस कर सामयिक संदर्भ में पुनर्व्याख्या और पुनर्मूल्यांकन किया गया।[1] इन लेखों में धर्म- दर्शन का स्वरूप उदात्त एवं आध्यात्मिक था। " जो धर्म के मुख्य सिद्धान्त या उसूल हैं वे सब मजहब में एक हैं।[2] "

इस काल के पत्रों में धर्म- दर्शन सम्बन्धी ज्ञान- लेखों की भूमि काफी सच्ची है। धर्म- सम्बन्धी गवेषणात्मक प्रतिनिधि लेखों में " रामायण का समय " (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका , १८८४) , " वाल्मीकि रामायण " (हिन्दी प्रदीप, अक्टूबर १८७७) , " पौराणिक मुद्दायें (ब्राह्मण खण्ड ६ , अंक ८) , " गुरुगुरु और कैसे कृष्ण " (हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, जनवरी १८७६) , " वैष्णव स्वरूप " (वही, अप्रैल, १८७६) आदि विशद ऐतिहासिक संदर्भ और अर्थ-बोध को उद्घाटित करते हैं। " वाल्मीकि रामायण " का कुछ अंश द्रष्टव्य है - " " रामायण के बाल काण्ड में " यवन " शब्द आया है उससे मुसलमानों को न समझना चाहिए। " यवन " इस नाम से यहाँ के निवासी उन लोगों को पुकारते थे जो हिन्दुस्तान के पश्चिम भाग में रहते थे। ---- प्रिंकिप साहेब की राय है कि वाल्मीकि और होमर एक ही समय में हुए हैं। सर विलियम जोन्स श्रीरामचन्द्र के अवतार को ईसा के २०२६ वर्ष पहिले ठहराते हैं, वेन्टली साहब ६५० वर्ष पहिले और गुरेशियाँ १३०० वर्ष पहिले । इन सब प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि महर्षि वाल्मीकि की रामायण अति प्राचीन है।[3] "

१- " जिस संसार में परमेश्वर ने उत्पन्न किया है, जिस जाति या कुटुंब से तुम्हारा संबंध है और जिस देश में तुम हो उसी सच्चा सच्चा प्रेम करो सब और कोई साधन नहीं है " - हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ फरवरी, १८७४ ।

२- हिन्दी प्रदीप , अक्टूबर १९०० पृ० २१-२२

३- वही , अक्टूबर १८७७ पृ० ५-८

दर्शन सम्बन्धी लेख भी " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका ", " हिन्दी प्रदीप " आदि पत्रिकाओं में प्रचुर मात्रा में प्रकाशित हुए थे। " हिन्दी प्रदीप " में प्रकाशित दर्शन- सम्बन्धी लेखों " शैव दर्शन ", " सांख्य दर्शन ", " महुलित पाशुपति दर्शन ", " कालान्तर मीमांसा ", " कणाद दर्शन ", " ईश्वर दर्शन ", " मायावाद और विशुद्धाद्वैतवाद ", " भारत और यूनान के दार्शनिक ", " प्रतिभा दर्शन " आदि में गूढ़ पाण्डित्यपूर्ण विवेचन, पुनर्व्याख्या और तुलनात्मक समीक्षा मिलती है, " शैव मतावलम्बी परम कारुणिक भक्त वत्सल शिव को ही परम परमेश्वर मानते हैं और सकल जीव को पशु लिखा है। पाशुपत-दर्शन में परमेश्वर को ही कर्मादि-निरपेक्षकर्ता माना है, इसकी शैव- मतावलम्बी स्वीकार न कर यह कहते हैं कि जो मनुष्य जैसा कर्म करता है, परमेश्वर तदनुरूप फल देता है।[1] "

दर्शन सम्बन्धी लेखों की विशिष्टता उनकी बोधगम्य भाषा विवेचनात्मक शैली और स्पष्ट वैचारिक पक्ष में है। दर्शन जैसे गूढ़ जटिल विषय के प्रतिपादन में कहीं दुरूहता और क्लिष्टता नहीं आने पायी है।

ख: धर्म- दर्शन सम्बन्धी लेखों ने भारतीयों की सुषुप्त आत्मा को झकझोर कर, उनको अतीत के गौरवपूर्ण दर्शन एवं धर्म के वास्तविक मूल रूप को समझने की अन्तर्दृष्टि प्रदान की और स्वधर्म के प्रति अडिग आस्था जगायी। श्री हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में प्रकाशित हिंदी में " कुरान शरीफ[2] " का अनुवाद तत्कालीन पत्रकारों के धर्म- सम्बन्धी आधुनिक उदात्त दृष्टिकोण का परिचायक है।

१- हिन्दी प्रदीप, मई, १८८२ पृ० १५

२- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका, मई- सितम्बर, १८७५, पृ० १२

3. विज्ञान- सम्बन्धी लेख

सम्भवतः सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ही अपनी पत्रिका " हरिश्चन्द्र मैगजीन " में अनेक विज्ञान- सम्बन्धी लेखों " उष्मा व गर्मी ", " पाला- हिम- तुषार ", " आलोक का प्रकाश ", तथा " चन्द्रमा सूर्य की प्रतिछाया कहता है " को अक्टूबर- मई, १८७४ ई० के अंकों में प्रकाशित कर साहित्य और साहित्येतर विज्ञान को समान महत्त्व दिया था। ये लेख १८७४ ई० के उस काल में लिखे गये थे, जब हिन्दी गद्य में विज्ञान सम्बन्धी लेखन की कोई परंपरा नहीं थी। हिन्दी गद्य का परिष्कृत- प्रांजल स्वरूप भी पूरी तरह से निखर नहीं पाया था। ये लेख सामान्य हिन्दी का ज्ञान रखने वालों को पूरी तरह से समझ में आते हैं। उदाहरण- स्वरूप बिहारी बाबू द्वारा लिखित " पाला- हिम- तुषार " की कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं - "" जब वायु में की गर्मी घनी भवन बिन्दु के नीचे आ जाती है तब पाला जमने लगता है और यह बात विशेष करके शीतकाल में सूर्य की किरणों के निर्बल या निस्तेज हो जाने से होती है।

घनी भवन वह क्रिया या व्यापार है जिससे जल हिम के रूप में बदल जाता है। ---- हिम जल से प्रायः नौ गुना हल्का होता है। इसी कारण यह सर्वदा जल के ऊपर उतराया करता है---- सब द्रव बराबर या एक ही परिमाण के शीत में नहीं जमते जैसे अंगूर का तेल ५० अंश पर जमता है, जल ३२ अंश, दूध ३० अंश और पारा तो जब तक नहीं जमता जब तक उसका न या हो कि शून्य से भी ३६ अंश नीचे।[१] ""

अन्य पत्रिकाओं " हिन्दी प्रदीप ", " सार सुधा- निधि ", " समय विनोद " आदि में भी विज्ञान सम्बन्धी लेखों का प्रकाशन

१- हरिश्चन्द्र मैगजीन, २० अक्टूबर, १८७४ पृ० २१२

हुआ था। " हिन्दी प्रदीप " में संभवतः सबसे अधिक ज्ञान- विज्ञान सम्बन्धी लेख प्रकाशित हुए थे। इनके प्रमुख वैज्ञानिक लेखों - " वायु का वर्णन " (नवम्बर १८७७), " जल का बीक " (जनवरी १८७८), " पुष्प निरूपण " (जून १८७८), उष्मा (हीट) संयोजन (कोहेशन) की रीतियाँ हैं। " (फरवरी १८७६) " पदार्थवाद "(दिसंबर, १८७७), " जल का वर्णन " (अप्रैल १८७८), " प्राचीन और आधुनिक विज्ञानियों के पदार्थ निरूपण में अंतर " (१८८०) " मंगल के उपग्रह " (मार्च १८७८), " धूमकेतु " (१ जुलाई १८८१), " पुष्प निरूपण " (अप्रैल, १८८६), " परमाणु और आत्मा " (जुलाई १८८१) आदि में वैज्ञानिक नियमों का परिचय सरल भाषा, तर्कसंगत शैली में व्यावहारिक उदाहरण आदि देकर कराया गया है- "" जब हम पिचकारी का मुँह पानी में रखकर उसके छेद की खींचते हैं तो पानी पिचकारी के भीतर चला जाता है। इसी तरह किसी नली का एक मुँह पानी में डाल कर, दूसरे और मुँह लगा कर स्वयं ऊपर खींचें तो पानी मुँह तक चढ़ जाता है ग्रीस (Greece) के विज्ञानों ने इसी बात को देखकर यह सिद्धान्त कि " प्रकृति शून्य से घृणा करती है। " (Nature abhors Vaccum.) निकाला। ""

" सार सुधानिधि " साप्ताहिक में " पदार्थ विज्ञान " (२० जनवरी १८७६), धारावाहिक), " जड़ पदार्थ के विशेष नियम " (१२ मई १८७६), " वायु शक्तियों का तड़ित विषय ज्ञान " (१५ सितम्बर १८७६ धारावाहिक) आदि लेखों में वैज्ञानिक विषयों का अत्यन्त व्यवस्थित एवं प्रौढ़ चित्रण किया गया है। संपादक ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट किया था, "" हम ऐसी बुद्धि के पक्षवर्ति होकर विज्ञान शास्त्र का स्थूल- स्थूल को इस क्रम से कहा चाहते हैं कि जो बात पहिले नहीं कही गयी है। --- अर्थात्

१- हिन्दी प्रदीप, जनवरी, १८७८

ज्ञातव्य बातें उत्तरोत्तर जानते जायें जिससे कि समझने में किसी प्रकार की गड़बड़ न पड़े।[1]" " पदार्थ विज्ञान " धारावाहिक में क्रमबद्ध रूप में विज्ञान का गंभीर विवेचन किया गया है " पदार्थ विज्ञान " जिस विद्या को पढ़ने से छः पदार्थों के गुण माने जाते हैं उसे पदार्थ विज्ञान कहते हैं।

छः पदार्थ - हम लोग ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जिनका गुण प्रत्यक्ष करते हैं, वह छः पदार्थ हैं।[2]"

" नागरी प्रचारिणी पत्रिका " का विज्ञान सम्बन्धी लेख " मेघ तारों का प्रत्यक्ष वृत्तांत " (१८९७) इन्हीं लेखों की शैली बड़ा प्रकाश डालता है।

उपर्युक्त विज्ञान सम्बन्धी लेखों में " जागरण " प्रत्यक्ष लक्षित नहीं है तथापि इन्होंने वैज्ञानिक ज्ञान को तर्क संगत, वैज्ञानिक शैली और स्पष्ट भाषा में उपलब्ध कराकर हिन्दी को सम्मान पर प्रश्नचिह्न लगाने वाले शैली व प्रेमियों की बातें तोड़ी थी। इन लेखों की भाषा शैली से रूपान्तरित, आधुनिक संस्कृतनिष्ठ अनुवादित हिन्दी के स्थान न होकर प्रभावशाली, सुबोध मौलिक चिन्तन की सुविचारित भाषा है जो आज भी विज्ञान सम्बन्धी लेखों के लिए आदर्श हो सकती है। इन लेखों में विज्ञान का काल्पनिक चित्रण न होकर कार्य- कारण और वैज्ञानिक नियमों से पुष्ट वैज्ञानिक विवेचन किया गया है, ये लेख पाठकों में बौद्धिक विचारणा, वैज्ञानिक तर्कशीलता एवं भौतिक दृष्टिकोण विकसित करने में सक्षम हैं क्योंकि इसका हिन्दी पाठकों में नितान्त अभाव था।

१- " सारसुधानिधि " २० जनवरी १८७६ पृ० २२-२३

२- उपरिवत्

४. कानून, राजनीति एवं अर्थशास्त्र

१९ वीं सदी का उत्तरार्द्ध भारत में राजनीतिक, संवैधानिक तथा आर्थिक उथल पुथल की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रहा था। इन परिवर्तनों का प्रभाव पत्रकारिता की विषय- सामग्री पर पड़ना स्वाभाविक ही था। साहित्येतर विषयों में राजनीति, कानून, अर्थशास्त्र सम्बन्धी लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी गयी। इनका स्पष्ट उद्देश्य जन-सामान्य को संवैधानिक, राजनीतिक- आर्थिक- चेतनायुक्त सामग्री प्रदान करना था। कुछ प्रतिनिधि कानून तथा राजनीति लेखों में " राजा और राज्य " (सार सुधानिधि, १७ मार्च १८७६) " इंग्लैंड की शासन प्रणाली " (वही, २१ अप्रैल १८७८) , " पार्लियामेंट और मारलबर्ग " (वही, १४ अप्रैल १८७६) " शस्त्र संबंधी नया आइन " (वही १० फरवरी १८७६) , " राजनीति की भी क्या ही विचित्र गति है " (वही , ११ अगस्त १८७६), " व्यवस्था का कानून " (हिन्दी प्रदीप , दिसम्बर १८७७) , " पोलिटिकल स्कूलेज " (वही , मई १८८८) , " इंडिया कास्टिंग एक्ट के नये कायदे " (वही , फरवरी - मार्च १८९३) आदि में " न्याय तथा प्रशासनिक व्यवस्था का विश्लेषणात्मक अनुशीलन हुआ है। उदाहरण के लिए " व्यवस्था का कानून " लेख का कुछ अंश दर्शनीय है- "" यह उस शास्त्र का नाम है जो राजा अपने राज्य प्रबंध के लिए प्रचलित करता है---- दफा १० में जो सड़क और बाट के बनाने , मरम्मत करने सुधारने के विषय में चर्चा है उसका कदाचित् यही तात्पर्य है कि जिस मार्ग से होकर सामवान लोगों का अधिकार आगमन है उसी के बनाने और मरम्मत करने की आज्ञा है।[१] "" इन लेखों में तत्कालीन कानून, न्याय तथा राजनीति- व्यवस्था में गहरे प्रश्नचिह्न लगाये गये हैं।

अर्थशास्त्र संबंधी प्रमुख लेखों में " वाणिज्य "(भारत-मित्र , १५ जून, १८७८ पाक्षिक) " ग्लासगो सिटि बैंक " (१० अक्टूबर,

---

१- हिन्दी प्रदीप , दिसंबर , १८७७ पृ० ७५

१८७८) " वाणिज्य " (सार सुधानिधि, २८ अप्रैल १८७९ धारावाहिक), " अर्थशास्त्र " (वही, १० मार्च १८७९) " धन " (वही, ३ फरवरी १८७९) " पत्र-मुद्रा " (११ अगस्त १८७९) " ट्रेडर या व्यापारी " (१५ मई १८७९) थे। " हिन्दी प्रदीप " में प्रकाशित " अर्थशास्त्र ", " व्यापार विद्या " प्रतिनिधि रेशम का व्यापार " आदि में अर्थ-विज्ञान, व्यापार- सम्बन्धी गंभीर जानकारी दी गई है। " भारतमित्र " के " वाणिज्य " लेख की कुछ प्रतियाँ " वाणिज्य में तीन बात की बड़ी आवश्यकता है एक तो काम के अनुसार विचार करना, दूसरे काम के अनुसार परिश्रम करना और तीसरे चित्त के बाहर सर्व न करना परन्तु इन तीनों के साथ धर्म का सम्बन्ध किसी प्रकार से नहीं छोड़ना चाहिए।"[1]

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि पाठकों को विज्ञान के सभी पक्षों का ज्ञान करा दिया जाता था।

5. पुरातत्त्व, इतिहास, पुरोल आदि

पुरातत्त्व, इतिहास, भौगोलिक ज्ञान आदि के प्रति अतीव जिज्ञासा और अनवरत साहसिक खोज " नवजागरण " (रेनेसां) की देन है। इस काल में भारत प्राच्य- पाश्चात्य विद्या अन्वेषकों की पुरातत्त्व, प्राचीन इतिहास सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का केन्द्र रहा। जर्मन पुरातत्त्ववेत्ता जेम्स फर्गुसन, फ्रांसीसी जिओनेसी, सर जोसेफ स्टाउन, एमिलीनाई (जो कि बमिलेसों के अध्येता) आदि ने भारत, चीन आदि खण्डहरों तथा देवालयों आदि से अज्ञात सामग्री को प्रकाश में लाकर पुरातत्त्व इतिहास संबंधी शोध कार्यों को बढ़ावा दिया था। जैसाकि पहले अध्याय में स्पष्ट किया जा चुका है कि नष्टोन्मुख हस्तलिखित ग्रंथों की खोज और पुनरुद्धार पेंच मेक्समूलर

१- भारतमित्र, २४ अक्टूबर १८७८ पृ० ५७-५८

थिबेट, कोलब्रुक, बूलर, पीटर्सन, वेबर आदि सैकड़ों पाश्चात्य अन्वेषकों ने भारतीयों को प्रेरणा और प्रोत्साहन दिया था लेकिन ये सभी कार्य अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी भाषा में हुआ था।

हिन्दी में संभवतः सबसे पहले भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पुरातत्त्व और इतिहास सम्बन्धी खोजों में अपनी प्रकाण्ड प्रतिभा का परिचय " पुरातत्त्व संग्रह " धारावाहिक लेख में दिया था जो १८७२ से ही " कविवचन सुधा ", " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका " तथा अन्य पत्रों में प्रकाशित होने प्रारम्भ हो गये थे। पुरातत्त्व सम्बन्धी गवेषणात्मक कार्यों में उनकी जिज्ञासा और लगन कितनी बढ़ी हुई थी इसके परिचय के लिए कन्नौज, राजा जयचन्द, मंत्रीश्वर, पंचालार, नागमंगला आदि के दान-पत्र लेखों को देखा जाना चाहिए। उन्होंने काशी के औरंगजेब के फाटक, इण्डियन म्यूजियम के पत्थर के टुकड़े के नीचे, बोधगया, वैद्यनाथ के मंदिर आदि जैसे उपेक्षित स्थानों से महत्त्वपूर्ण उत्कीर्ण लिपि तथा ऐतिहासिक पुरातत्त्व सम्बन्धी खोज की थी, " इण्डियन म्यूजियम (Indian Museum में एक पत्थर के मुंडेर के एक टुकड़े पर नीचे की ओर निम्नलिखित लेख लिखा है। यह पत्थर अशोक के चार लिपियों का है परन्तु यह लेख सन् ईस्वी दो सौ बरस पहले का नहीं हो सकता। यह गुप्ताक्षर में पुराचीन रीति से लिखा है :

" दो पढ़का कता येसां दान ९ ९ महमनिवाचायूयं। " २

इतिहास सम्बन्धी लेख प्रायः सभी पत्रिकाओं में बहुतायत से प्रकाशित हुए थे। कुछ प्रमुख लेखों में " हरिश्चन्द्र चन्द्रिका " में

१- हरिश्चन्द्र मैगजीन, १५ नवम्बर १८७७ (पुरातत्त्व संग्रह लेख)

२- भारतेन्दु ग्रंथावली (तीसरा भाग) पृ० १२७

प्रकाशित " महाराष्ट्र देश का इतिहास " (खण्ड ३-४, १८७५-७६) , " उदय पुरोदय " (१८७७) , " बूंदी का राजवंश " (१८८१-८२) , " काश्मीर- कुसुम " , " बादशाह दर्पण " आदि थे । " हिन्दी प्रदीप " में छपे " प्राचीन इतिहास " (जनवरी १८९८) , " अकबर और नेपोलियन " (अगस्त, १९०३) , " नेपाल का संक्षिप्त इतिहास " (जनवरी,१९०६) आदि लेखों में ऐतिहासिक दृष्टि एवं ज्ञानवर्धक तथ्यों का समावेश है । इनमें " इतिहास के विकास सिद्धान्त " को स्वीकार किया गया है । पाठकों को भौगोलिक जानकारी देने के लिए " हिन्दी प्रदीप " ने धारावाहिक लेख " नृपतिवंशिनावली " तथा " झरने नदियों का विवरण " आदि मुद्रित किये थे । " ब्राह्मण " में " सिंध राजवंश " , " सूबे बंगाल का भूगोल " , " त्रिपुरा का इतिहास " आदि इतिहास- भूगोल सम्बन्धी लेख पाठकों को महत्त्वपूर्ण जानकारी देते हैं । " सार सुधानिधि " में प्रकाशित " पृथिवी गोलाकार है " (२७ जनवरी, १८७६) , " खगोल दर्पण " (१८८०) धारावाहिक) में विज्ञान सम्बन्धी आधुनिक जानकारी दी गयी है । " नागरी प्रचारिणी पत्रिका " में प्रकाशित " जापान का संक्षिप्त इतिहास " (१८९९), " शाक्यवंशीय गौतम बुद्ध " (१८९९) कौशांबी (१९००) आदि उत्कृष्ट ज्ञानात्मक साहित्य और हिन्दी पत्रकारिता के बढ़ते स्तर को प्रकट करते हैं । " पियूष प्रवाह " में प्रायः हर अंक में " गणित या ऐसा गणित " का प्रकाशन " (२५ अक्टूबर १८८५) , " गणित " (२५ अगस्त,१८८४) आदि गणित सम्बन्धी सामग्री अवश्य रहती थी । उदाहरण के लिए " मिडिल या नार्मल स्कूल के लड़कों के लिए छुट्टी स्वाल " (२५ मार्च १८८४) में गणित के प्रश्नों का रूप इस प्रकार था -" ग्यारह लाख, ग्यारह सहस्र ग्यारह सौ ग्यारह में तेरह हजार , तेरह सौ, तेरह घटाने से कितना होगा ? ।"[1]

इन छुट्टी स्वालों आदि से भारतीय विद्यार्थियों

१- पियूष प्रवाह , २५ मार्च १८८४ पृ० ९-१०

का कुछ मस्तिष्क कुटीला बनाने के लिए प्राय: अधिकांश पत्रिकाएं शिक्षाप्रद ज्ञानात्मक विषय पर प्रकाशित करती थी। इन लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि उस काल के संपादक विविध विषयों के जानकार थे। वे एक साथ ही गणितज्ञ, साहित्यकार, चिन्तक, शिक्षक, कवि के रूप में बहुमुखी व्यक्तित्व का परिचय देकर सभी विषयों का ज्ञान पाठकों को कराना चाहते थे जिससे वे मानसिक रूप से चेतित होकर अपना खोया हुआ सम्मान पा सकें।

6. भाषा-सेवा एवं पत्र-संपादन

भारतेन्दुयुगीन पत्रकार भाषा सामग्री और पत्रों की शक्ति से पूर्ण परिचित थे। उनके बल पर वे सत्ता और समाज का रुख बदलने की ताकत रखते थे। उन्होंने हिन्दी- भाषा सम्बन्धी शिल्प, वर्ण, लिपि, स्वरूप परिष्कार पर व्यापक विचार किया था ताकि उसके कोश-उपांगों, शब्दावली, व्याकरण आदि को सशक्त रूप दिया जा सके और वह उर्दू- अंग्रेजी भाषा की प्रतिस्पर्धा में सिर ऊंचा उठा कर आधुनिक ज्ञान- विज्ञान की वाणी दे सके। इसके अलावा उन्होंने न्यायालयों- प्रशासन आदि में हिन्दी को समुचित स्थान दिलाने के लिए आन्दोलन चलाया। व्यापक हिन्दी प्रचार के लिए स्थानों सेत विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं में मिलते हैं। " मित्र विलास " (१८७७), सुधावर्षक (११ फरवरी १८८४), " भारत सुदशा प्रवर्तक " (दिसम्बर, १८८१), भारतमित्र (१७ मई, १८७९), " सार सुधानिधि " (१३ जनवरी ,१८७९), " हिन्दी प्रदीप " (अगस्त १८८०,अक्टूबर १८८२, जुलाई १८८३) आदि पत्रों ने उपेक्षित लोक भाषा हिन्दी को सम्मान और स्थान दिलाने के लिए व्यापक अभियान चलाया था।

इस काल को प्राय: सभी पत्रिकाओं में इतने अधिक भाषा- सम्बन्धी लेख प्रकाशित हुए थे कि सभी के नामों की सूची बहुत लम्बी

हो जायेगी। कुछ प्रतिनिधि भाषा सम्बन्धी लेखों में "हिन्दी प्रदीप" में प्रकाशित "हमारी भाषा क्या है ?" (जून १८८२), "भाषा कैसी होनी चाहिए ?" (फरवरी १८८६), "भारतवर्ष की जातीय भाषा" (दिसंबर, १८८६), "देशी भाषा देशी अखबार" (जनवरी, १८९२), "मिश्रण प्रसाद" का "भाषा के हिन्दी शब्दों का प्रबंध" (२५ मार्च, १८८४), "सार सुधानिधि का धारावाहिक "हिन्दी भाषा" (२० जनवरी १८७९ से) "हरिश्चन्द्र मैगजीन" का 'हिन्दी भाषा" (बीबी १५ अक्टूबर १८७३) "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के "यूरप के लोगों में संस्कृत का प्रचार" (१८९७) "भारतवर्षीय भाषाओं की जांच" (१८९९), "राष्ट्रभाषा" (१८९९), "पाली भाषा" (१९०० ई०) आदि थे। इनमें भाषा विज्ञान संबंधी व्यापक ऐतिहासिक दृष्टिकोण देखने को मिलता है।

पत्रकारिता सम्बन्धी लेखों में "समाचार पत्र किसे कहते हैं ?" (कुर्सेदी पत्रिका १ मार्च १८९५), "संपादकों की उत्तेजना" (हिन्दी प्रदीप, १८७७), "संपादक की प्रतिकूलता" (वही, दिसम्बर, १९०३) तथा "भारतमित्र" (९२ दिसम्बर १८७८) "सारसुधानिधि" (१७ फरवरी १८७९), "भारतजीवन" (१३ अक्टूबर १८८४), "आनन्द कादम्बिनी" (पौष संवत् १९३८ अंक ६) "सभ्य विनोद" (मई १८७६) आदि पत्र-पत्रिकाओं में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट १८७८ का विरोध तथा प्रेस की स्वाधीनता की महत्ता पर बल दिया गया था।[१]

१- यदि देशी पत्र न होवें तो देश में एकदम अन्धकार सा छा जाय। सरकार को कभी न जान पड़े कि प्रजा कैसी है ? और क्या कहती है जो स्व प्रकार तो देशी समाचार पत्र सरकार के राज करने की मुआ है।"

- भारतजीवन, १३ अक्टूबर १८८४

7. शिक्षा, स्वास्थ्यशास्त्र, मनोविज्ञान आदि

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक में आधुनिक शिक्षा का तीव्र गति से विस्तार हुआ। १८४४ के "वुड डिस्पेच" में बनाक्युलर प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा देशी विद्यालयों में देशी भाषाओं के माध्यम से दी जाने लगी। शिक्षा का मुख्य लक्ष्य पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को किताबी शिक्षा देना हो गया। फलस्वरूप हिन्दी में पाश्चात्य ज्ञान के विविध विषयों पर पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण का सिलसिला तेजी से प्रारम्भ किया गया। पाठ्य-पुस्तकों के पर्याप्त मात्रा के अभाव में भारतीय छात्रों के लिए पत्र-पत्रिकाओं में ज्ञानात्मक विषय प्रकाशित कर उन्हें विद्यालयों में विहित किया जाने लगा। "काशी पत्रिका" आदि बालकों की शिक्षा सम्बन्धी पत्रिका बना दी गयी।

पत्र-पत्रिकाओं ने शिक्षा, स्वास्थ्यशास्त्र, मनोविज्ञान, कृषि, आदि पर भी लेख प्रकाशित किये थे। "हिन्दी प्रदीप" में "स्त्री-शिक्षा" (अक्टूबर, १८९९), "शिक्षा का प्रकाश" (जून, १८९८), "हिन्दुस्तान में लोहे का नक्शा-तुलनात्मक" (दिसम्बर १८७७), "कृषि की कुकल्पित दशा" (जुलाई-अगस्त १९०५), "मनोविज्ञान" (जनवरी, १८८०) "स्वास्थ्य की भिन्न अवस्था" (जुलाई १८९७) आदि लेख प्रकाशित हुए जिनमें पाठकों को इन विषयों के आधुनिक स्वरूप की जानकारी दी गयी थी।

"सार सुधानिधि" पत्रिका में "आयुर्वेद" (१३ जनवरी, १८७९), "जन समाज का कर्तव्य" (२० जनवरी, १८७९), "हिन्दू समाज" (२७ जनवरी १८७९ धारावाहिक), "विश्वविद्यालय और संस्कृत शिक्षा" (१४ जुलाई, १८७९), "वैज्ञानिक कृषि की लाभ-

व्यवहार " (१८८०) आदि गुरुत्वपूर्ण चिन्तन से युक्त प्रौढ़ रचनाएं हैं। आधुनिक गंभीर विचार- शृंखलायुक्त ज्ञान- सामग्री का प्रकाशन इन पत्रिकाओं का वैशिष्ट्य था।

" नागरी प्रचारिणी पत्रिका " में बाबू श्यामसुन्दर दास द्वारा लिखित लेख " पश्चिमोत्तर प्रदेश तथा अवध में अदालती कार और प्राइमरी शिक्षा "[१] (१८९८) का कुछ अंश द्रष्टव्य है - " ३१ मार्च १८९६ को ५०३१६ बालक उर्दू और १००५०४ हिन्दी पढ़ते थे -

परीक्षा पास करने वालों की संख्या

वर्ष	उर्दू	पास प्रति सैकड़ा	हिन्दी	पास हुए प्रति सैकड़ा
१८९१-९२	११२१	४१	६२८	३५१ ५६
१८९३-९४	२९७७(१४२८)	४८	७९२	४०६ ५१
१८९५-९६	२८१२(१२३७)	४४	७८५	४७४ ६०

9. व्यावहारिक ज्ञान

साहित्यिक तथा ज्ञानात्मक पक्ष के साथ दैनिक जीवन में काम आने वाले व्यावहारिक ज्ञान को भी इन पत्रों ने उपेक्षा नहीं किया था। " हिन्दू प्रदीप " , " मिश्रबन्धु प्रकाश " , " भारत जीवन " आदि में " कामकाजी " आदि स्तम्भों में उपयोगी ज्ञान प्रकाशित किया जाता था, " कीचड़ ऐसी चीज है कि जिससे हर प्रकार की दुर्गन्धि दूर

१- नागरी प्रचारिणी पत्रिका , (१८९८) पृ० १२५

हो सकती है। जिस कूप या सरोवर आदि का पानी दुर्गन्ध करता हो उसमें कीचड़ और मल आदि का पानी अत्यन्त स्वच्छ हो जायेगा और किसी प्रकार की दुर्गन्धि न रहेगी।[1]" इसी प्रकार स्वास्थ्य सम्बन्धी लेख पर्याप्त मात्रा में प्रकाशित हुए थे।

विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं के मनोरंजक लेख का विवेचन करने पर ये तथ्य सामने आते हैं कि ये पत्रिकाएं पाठकों का नैतिक, बौद्धिक एवं शारीरिक विकास कर जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करना चाहती थीं। आधुनिक ज्ञान के उन सभी पहलुओं और वैज्ञानिक उपलब्धियों से परिचित कराना चाहती थी जिन्हें हिन्दी भाषा जनता के लिए नवीन ज्ञान के साथ में जानना आवश्यक ही था।

इन लेखों की भाषा में प्रवाह बोधगम्यता एवं प्रसंगानुकूलता देखी ही जाती है। गूढ़ विषयों में भी भाषा सामान्य बोल चाल की है तथा विचारों और भावों के प्रकाशन में पूर्णतः सक्षम है। जागरण की जाग्रत- चेतना परोक्ष रूप में इन लेखों के विषयों, दृष्टिकोण एवं भाषा में झलकती है जो पाठकों को सरल शैली में ऐसे-ऐसे आधुनिक विषयों से परिचित कराती है जो पत्रकारिता माध्यम के बिना उनको पहुंच के बाहर थे।

१- हिन्दी प्रदीप, सितंबर, १८८७ पृ० ६-७

[illegible]

राष्ट्रीय [illegible] का [illegible]

की

प्रेरणा

7. राष्ट्रीय नवजागरण का पत्रकारिता को प्रदेय

आधुनिक हिन्दी पत्रकारिता " राष्ट्रीय नवजागरण " (रैनेसाँ) की उपज है। पत्रकारिता का आधुनिक व्यक्तित्व, कृतित्व और चरित्र रैनेसाँ काल में ही निखरा। उस काल की हिन्दी पत्रकारिता (१८२०-१८५०) जागृत चेतना के अभाव में कोई स्मरणीय उपलब्धि प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकी थी। पत्रकारिता की जीवन्त सार्थकता, लोक व्यापक आधार, आधुनिकता तथा राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने का श्रेय राष्ट्रीय नवोत्थान को ही दिया जा सकता है।

अतः जागरण युग (लगभग १८५७-१९०० ई०) में पहली बार पत्रकारिता में सत्य कलात्मक सौन्दर्य, मान-आत्म-गौरव, दृढ़ संकल्प शक्ति और सुजनता उद्भासित हो उठी थी। परिमाण, गुणवत्ता तथा श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से पत्र-पत्रिकाएँ गौरव की अधिकारिणी तभी हो पायी थीं जब उनमें राष्ट्रीय भाव तथा विद्रोह का एक आवेग उदित हुआ। फलस्वरूप लोक से हटकर हिन्दी में तेजस्वी राष्ट्रीय पत्रकारिता का स्वरूप उभर कर सामने आया।

" राष्ट्रीय रैनेसाँ काल में हिन्दी पत्रकारिता में कुछ ऐसे श्रेष्ठ मूल्य स्थापित हुए थे जिनका यहाँ विवेचन करना अप्रासंगिक न होगा क्योंकि तभी पत्रकारिता के उन्नयन में रैनेसाँ के वास्तविक प्रभाव और प्रदेय का आकलन संभव है।

१- स्वस्थ, सात्विक राष्ट्रीय परंपरा का सूत्रपात

हिन्दी पत्रकारिता ने प्रारम्भिक स्वर ब्रिटि

राजभक्ति और प्राणिधान से पूरित थे। वह उनके भक्षक-पोषक रूप पर कभी कुछ कह और कभी प्रत्यक्ष रूप से मोटे व्यंग्यात्मक वार करती थी। उसमें वह गरम उबलता हुआ लावा और उफनता हुआ बारूद नहीं दिखायी देता जो जागृत राष्ट्रीय पत्रकारिता का अपरिहार्य गुण होता है। क्योंकि स्पष्ट किया जा चुका है कि इन पत्र-पत्रिकाओं को प्रारंभ में रानी विक्टोरिया आदि की घोषणाओं, अंग्रेजी शिक्षा, न्याय-व्यवस्था, प्रशासनिक पद्धति आदि में अगाध आस्था और उनके वादों में दृढ़ विश्वास था। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाएँ राष्ट्र-भक्ति और राज-भक्ति के बीच कैसी एक विचित्र ऊहापोह और अन्तर्द्वन्द्व की मनोवृत्ति से अभिभूत दिखायी देती हैं, किन्तु राष्ट्रीय जन-जागरण की तीव्र लहर ने उनका मोहभंग कर एक प्रकार का दिया था। लगभग १८७० के बाद इन नव जागृत मानस ने बिना किसी लागलपेट और एकांगिता वाद की प्रश्रय दिये, प्रायः सौंसी शब्दों में तत्कालीन कुव्यवस्था और राष्ट्रीय दैन्य की कड़ककारा था। "हमारा कथन है कि राजभक्ति और प्रजा का हित दोनों का साथ कैसे निभ सकता है? जैसे खेना और गाल फुलाना, बहुरी बजाना और उलटाई का बजाना एक साथ नहीं हो सकता। अंग्रेजी में एक कहावत है - "If you wish to please half the world mind not what the other half says'

यदि तुम आधी दुनियाँ को राजी रखना चाहो तो दूसरे आधे के कहने पर ध्यान मत दो। सारांश यही ठहरा कि मनुष्य से एक ही और का काम सध सकता है।--- राजभक्ति का फलनिःसंदेह फलते देखने में बड़ा मीठा है पर परिणाम बड़ा भयंकर और दुःखदायी है। इसे बुरा खाते-खाते मनुष्य क्षीण-वीर्य, क्षीण-स्वत्व और क्षीण-तेज हो जाता

१- हिन्दी प्रदीप, दिसंबर, १८८२ पृ० २

है। एक-एक में दास्य भाव कर्म अर्थात् दूसरे के चित्त के समान ऐसा कार्य कर जाता है, दूर करने की तदबीर करो, कुछ कारगर नहीं होती --- प्रजा के लिए का फल यद्यपि देखने कड़ुआ, कठोरा और अरोचक है पर अन्त को बड़ा उत्तेजक, बीजोत्पादक और पौष्टिक है। इस फल के लाने वाले देशोपकारी, सर्व-धन हितैषी और बड़े उदार प्रकृति के होते हैं।"[1]

इस प्रकार पत्रकारिता में एक ऐसी नवीन राष्ट्रीय चेतना का अंकुरण हुआ जो देश-भक्ति और राजभक्ति को दो विपरीत ध्रुव मान कर क्रीयो शासन की धज्जियाँ उड़ा कर रख देती थी। यह "हैरिसन" का ही प्रभाव था कि राष्ट्र भक्त संपादकों ने पत्रकारिता को व्यवसाय बना कर लाभ और बिक्री की आशा से निष्पक्षतापूर्ण सामग्री का सृजन और चयन नहीं किया। वे व्यावसायिक लटकों और सस्ते बाजारू प्रचार-साधनों से दूर राष्ट्रहित तथा जनता के प्रति ईमानदारी को सर्वोपरि महत्त्व देते रहे। पत्रों के सम्पादन में स्वीकृत उच्च मानदण्डों- दायित्व बोध, स्वतन्त्रता, सत्यता, नैतिकता तथा निष्पक्षता आदि को सरकार पर उत्पीड़न अधिकारों पर-प्रहारों ने उभारा है। नव चेतना ने उनमें आतंक और दमन को प्रतीक क्रीयो सरकार से सीधी टक्कर लेने का स्थैर्य शक्ति तथा साहस जगा दिया था। अतः सरकार के दमन और दबाव से घबरा कर तथा सामाजिक बहिष्कार के डर से उनका स्वर दब नहीं गया, उनकी हुँकार में विद्रोह की गूँज क्रमशः गहरी होती गयी थी। जागरण से पूर्व पत्रकारिता सरोवर के बंधे जल की तरह शांत थी, जागरण आन्दोलन के उदय होने पर उसमें उन्मुक्त प्रपात की तरह तेज गर्जन-तर्जन और उल्लास सुनायी देने लगती है। कैसे- कैसे राष्ट्रीयता की भावना प्रवाहित होती गयी हिन्दी पत्रकारिता के संदर्भ पर "हिन्दी केसरी", "अभ्युदय", कर्म-योगी", "प्रताप", सत्याग्रही, शक्ति, भविष्य, विद्यामित्र, महारथी"

1- हिन्दी प्रदीप, दिसम्बर, 1882 पृ० 2

" लाव ", " स्वतन्त्र " तथा " वीर अर्जुन " आदि निर्भीक राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं की एक अटूट शृंखला प्रारंभ हुई जिन्होंने भारतेन्दुकालीन पत्रों की परंपरा को आगे बढ़ाते हुए राष्ट्र के उच्च आदर्शों के लिए जीने- मरने का संकल्प लिया।

२- वीरोचित संघर्ष एवं स्वाभिमान युक्त जीवन

" रैनेसाँ " के प्रभाव ने पत्रकारिता के चरित्र और लोग को नयी दृष्टि, आदर्श और गरिमा प्रदान कर उन्हें स्वाभिमान युक्त जीने की राह की ओर अग्रसर किया। फलतः पत्र-पत्रिकाओं में नयी जिजीविषा, अप्रतिहत कर्तव्यनिष्ठा, साहसिकता और स्वाधीनता का स्फुरण हुआ। तत्कालीन हिन्दी पत्र जो अनवरत विफलता, विपन्नता और दमन की यातनाओं से झुक रहे थे, उनमें पलायन, आत्मदया, निराशा और संकल्प के भाव न आ पाना रैनेसाँ जनित वीरोचित साधना तथा आस्था अभिचेतना का ही परिणाम था। स्वावलम्बन और स्वाभिमान के साथ सिर उठा कर जीना, बोलना और स्वाधीनता के लिए झूकना इनका केन्द्रीय बिन्दु है। इन पत्रों के शब्द- शब्द में छलछलाता राष्ट्राभिमान और संघर्ष से डट कर मुकाबला करने की दृढ़ता क्या आकर्षण के बिना संभव थी? अतः नवोत्थान ने इन राष्ट्रीय माध्यम को चिनगारी स्फ्रिट, स्वच्छ प्राणदायिनी ऊर्जा, बौद्धिक स्वातन्त्र्य तथा स्वाभिमान युक्त जीवन के सिद्धान्त देकर उनमें राष्ट्रीय जागरण के लिए वीरोचित समर्पण की चिंगारी सुलगा दी थी, " देशीय संपादकों! सावधान! कहीं जेल का नाम सुनकर कर्तव्य-विमुख मत हो जाना। यदि धर्म की रक्षा करते हुए जेल जाना पड़े तो क्या चिंता है। इनमें मान हानि नहीं होती है। शासकों के जिन अन्यायपूर्ण आचरणों से गवर्नमेंट पर सर्वसाधारण की आस्था हो सकती है उनका यथार्थ प्रतिवाद करने में यदि जेल हो क्या कोपाकांक्षित भी होना पड़े तो क्या बड़ी बात है। क्या इस सामान्य विभीषिका से हम अपना कर्तव्य छोड़ बैठें?"[१]

१- उचितवक्ता, मई १८८३

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि नव-राष्ट्रवादी-चेतना ने पत्रकारिता की उज्ज्वल चरित्र की गरिमा देकर उसे कितना ऊँचा उठा दिया था। फलतः उसने अपने उच्च सिद्धान्तों से विचलित होकर कभी गलत समझौता नहीं किया।

३- सत्ता को चुनौती

सत्ता को चुनौती देने की परंपरा तो पत्रकारिता में प्रारंभ से ही रही है, क्योंकि पत्रकारिता ने स्वयं सत्ता और जनता में से जन-हित को ही चुना है। हिन्दी पत्रकारिता भी इसका अपवाद नहीं थी। उसने सरकार को चुनौतीपूर्ण भाषा में कड़ी शासन के हर अन्याय उत्पीड़न और हर गलत कदम के विरुद्ध आवाज उठायी थी क्योंकि पत्रकारों का स्पष्ट मत था - " कड़ी शासनकर्ताओं का जो ढंग शासन करने का है उससे यह कभी संभव नहीं कि राजा- प्रजा दोनों में मेल रहे और दोनों एक दिल तो कभी होंगे ही नहीं।---- वहाँ यह आशा करना कि अपनी नीति से मुँह मोड़ हमें यों झाँसा बहलाकर देंगे कि हम अपना शासन अपने आप करने लगें, नितांत भूल है।[१] "

" मित्रविलास " ने राजद्रोह की औचित्यपूर्ण सिद्ध करते हुए निम्नांकित शब्दों में कहा था- " यदि राज भक्ति का यही फल है कि हम लोग इस प्रकार की दुर्दशा ही की भोगें तो ऐसी हमारी राजभक्ति को धिक्। ----- यदि राज द्रोह का यह फल है कि गवर्नमेण्ट हमारी खुशामद करे तो निःसंदेह यह राजद्रोह परम उपकारी है यदि कृपा का यही प्रभाव है कि गवर्नमेण्ट भी हमें भय खाके हमारे अन्यायों की कुछ भी ध्यान न दे तो यही कुर

६- हिन्दी प्रदीप, जून १९०६ पृ० २

कर्म करने का साहस प्रदान करे तो वह क्रूर कर्म अच्छा है। ऐसे राजद्रोह और क्रूर कर्म से बहुत काम निकल सकते हैं।"[1]

क्या कहना सो पत्रिका के चुनौतीपूर्ण स्वर को भला अंग्रेजी सरकार कैसे चुप रह कर सहन कर जाती? उसकी "वर्नाक्युलर प्रेस एक्ट" (१८७८) के अन्तर्गत ऐसे लेखों के कारण बार-बार चेतावनी मिली थी वह कई छोटी छोटी बात बात बची थी।[2] भारतेन्दु ने भी भारतीयों को सचेत करते हुए शासकों को अंग्रेजों के आर्थिक शोषण तन्त्र पर प्रहार किया था।[3]

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं का स्वर राजनीतिक जागरण के विकास के साथ-साथ उग्र से उग्रतर होता गया था "हिन्दी प्रदीप" जो भारतेन्दु युग की ही पत्रिका थी "बंग-भंग" (१९०५) के बाद उसकी विरुद्ध टिप्पणी एवं आक्रामक चिन्तन धारा अंग्रेजी सरकार के लिए चुनौती बन गयी थी - आज जो समस्त संसार की परास्त कर जहां-तहां दिखायी देता है, कल वही अपना जब पूरा करके जमाने पर लेटा हुआ पराधीनता का दुःख झेलता देख पड़ेगा।[4] राष्ट्रीय ग्रंथागार के प्रामाणिक गुप्त दस्तावेज और

१- मित्रविलास, २४ जनवरी १८८१ पृ० १

२- होम डिपार्टमेंट, जुडिशियल प्रोसिडिंग्स (बी) मार्च १८८१ नं० १००-१०२

" Subject- proposal to steps under the vernacular press Act against the ' Mitra Vilas ' for publishing seditious articles -letter to Govt. of Punjab No.737 Dated 22nd Feb. 81(National Archieves)

३- "भाइयो! अब तो सम्हल ही जाओ और तान ठोक के अपने सामने खड़े हो तो जाओ। देखो! भारतवर्ष का धन विदेश जाने न पाये, वह उपाय करो-" बालाबोधिनी, जनवरी, १८७४

४- रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स, एन० डब्ल्यू०पी० जनवरी जून १९०८ पृ० ५७४

नेटिव प्रेस की रिपोर्टों के अध्ययन से यह महत्वपूर्ण तथ्य सामने आता है कि तत्कालीन पत्र- पत्रिकाओं की सामग्री में कितनी धधकती हुई विद्रोह की आग सुलग रही थी। वे अंतिम श्वास तक अपने राष्ट्र, समाज और पत्रकारिता के हितों के लिए संघर्ष रत रहीं। उन्होंने टूटना मंजूर किया लेकिन वे किसी के सामने झुकी नहीं। इनकी स्पष्टवादिता तथा जनतापूर्ण तुर्शी भरा आह्वान ही, हिन्दी प्रकोप आदि के बन्द होने का मुख्य कारण बन गया था।

६- मानवतावादी चिन्तन

मानवतावाद में ईश्वरीय सत्ता तथा पारलौकिक चिन्तन को छोड़ कर टूटते- झुकते मानव के संघर्षों, आकांक्षाओं और अन्तों को महत्त्व दिया जाता है। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार मानवतावाद का अर्थ है- चिंतन की वह पद्धति जो मुख्य: मानव को और उसकी शक्ति-सामर्थ्य, जीवन- व्यापारों, ऐहिक महत्वाकांक्षाओं और उसके कल्याण को महत्त्व प्रदान करती है।[1] यूरोपीय पुनर्जागरण में मानव जीवन की सार्थकता, शक्ति और महानता को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया। अत: रैनेसाँ का मूलाधार मानवीय कार्यकलाप और धर्म थे। मानवतावादी ऐहिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप ही चमत्कारिक भौतिक- वैज्ञानिक प्रगति, डार्विन का भौतिक विकासवाद, कार्ल मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद तथा स्वतन्त्रता- समता भ्रातृत्व के सिद्धान्त विकसित हुए।

भारत में उन्नीसवीं सदी के राष्ट्रीय नवजागरण के साथ ही मानवतावादी चिन्तन का आगमन हुआ। बंगला के प्रसिद्ध साहित्यकार शरत के अनुसार कोई भी शास्त्र, श्लोक, मंत्र और तन्त्र मनुष्य से बड़ा नहीं

१- एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वोल्यूम ८ पृ० ११७६-७८

है[1]। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के लेखों तथा अन्य रचनात्मक विधाओं में भी मानवतावादी चिन्तन, अनुभूतियाँ और संदर्भों को लेकर लिखने-लिखाने की चेष्टा की गई। उनकी यह भंगिमा मानवीय जीवन की प्रतिबिंबित करती है, मानव के संघर्ष और दर्द को उकेरती है। ये पत्रिकाएँ ईश्वरीय सत्ता को भी मानवीय निकष पर प्रस्तुत कर मानव की महत्ता उद्घाटित करती हैं, " जिस कसौटी, परिभाषा और सूत्र के अनुसार हम लोग आपस में एक दूसरे को जाँचते-परखते हैं यदि वहाँ भी लाया उसे परखे तो ईश्वरता को सब कसर हुए जाय।[2] "

भारतीय जनता विदेशी शास्त्रों में भी ईश्वरीय सत्ता की परिकल्पना कर उसको दासता, शोषण की तर्क संगत आधार पर औचित्य-पूर्ण ठहराती थी। " जिस जाति के मूल शास्त्रों में हर प्रकरणों में यह प्रतिपन्न हो कि राजा की आज्ञा का प्रतिपालन करना, राजा के दर्शन से पुण्य होता है और जिस जाति के मूल धर्म शास्त्र में उपनिषद् वाक्य अर्थात् ईश्वर का साक्षात् वाक्य " नारायणान्तु नरेन्द्रोऽस्मि " स्पष्ट और प्रत्यक्ष देदीप्यमान दिखायी देता है उस जाति की राज भक्ति कैसे पवित्र होगी।[3] "

तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने उपर्युक्त पुरातन-धारणा का विरोध कर पराधीन भारतीय प्रजा को प्रजातांत्रिक पद्धति और मानवतावाद का पाठ सिखाया, " जिन लोगों का यह प्रण है कि राजा और ईश्वर एक हैं---- तो फिर क्यों हमें यथोचित स्वतन्त्रता नहीं दी जाती ? क्यों हमारी पुकारों की सुनवाई नहीं होती ? टिकट के लिए हम चिल्लाते चिल्लाते थक गये। हिन्दी के दफ्तर के लिए कहते कहते हमारा गला सूख गया। पीड़ित

१- नवनीत, दिसंबर, १९८५

२- धर्मवीर भट्ट सहल, भट्ट निबंधावली पृ० १३

३- भारतमित्र, १२ मई १८७९ पृ० २०६-२०७

प्रश्न ---- बार बार प्रार्थना करता है हमलोगों क्यों नहीं होगी ?[1] " उचित उत्तर " ने भी मानव- समानाधिकार को महत्त्व देते हुए ऐसी बातों को स्पष्ट कर दिया था, " " ब्रिटिश जाति के प्रति हिन्दुस्तानियों को जो आप भक्ति चाहते हैं, तो विचार काल में वर्ण, जाति, धर्म पर दृष्टि न रखियेगा। आप लोग क्या यह ध्यान रखियेगा कि ब्रिटिश राज्य में जितनी प्रजा बसती है विचारकाल में विचारपति के सामने सभी बराबर हैं।[2] "

अतः आधुनिक मानवतावादी चिन्तन तत्कालीन पत्रकारिता में विविध रूपों में अवतरित हुआ था। साधारण मानव के दुःख दुःख, आशा- आकांक्षा की अभिव्यक्ति, लोक- मंगल का विधान, बहुमुखी मानवीय व्यक्तित्व की प्रधानता, नारी जाति को समानाधिकार देना तथा मानव की सांसारिक प्राप्ति को जीवन का आवश्यक अंग मानना इसके प्रमुख तत्त्व थे।

5- आधुनिकता बोध और जाति के प्रति सम्मोहन

" जागरण युग " में " आधुनिकता " का अभिप्राय परिवेश की संस्कृति, भाषा, सभ्यता, शिल्प और शिक्षा को आत्मसात् करने के साथ " राष्ट्रीय भाव " का उन्मेष करना भी था। वर्तमान संदर्भ में " राष्ट्रीयता " पुरातन परंपरागत भाव हो गया है। " नैशनैलिटी " में राष्ट्रीय-चेतना को मुख्य जीवन दायिनी प्राणशक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया था। तत्कालीन हिन्दी पत्रकारिता में " आधुनिकता ", " राष्ट्रीयता " और " भारतीयता "

१- भारत जीवन, ७ मार्च १८८७ पृ० ३

२- उचितवक्ता, अं० ६, १८८०

के भाव परस्पर विरोधी नहीं माने जाते थे यहाँ में उनका बहुत रमणीय दृष्टि-गोचर होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में तत्कालीन लेखकों तथा संपादकों " के हृदय का मार्मिक सम्बन्ध भारतीय जीवन के विविध रूपों के साथ पूरा-पूरा बना था। ---- आजकल के समान उनका जीवन देश के सामान्य जीवन से विच्छिन्न न था। विदेशी लेखकों ने उनकी आँखों में इतनी धूल नहीं झोंकी थी कि अपने देश का रूप-रंग उन्हें सूझना ही न पड़ता। काल की गति से देखते थे, सुधार के मार्ग भी उन्हें सूझते थे, पर पश्चिम की एक एक बात के अभिनय को ही वे उन्नति का पर्याय नहीं समझते थे। प्राचीन और नवीन संधि स्थल पर खड़े होकर वे दोनों का जोड़ इस प्रकार मिलाना चाहते थे कि नवीन प्राचीन का प्राकृतिक रूप प्रतीत हो, न कि ऊपर से लपेटी हुई वस्तु।[1] " इसके विपरीत आज के आधुनिक भारत में " आधुनिकता " का अर्थ है- पश्चिमीकरण। पश्चिम के दर्शन, भाषा, तकनीक आदि के बिना हम भारतीय न हो- रहे हैं, न अपनी संस्कृति पर मुग्ध हो सकते हैं, न सिद्ध सकते हैं। भारतेन्दु तथा अन्य पत्रकारों ने आधुनिकता और भारतीयता को भिन्न नहीं माना था। वे सच्चे अर्थों में आधुनिक होते हुए भी सच्चे भारतीय थे।

अतः तत्कालीन पत्रकारिता आधुनिकता की विशेषताओं से जुड़ी रह कर भी अपनी प्रगतिशीलता, यथार्थपरक दृष्टिकोण, मानवतावादी प्रतिबद्धता तथा राष्ट्रीय बोध में नितान्त आधुनिक थी। तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने अपनी समस्त सामग्री में यही बोध कराया था कि आधुनिकता न कोरी विलायती की नकल या विदेशी शिल्प में है, न सच्ची भारतीयता रूप-रूढ़ता और परंपरा के अंधानुकरण में है। " नूतन सभ्यता के अनुयायी तो यही पुकार मचा रहे हैं

१- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४९५

कि उस महत्त्व को पुनः प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है- शीघ्रातिशीघ्र लौट जाना। जब तक हमारी किसी एक बात में ऐसा भाव भी हिन्दुस्तानीपन बचा रह जायेगा तब तक हम तरक्की नहीं कर सकेंगे।---- जब तक हम अपने को हिन्दुस्तानी मानते रहेंगे तब तक गुलामी का ख्याल हमसे दूर न होगा---- किन्तु पहले के महत्त्व को पाने के लिए जापानियों का जाना बड़ा आवश्यक है।[१]

हिन्दी पत्र- पत्रिकाओं में जापान की ज्ञान-संपदा और गौरवमयी सांस्कृतिक विरासत के प्रति गहरा लगाव देखने को मिलता है। उनमें संस्कृत के श्रेष्ठ ज्ञान- वैभव को पाठकों के समक्ष उपस्थित करने की ललक है। इनकी आधुनिकता जापान की नहीं नकारती, उसके प्रति श्रद्धा भाव है क्योंकि उसने देश में आत्म विश्वास और आत्म गौरव की भावना पुष्ट की है।

जागरण कालीन पत्रकारिता की आधुनिकता उनके लोकोन्मुख दृष्टिकोण और चिन्तन में है। उनका "आधुनिकता बोध" समय की तीव्र धारा के साथ कदम मिला कर चलने का आह्वान देता है, जो जापान के संदर्भों का पुनर्निर्माण कर भारत में युगानुकूल नवीनता और परिवर्तन चाहता है। वे भारत की भौतिक प्रगति के लिए आधुनिक आविष्कृत मशीनों के प्रयोग, विदेश-यात्रा और विस्तृत ज्ञानात्मक साहित्य तथा मानसिक-प्रगति का महत्त्व निरूपित करती हैं। "" केला बनारस की यदि हमारे देश के श्रीमंत, राजा बाबू, सेठ- साहूकार महाजन एकाकार होकर कंपनी खड़ी करें और विलायत से कपड़े आदि की कल मंगा कर जो वस्तु विलायत से बन कर आती है, जिसके वे चौगुने- पचगुने दाम ले लेते हैं, उन रुपयों का कारखाना यहाँ जारी हो--- जो कलों का प्रचार इस देश में हो जाय तो गरीब बिचारे जिनके लिए कुछ उपाय

१- हिन्दी प्रदीप, जून १९०६ पृ० ३

नहीं है उनका भी काम चले और इस देश का रुपया जो नित्य २ लौटा जाता है उसका संचालन देश में हो।[1]"

"कविवचन सुधा" ने अपने को पहले निज औपनिवेशीकरण के बिना राष्ट्रोन्नति को असंभव कहते हुए आधुनिक साधनों के आयात पर जोर देकर आधुनिक भारत- निर्माण में भौतिक प्राप्ति की महत्ता प्रतिपादित की थी।[2]

अतः इस काल की पत्रकारिता में आधुनिकता और परंपरा का स्वस्थ समन्वय और क्रमशः दृष्टिगोचर होता है। उसने भारतीय स्वस्थ मूल्यों और श्रेष्ठ मान्यताओं को नकार कर पश्चिमीकरण को आधुनिकता का कभी अंधानुकरण नहीं किया। केवल पश्चिम से वे ही तत्व ग्रहण किये जिनसे भारत को आधुनिक रूप देने और उसकी प्रगति की दौड़ में सहायता मिल सकती थी। ऐतिहासिक- सांस्कृतिक सत्यात्मकता को महत्व देते हुए "हिन्दी प्रदीप" संपादक का कथन था- "परिवर्तन जिसके हमारे पुराने बुड्ढे अत्यन्त विरुद्ध हैं, इस अस्थिर जगत् का एक मुख्य धर्म है। ---- यह हमारी परिवर्तन-विमुखता ही का कारण है। हमारे धर्म में विदेशियों का पदार्पण सह कर भी एक क्षण भर के लिए जीवनी नाड़ी में रक्त- संचालन न हुआ।[3]" उपर्युक्त धारणाएँ नव जागरण से प्रभावित, बदलती आधुनिक मानसिकता को ही पोषित करती हैं।

6- भारतीय-भाषा और भारतीय-चिन्तन की सर्वोपरि महत्त्व

भारतीय-भाषा और भारतीय-चिन्तन की गरिमा-

१- रमण विनोद तत्वयुक्त सुवर्ण समाचार, १५ जौलाई १८७६ पृ० ४

२- कविवचन सुधा, ६ मार्च, १८७४

३- भट्ट निबंधावली पृ० ११

स्थित करके उसे सबल रूप प्रदान करने का श्रेय " राष्ट्रीय नव जागरण " को दिया जा सकता है। जागरणकालीन पत्रकारिता में भारतीय (राष्ट्रीय) चिंतन तथा भारतीय भाषा हिन्दी के लिए एक दृढ़ संकल्प, एक निश्चित नीति तथा एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण का आग्रह दिखायी देता है। भारतीय नव-जागरण ने पराधीनता के उस काल में स्वराष्ट्रोत्थान तथा स्व धर्म- समाज- भाषा सुधार की प्रबल आकांक्षा जागृत कर दी थी।

भारतीय चिन्तन को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए "कविवचन सुधा " में संपादक भारतेन्दु ने सोते हुए देशवासियों को उठा कर जागरूक किया था, "" हे देशवासियों। अब निद्रा से चौंकों। अपने (स्त्रियों के) भरोसे मत फूले रहो---- ये विद्या (स्त्रियों-शिक्षा) कुछ काम न आवेगी। यदि तुम हाथ व्यापार खोलोगे तो तुम्हें कभी दैन्य न होगा, नहीं तो अंत में यहाँ का सब धन विलायत चला जायेगा और तुम मुँह बाये रह जाओगे।[1] " अतः तत्कालीन पत्रों ने भारतीय उन्नति के लिए स्वदेशी व्यवसाय, शिल्प उद्योग, शिक्षा पर बल दिया। " समय विनोद " पत्रिका ने आजीविका के लिए केवल सरकारी नौकरी पर निर्भर न रह कर निज शिल्प - विद्या- वाणिज्य आदि के लिए शिल्प शिक्षा को प्रोत्साहित किया था। उसने अंग्रेजी राज में भारतीय चिन्तन के अभाव तथा आजीविका- दुष्प्राप्य होने के कारणों पर प्रकाश डालते हुए कहा था -

१- "" प्रथम यह कि इस समय में भारतवर्षीय सर्वथा विद्या, ऐक्य, उत्साह, पराक्रमादि सद्गुणों से हीन हैं।

२- " यहाँ के लोगों का इस भ्रमजाल में फँसना कि आजीविका

१- कविवचन सुधा , १६ फरवरी १८७४

केवल कौड़ी सीखने में जाती है और उसके उपार्जन करने की इच्छा में अपने कुल कर्मों का त्याग करना।

३- स्वकुल कर्मों (वाक्यूपेशन) में उन्नति न करना।

४- इस राज्य में शिक्षारिक्त वैश्यों का प्रवेश होना।

५- शैव-श्याम मनुष्यों में मानसिक संधि का अभाव जिसको गवर्नमेंट मुख्य हेतु है।

६- इस देश के मनुष्यों में दासत्व भाव का होना।

७- पाखण्ड वशात् सभ्यता, वाणिज्य आदि की वृद्धि के निमित्त अन्य -२ जर्मनी, फ्रांस, अमेरिकादि उन्नतिशील देशों में न जाना।

८- यहां के धनियों का सत्कर्म की अपेक्षा व्यभिचारादि कुकर्मों में अपव्यय करना।

९- गवर्नमेंट की विवेक- हानि।

------ यद्यपि यह गति इस देश की है तथापि सरकार की केवल कौड़ी कौड़ी पहुंचने के अतिरिक्त और किसी ओर दृष्टि नहीं जाती है।--- तिस पर उनसे यह नहीं हो सकता कि यत्र- तत्र शिल्प-विद्या की शालाओं की स्थापना करें- तो उनसे कितना २ उपकार प्रजा का हो।[१]" अतः बौद्धिक जागरण ने पत्रों में भारतीय प्रजाति के प्रति दायित्वपूर्ण चिन्तन एवं निष्ठा पर दी थी।

जागरणकालीन हिन्दी पत्रकारिता में भारतीय भाषा हिन्दी के लिए कितना महत्व, दायित्व और टीस थी यह आज के स्वतन्त्र भारत

१- सत्यविनोद तत्वानुसन्धान सुदर्शन समाचार १ मई १८७६ पृ० ४

में भी हैरानी वाली बात लग रही है क्योंकि आधुनिक शिक्षाशास्त्री, राजनीतिज्ञ, प्रशासक सभी बातों पर अंग्रेजी के मोह की पट्टी बांधे यह माने बैठे हैं कि भारत की समृद्धि, भविष्य और मुक्ति केवल अंग्रेजी पर आधारित है। उन्नीसवीं सदी के पत्रकारों के मन में भी ये ही प्रश्न बार-बार कुलबुलाते थे कि क्या अंग्रेजी के बिना उनमें स्वतंत्र, वार्षिक समृद्धि, वैज्ञानिक प्रगति आदि सम्भव नहीं है? किन्तु अंग्रेजी भाषा की आधुनिक अवधारणा के विपरीत उनका निश्चित मत था कि देशोन्नति देशी भाषा से ही संभव है। "देशोन्नति और देशभाषा की दृष्टि में वह सम्बन्ध है जो शरीर और छाया या अग्नि और धुएँ में होता है।---- हमारी सरकार का देशोन्नति के लिए प्रयत्न न करना--- और साथ ही देश भाषा का ऐसा कठिन अपमान करना और दुर्दशा में रखना जैसी हिन्दी की हो रही है ऐसा है जैसे कोई योद्धा एक बालक के छाती पर लात रख कर बल पूर्वक दबाये हो और दूर से देखने वालों के सुनाने के लिए पुकार कर कहता हो कि हे बालक उठ कर देख मुझे। ह ह ह। यह क्या अन्याय है? क्या यह हिन्दी प्रजा पर घोर अन्याय नहीं?---- पोलिश भाषा और अक्षरों को दबाने से रूस का केवल यही अभिप्राय था कि वह देश उत्साह, गौरव और सत्वहीन हो जाय जिससे फिर कभी स्वतंत्रता करने के योग्य न रहे। क्या यह---- हमें और अधिक निःसत्व और निर्बल करने के लिए प्रयत्न किया जाता है?"[१]

उस पराधीन, प्रतिकूल परिवेश में हिन्दी की वकालतों सरकारी दफ्तरों तथा शिक्षा संस्थाओं में जारी कराना कोई खेल नहीं था। इस संदर्भ में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं ने जबर्दस्त अभियान चलाया था। हिन्दी प्रचार के लिए उनकी व्यग्रता, उत्साह और निरन्तर संघर्ष देखते ही बनता है। "हिन्दी प्रदीप" में स्पष्ट शब्दों में कहा गया, "जिस देश को न्याय की सुनवाई का यह सारा प्रबंध है, वहाँ की मातृभाषा हिन्दी की

१- भारत जीवन, २४ मार्च १८८४

न दाखिल करना मानों परीक्षा रूपी नारी की नाक काटना है---- हर एक सरकारी नौकर को हिन्दी बोलने का नियम कर दें और यह भी नियम हो जाय कि सरकारी दफ्तरों के चपरासी या दफ्तरी और पुलिस के कांस्टेबिल बिना नागरी में परीक्षा दिये न भरती किये जायं।[1]"

" हिन्दी आन्दोलन " का जन्म जागरणकालीन नव चेतना के फलस्वरूप " स्वभाषा " , स्वराज्य , स्वदेशी के उत्थान के परिप्रेक्ष्य में हुआ था , उसकी प्रकृति सांप्रदायिक नहीं थी। उसका मुख्यतः विरोध अंग्रेजी सरकार की हिन्दी के प्रति तिरस्कारपूर्ण नीति और अंग्रेजी भाषा से था।" बड़े से बड़ा सम्मिलन पाप कर पूर्ण प्रज्ञ बनना पूर्ण विद्वान्, फजीहत की पगड़ी बांधे, हल्ल के बीच में पड़े हुए दाहिने- बायें, ऊपर- नीचे, चारों दिशा में उठो- बैठो , लातें खाते , गोते खाते सब एक अंग्रेजी ही अंग्रेजी पुकार रहे हैं। उनका परम पुरुषार्थ , उनकी योग्यता का स्वरूप उनकी सभ्यता, उनके उद्योग और चेष्टा का अंतिम और लक्ष्य यही है कि हिन्दुस्तानी पन को दूर हमें किसी प्रकार दूर हो उनका दृढ़ सिद्धान्त यही है कि हमारी मातृ-भाषा अंग्रेजी हो----- कचहरियों में हिन्दी का प्रवेश होकर वह राज भाषा हो जाय , क्यों मुमकिन नहीं , आप हजारों वर्ष तक सिर पटकते रहिये तब कहीं हिन्दी के पुनरुज्जीवन को कौन बाधा है।[2]"

अतः जातीय भाषा के विकास का सीधा सम्बन्ध देश की स्वतन्त्रता, जागृति और प्रगति से समझा जाता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के " हिन्दी वर्द्धिनी सभा प्रयाग के स्थापन दिये गये पचास भाषण में स्वभाषा और स्वराष्ट्र के प्रति दायित्व बोध और प्रेम प्रकट हो रहा है -

- निज भाषा उन्नति अहै , सब उन्नति को मूल।

१-संपादक धनंजय भट्ट " सरल " , हिन्दी की दशा और पत्रकारिता पृ०३४-३५
२- वही , पृ० ४६

निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल ।
निज भाषा, निज धरम, निज मान, करम- व्यौहार ।
सब पढ़ालहु मैलि मिली , करत पुकार- पुकार
अंगरेजी पढ़ि के यदपि, सब गुण होत प्रवीन ।
पै निज भाषा ज्ञान बिन , रहत हीन के हीन ।।
प्रगटित करहु जहान में निज भाषा करि यत्न ।
राज काज दरबार में, फैलावहु यह रत्न ।। " १

" हिन्दी प्रदीप " में प्रकाशित लेख म्युनिस्पिलिटी का दफ्तर हिन्दी में क्यों नहीं ? " में सम्पादक का दृढ़ मत था , " म्युनिसिपल्टी या लोकल बोर्ड का काम जो हुए है वह सब रियाया का है--- हमारा निज एक हमें क्यों न मिले ।" २

अतः राष्ट्रीय जागरण के साथ पत्रकारिता में जातीय प्रगति और भाषा की उन्नति की चाह जागी । फलतः उसने जीवन के हर स्तर पर " जातीयता " को सर्वोपरि महत्ता दी ।

7- प्रगतिशील, वैज्ञानिक दृष्टिकोण की प्रधानता

वैज्ञानिक दृष्टिकोण में प्रयोग तर्क और उदाहरणों से पुष्ट प्रामाणिक निष्कर्षों तथा ठोस तथ्यों में ही वास्तव आस्था की जाती है । जागरण युग (हैकेलों) में पहली बार कल्पना या अनुमानजन्य विचारों

१- हिन्दी प्रदीप , दिसम्बर १८७७
२- वही , सितंबर , १८८५

को नकार कर साहित्य, धर्म, दर्शन और सामाजिक परंपराओं को वैज्ञानिक दृष्टि से परखने का प्रयास किया गया। हिन्दी पत्रकारिता की अधिकांश सामग्री में निष्पक्ष - संतुलित दृष्टि से सोचने- विश्लेषित करने की प्रक्रिया विद्यमान है। हिन्दी प्रदीप " के " तर्क और विश्वास " लेख का कुछ अंश उद्धृत है, " तर्क अलंकार की विविध शक्तियों में से एक है। जब किसी स्थूल या सूक्ष्म पदार्थ का ज्ञान- कर्म या ज्ञान- इन्द्रियों से मन से परा होता है तब बुद्धि अपनी अर्कणा- शक्ति से निश्चय करती है कि यह ज्ञान वास्तव में सत्य है या झूठ। --- बाप दादों का विश्वास चाहे कैसा भी हो हठ ही पर से अंधे के फकीर बने रहेंगे। ऐसे लोगों से पूछा जाय कि तुम अपनी बुद्धि से काम क्यों नहीं लेते ? वे पट से यही जवाब देते हैं कि क्या हमारे बाप दादे मूर्ख या नास्तिक थे ? क्या हममें अधिक बुद्धि है।--- तथापि सब--- उन भिन्न, मत, धर्म या संप्रदायों की आवश्यकता नहीं है।[1] "

पत्र- पत्रिकाओं ने प्राचीनतावादों के " प्रामाण्य वाद " के विरुद्ध अभियान छेड़ते हुए तर्क और प्रामाणिकता पर जोर दिया। उन्होंने शास्त्रों की पूर्ण स्थापित मान्यताओं और विचारों को पुनर्मूल्यांकित करने के लिए वैज्ञानिक प्रतिशोध दृष्टिकोण को अपनाया। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की अधिकांश रचनाओं में तर्क सम्मत प्रामाणिक दृष्टिकोण का आग्रह देखने को मिलता है। " प्रायः: कर्म मार्ग में फंस कर लोग अनेक देवों- देवताओं को पूजते हैं---- थोड़ी बुद्धि बढ़ने ही से यह विचार चित्त में उत्पन्न होता है कि इतने देवों- देव इस अखिल सृष्टि के नियामक नहीं हो सकते, इनका कर्ता स्वतंत्र कोई विशेष शक्ति सम्पन्न ईश्वर है।[2] "

१- धनंजय भट्ट सरस, भट्ट निबंधावली पृ० ३१

२- भारतेन्दु ग्रंथावली (तीसरा भाग) पृ० ७६४-६५

भारतेन्दु की पत्रकारिता प्रगतिशीलता की दृष्टि से भी बहुत आगे बढ़ी हुई है। "अब बिना ऐसा उपाय किए काम न चलेगा कि रुपया भी बढ़े, और यह रुपया बिना बुद्धि के न बढ़ेगा। भाइयो, राजा-महाराजाओं का मुँह मत देखो, मत यह आशा रखो की पंडित जी कथा में ऐसा उपाय बतलावेंगे कि देश का रुपया और बुद्धि बढ़े। तुम आप ही कमर कसो।"[1]

अब पत्र-पत्रिकाओं के तर्क सम्मत प्रगतिशील विश्लेषण तथा परिपक्व चिंतन के प्रमाण के लिए "हिन्दी प्रदीप" की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं -

"[illegible] संसार का भारत एक [illegible] देश समझा है, पर आलस्य और निर्धनता में यह एक ही [illegible] है। यहाँ की इतनी बड़ी बड़ी जनसंख्या दरिद्रता का दुःख झेलती किसी भाँती उन्नति और आशा को निर्मूल कर रही है। एक वह समय था जब हमारे आर्य पूर्व पुरुष "गोक्षीरघृतम्" को प्राशन करते थे। --- अब इस बड़ी जनसंख्या में अभागा वही है जो बहुप्रजा है। जोती जो नरक बनी भोग रहा है जिसे बहुत से लड़के हैं।--- हमारे सभ्य समाज वाले प्रतिवर्ष कांग्रेस करते हैं किन्तु इस पर किसी का ध्यान नहीं जाता कि आबादी कम फैला हो और देश को खाता घटे--- इस की जगह एक ही की संतान फैला हो पर वे शिष्ट हैं जैसे निकलें।"[2]

अतः हिन्दी पत्रकारिता ने भारतीय आत्माओं के बाह्य बाधाओं को ही तर्क- विवेक की धार पर नहीं काटा था, उसने नवीन आधारित पाश्चात्य ज्ञान, शिल्प, शास्त्र तथा शास्त्र पद्धति के प्रतिमानों पर-

---

१- बाला बोधिनी, जनवरी १८७८

२- हिन्दी प्रदीप, जुलाई १९०६ पृ० ६-७

हुआँ को भी मान पर चढ़ाया था। उन्होंने हर ओछी उच्च बातों में बन्ध आस्था व्यक्त नहीं की थी। "उचितवक्ता" ने तर्कशील चिन्तन द्वारा ओछी साम्राज्यवादी शोषण पद्धति और रूढ़िवाद के आधार सिद्धान्तों के प्रति विरोध प्रकट किया था, "जाने किस तरह देखिए, प्रजा की अपेक्षा राजा भारत की दुर्दशा के विषय में कहीं ज्यादा दोषी बनाये हुए है और इसी विभिन्नता ने भारत का रुधिर शोषण प्रारंभ कर दिया है इसी से तो आज सारे सम्बन्धी बाज सम्पोरियल आदि छू पाने वाले टैक्स और स्पष्ट दुःखदायी कर्मों की उत्पत्ति है। अतः जब तक राजा प्रजा एक कार्यों में एक नहीं, जब तक राजा को प्रजा का विश्वास न होगा और स्वेत कृष्ण का अन्तर विरोधित न होगा तब तक भारत के सुख समृद्धि और धन की वृद्धि होना सम्पूर्ण असंभव है।"[1]

उपर्युक्त उद्धरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि नवजागरण के महान उद्देश्यों की पूर्ति और प्रेरणा से तर्कशील चिन्तन का पोषण हुआ था। राष्ट्रीय चिन्तन तथा ज्ञान-विज्ञान के बढ़ते प्रभाव से इसका पल्लवन हुआ तथा नया प्रगतिशील वैज्ञानिक रूप निखरा।

8- बौद्धिक यथार्थवादी धरातल पर साहित्य की प्रतिष्ठा

उन्नीसवीं शताब्दी के पश्चिमी वैज्ञानिक प्रगति, आधुनिक ज्ञान के संस्पर्श तथा बौद्धिक जागरण ने साहित्य को काल्पनिक उड़ानों से उतार कर ठोस यथार्थ धरातल पर चलना सिखाया। जागृत पत्रकारिता के माध्यम से साहित्य मानव जीवन के यथार्थ से संबद्ध हुआ। उसमें बौद्धिकता, तर्कशीलता एवं स्वतन्त्र विचार मंथन के लिए जागरूकता आयी।

पत्र- साहित्य में जागरूक आधुनिक मानसिकता, टूटते

१- उचित वक्ता अंक १५, १८८०

सामाजिक दायरे और बदलते मानवीय सम्बन्ध यथार्थ रूप में मुखर हो उठे थे।

तत्कालीन पत्र- पत्रिकाओं में छपी विविध विधाओं नाटक, कविता, उपन्यास, लेखों आदि के माध्यम से संक्रमणकालीन यथार्थ समस्याओं - बेकारी, भुखमरी, नारी जीवन की नारकीय दशा, नवीन- पुरातन संस्कारों के लिए आकर्षण- विकर्षण, पाश्चात्य- प्राच्य संस्कृति के दुहरे मापदण्डों के बीच झूलते शिक्षित युवाओं की उलझन और अन्तर्द्वन्द्व, नये आर्थिक सामाजिक समीकरण आदि को वास्तविक रूप में उकेरा गया है।" हिन्दी प्रदीप " में प्रकाशित शिवराम पांडेया की कविता " नौकरी " में सरकारी नौकरी के पीछे पागल शिक्षित युवा वर्ग की बेरोजगारी का यथार्थ अंकन हुआ है[1]:

करता है घर बार यहाँ अब हाय नौकरी
ढूंढे से अब कहो नहीं मिलती है नौकरी ।।
कौड़ी के तीन- तीन हैं शिक्षित के पढ़ने वारे ।
इस नौकरी के लिए ढूंढे हैं आफिस सारे ।।
दर दर अन्तिकेशन बैठे रहे बेचारे ।
करते हैं अब सौ सब डोगी टोकरी ।।
पटके हैं घर नोटिस , घर घर मचाते हैं ।
नित उठ सलाम करने को बंगले में जाते हैं ।।
रुपया खरच करके डाली चढ़ाते हैं ।।

एफ०ए० और बी०ए० एम० ए० कालेज के पढ़ने वाले ।
पहने हैं कोट- बूट बाँ बेच पढ़ी सँभाले ।।
फिरते हैं नौकरी को सर्टिफिकेट निकाले
उनको भी अब कहीं नहीं मिलती है नौकरी ।।

१- हिन्दी प्रदीप , अगस्त १८७६ पृ० १०

उपर्युक्त कविता अपनी भाषा, अपनी यथार्थ अभिव्यक्ति और सामयिक विचार बोध में आज की भी सार्थक पहचान देती है।

" कविवचन सुधा " (कार्तिक शुक्ल १५ सं० १९२७) में प्रकाशित " ऐसी प्राण ऐसी " में तत्कालीन दरबारी परिवेश और उपस्थित विवश भारतीयों की यथार्थ दशा का सजीव चित्रण हुआ है- "" इतने में कोलाहल हुआ "" लाट साहब आते हैं ।" राय नारायण दास ने फिर अपने मुख की तोता " स्टेट बाप " (खड़े हो जाव) । सबके सब एक साथ खड़े हो गए---- इतने में फिर कुछ आने में देर हुई और फिर सब लोग बैठ गये। वाह। वाह। पर्वार क्या था " कठपुतली का तमाशा " या बलस्टेरों की " कवायद " या बंदरों का नाच था या किसी पाप फल भुगतना था या कर्मचारी की सजा थी "" बैठते देर न हुई थी कि कुछ लार्ड साहिब आते फिर सबके सब उठ खड़े हुए।""

" ब्राह्मण " ने " बेगारी विलाप " (१५ अप्रैल १८८३) में तत्कालीन सामाजिक - शोषण की स्थितियों को प्रस्तुत किया था-

> कहि न जाय कौ कहै कौन सुनै मन लाय
> दुखिन ही को देत दुःख हाय दैव चण्डाल
> सबको मिली स्वतन्त्रता अंगरेजन के राज।
> हमें गुलामी ही बनी परी भाग पर गाज ।।"

तत्कालीन जागरण ने पत्र- साहित्य की स्थापित रचना जाल से हटाकर बौद्धिक आधार पर प्रतिष्ठित किया। यह कार्य पत्रकारों ने साहित्य के तत्वों की युगानुरूप पुनर्व्याख्या और पुनः संस्कार करके दिखाया। बदलते जागृत परिवेश के अनुरूप साहित्य में तर्कपूर्ण विश्लेषण

बौद्धिक विचारणा तथा सामयिक यथार्थ की अभिव्यंजना का प्रबल आग्रह अधिकांश पत्रों में मिलता है। " हिन्दी प्रदीप " में प्रकाशित " वेद " (अप्रैल, १८७८) " साहित्य जनसमूह के हृदय का विकास है " (अगस्त, १८८१), " सार सुधा निधि " का " साहित्य " (१३ जनवरी १८७६) आदि सैकड़ों हजारों निबन्धों का विवेचन बुद्धि की कसौटी पर कस कर ही किया गया है। साहित्य के समस्त अंगों- उपांगों, रस, अलंकार, छन्द, काव्य के गुण- दोष, साहित्य शास्त्र के सिद्धान्तों में भी यथार्थवादी बौद्धिक भंगिमा को स्पष्टतः देखा जा सकता है। " अनेक युगों सदृश पाणिनी के व्याकरण के आगे हिन्दी का व्याकरण छोटी सी कुंज की झोपड़ी है। यह तो प्रकट है कि अब हमें उतने बड़े व्याकरण की आवश्यकता न रह गई---- सब पुस्तकें तो दो गाड़ी के बोझ की पुस्तकें " सैतर मंजूषा ", " कैप्ट " आदि बड़े बड़े जहाज़ रचे गये। उनमें और है क्या ? सिवा इसके कि कीचड़ में पांव और फिर धोओ।[1] ऐसी सरल भाषा हिन्दी में इस सब लटपट का अब कुछ काम ही न रह गया।

५- कलात्मक साज और भाषा-सामर्थ्य

संपादक एवं पत्रकार अपनी कलात्मक शक्ति से पूर्णतया परिचित होते हैं। इसी के बल पर वे सत्ता को हिलाने तक की शक्ति रखते हैं। " बोध " ने " नदी के द्वीप " उपन्यास में अपने एक पात्र से इसी भाषा- सामर्थ्य के विषय कहलाया है। " " शब्दों का अधिकार---- यह अधिकार तो पत्रकार का है, वही असली रचयिता है, स्रष्टा है, क्या वह जो न कुछ को लेकर बतंगड़ खड़ा कर दे, सनसनी फैला दे, दंगे- बलवे- उकसाव करवा दे, क्यों किसी कवि ने, कलाकार ने उकसाव नहीं करवाया वर्ना लेखक ही अपनी मुट्ठी में उकसाव लिये फिरता है।[2] "

१- हिन्दी प्रदीप- जून १८८५ pp २-७

२- बोध, नदी के द्वीप pp ४१

[illegible] हिन्दी [illegible] साहित्यकार थे। उनमें भाषा-सामर्थ्य के साथ कलात्मक संयम भी कुछ रूप में मिल गया था। आधुनिक साहित्यिक विधाओं का वरण और पहचान उनके कलात्मक संयम की ही परिणति है।

मंदिर मंदिर एक रस पूजी
जाति जाति के जन मन भाई पूजी ॥
बाहिर बाजन में बाँधि लैन।
क्यों गति रूपन माँहि जोरैन ॥

[illegible], अपनी जनोपयोगी रचनाओं में भी वे पर्याप्त शिल्प, संयत भाषा और साहित्यिक सौष्ठव हैं। 'कला' की कसौटी पर उन पद-पंक्तियों को कुछ कसना अनिष्ट नहीं था। फिर भी "यह कुछ भारतीय साहित्य का एक [illegible] हुआ है"[1] — 'नए लोक की आशा' (सार सुधानिधि १७ जून, १९८८) में 'संपादक-साहित्यकार रामनारायण चतुर्वेदी का कलात्मक दृष्टिकोण' — 'संयम, प्रसन्न प्रेम लोकप्रिय-गीतिकाव्य का कारण क्या है? यदि गाँव की गूँज कर पार उतर जाते हैं तो क्या वे नहीं उतर सकते। जब वे उतर सकते हैं, तो कुछ ने क्या पीछे छोड़ "कुछ ने कैसे पार करने की कल्पना क्या रोमिलाल में की या [illegible] थी? [illegible] काव्यानुशीलन ने पद-साहित्य के साहित्यिक रूप प्रधान पर उठे हुए [illegible] प्रश्नों, सांस्कृतिक विडम्बनाओं और विकराल समस्याओं से जोड़ा। सुनीति समस्याओं से हट कर वे कभी कलात्मकता के चक्कर में नहीं पड़े क्योंकि उनका उद्देश्य कलात्मक विकास नहीं था उन्होंने तो अपनी सहज कलात्मकता और भाषा-शैली को राष्ट्रीय समस्याओं के समाधान में समर्पित कर दिया था।

हिन्दी की भाषा-सामर्थ्य के विषय में डा० धनीराम भारती का यह कथन अतिशयोक्ति पूर्ण

१- डा० रामविलास शर्मा

नहीं है " भारत की धरती के आगे लोगों ने अपनी स्वतन्त्रता की स्वर्ण देती भारत के सुपुत्रों के सहारे रहो। जिनके सजग आत्माओं ने आगे में सुभाष के बंगाली कवियों रहस्यवादी थे या बंगाल के बैरिस्टर चन्द्र पिन या महाराष्ट्र के लोकमान्य तिलक जैसे उन्होंने अपना भाषा और स्वतन्त्र फैलाने अपनी के लिए जन-संघर्ष का माध्यम हिन्दी निर्धारित किया था। किसी ने हिन्दी के लिए था ---- भाषा शुद्ध सीमित थे लेकिन शुद्ध को गरिमा पाशुप की असीमित जन-संघर्ष अभिलाषा था ---- हिन्दी शुद्ध- प्राणवान था, क्योंकि वैसे में स्वयं था। अब अपना मालूम था कि इस शुद्ध का अर्थ है- शक्ति, स्वतन्त्रता, प्राण-दान।"[1]

यद्यपि अब गैरे लोगों की गैरी भाषा के शुद्ध हो चले थे, हिन्दी को सब अधिकारों से वंचित कर दिया गया था किन्तु कलात्मक साहस और भाषा- सामर्थ्य के बल पर ही भारतेन्दु और उनकी पीढ़ी के फनकार कला की प्रगति और स्वतन्त्रता की आकांक्षा को लेने में सफल हुए थे।

हमारी व्यापक जन चेतना के कारण ही तत्कालीन फनकारों ने विशुद्ध हिन्दी भाषा को महत्व न देकर अन्य सभी भाषाओं के सौन्दर्य तत्व गुणों को अपना कर भाषा की अभिव्यंजना शक्ति को बढ़ाने पर जोर दिया था " यह है हमें का ज्ञान है कि भारतीय भाषाओं के गुणों का अपना कर उसका किसी भाषा जिन प्रतिष्ठित और लोकी भाव।[2] हिन्दी भाषा अन्तर्राष्ट्रीय भी इस कारण से ही उन्नत था।

कलात्मक रचना और भाषा- एकता के लिए पूर्वजों कलाओं का सामंजस्य किया जाना चाहिए। यहाँ पिष्टपेषण

1- डॉ० वेद प्रकाश पीयूष, हमें उद्धृत पृ० 032

2- हिन्दी प्रदीप, मई, 1905 पृ० 0

के आवश्यक विचार करना उचित न होगा।

10- श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तन एवं ज्ञान की जनता के लिए उन्मुक्त प्रसार

भारत में श्रेष्ठ दार्शनिक चिन्तन और ज्ञान-संपदा पर ब्राह्मण वर्ग का ही एकाधिकार रहा, ऐसा कहना उसी कोटि की बात होगी। यदि तिरुवल्लुवर जी भी श्रेष्ठ ज्ञान-चर्चा भारत की विरासत में मिल गया, वह लोकभाषा की भाषा में न होकर संस्कृत भाषा में था। द्रविड़ी भाषा में भी तिरुवल्लुवर जैसे सुकवि की रचना नगण्य थी। अतः संस्कृत वाङ्मय तथा द्रविड़ी के उत्कृष्ट ज्ञानात्मक एवं रसात्मक साहित्य का हिन्दी में रूपान्तर प्रकाशित कर हिन्दी की पत्रिकाओं ने इस ज्ञान की श्रृंखला जोड़ दिया। उन्होंने बड़े परिमाण में संस्कृत साहित्य के नाटक, श्रेष्ठ कवियों की रचनाएँ, काव्य तथा रामायण, महाभारत आदि का हिन्दी में रूपान्तरण प्रकाशित कर तथा प्राचीन साहित्य, दर्शन तथा धर्म ग्रन्थों आदि के अनुवाद की परिपाटी चलाया। जैसाकि पहले कहा जा चुका है कि भारत के सभी प्रमुख दर्शनों और ग्रन्थों की सरल एवं सुगम भाषा में व्याख्या पूर्ण रूप "हिन्दी प्रदीप", "सरस्वती", "कविवचन सुधा", "स्वर सुधानिधि" आदि पत्रों में प्रकाशित हुई थी। उदाहरणार्थ हिन्दी पत्रकारिता प्रकाशक तथा पाठक समानाधिकार की भावना वाली थी- उसी किसी किसी को भाग दे कर श्रेष्ठ ज्ञान-विज्ञान का प्रसार प्रकाशित के लिए किया।

11- प्रजातांत्रिक मूल्यों का उदय एवं विकास

प्रजा को राजा कोटि (एकल) के समानता, स्वतन्त्रता, भ्रातृत्व के भाव, नैतिकता के स्वाभाविक गुण, जनता के अधिकरण

[illegible] प्रजातांत्रिक [illegible] में [illegible] प्रजातांत्रिक [illegible], [illegible] पर किया था। फलस्वरूप जैसी [illegible] में फलादिता में भी प्रजातांत्रिक प्रथाओं का [illegible] प्रजातांत्रिक [illegible] के कारण [illegible] में [illegible] तथा [illegible], प्रान्तीय कांग्रेस तथा ब्रिटिश संघ में भारतीय प्रतिनिधित्व की मांग फलादिता ने उठायी और [illegible] लिए [illegible] में [illegible] फैलायी क्योंकि [illegible] के [illegible] निर्धारित [illegible] में भारतीयों को उचित स्थान और प्रतिनिधित्व नहीं दिया। भारतीय पक्षों द्वारा आपत्ति [illegible] जाने के कारण [illegible] ने [illegible] और राजा [illegible] प्रताप [illegible] की [illegible] कांग्रेस का [illegible] मानने [illegible] किया, किन्तु [illegible] भारतीयों के आपत्ति [illegible] को [illegible] कर [illegible] [illegible] का [illegible] किया। [illegible] पक्षों ने [illegible] निन्दा की। प्रजातांत्रिक अधिकारों के लिए [illegible] पा रहे, [illegible] अभियान [illegible] [illegible] और [illegible] में "[illegible] [illegible]" [illegible] किया गया जिसमें भारतीयों की संख्या [illegible] अधिकार [illegible] कर दी गई। [illegible] "[illegible]" ने और [illegible] कहा कि सम्पूर्ण भारत प्रतिनिधित्व की मांग [illegible] है [illegible] जाता [illegible] है कि [illegible] [illegible] [illegible] को मान कर भारतीयों को उपकृत करेंगे।

[illegible] प्रतिनिधि [illegible] में [illegible] और [illegible] को समान अधिकार और [illegible] का [illegible] कर उनके प्रति [illegible] दृष्टिकोण से विचार किया गया।

१४- यही नहीं [illegible] के कारण [illegible] की [illegible] में भारत के भावी भविष्य के प्रति [illegible] विचार और [illegible] प्रगति का विकास हुआ। "[illegible] प्रतीप" का [illegible] [illegible] [illegible] और [illegible] की ओर [illegible] करता है -

[illegible]

१- [illegible], [illegible] १९८८ रिपोर्ट [illegible] [illegible] १९८० pp.३३६

कालीकुर्ता निरालि पिंडला - पुस्तो ।।

क्योंकि कोई न कोई तो आगे चल कर हमारी भी लाज बचा लेगा क्योंकि काल आन्त है और पुस्तो बहुत विस्तीर्ण है।" [illegible] स्पष्ट है कि भट्ट जी का यह विचार गलत सिद्ध नहीं हुआ था।

९७- प्रेस की स्वाधीनता और लोकप्रियता की उपेक्षा

[illegible] सन्- ९५ कोई भी हो, वह प्रेस की आवाज है एवं लोकप्रिय और बल हुआ है। नेपोलियन बोनापार्ट कहता था, "[illegible] लाख सैनिकों की अपेक्षा मैं तीन समाचार पत्रों से घबराता हूँ।"[illegible] यह तत्कालीन अपरोक्ष ब्रिटिश सत्ता पर भी स्पष्ट दिखाई देता है जो उतनी ही भयभीत है जैसे फ्रांसीसी [illegible] की लोकप्रियता से रहती थी। १८९९ में जब राष्ट्रीय प्रेस और पत्रकारिता का उदय भी नहीं हुआ था तो लार्ड मैकाले ने कहा था कि सरकारी सिंह उसे मिला था।

इस संदर्भ में डा० आर० देसाई का यह कथन गलत नहीं है कि भारतीय समाचार पत्रों का अस्तित्व उनकी स्वतन्त्रता के आन्दोलन द्वारा का अस्तित्व है।[3] [illegible] पत्रकार इन्दुप्रकाश के अनुसार के अनुसार उन दिनों सरकार पत्र और पत्रकारों को अपना सबसे बड़ा दुश्मन समझती थी। [illegible] की आवाज और प्रेस एक्ट को सांप से बांधे जिस पत्र को सजा कर देती थी। सरकार वस्तुतः छोटे छोटे [illegible] को बाद फिर पत्रकारों को तंग करने का बहाना ढूंढती रहती थी। जनता भाषा की स्वतन्त्रता की [illegible] ब्रिटिश शासन

१- हिन्दी प्रदीप, सितंबर, दिसंबर १९०५ पृ० ५

२- [illegible] विचार [illegible], [illegible] [illegible] पृ० [illegible]

३- डा० आर० देसाई- पूर्व उद्धृत पृ० १६३

४- [illegible] प्रताप [illegible], पूर्व उद्धृत पृष्ठ 763-64

के [illegible] के लिए [illegible] गया था।[1]

देशों प्रेस की स्वाधीनता के लिए अभियान स्वयं राष्ट्रीय नवजागरण के प्रवर्तक राजा राममोहन राय द्वारा उनी पत्रिकाओं द्वारा आरंभ किया गया था। परन्तु भारत सरकार प्रेस स्वाधीनता के विरुद्ध उन्होंने जो आवाज विरोधी करते हुए प्रिवी कौंसिल में कार्य की थी वो "लिटरेरी पेटेंट" (लिखित कॉपीराइट के अनुसार) के नाम से प्रसिद्ध है। मगर प्रिवी कौंसिल ने उस दावे को रद्द कर दिया था। अतः १८२४ में विलायत द्वारा प्रेस के प्रतिबंध हटा लेने पर पत्रकारिता का पुनर्जन्म लिया हुआ। १३ जून १८४७ ई० में पुनः लार्ड हार्डिंग ने एक आज्ञा के लिए "लिखित शब्द" पारित किया। क्योंकि उनके अनुसार भारतीय पत्र पत्रों की जानकारी देने के नाम पर राज द्रोह का जहर उगल रहे थे। १८६७ ई० "पेनल कोड फॉर ब्रिटिश इण्डिया" लिखे जाने पर भारतीय पत्रों और पत्रों की स्वाधीनता का हरण कर लिया गया। १८९० में लोकप्रियतावादी नेताओं की दण्डित करने के लिए दण्डित भिन्न कोड की धारा में १२४ ए जोड़ दी गई। किन्तु १८९० के बाद भी भारतीय पत्रों में सामाजिक-राजनीतिक जागरण और लोगों जाग के विरुद्ध विद्रोह भाव भड़काने वाली सामग्री प्रकाशित होती रही। फलतः कर्जन और लार्ड मिंटो ने १४ मार्च १९०८ को भारतीय भाषाओं के समाचारपत्र पत्रों के लिए "समाचारपत्र प्रेस एक्ट" को पारित कर दिया।

१- पंजाब के गवर्नर सर लेपिलग्रिफिन ने एक आदेश जारी कर लिखने को प्रतिबंधित करते हुए एक फरमान १८९६ को निकाला था। स्वतन्त्र समाचार पत्रों और स्वतन्त्र लेखकों का स्वर साथ छोड़ा है और विदेशों से निर्यात आयात और विदेशी साम्राज्य के अनावश्यक विरोधी होते हैं। - सोल डिसाइडेड पॉलिसी प्रीवेंशन, २५ मार्च १९०६ नं० ४४-४५ (राष्ट्रीय अभिलेखागार)।

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने निकट पूर्व काल में [illegible] के विरोध में अभियान चलाया था। "हिन्दी प्रदीप" [illegible] विरोध में "[illegible]" (१८ [illegible]) "[illegible]" पार्लियामेंट की [illegible] प्रेस एक्ट पर (आज एक्ट) आदि लेखों में [illegible] प्रकट किया था - "[illegible] पारलियामेण्ट। [illegible] जहाँ [illegible] हुआ है वहाँ [illegible] और [illegible] को [illegible] प्रकाश है [illegible] "[illegible] कहा [illegible] "[illegible] [illegible] "[illegible] [illegible] "[illegible] [illegible] है [illegible] और [illegible] है, [illegible] न्याय? नहीं। नहीं। [illegible] के [illegible] और [illegible] है [illegible] है।---[illegible] का परिचय [illegible] और [illegible] प्रेस एक्ट से [illegible] गया।"

"[illegible]", "[illegible]", "[illegible]", "[illegible]" आदि पत्र-पत्रिकाओं ने [illegible] पर [illegible] के विरुद्ध [illegible] में [illegible]। "[illegible] [illegible] पर [illegible] [illegible] प्रजा को [illegible] [illegible]।"[2]

"[illegible]" ने [illegible] हिन्दी [illegible] और [illegible] का [illegible] - राजा और प्रजा को [illegible] [illegible] - [illegible]। "[illegible] [illegible] में [illegible] प्राप्त [illegible]। [illegible] पत्र पत्रों को

१- हिन्दी प्रदीप- [illegible] पृष्ठ ६

२- [illegible], [illegible] पृष्ठ ८

[illegible] है। — [illegible] [illegible] । [illegible] अधिकारियों को [illegible] है और [illegible] के अंदर जीता हूं [illegible] ।"

[illegible] , [illegible] , [illegible] ([illegible] , [illegible]) ने [illegible] लिखी [illegible] के [illegible] गया [illegible] ने [illegible] किया था कि [illegible] और [illegible] — [illegible] की [illegible] और ब्रिटिश [illegible] है [illegible] प्रकार [illegible] के [illegible] । [illegible] के [illegible] थे। [illegible] के [illegible] करते हैं, परन्तु [illegible] कि [illegible] कारण [illegible] है। [illegible] । [illegible] में [illegible] कि [illegible] जाएगा है। [illegible] ।

१- [illegible]

२- [illegible]

३- [illegible] पृ० [illegible]

४- [illegible]

उपर्युक्त उद्धरण सरकार और प्रेस के जिन्हें सम्बन्धों की ओर संकेत करते हैं जिनसे प्रतीत होता है कि प्रेस ने स्वयं को विपक्ष की भूमिका निभायी है। "भारतमित्र" ने सरकार पर कटाक्ष करते हुए कहा था "सभ्य प्रजा हितैषी राजा लोग समाचारों की स्वाधीनता देकर उत्साहित करते हैं ------ क्योंकि समाचार पत्र प्रजा का प्रतिनिधि स्वरूप होता है।"[1]

हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने लार्ड रिपन द्वारा १८८२ में प्रेस कानूनों एक्ट के समाप्त करने पर कथन्य व्यक्त किया था। "प्रेस एक्ट के उठ जाने से देशीय संपादकों को जितना आनन्द हुआ वह अकथनीय है। --- वाह रे रिपन महोदय की आत्मा के लिये धन्यवाद देते हुए उचित चर्चा का एक नया नियम करते हैं कि एक और लाइसेंसी समूहों से बाधा दाम लिया करेंगे अर्थात् लाख रुपया लिये वार्षिक ४।।) दे, वो हमको लिये जायेंगे।"[2]

इसी प्रकार हिन्दी पत्रकारिता ने वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट "आफिशियल एडिटर्स एक्ट आफ १८८९" का भी स्वागत किया था।[3] "१८९८ का राज द्रोह अधिनियम" का जहाँ "कांग्रेस एन्टीडूट एक्ट" और एन्टीडेटिया पत्र समझ कर रहे थे हिन्दी पत्रों ने उपर्युक्त अधिनियम का उग्र विरोध किया था। भारतीय पत्रों के विचार में लार्डटाउन ने सिर्फ आशा किया था कि सरकार के कार्यकलापों और नीतियों की विरोध कर अपने अस्तित्व कर लेती है और जनता को सरकार के विरुद्ध भड़का रही है।"[4]

१- भारतमित्र, १८ मई १८८८

२- उपिलब्धा, ४ फरवरी १८८२

३- (क) हिन्दुस्तान ११ अगस्त १८८९, रिपोर्ट आन नेटिव न्यूज पेपर्स १८८९ पृ० ५०३-५०४

(ख) बलीता अखबार ४ अगस्त १८८९, उपरिवत् पृ० ७०२

४- लार्ड लाउन के लिखा, १२ सितम्बर १८९० (मार्ड्रोफिल्म रा०अभि०)

अधिकांश समाचार पत्रों की धारणा थी कि प्रेस एक्ट ने भारतीय पत्रों की स्वतन्त्रता को समाप्त कर दिया है, "सरकारी गजटों ने प्रेस एक्ट का प्रचार करके समाचार पत्रों को स्वाधीनता दर दी, विज्ञापन तक अपील करने पर भी वह फेरों न गई, देशी भाषाओं के समाचार पत्र उसके बिना अस्त: पुस्त हो रहे हैं। अपने जाति का बड़ा पतन है किन्तु राजदोष के डर से यह स्पष्ट भाव में परिचित हो गये हैं, बड़े बड़े अखबारों के लेख पढ़ना पढ़ा या जाकर नहीं हम आपको यह कि कोड़ों के लेख-लेख हो गये ---- सर्वसाधारण अब अखबारों को कुछ कहते हैं जाँकि उनके एक में प्रेस एक्ट सरीखे पत्र का कोई लेख नहीं आप रखे किसी प्रजा और गवर्नमेण्ट में कुछ अलग हो---- ऐसे प्रजा का प्रीति, दुःख और दोनों का अकुशल भाव में विरोध, जैसा अब गवर्नमेण्ट के राज्य में एक बड़ा भारी दोष है अगर गवर्नमेण्ट अब अपनों के कुल में अपना प्रताप रक्षित कर नहीं सकती।"[1]

देशी पत्रकारिता के विचार, प्रचार पर नियन्त्रण रखने के लिए देशी भाषा के पत्रों के सम्पादकीय लेखों को उस साप्ताहिक रिपोर्ट अखबार लिटिल रेव के पास भेजा जाता था। इसका अर्थ यह है सरकार का कहना था कि देशी भाषा के पत्रों के लेखों अनुवाद के सरकार की जनता की भावनाओं आकांक्षाओं का ज्ञान अच्छी तरह से हो जाता है, किन्तु वास्तविक दोष उनका सम्पादन अर्थ है फिर साहू कहते उसे विरुद्ध

1- गवर्नमेण्ट, 10 फरवरी, 1908 पृ० 52

2- देशी परिशिष्ट में "जिन्हों पत्रों के सम्पादकीय लेखों अनुवादों की रिपोर्ट साप्ताहिक लिटिल रेव में" की जाए है मुख्य रूप में साप्ताहिक प्रकाशित होती थी।

कलात्मक [illegible] करना होता था। "[illegible]" ने इसी निकट भविष्य उठाते हुए लिखा था - "पार्लमेंट —— का कर्तव्य है कि वैसी व्यापार धन्धों के [illegible] के मिस में परिवर्तन करना। इस निर्बल प्रकार के कृषक होता है उसका यथानुरूप फल नहीं फलता। —— उसके वैसी व्यापार धन्धों को पूरी व्यवस्था करके उन धन्धों का पूरा प्रचार करना चाहिये।"[१]

अतः भारतेन्दुकालीन हिन्दी पत्रकारिता स्वाधीनता, मातृभाषा और मातृभूमि के लिए मुखर रही थी। उनमें राष्ट्रीयता का उदय राष्ट्रचेतना फैलाने के रूप में ही हुआ था और [illegible] की [illegible], अंग्रेजी, तथा उर्दू अथवा [illegible] विरोध का गहरा प्रभाव भारतीय पत्रकारिता पर पड़ा था।

अन्त में कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय जागरण ने हिन्दी पत्रकारिता को जीवन दृष्टि तथा अभिव्यक्ति में अद्भुत परिवर्तन करके उसकी नयी पहचान दी है। "हिन्दी प्रदीप" ने पहले से ही प्रगतिशील दृष्टिकोण, जातीय राष्ट्र- निष्ठा तथा पूर्ण निर्भीकता को व्यक्त करते हुए लिखा था, "[२] [illegible] अंग्रेजी शिक्षा जीवन-पद्धति की बदौलत यह [illegible] है कि वे निज, मातृभूमि तथा मातृभाषा का प्रेम [illegible] है। [illegible] लिए [illegible] [illegible] में मिला हुआ [illegible] है और [illegible] में [illegible] [illegible] न हो। [illegible] [illegible] [illegible] निर्गुणः [illegible] प्रतिकूल-गताः [illegible] न [illegible]।"[३]

[illegible] है कि [illegible] ने पत्रकारिता

१- [illegible], वर्ष २ अं० ८

२- हिन्दी प्रदीप, [illegible] १८९९

में विलास और भावुकता, आधुनिकता और परंपरा, [illegible] और नई दृष्टि, जड़ता और गतिशीलता तथा शृंगार और भक्ति जैसे दो विपरीत छोरों में [illegible] कर दिया था। भारतेन्दुकालीन कवियों ने [illegible] को [illegible] और [illegible] की [illegible]। [illegible] कर वैज्ञानिक दृष्टि को जन्म दिया।

अतः भारतेन्दु ने जहाँ [illegible], वहाँ आधुनिक बोध, वैज्ञानिक दृष्टि, [illegible] के प्रति आदर भाव तथा मानव-मूल्यों की नींव रखी। फलस्वरूप [illegible] में [illegible] प्रवृत्तियाँ विकसित हुईं। [illegible] में [illegible], [illegible] परिष्कृत [illegible], [illegible] तथा प्रकृति और [illegible] की [illegible]। [illegible] नैतिक, [illegible] तथा [illegible] में [illegible]। [illegible] प्रसाद [illegible], [illegible] में [illegible], [illegible], आधुनिक [illegible] तथा [illegible] की [illegible]। [illegible] निर्माण और [illegible] है कि [illegible] के [illegible] हुई।

४. अर्थात्

8. उपसंहार

आधुनिक हिन्दी साहित्य तथा भारतीय इतिहास में "राष्ट्रीयता", "राष्ट्रीय नव-चेतना" तथा "राष्ट्रीय आन्दोलन" इत्यादि विषयों पर पहले भी विस्तारपूर्वक लिखा जा चुका है किन्तु उन प्रकाशित ग्रंथों और शोध ग्रंथों में राष्ट्रीय जागरण के विराट् अभियान में हिन्दी पत्रकारिता के गौरवपूर्ण भूमिका तथा उसकी महत्वपूर्ण सामग्री को या तो बिल्कुल ही नगण्य कर दिया गया है अथवा एक-दो पृष्ठों में प्रख्यात पत्रकारों का नामोल्लेख मात्र करके अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ ली गयी है। हिन्दी के उन गिने-चुने पत्रों और पत्रकारों ने राष्ट्रीय-नवचेतना की अग्नि को निरन्तर प्रज्वलित करने में अपने को हविष बना दिया, जिन्होंने स्वातंत्र्य-संघर्ष को व्यापक आधार, गतिशील आयाम, आधुनिक चिन्तन के नये आयाम दिये तथा भारतीय भाषा-साहित्य-संस्कृति को राष्ट्रीयता और गतिशीलता प्रदान की, उनकी भूमिका एवं कर्म-सामग्री को इतिहासकारों एवं अध्येताओं ने साहित्य-सर्जना, शोध और समीक्षा के स्तर पर उचित महत्व नहीं दिया है, मालूम नहीं क्या कारण आड़े आ रहा है अथवा दृष्टि-भिन्नता।

प्रस्तुत शोध-प्रबंध के पिछले अध्यायों में हमने इस संदर्भ में "रेनेसाँ काल" (19 वीं शती का उत्तरार्द्ध) की हिन्दी पत्रिकाओं की महत्वपूर्ण सामग्री और तथ्यों के माध्यम से समग्र राष्ट्रीय नव-जागरण तथा समस्त क्षेत्रों में सुसंगत नव-चेतना को व्यापक राष्ट्रीय फलक पर प्रामाणिक रूप से विवेचित करने की चेष्टा की है। इस अध्ययन में हमने पत्रकारिता और नवजागरण के अन्तर्संबंधों, परस्पर प्रभावों एवं ऐतिहासिक सांस्कृतिक योगदान को भी रेखांकित किया है।

"नवजागरण" रेनेसाँ की अवधारणा वस्तुतः पुनरुत्थान, पुनर्जागरण, पुनरावृत्ति एवं तार्किकता रही है। "रेनेसाँ" मात्र भाषायी ज्ञान-विद्या, सांस्कृतिक कला-कलाकृतियों एवं वस्तुओं के सांगिक उपादानों का पीछे-गमन और पुनरावृत्ति था। यह अर्थ पुनः से आधुनिक काल में पदार्पण था। राष्ट्रीय नवजागरण और

यूरोपीय शैलियों के विविध आयामों की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए हमने देखा कि इन दोनों की मूल चेतना और प्रवृत्तियाँ समान होने पर भी उनके ऐतिहासिक संदर्भों, दृष्टिकोण, प्रेरणास्रोत, आदर्शों एवं प्रकृति में कितनी सूक्ष्म भिन्नता थी। राष्ट्रीय नवजागरण के विविध स्वदेशी-विदेशी स्रोतों के विशिष्ट अवदान और प्रेरक शक्तियों को भी हमने आँका है जिसमें इस तथ्य को भी रेखांकित किया गया है कि भारत में राष्ट्रीय-चेतना के अंकुरण एवं आधारभूत आर्थिक संगठन के लिए सामन्ती अर्ध-व्यवस्था का विनाश और औपनिवेशिक राज की स्थापना की प्रक्रिया अनिवार्य नहीं थी। भारत में व्यापारिक पूँजीवादी भौतिक आधार का सूत्रपात मुगलकाल में ही हो चुका था। भारतीय नवजागरण पाश्चात्य शिक्षा, संस्कृति, धर्म और औपनिवेशिक शासन की उदारतापूर्ण देन न होकर उनके द्वारा सदियों की सड़ी रूढ़ियों का प्रतिकार और उसी धरती की मिट्टी से उपजा सांस्कृतिक आन्दोलन था।

पत्रकारिता की आधुनिक अवधारणा, व्यापक राष्ट्रीय उद्देश्यों, उच्च प्रतिमानों एवं राष्ट्रीय स्वरूप का आविर्भाव शैशव काल में हुआ था। अब से आधुनिक पत्रकारिता केवल समाचारों का संकलन अथवा सरकारी प्रचार का माध्यम ही नहीं है, वह जनता की संवेदना, सजग और पक्ष-प्रकाशक है। आज वर्तमान परिदृश्य विविध दृश्य-श्रव्य-माध्यम सामग्री है जिसका भव्य प्रस्तुतीकरण आज जनसंचार के उन्नत औजारों पत्र-पत्रिकाओं, विज्ञापन, रेडियो, फाक्स और दूरदर्शन के द्वारा होता है। 19वीं शती के उत्तरार्द्ध के जन-जागरण में केवल पत्र-पत्रिकाओं और विज्ञापन ने ही अविस्मरणीय दिशाधारी निभायी थी, क्योंकि अन्य औजारों का तब तक आविष्कार नहीं हुआ था। हमने अपने अध्ययन में मुख्यतः हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं के संदर्भ-साधन द्वारा उत्तर 19 वीं शती के पराधीन भारत में राष्ट्रीय अस्मिता, आधुनिक वैचारिक सांस्कृतिक भूमि, वैज्ञानिक तर्क दृष्टि एवं आधुनिक हिन्दी साहित्य-भाषा के परिवर्तन को मुख्यतः अभिचित्रित किया है। पत्रकारिता और साहित्य के अंतःसंबंधों, परस्पर प्रतिक्रिया की तुलनात्मक समीक्षा करते हुए हमने देखा कि पत्र-पत्रिकाएँ तात्कालिक शासन साहित्य, चिरंतन मूल्यों और जन-संवेदना को भी सार्थकता के साथ मूर्त करती हैं। 19 वीं शती से ही हिन्दी के प्रख्यात साहित्य सर्जकों ने पत्रकारिता से किसी न किसी रूप में जुड़े रह कर अपनी

आधुनिक प्रौढ़ रूप प्रदान किया है। संक्षेप में यह कारण है कि हिन्दी पत्रकारिता में साहित्यिक-सामग्री और अनुभूति का अद्भुत पुट विद्यमान है।

आधुनिक पत्रकारिता के उद्भव और विकास के अनेक कारणों एवं प्रारंभिक स्थिति उर्दू, बंगाली और हिन्दी-पत्रकारिता का विकास में विभिन्न उठते हुए तत्व स्पष्ट हो जाते हैं कि नये पढ़े लोगों में राजा राममोहन और अन्य सुधारकों के लेखों एवं प्रचारकों के विचारों के प्रति आकर्षण रहेगा, भारतीय समाज की परिवर्तनता तथा प्रेस की स्वाधीनता के रूप का पूर्ण तौर पर प्रतिपादन किया गया और भाषा की आधुनिकता एवं वैज्ञानिक ज्ञान-विज्ञान से लैस करने के लिए व्यापारिक दृष्टिकोण से अनेक देशी भाषाओं में पत्रकारिताएँ प्रकाशित हुईं। मध्यकालीन उर्दू और बंगाली पत्रकारिता राजकीय संरक्षण, प्रोत्साहन और स्वायत्त पाठक प्रवृत्ति की छाँह में उपेक्षित हिन्दी पत्रकारिता से पहले आगे निकल गयी। इसमें हिन्दी का प्रथम पत्र "उदन्त मार्तण्ड" (30 मई 1826) को न मान कर बंगाली पत्र "भारतमित्र" (1820) को माना है जिसके आठ पृष्ठ 32 रु० एवं आकार के थे। यह पत्र पुरानी लिपि में छपा है।

हिन्दी पत्रकारिता के प्रारंभिक चरण (1820-1850) में 30-32 वर्षों में केवल 10-12 पत्रिकाएँ ही प्रकाशित हुईं। यह विकास गति होने के अनेक अवरोधक कारण थे। इसमें देश कि पत्र-प्रेषण के अभाव में यानि प्रारंभिक पत्रिकाएँ व्यय-अधिकता, साहित्य और पत्रकारिता के उच्च प्रतिमानों अथवा राष्ट्रीय चेतना का कुछ-न-कुछ विशेष उपादेय प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकी थी, क्योंकि उनका मुख्य उद्देश्य हिन्दी-भाषी पाठकों में हिन्दी पत्रकारिता की परंपरा को आकृष्ण रखने के कारण अधिक है।

1857 के स्वातंत्र्य-संग्राम के बाद के पश्चात् काल 1870 से प्रायः अनेक कारणों से राष्ट्रीय चेतना में नये के उभार के साथ राष्ट्रीय-पत्रकारिता का प्रस्फुटन हुआ। उसी पूर्व हिन्दी-उर्दू भाषाओं की पत्रकारिता द्विभाषी पत्रों के रूप में संकुचित रूप से प्रकाशित हो रही थी। प्रस्तुत विवेच्य पत्रकारिता के विकास के संबंध में इन पंक्तियों में देख चुके हैं कि इसमें की "कुछ आगे रहो" तथा "स्वतंत्र उदार" भी हिन्दी राष्ट्रीय भाव, उर्दू-पत्रकारिता में भी प्रतिक्रिया के कारण हिन्दी उर्दू पत्रकारिता में

[illegible] प्रकार [illegible] सांप्रदायिक [illegible], और प्रतिक्रियावादी विचारों के पास पहुँची थी।

"[illegible]" में राष्ट्रीय [illegible] के प्रचार की भावना का [illegible] होने वाले राष्ट्र [illegible] पत्रकारों, [illegible] तथा [illegible] हिन्दी के [illegible] में [illegible] के [illegible] को [illegible] किया।

भारतेन्दु और उनके युग के [illegible] प्रतिभा संपन्न साहित्य-सेवियों ने भी स्वतंत्र पत्रकार, [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करके [illegible] हिन्दी [illegible] को [illegible] किया और पत्र-पत्रिकाओं को हिन्दी पत्रकारिता के क्षेत्र की उन्नति के लिए उत्प्रेरित किया। फलस्वरूप [illegible] काल में लगभग ३५० पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित हुईं। वैज्ञानिक विश्लेषण करके जाना जाता है कि परिमाण या संख्या की दृष्टि से ही नहीं, गुणवत्ता और श्रेष्ठ प्रतिमानों की दृष्टि से भी उस युग की अधिकांश पत्र-पत्रिकाएँ गौरव की अधिकारिणी हैं। यद्यपि उनमें प्रकाशित हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने स्वान्त सुखाय-रचना, [illegible] विचारों, [illegible] विचारों की [illegible], [illegible] में प्रचार [illegible], [illegible] [illegible] पत्र-पत्रिकाओं आदि का [illegible] किया है तथापि उनकी विशेषताएँ [illegible], उच्चकोटि राष्ट्रीय विचार, [illegible] [illegible] के प्रमाण उनके प्रचार [illegible], [illegible] साहित्यिक विचारों, और राष्ट्रीयता एवं पत्रकारिता-[illegible] में मिल जाते हैं। [illegible] रूप में [illegible] है कि भारतेन्दु युग के पत्र-[illegible] [illegible] [illegible]-वितरण की [illegible] ने [illegible] के [illegible] फौरन, [illegible] [illegible] को [illegible] [illegible] हैं। [illegible] पत्र-

[illegible] की आधुनिकता, राष्ट्रीयता और भारतीयता की पहचान हुई जिसका मूल स्रोत राष्ट्र-साहित्य-भाषा-संस्कृति के उत्थान और स्वाधीनता के लिए झुकना था।

[illegible] जागरणकाल की साहित्य का केवल विविध रचनात्मक और आलोचनात्मक साक्ष्यों से आकलन था। हिन्दी के आधुनिक युग, यानी भारतेन्दु की राष्ट्रीय कविता और जनभाषा की साहित्यिक अस्मिता पर प्रकाश डालने में उन्नीसवीं सदी के अन्तिम दशकों के अभिव्यक्तिगत प्रश्नों पर दृष्टिपात करते हुए इसी बिंदु पर भारतेन्दु युग में कहाँ से आरम्भ हो कर उस स्वतन्त्र आकार निर्माण स्वरूप और आधुनिक विधाओं, मौलिक कृतियों तक पहुँच गया था। जन-भाषा हिन्दी में सत्य पैग और अस्तित्व रचनाओं का विकास हुआ। यह रचनात्मक स्तर उस ऊपर उठा। भारतेन्दु युगीन पत्रकारों ने हिन्दी भाषा और साहित्य की पुरानी रूढ़ियाँ राज दरबारी परिवेश और दूर के विकास कर उसे जन-मन और जन जीवन के साथ जोड़ा। इसी प्रसंग में उसने यह भी पाया है कि आधुनिक युग-पुरुषों का जन्म पश्चिमी साहित्य का पैन के रूप में न और सामाजिक-राष्ट्रीय अनुकूलन तथा जन-परिस्थितियों के कठोर की आवश्यकता के लिए हुआ था। उस काल का पश्चिमी कहाँ की रचनात्मक साहित्य का केवल किसी एक साहित्यिक विधा के रूप में न और राष्ट्रीय नव जागृति के लिए पाठकों के शिक्षात्मक पाठ-पोथे के रूप में हुआ था। उन्नीसवीं नाटकों, उपन्यासों, [illegible] आदि में समाज के जीवंत तत्वों, पाश्चात्य शिक्षा की नकारात्मक भूमिका और समाज में फैले भ्रष्टाचार की बात विभिन्न तरीकों से उठाया गया है। समाचार, यात्रा-वृत्त, रिपोर्ताज, रेखाचित्र, कहानी का जन्म- विकास प्रारंभिक रूप में भी यहाँ की रचनात्मक साक्ष्यों में देखा जा सकता है। उन्नीसवीं सदी राष्ट्र धर्म कविताओं को १८५७ के स्वातंत्र्य समर के कारण जनमानस और जा-

विद्रोह आदि की घटनाओं पर प्रतिक्रिया उतनी तीव्र और उत्कट नहीं हुआ है। उनमें छिपे गूढ़ कारणों की भी उद्घाटित करने की चेष्टा की है। इस कार की तटस्थ नीति की प्रारंभिक कविता अपनी तौर पर भी तुलनीय और राष्ट्रीय जागरण में पूर्णतः सफल है जिसे कविता में नवीनबोध की सूचना दिया जाता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग के पत्रकार पत्रिका सम्पादक अधिक थे, शिल्पकार कम। उनका साहित्य रचनात्मक विकास नहीं परन्तु जीवन और राष्ट्रीय परिवेश की अनुभूति की उपज है जिसमें जीवन के सभी विभिन्न-सुन्दर पक्षों को स्थान दिया गया है। उनमें विरोध और सत्कार, भावों और विचारों के द्वन्द्व के कारण सन्दर्भों बोध नहीं पाया जाता है। इन्होंने गद्य, रूप में जो सामाजिक सन्दर्भों को उठाया की है।

राष्ट्रीय जागृति के जागरण में भी राष्ट्रीय चेतना की सीमा के स्वरूप अपनी की स्मृति पत्रकारिता ने भी की थी। प्रारंभ में हिन्दी पत्रकारिता के स्वर हास्यास्पद थे और ब्रिटिश और ब्रिटिश शासन के प्रति विरोध नहीं था। आगामी विद्वानों ने भी हिन्दू जागरण में सभी पाया है कि वह हास्यास्पद और दैन्य भाव का मिश्रित-भाव उनकी परिवेश चेतना विचारधारा और व्यापक सीमित प्रकार की है उसकी अपूर्ण लक्ष्य की परिणति था। वे कला-दर्शन के कारण ऊपरी तौर पर भी हास्यास्पद तौर पर सामने आया कहीं भी किन्तु उन्नीसवीं राष्ट्रीय का और प्रकार पूर्णतः राष्ट्र के लिए समर्पित थे उनकी पत्रकारिता आधारित थे। वे हास्य के साथी विषु को पूरा में ही रहने वाले सम्पन्न पत्रकार आदि नहीं थे। उनका उद्देश्य

राष्ट्रीय पत्रकारिता का लक्षण बना था।

तत्कालीन राष्ट्रीय जागरण का मूलस्वर यही था कि यह यूरोप से भिन्न और प्राचीन भारतीय राष्ट्रीयता के विकास रूप में भिन्न थी। राजनीतिक चेतना के विकास के साथ तत्कालीन पत्रकारिता का स्वर भी प्रखर रूप धारण करता गया था। उसने कहीं प्रच्छन्न रूप से राजनीति को छुआ है, कहीं कुशलता दिखाते हुए निर्भीक रूप में शैशवी राष्ट्र के अंतरंग प्रश्नों तथा राष्ट्र पराधीन हुए भीषण जन-मन पर प्रहार किया था। हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं ने मुगल शासन की क्रीड़ा-स्थल की उस पृष्ठ पर पैशाचिक और अत्याचारी बनाये हुए शासकों को लूट-खसोट वाली, दुर्नीतिक प्रचार और अन्य भारतीयों की रक्षा और उनके साथ के कुकृत्यों को उजागर कर दिया था। उन्होंने कृषकों की स्थिति, रैयत व्यवस्था तथा शिक्षित लोगों आदि में जागरण के बीज बोकर, इस कार्य को दूसरे महत्वपूर्ण कार्य और प्रतिनिधि शासन के लिए हेतु बना दिया था। राष्ट्रीय कवियों और नायकों के राजनीतिक पक्ष पर बाने के कुछ हुए हैं जो हिन्दी पत्रकारिता ने एकदम जनमानस का दृष्टिकोण बदल दिया था उन्होंने धार्मिक और सामाजिक और प्रशासनिक पक्षों पर पत्रों के पर्यवेक्षण और भारतीयता का प्रचार किया। पत्रकारों का दृष्टिकोण करने के लिए पाठकों और जनता पर प्रभाव डाल दिया था। पत्रकारों को एक ओर जहाँ आर्थिक कष्टों, यातनाओं और पीड़ाओं को झेलना पड़ा। इस प्रकार भारतीय पत्रकारिता का अस्तित्व राष्ट्रीय जागरण का अस्तित्व बन गया था और दूसरे से जुड़ और निकट आ गये। हिन्दी पत्रकारिता ने विदेशी सरकार के साथ-साथ देशी रियासतों को भी अपने निशाने पर लिया है।

हमारे काल में हिन्दी पत्रकारिता ने सामाजिक, आर्थिक जीवन के विभिन्न और स्थान की पूर्ति जहाँ हुई हुई थी उन्हें पूरा-

[illegible] कहते जो लोग किया था। उन्होंने समाज के [illegible] पर चोट करके [illegible] सुधार की [illegible] बनाने तथा समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, वैश्या वृत्ति, दास विक्रय, सैनिक प्रथा, जाति प्रथा इत्यादि के विरुद्ध जनमत और जाग्रति की उमंग पर समाज सुधार और सांस्कृतिक आध्यात्मिक नवोत्थान के लिए उत्तेजित किया। उनके [illegible] ही देखा है कि जनसाधारण मानसपटल में जीवन की ठोस धारणाएँ और [illegible] स्थानों में कैसे [illegible] नहीं देखा गया है उनके लिए जीवन एक [illegible] था।

इस प्रकार हिन्दी [illegible] साहित्य ने [illegible] जीवन के [illegible] जीवन के [illegible] पर [illegible] की। प्रायः सभी [illegible], धार्मिक, [illegible] [illegible] और [illegible] ने भारतीय मानसपटल में [illegible]। [illegible] धर्मों की रक्षा और प्रचार के लिए [illegible] अभी-कुछ ने [illegible] भारतीय समाज को [illegible] पर [illegible] पर [illegible] किया था। [illegible] और समाज का [illegible] सुधार और [illegible] [illegible] की चेष्टा की गई।

यहाँ [illegible] हिन्दी पत्रकारिता राष्ट्रीय मानसपटल के लिए [illegible] शक्ति का वाहिका रही यहाँ पत्रकारिता की [illegible], स्वरूप, उद्देश्य और परिणाम प्रकाश डाले का [illegible] राष्ट्रीय [illegible] किया जा रहा है। [illegible] ने पत्रकारिता में [illegible] दृष्टिकोण, [illegible], [illegible], उच्च राष्ट्रीय [illegible] [illegible] परिवर्तन के भाव भर दिये। [illegible] पर [illegible] भारतीयों के [illegible], [illegible] भारतीय [illegible] और [illegible] की उत्तेजना है। [illegible], [illegible] दृष्टिकोण, राष्ट्रीय [illegible] और [illegible] राष्ट्रीय मानसपटल के [illegible] [illegible] की [illegible]

है। साहित्य, भाषा और भारतीय चिन्तन की परम्परागत धारा को एक नया रूप प्रदान करने का श्रेय राष्ट्रीय जागरण और पत्रकारिता को ही दिया जा सकता था। नवजागरण के साथ ही पत्रकारिता में निरन्तर पत्रकारिता, नीतिकला, भाषाशैली का विकास हुआ। उनका कलात्मक ज्ञान, भाषा सम्बन्धी स्वाधीनता भी नवजागरण की उपज है।

राष्ट्रीय नवजागरण (हिन्दी) भारत में १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ हुआ और बीसवीं सदी के पहले दशक तक चला। भारतीय जन जीवन के प्रत्येक पक्ष को स्पर्शित करके उसमें राष्ट्राभिमान और राष्ट्रीय एकता का संचार करती रही। [illegible] भारत पुनः उसमें उसी प्रकार राष्ट्रीय प्रेरणाओं, नई स्फूर्तियों और विकास परिवेश से युक्त हुआ है जो उन्नीसवीं सदी में जागरण काल में था। पुनः राष्ट्रीय एकता और एकीकरण के लिए जो जागरण की जो दुर्बलताएँ उस समय थीं उन्हें आज भुला दिया गया है। पत्रकारिता और साहित्य ने पहले में भी राष्ट्रीय चेतना और विकास संबंधी चिन्ता का स्थान स्वतन्त्रता और आत्मशक्ति वृद्धि ने ले लिया है। भारतीय आत्मा की उदात्त चिन्तन-मनन तथा विवेक की धारा सांस्कृतिक जीवन दृष्टियों के कारण कुछ ही नये आयामों विकट से जरूर प्रभावों विकट प्रकट भी गया है। पश्चिम सभ्यताओं के सम्पर्क के लिए हिन्दी भूमि के जन जीवन को [illegible] पर पत्रकारों के प्रेरणा शक्ति प्रदान की जाने लगी जिसमें भारतीयों में आत्म गौरव और राष्ट्राभिमान की भावना के पर उन्हें जागना, [illegible], भाषा शैली तथा संस्कृति का अभिनिवेशण किया था।

9. परिशिष्ट -९

1. प्रस्तुत कतिपय प्रतिलिपियाँ राष्ट्रीय अभिलेखागार (National Archives) नई दिल्ली के होम डिपार्टमेंट में संग्रहीत "रिपोर्ट्स ऑन वर्नाक्यूलर न्यूज पेपर्स" (एन0 डब्ल्यू0 पी0, अवध तथा पंजाब और बंगाल के कुछ हिन्दी पत्रों (उत्तर 19वीं शती) से संबंधित अंशों की हैं। अंग्रेजी शासन में भारतीयों द्वारा प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के प्रत्येक अंक की एक प्रति संपादक द्वारा सरकार को भेजनी आवश्यक होती थी। सरकारी अनुवादक इन पत्र-पत्रिकाओं में से आपत्तिजनक उन अंशों का चयन करके साप्ताहिक रिपोर्ट तैयार करते थे तथा अंग्रेज उच्चाधिकारियों के पास सैर के लिए भेजते थे। "हिन्दी प्रदीप" "मिर्जापुर" आदि के विरुद्ध दमनात्मक कार्यवाही इन रिपोर्टों के आधार पर हुई थी।

2. "वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट" 1878 संबंधी गुप्त दस्तावेजों की कतिपय प्रतिलिपियाँ।

:::

323

[CONFIDENTIAL.

SELECTIONS

FROM THE

VERNACULAR NEWSPAPERS

PUBLISHED IN THE

NORTH-WESTERN PROVINCES, OUDH, CENTRAL PROVINCES, CENTRAL INDIA, AND RAJPUTANA,

Received up to 22nd May, 1888.

POLITICAL.

Circulation, 161 copies.

Alleged rebellion of the Jamshedis against the Amír of Kábul.

The *Hindustán* (Kálákankar), of the 16th May, referring to the telegram sent to the *Pioneer* by its London correspondent on the 12th idem on the authority of a St. Petersburg telegram about the rebellion of Jamshedis against the Amír of Kábul, says that it is alleged that the Jamshedis have expressed a desire to become Russian subjects, that an engagement has taken place between the rebels and the Amír's troops, and that Alikhanoff left Merv on the 15th April to assist the Jamshedis. It is difficult to understand how Alikhanoff has entered Afghan territory in opposition to the terms of the convention lately concluded between the Russian and British Governments about the Russo-Afghan frontier. The news, if well founded, is really very alarming, as the British Government and the Amír cannot be expected to view a breach of the treaty by the Russian Government with indifference. The *Standard* has already asked Parliament to place the British army on a war footing and to issue magazine rifles to all the regulars. Hence it may be feared that the difficulty which has now arisen in Central Asia may lead to war between England and Russia. But the telegram received in London from St. Petersburg about the alleged complications in Central Asia has a very suspicious look about it. The news of the

this princely hospitality and warm welcome, the Colonel readily gave ear to the Mahárája's enemies and had His Highness deposed from the gaddi. The question is, how can the native princes protect themselves from the rapacious malignity of Residents and Political Agents, who are to them what wolves are to deer? It must be admitted that sometimes real difficulties arise in native states which need the administrative interposition of the paramount power. However, Government seldom interferes on such occasions, but countenances for a while the maladministration, in order that the Residents might be able to profit by them. It, however, readily interferes in season and out of season at the instance of the Residents. The only way to put a stop to the evil is by enacting a law defining the powers of Residents and Political Agents. But if the Government of India be not yet prepared to pass any such law, it had better withdraw Residents from all native states and strengthen its foreign office. There can be no question as to the loyalty of native princes, and the withdrawal of Residents would tend to make them still more loyal and grateful.

The Devanágri Prachárni Sabha of Meerut and the Queens' birth-day.

The *Devanágri Gazette* (Meerut), for June, received on the 7th July, gives an account of the meetings and sports held on the 24th May, in honour of the Queen's birth-day, by the Devanagri Prachárni Sabha, the association at Meerut for the encouragement of the Hindi language.

ADMINISTRATION.

Circulation, 94 copies.

Police reform in the North-Western Provinces and Oudh.

The *Almora Akhbár*, of the 30th June, in commenting upon the recent resolution of the Local Government appointing the Police Reform Committee and mentioning the chief questions to which the committee should devote its attention, observes that university men, who are of strong physical constitution and belong to the respectable classes of the community, should be largely employed in the police force. The First Arts examination certificate should be a *sine qua non* for a candidate for an Inspectorship. The Court In-

spectors should be graduates and should have passed the pleadership examination. Young men who have passed the Entrance examination should be eligible for Sub-Inspectorships, and the candidates for the posts of head constables should be required to produce the Anglo-vernacular Middle Class examination certificates; the rank and file of the force should be recruited from among the men who have passed the upper or the lower primary school examination. It is almost needless to say that the recruitment of the force from among educated persons would greatly improve its efficiency and put a stop to police tyranny and oppression. Each class of police officials should be divided into several grades, the minimum and maximum rates of pay for Inspectors and Court-Inspectors being Rs. 120 and Rs. 250, for Sub-Inspectors Rs. 50 and Rs. 100, and for head constables Rs. 25 and Rs. 10. No constable should receive less than Rs. 7, and the maximum salary of a constable should be Rs. 10. In Kumaun there is only Municipal police, which has also to do the work of Town police. The duties of Village police are performed by patwáris and padhans. The *Almora Akhbár* cannot make any suggestions regarding the reorganization of the police in Kumaun until it knows what police functions are intended to be left in the hands of patwáris and padhans. But it must state that the increased facilities of communication between the plains and the hill territories by the construction of cart-roads and railroads necessitate the establishment of police stations at several places on the hills. Some Kabulis and other persons have permanently settled on the hills, and some of them occasionally commit grave offences. Vigorous measures should be taken to check police aggression and tyranny. With a view to attain that object it is necessary, above all, to convince the people that their complaints against the police are sure to have a hearing by the higher police authorities. At present, if a police official misbehaves himself, his superiors try to protect him, under the idea that if he be convicted and punished, the police force will be brought into disrepute. But the idea is an absurd one and should be forthwith dispelled.

GENERAL ADMINISTRATION.

The *Bhárat Bandhu* (Aligarh) of the 15th January states: Circulation, 175 copies

The Native Civil Service

When the new rules regarding the admission of natives to the Civil Service were published, we were much delighted. We thought our countrymen would be able to gratify their aspirations without going to England, which involved loss of religion. The chief matter of joy was that the equality of European and Native Civilians in rank would promote friendly intercourse between the two races. But we have been disappointed. It appears from the recent resolution of the Government of India that the natives will not be admitted to the Covenanted Civil Service, but will form a distinct Service. They will have to commence with Rs. 200, and their pay will be much less than that of Europeans. Even the names of the Kumar of Durbhunga and Mr. Mahmud have been removed from the list of European Civil Servants. If the Government is really anxious to admit natives to the Civil Service, it should have made no distinction between them and the Europeans. But the fact of the matter is that the interested European Civilians prevent the Government from placing natives on a footing of equality with them. The natives who were appointed probationers last year under the new rules are persons of high birth. We would be glad to hear that they also possess the necessary intellectual ability. The indifference of our rich noblemen to learning and hard work is notorious. We are afraid lest the probationers should be found incompétent, and the doors of the Civil Service again closed against us. Perhaps the Government is not yet acquainted with the merits of the educated natives, and consequently excludes them from the Civil Service.

The *Mitra Vilas* (Lahore) of the 19th January states: Circulation, 200 copies

The Native Civil Service.

The new rules about the admission of natives to the Civil Service have disappointed us in our hopes. The reader may be inclined to ask the question, why the natives exerted themselves so much to

Commissioner of Unao will at once introduce the practice of the grant of written receipts by landlords.

Circulation, 850 copies.

Alleged removal of Ashiq Jafar from the post of Honorary Magistrate by the Deputy Commissioner of Lucknow.

The *Jubilee Paper* (Lucknow), of the 16th July, asks the Deputy Commissioner of Lucknow to make public the grounds on which he has removed Ashiq Jafar from the post of Honorary Magistrate. Otherwise it observes that the measure will greatly dishearten other Honorary Magistrates. If Honorary Magistrates were dismissed by a Deputy Commissioner at pleasure, their position would not be much better than that of his chaprásis.

EDUCATION.

Suggestion for holding the University examinations in the cold weather.

The *Bhárat Varsha* (Bithur), for July, publishes an article communicated by Indira Datta Upadhyáya, M.A., Azamgarh, who complains that many of the students of the Mission School at Azamgarh who appeared at the last Entrance Examination of the Allahabad University held at Benares became unwell during the examination, and that two of them could not attend the examination for several days. Owing to sickness only 12 out of the 26 candidates were successful. Some boys were seized by fever on return home after the examination. The candidates for the Middle Class Examination also suffered from sickness, and two of them died of cholera. Hence it is necessary that the University examinations should be again held in the cold weather, as before.

LOCAL AND MISCELLANEOUS.

Circulation, 450 copies.

Bad characters at Allahabad.

The *Prayág Samáchár* (Allahadad), of the 14th July, refers to two affrays among persons of bad character which are alleged to have lately occurred at Allahabad, and in one of which a man is said to have been stabbed with a knife, and complains that the police do not check such persons.

Circulation, 500 copies.

The Panchayet system.

A local correspondent of the *Hindustán* (Kálákankar), of the 15th July, is glad to notice that the Bhurjis or grain-parchers

away about ten or twelve thousand rupees worth of property from the house of one Lalman, a money-lender. (The *Prayág Samáchár*, Allahabad, of the 17th September, refers to the same murder, but says that Kunwar Baldeo Singh oppressed the ryots and was in the habit of abusing men.)

Sir T. Madho Ráo's memorandum on child marriage.

The *Bhárat Bandhu* (Aligarh), of the 14th September, gives the substance of Sir T. Madho Ráo's memorandum on child marriage, and expresses approval of his proposal that the limit of marriageable age for a girl should be fixed at ten years with a view to reducing the number of child widows. The remedy proposed by him is much better than the introduction of widow-marriage or the annulment of child marriages recommended by some persons.

Cow-protection in Allahabad.

The *Hindi Pradíp* (Allahabad) for September, is glad to say that Swámi Alá Rám has succeeded in inducing the respectable Hindús of Allahabad to take steps with a view to protecting kine from public subscription, and publishes a list of the subscribers with the amounts promised. The subscriptions already amount to Rs. 5,414, Lála Rám Charan Dás heading the list with a subscription of Rs. 1,001.

Proposed establishment of an hospital at Naini Tal.

The *Almora Akhbár*, of the 17th September, is glad to notice that Mr. Ross, the Commissioner of Kumaun, has resolved to establish an hospital under the name of Ramsay Hospital. A public meeting was to be held in the Naini Tal Assembly Rooms on the 13th idem to consider the proposal, under the presidency of Sir Auckland Colvin.

Memorandum on the Vernacular Press of Upper India during 1885.

THE number of papers on the Reporter's file during 1885 was as follows:—

I.—Statement showing the number of newspapers published in Upper India in 1885.

Province.	Monthlies.	Bi-monthlies.	Tri-monthlies.	Weeklies.	Bi-weeklies.	Tri-weeklies.	Dailies.	Total.	Number of newspapers started during 1885.	Number of newspapers stopped during 1885.	Number of newspapers that remained on the register at the end of 1885.
North-Western Provinces,	14	4	3	51	2	...	1	75	16	13	62
Oudh	8	3	1	9	...	1	3	25	5	3	22
Panjáb	7	6	3	34	2	3	1	56	14	5	51
Central Provinces ...	...	...	...	2	...	...	...	2	1	...	2
Central India ...	...	1	...	2	...	...	...	3	...	...	3
Rajputána	1	...	...	2	1	...	...	5	...	...	5
Total ...	30	14	7	101	5	4	5	166	36	21	145

Thirty-six new papers were started during the year—16 in the North-Western Provinces, 5 in Oudh, 14 in the Panjáb, and 1 in the Central Provinces. Hardly any of them merit special notice; but the *Nusratu-l-Sunnat* (Benares), a religious journal of the Ahl-i-Hadis sect, and the *Hindustán* (Kálákankar), a Hindi daily paper started by Rája Rámpál Singh, may be mentioned.

Twenty-one papers were stopped or removed from the register—13 in the North-Western Provinces, 3 in Oudh, and 5 in the Panjáb. The *Lawrence Gazette* of Meerut, which was among those that stopped, had existed for 22 years.

The following table shows the linguistic classification of the various papers. The usual detailed list is appended to the memorandum.

II.—Linguistic classification of newspapers published in each province in Upper India in 1885.

Language.	North-Western Provinces.	Oudh.	Panjáb.	Central Provinces.	Central India.	Rájputána.	Total.
Urdu	54	22	48	...	2	...	126
Hindi	16	3	4	...	...	2	25
Hindi-Urdu	3	...	1	...	...	3	7
Marathi-Hindi	...	...	...	1	...	...	1
Marathi	...	...	...	...	1	...	1
Gurmukhi	...	...	2	...	...	...	2
Urdu-English	1	...	...	...	...	...	1
Hindi-English	1	...	...	...	...	...	1
Marathi-English	...	...	...	1	...	...	1
Arabic	...	...	1	...	...	...	1
Total ...	75	25	56	2	3	5	166

I.—FOREIGN AND POLITICAL.

ffairs. Nothing occurring on the continent of Europe was noticed by the Vernacular Press except Turkish affairs, and, as intimately connected therewith, the Servo-Bulgarian war. The sympathy of all the papers (even those under exclusively Hindu control) is with Turkey, and they invariably prescribe as a remedy for all evils the

His Excellency has asked for information about the Vernacular Press in India and the appointment of Government reporters on the Native papers.

For the history of the liberty of the Press in India from which the Vernacular papers have sprung, I beg to refer to pages 35 to 39 of my printed Note.* This account is, I believe, historically accurate, but I should now be inclined to qualify my admiration for Sir C. Metcalfe's Act.

* Education in British India, 1872.

Government reporters on the Native papers are of recent origin. The first was established in Lower Bengal in 1862-63, when the Government of India ordered arrangements to be made to examine periodical publications and to bring to notice anything of importance. The duty of examining and reporting on the papers was entrusted to the Bengalee Translator with an allowance of Rs. 150 per mensem and Rs. 80 for establishment. In 1864 the matter having been mentioned in Parliament, the Secretary of State addressed the Government of India on the importance of getting an insight into the feelings of the Natives as represented in the Press. This resulted in the appointment of a Government reporter for the papers of Northern India, whose reports were to embrace all the papers printed in the North-Western Provinces and the Punjab, in Oudh and the Central Provinces, and were to be forwarded to those Governments and to the Government of India. It was then expressly stipulated that nothing like a censorship of the Native Press was in contemplation, and of this stipulation the Secretary of State formally approved. In 1866 the Bombay and Madras Governments were asked to establish a similar system. This they did, after some little delay in Madras, and thus the Government of India now receive weekly reports on the Vernacular publications of all Provinces.

All these arrangements were reviewed in a Resolution of 24th July 1874, which was issued to revise the distribution lists of the reports on Native papers. Formerly these reports had been freely distributed to Government offices and to the public, and so gave to anything remarkable a every much wider currency than it would otherwise have obtained. But the Government found that as a rule anything remarkable was only remarkable for its seditious or mischievous tendency; and to give a wide and artificial circulation to such matter was clearly inexpedient. Hence it was resolved that the reports should thenceforward be considered confidential and strictly limited to Government officers, and to as few Government officers as possible. This restriction was, and is still, looked upon, very unjustly, as a grievance both by the Native Press, which has thereby lost much cheap notoriety, and by the English Press, which had before received the reports free of cost, and thus was never at a loss for a spiteful attack upon the Government whenever congenial "copy" was wanted to fill up the paper.

The mischievous tendency of occasional articles in the Native papers was represented to the Government of India in 1873 by Sir G. Campbell, who called attention to the state of the law* on the subject, to the vagueness of its provisions, and to the great risk of any prosecution instituted under it, especially by the Government. Sir G. Campbell strongly urged that a law should be passed to enable the Government to punish seditious writing summarily and severely without the *éclat* of a long prosecution. This the Government of India refused to do, and a very acrimonious correspondence ensued, the result of which was a circular† declaring the intention of the

* Section 124 A, Penal Code.

† Dated 8th January 1874.

Government of India not only not to alter the law but requiring the assent of the Government of India to any public prosecution of the Press in any Province. As the circular summarises the correspondence, I annex it herewith:

The attention of His Excellency the Governor General in Council has recently been drawn, in correspondence with a Local Government, to the state of the law under which a newspaper is liable to prosecution for attempts to excite disaffection against the British Government in India. It has been represented that the wide terms in which the explanation attached to Section 124 A of the Penal Code has been drawn limit the embarrassing proceedings against writings of publications undoubtedly seditious; and, moreover, that writings which in one part of India might be compatible with a disposition to obedience, and would consequently be there pronounced lawful, might nevertheless excite dangerous disaffection in another part of the country, and among a different people.

Upon full consideration of the position thus stated, His Excellency in Council, as at present advised, has determined that it is not advisable to make any changes in the law which has so recently been passed against the offence of exciting disaffection. It has not been found necessary up to this time to institute proceedings under that law; indeed, the tone and general conduct of the Press in India appear to be ordinarily moderate and reasonable. And His Excellency the Governor General in Council trusts that the chief officers of Government will be able, by the exercise of the influence which belongs to their station, to discourage and very considerably to prevent Native journalists from abusing the freedom of discussion which they possess under the British Government. On the other hand His Excellency is [illegible] that it may become necessary to take action against newspaper writings which are plainly disloyal and inflammatory. But there can be no doubt that a prosecution on behalf of the State against the Press in India is a serious step, which may at any time lead to consequences throughout India not easily foreseen at the beginning. Moreover, the importance or urgency of the step cannot always be estimated by the effect which a publication may cause within any one Province, for, as it has been above remarked, the effect of seditious publications may be felt not so much in the Province where they are written as in other parts of India where they are read, so that the expediency of prosecuting might depend upon the feeling excited in the country at large. Lastly, it cannot be denied that the condition of the law is at present stand[illegible] under the many drawbacks and counterbalancing considerations which must always be set against prosecution of the Press, and which may render even a conviction a doubtful advantage. Looking to all these facts and considerations, His Excellency in Council would desire to deal with any question of instituting prosecutions of this kind as with a matter of Imperial policy, upon which the responsibility of ultimate decision should lie with the Supreme Government. I am therefore directed to request that, on the occurrence of any case which in the opinion of the Local Government, it is right that a newspaper should be prosecuted for exciting disaffection, your Government will have the goodness to communicate the circumstances and grounds of action before moving the courts in order that any necessary proceedings may be instituted after consultation and in concert with the Government of India.

Again in 1875 the Secretary of State addressed* the Government of India very much to the same purport as the Bengal Government had in 1873. Lord Salisbury selected two articles from a Bombay paper upon which he commented thus:

* Despatch No. 53 dated 6th May 1875.

It is unnecessary for me to comment upon the language of such articles which are not only calculated to bring the Government into contempt, but some of which palliate, if they do not absolutely justify, the assassination under certain circumstances of British officers who may be chosen to represent Your Excellency at Native courts. No Government should, as a rule, attempt to suppress [illegible] well-considered, of its administrative measures, but while the utmost toleration in this respect is desirable, it seems to me that the unchecked dissemination among the Natives of articles of the character cited above cannot be allowed without danger to individuals and to the interest of Government itself.

It appears from the records of this Office that in the years 1869 and 1870 the attention of the Government of India was directed to the insufficiency of the powers conferred on it by law in respect of seditious publications. A number of provisions relating to such publications had been prepared by the Indian Law Commissioners, but had been omitted, seemingly by inadvertence, from the Penal Code. It was determined to insert these provisions in the Code, and they now constitute a principal part of Act XXVII of 1870 of the Governor General in Council. The section of the Penal Code now numbered 124 A declares that whoever by words either spoken or intended to be read or by signs or by visible representation or otherwise, excites,

"or attempts to excite, feelings of disaffection to the Government established by "law in British India", shall be liable to various punishments of which the heaviest is extremely severe. An explanation is, however, added to the effect that comments on the measures of the Government are not to be a punishable offence if they are only intended to excite such disapprobation of those measures "as is compatible with a disposition to render obedience to the lawful authority of the Government", and to support its lawful authority against unlawful attempts to subvert or resist it.

It appears to me *prima facie* that the articles which I have quoted from Native Indian newspapers are calculated to excite feelings of disaffection to the Government established by law, and that their writers are not entitled to the benefit of the explanation by which the provision of the Penal Code is qualified. The question, however, whether the law should be brought to bear on such writings, or whether they should be treated with disregard, is one which can best be decided on the spot, and I should be glad to have an early opinion on it from Your Excellency in Council. In any event I direct Your Excellency's serious attention to the continued publication of this class of articles by a portion of the Native Press.

Thereupon the Government of India took the Advocate General's opinion as to whether the articles in question were actionable, and as to the probable result of a prosecution. The Advocate General was of opinion that the articles were actionable under the existing law, but he thought the result of a prosecution would be very hazardous and would lead to great scandal, especially if the case were tried by a jury. The conclusion of the Government of India was that the articles should be disregarded, and that in the present state of the law it is not desirable for Government to institute any such prosecution except in a case of systematic attempt to excite hostility against the Government. This conclusion was reported to the Secretary of State in a despatch that promised to take up at some future day the question of the state of the law and the propriety of altering it.

The law on the subject consists of Section 124 A of the Penal Code explained in the extract above and Act XXV. of 1867, which requires the proprietor of every Press to register himself as the printer and publisher of the publication issued by him.

Such being the law, the next fact requiring consideration is the present number of Native newspapers which would be affected by any change in it. This was ascertained last year, consequent on the correspondence with the Secretary of State, to be as follows:

Province.	No. of papers.	Remarks.
Madras	18	Weekly, bi-monthly and monthly.
Bombay	70	Chiefly weekly.
Bengal	48	As in Madras
North-Western Provinces ...	33	Ditto.
Panjab	26	Ditto.
Oudh	12	Daily, bi-monthly and monthly.
Central Provinces ..	1	Weekly.
Rajputana and Central India . .	5	Ditto.
Cashmere	1	Ditto.

The most noticeable point in these figures is the large preponderance of papers on the Bombay side, from the tone of which I infer an intelligent, discontented community and a weak executive government.

As to the tone of the majority of these papers, I beg to refer to the recent report* from the North-Western Provinces. What is said of the papers there seems true of the papers all over India. They are all "eminently hostile to Europeans, and no opportunity is lost of "quoting any passages from other papers likely to throw discredit on "the character of the English". For many years I have been in the

* No 887, dated 1st June 1876.

ملحق ب

संदर्भ ग्रंथ सूची

1- आज का भारत : रजनीपाम दत्त
नई दिल्ली, दि मैकमिलन कंपनी तीसरा हिन्दी संस्करण, 1977।
तथा भारत : वर्तमान और भावी : रजनीपाम दत्त
नई दिल्ली, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दूसरा हिन्दी संस्करण, 1976।

2- भारत की सत्तायन : सुरेन्द्र नाथ सेन
पब्लिकेशन्स डिवीजन, सूचना एवं प्रसार मंत्रालय, भारत सरकार, 1957।

3- आधुनिक पत्रकारिता : रा० र० माशिलकर
इलाहाबाद, ज्ञान मण्डल प्रकाशन, 1953।

4- आधुनिक भारत : शंकर दत्तात्रेय आप्टेकर
नई दिल्ली, सत्ता साहित्य मंडल, 1953।

5- आधुनिक साहित्य : नंद दुलारे वाजपेयी
इलाहाबाद, भारती भण्डार, तृतीय संस्करण, सं० 2010।

6- आधुनिक हिन्दी साहित्य : डा० बच्चन सिंह
प्रयाग, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय, तृतीय आवृत्ति एवं परिवर्धित सं० अप्रैल 1954 ई०।

7- आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० बच्चन सिंह
इलाहाबाद, लोक भारती प्रकाशन, 1970।

8- आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास [1900-1925] : डा० कृष्ण लाल
प्रयाग, हिन्दी परिषद विश्वविद्यालय [पूर्व सं०], 1965।

9- कविता का इतिहास [पहला भाग 1800-1915] : रामनरेश त्रिपाठी
नई दिल्ली, सत्ता साहित्य मंडल, 1935।

10- चिंतामणि : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
इलाहाबाद, इंडियन प्रेस [प्राइवेट] लिमिटेड।

11- नदी के द्वीप : "अज्ञेय"
संस्करण 3, 1960।

12- नयी कविता में राष्ट्रीय चेतना : डा० देवराज पथिक
नई दिल्ली, कादम्बरी प्रकाशन, 1965।

13- पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण : रामधारी सिंह "दिनकर"
पटना, उदयाचल।

14- पं० बालकृष्ण भट्ट : व्यक्तित्व एवं कृतित्व : डा० नथुनी भट्ट
वाराणसी, बालकृष्ण प्रकाशन, 1972।

15- पत्र और पत्रकार : कमलापति त्रिपाठी, पुरुषोत्तम दास टंडन
बनारस, ज्ञान मंडल लिमिटेड (दूसरा परिवर्धित सं०)।

16- पत्रकार कला : विष्णुदत्त शुक्ल
वाराणसी सत्साहित्य प्रकाशन मंदिर (द्वितीय सं०) अप्रैल 1937।

17- पत्रकारिता के अनुभव : इन्द्र वाचस्पति
दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, सितंबर 1960।

18- पत्रिका-संपादन कला : डा० रामचन्द्र तिवारी
दिल्ली, आलेख प्रकाशन, 1977।

19- प्रताप नारायण मिश्र को हिन्दी गद्य की देन : डा० शांति प्रकाश वर्मा
नई दिल्ली, पत्रा साहित्य भण्डार, प्रथम सं० 1970।

20- पाश्चात्य विद्वानों का हिन्दी साहित्य : डा० जे० एच० आनंद
अजमेर, कृष्णा ब्रदर्स, 1962।

21- बालमुकुंद गुप्त निबंधावली : संपादक झाबर मल्ल शर्मा
कलकत्ता, गुप्त-स्मारक ग्रंथ प्रकाशन समिति सं० 2007 वि०।

22- भट्टनिबंधमाला (भाग 1-2) : संपादक धनंजय भट्ट "सरल"
काशी, नागरी प्रचारिणी सभा वि० संस्करण 1966।

23- भट्ट निबंधावली (भाग 1-2) : संपादक धनंजय भट्ट "सरल"
प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन संवत् 2005 वि0।

24- भारत का मुक्ति संग्राम : अयोध्या सिंह
दि मैकमिलन कंपनी आफ इंडिया लिमिटेड 1977।

25- भारत में औपनिवेशिक और मार्क्सवाद (भाग 1-2) : डा0 राम विलास शर्मा
नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि0 1982।

26- भारतीय नवजागरण का इतिहास : बाबू राव जोशी
नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 1954।

27- भारतीय राष्ट्रीयता का अभ्युदय : डा0 कर्ण सिंह
नई दिल्ली, थॉमसन प्रेस (इंडिया) लि0 प्रकाशन वि0 अक्टूबर 1970।

28- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (दूसरा भाग) : डा0 तारा चंद
नई दिल्ली, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय 1969।

29- समाचार पत्रों का संगठन और प्रबंध : डा0 सुकमाल जैन
भोपाल, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ एकादमी, 1972।

30- भारतेन्दु-ग्रंथावली (भाग 1, 2, 3)
काशी, नागरी प्रचारिणी सभा।

31- भारतेन्दु युग : डा0 राम विलास शर्मा
आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर (चतुर्थ संस्करण) 1963।

32- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : ब्रजरत्न दास
काशी, नागरी प्रचारिणी सभा (द्वितीय सं0) 2010।

33- भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : डा0 रामविलास शर्मा
दिल्ली-6, राजकमल प्रकाशन, 1966।

34- मध्य प्रदेश में हिन्दी पत्रकारिता: एक शताब्दी : डा0 कैलाश नारद
वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1984।

35- राजस्थान में हिन्दी पत्रकारिता : डा० मनोहर प्रभाकर
जयपुर, पंचशील प्रकाशन, 1981 ।

36- रामचरित मानस : गोस्वामी तुलसीदास
गोरखपुर, गीता प्रेस, तेरहवाँ लघु सं० सं० 2020 ।

37- राष्ट्रीयता और समाजवाद : आचार्य नरेन्द्र देव
बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, सं० 2006 ।

38- स्वतंत्रता-आंदोलन और हिन्दी पत्रकारिता : डा० अर्जुन तिवारी
(पूर्वी उत्तर प्रदेश के संदर्भ में)
वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1982 ई० ।

39- स्वतंत्रता-संग्राम : विपिन चन्द्र, अमरेश त्रिपाठी
नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट (तृतीय सं०) 1977 ।

40- सत्य सत्तावन की राज्य क्रांति : डा० राम विलास शर्मा
आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर ।

41- संस्कृति के चार अध्याय : रामधारी सिंह "दिनकर"
पटना, उदयाचल, राजेन्द्र नगर (पंचम सं०) अगस्त 1970 ।

42- समाचार-पत्र : एम० चलपति राव
नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट 1977 ।

43- समाचार पत्र-कला : पं० अंबिका प्रसाद वाजपेयी
लखनऊ, हिन्दी समिति, सूचना विभाग 1968 ई० ।

44- समाचार पत्रों का इतिहास : पं० अंबिका प्रसाद वाजपेयी
बनारस, ज्ञानमण्डल लिमिटेड सं० 2010

45- समाचार-संपादन : प्रेमनाथ चतुर्वेदी
नई दिल्ली, एकेडेमिक बुक्स 1969 ।

46- सर्वोत्तम विचार शक्ति : सर्वोत्तम रीडर्स डाइजेस्ट
बंबई, आर डी० आई प्रिंट एण्ड पब्लिशिंग प्राइवेट लिमि०।

47- हिन्दी-उर्दू की प्रगतिशील कविता : अतगर वजाहत
दि मैकमिलन इंडिया लिमिटेड 1981 ।

48- हिन्दी का गद्य-साहित्य : डा0 रामचन्द्र तिवारी
वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन {द्वितीय संस्करण} अगस्त 1968

49- हिन्दी की दशा और पत्रकारिता : सं0 धनज्जय भट्ट "सरल"
प्रयाग, हिन्दी साहित्य सम्मेलन 1983 ई0 ।

50- हिन्दी के आदि मुद्रित-ग्रंथ : कृष्णाचार्य
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1966 ।

51- हिन्दी गद्य के निर्माता : पंडित बालकृष्ण भट्ट : डा0 राजेन्द्र प्रसाद शर्मा
आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर 1958 ई0 ।

52- हिन्दी गद्य-साहित्य : शिवदान सिंह चौहान
दिल्ली, राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लि0 तृतीय आवृत्ति 1968

53- हिन्दी गद्य-साहित्य का विकास-क्रम : आचार्य उमेश शास्त्री
जयपुर, देवनागर प्रकाशन अगस्त, 1983।

54- हिन्दी पत्रकारिता, डा0 कृष्ण बिहारी मिश्र
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 1968 ।

55- हिन्दी पत्रकारिता : विविध आयाम : सं0 वेद प्रताप "वैदिक"
नई दिल्ली, नेशनल पब्लिकेशंस.1976 ई0 ।

56- हिन्दी वाङ्मय : बीसवी शताब्दी : संपादक नगेन्द्र
आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर, 1972 ।

57- हिन्दी साहित्य : उसका उद्भव और विकास : हजारी प्रसाद द्विवेदी
जयपुर, अत्तर चन्द कपूर एंड संस, 1955 ई0 ।

58- हिन्दी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचन्द्र शुक्ल
वाराणसी, नागरी प्रचारिणी सभा (संशो० और प्रवर्तित बारहवाँ संस्करण सं० 2015

59- हिन्दी साहित्य का इतिहास : डा० नगेन्द्र
दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 1973

60- हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (षोडश भाग) : पं० लक्ष्मी नारायण "सुधांशु"
काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, सं० 2022 वि०

61- हिन्दी साहित्य के विकास में हिन्दी पत्रकारिता का योगदान : राम अवतार शर्मा
(अप्रकाशित शोध प्रबंध), आगरा विश्वविद्यालय

62- हिन्दुस्तान की कहानी : जवाहर लाल नेहरू
इलाहाबाद, हिंदुस्तानी एकेडेमी 1947

63- हिन्दू-संस्कृति में राष्ट्रवाद : राधाकमल मुकर्जी
दिल्ली, एस० चाँद एण्ड कम्पनी, 1957

कोश-ग्रंथ:

1- मानक हिन्दी कोश: सं० रामचन्द्र वर्मा, प्रयाग, 1965

2- मानविकी पारिभाषिक कोश (साहित्य खण्ड): डा० नगेन्द्र

3- वैज्ञानिक परिभाषा कोश, धनारस, 1915

4- हिन्दी विश्वकोश : सं० राम प्रसाद त्रिपाठी

5- हिन्दी शब्द सागर: सं० श्याम सुंदर दास इत्यादि
काशी, नागरी प्रचारिणी सभा, 1966

6- हिन्दी साहित्य कोश (भाग 2): सं० धीरेन्द्र वर्मा
वाराणसी, ज्ञानमण्डल सं० 2020

× × ×

BIBLIOGRAPHY

Ahuja , B.N. : Theory and Practice of Journalism, 1979

Andrews, C.F. : The Renaissance in India, its Missionary aspect , 1914.

Banerji, S.N. : A Nation in Making , 1925,London.

Barns, Margarita : The Indian Press, 140, London.

Beasant, Annie : How India wrought for Freedom, 1915, London.

Bhatnagar, Ram Ratan : Rise and Growth of Hindi Journalism (1826-1945), 1947, Allahabad.

Breucker, Herbert : Freedom of Information.

Burckhardt, Jakob : The Civilization of Renaissance in Ital, 1860.

Bush, M.I. : Renaissance and Reformation and the Outer World , 1969, New York

Carr, E.H. : Indian Nationalism , 1939

Calverton : The Awakening of America , 1939.

Chirol, Valentine : Indian Unrest, 1910, London.

Cotton, Sir Henry : Indian and Home Memories, 1911, London.

Cooper, Sir, A : Review of Education in India in 1856.

Chamber's Encyclopaedia : Volume 8 , 1967

Dutt, R. Palme : India Today , 1940

Eisentien, Elizabeth : Idea and Ideal in the North European Renaissance (Collected Essay (Part II), 1967

Encyclopaedia Americana : Inc. Volume 23, International Edition, (U.S.A., 1966)

Encyclopaedia Britannica: Edition IX,XV (U.S.A.,1977)

Ferguson,Wallace.K. : A Survey of European Civilisation Part one to 1660.

Ghosh, Sir Aurbindo : The Speeches

-do- : The Renaissance in India

Habib, Irfan : The Agrarian System of Mughal India(1556-1707)

Haynes, J.H. : Modern Europe to 1870 (Third Ed.), 1982.

Hobbson, J.A. : Imperialism : A Study , 1938, London.

Laxican Universal Encyclopaedia : New York, 1983

Lucas, Henry.S. : The Renaissance and the Reformation.

Majumdar, A.C. : Indian National Evolution, 1917.

Mecak, J.B. : Modern Journalism

Mott. George Fox : New Survey of Journalism

Marx, Karl and Angeles : Correspondence, 1934

Narvane, V. : Modern Indian Thought, 1964

Natrajan, J. : History of Indian Journalism, Govt. of India Pub., 1954.

Natrajan, S. : History of the Press in India, 1962, Bombay.

O' Malley(Editor) : Modern India and the West, 1968, London.

Panikkar, K.M. : Sources of Traditions: Survey of Indian History, 3rd Ed. Bombay, 1960.

Purnell's New English Encyclopaedia, 1965, London.

Robert, Kington M : Jakob Burckhardt and the Renaissance and 100 years After.

Singleton, Charles.S. (Editor) The Ideas and Ideals in the North European Renaissance, 1967, Baltimore.

Steed, Wickham : The Press

Tanner, E.M. : The Renaissance and the Reformation (A Text book of European History, 1494-1610)

Tikkiwal, H.C. : Jaipur and the Later Mughals

MAGAZINES AND NEWSPAPERS

Vande Matram (Weekly Edition) , 1908

English Men , 1939

Bengal Harkaru , 1841

Bengali 1879

Tribune 1853

MICROFILM NEHRU MEMORIAL MUSEUM AND LIBRARY, NEW DELHI

Hindi Newspapers and Magazines

1. Bharat Jivan (Weekly), Banaras March 1884-1903
2. Brahmin (Monthly), Kanpur April 1883-March 1890
3. Chaturvedi Patrika (Monthly), Agra 1895-1899
4. Hindi Pradeep (Monthly), Allahabad 1877-1908
5. Samay Vinod Suderahan-Samachar 1876-1877
6. Nainital (Bi-monthly)
6. Vishal Bharat (Monthly), Calcutta May 1931-1960

English

1. Bande Mataram (Weekly), Calcutta 1907-1908
2. Mickey Gazette
3. Tribune (Daily), Lahore 1881-1975

1. Lensdown's Minutes 15 Sept., 1890
2. Public Service Commission 1887

Reports: National Archives, New Delhi.

Reports on Native (Vernacular) Newspapers North-western Provinced (N.W.P.) Oudh, Punjb, Bangal etc.

Confidential Reports: Hindi News Papers

Provinces	Name of Newspaper	Date	Page No.
N.W.P.	Malwa Akhbar	9 March, 1870	120
		13, 27 April, 1870	177, 191
"	Gwaliar Gazette	10April, 1870	176
"	Buddhi Vilas	21 March, 1870	149
"	Kavivachan Sudha	12 July, 1870	178
Bengal	Bihar Bandhu	9 Feb., 2 Mar. 1876	6, 28
N.W.P.	Meerut Gazette	25 March, 1876	142
"	Banaras Akhabar	29 Dec., 1877	2
"	Kavivachan Sudha	25 June, 31 Dec., 1877	28
Bengal	Bharat Mitra	March, 1877	366
	Bharat Bandhu	14 Dec., 1877	10-11
N.W.P.	Arya	1 June, 1878	518-19
"	Bihar Bandhu	22, 31 March, 1878	509
"	Bharat Bandhu	13, 21 June, 1878	260-577
		18 Jan., 1878	151
"	Malwa Akhabar	28 June, 1878	
"	Mitra Vilas	1 July, 1878	581-82
"	Hindi Pradeep	1 July, 1878	591-93
		1 March, 1878	184
"	Arya Mitra	24 Jan., 2 May, 1879	71, 345
		1 August, 1879	616-17
"	Bharat Bandhu	9 May, 6 June	346
		1 Aug., 15 Aug., 1879	617
"	Mitra Vilas	19 May, 1879	344
		21 July, 1879	571-72

Provinces	Name of Newspaper	Date	Page No.
N.W.P.	Hindi Pradeep	August, 1879	629-95
	Almora Akhabar	15 Dec., 1879	983-84
"	Kavivachan Sudha	July, 1879	618
"	Kashi Patrika	31 July, 1879	637
	Bharat Bandhu	16 Jan	57
Bengal	Bharat Mitra	29 Jan., 19 Feb., 1880	3, 5, 30
"	Jagat Mitra	26 Jan., 1880	3
N.W.P.	Kavivachan Sudha	29 Dec., 19 Jan., 1880	24, 62
Bengal	Bharat Mitra	23, 27, 30 June, 1881	3, 7
"	Sarsudha Nidhi	27 June, 1881	7
U.P.,M.P.etc.	Arya Darpan	1881	206
"	Almora Akhabar	30 Oct., 1882	729
"	Kavivachan Sudha	March, 1883	245
"	Prayag Samachar	28 May, 1883	460, 830
"	Hindustan	14 May, 1884	84
		13-14 June, 1884	353, 434
	Almora Akhabar	6 Oct., 1884	602
"	Hindustan	18 March, 1885	222
		17 Sept., 1885	703
"	Bharat Bandhu	23 July, 1886	646
"	Prayag Samachar	August, 1886	646
"	Hindustan	31 May, 1887	339, 187
Bengal	Bharat Mitra	2 Jan., 1888	25
N.W.P.	Hindustan	13-14 Jun., 1888	332-334
		25 Dec., 1888	837-838
"	Prayag Samachar	18 June, 1888	385
"	Bharat Jivan	2 Jan., 1888	4

Provinces	Name of Newspaper	Date	Page No.
N.W.P.	Anand Kadambini	Sept., 1888	2
"	Almora Akhabar	24 Dec., 1888	836
		11 Aug., 4 Nov., 1889	702
"	Khichri Samachar	17 Jan., 1891	960
"	Hindustan	14 Jan., 1891	38
"	Jat Samachar	Jan., 1892	25
"	Arya Darpan	April, 1892	158
"	Almora Akhabar	26 Dec., 1893	10
"	Hindustan	4 July, 1894	289
"	Arya Darpan	Feb., 1895	127
"	Hindustan	16-25 Nov., 1897	706, 738
"	Bharat Jivan	29 Nov., 1897	739
"	Kayasth Patrika	1901	

* * *

Proceedings (Confidential) Government of India

Home Department, National Archives, New Delhi

1. Branch	Date	Proceedings No.
	14 Jan., 1859	55
Public	22 March, 1859	63-66
"	8 Sept., 1864	29-30 (A)
"	Oct., 1867	105 (A)
Judicial	28 Oct., 1877	211-216
"	April, 1878	218 (A)
"	April, 1878	229 (A)
"	April, 1878	236-240 (A)
"	June, 1878	5-7 (B), 81 (B)
"	July, 1878	131-33 (B)
"	March, 1879	221-222
Establishment	August, 1880	44(A)
Judicial	March, 1881	100-102 (B)
"	Dec., 1881	153-155 (A)
"	Dec., 1881	148, 154 (A)
"	Sept., 1882	221-39 (A)
Public	March, 1885	165-171 (A)
"	March, 1886	122-124 (B)
"	April, 1887	201-203
"	April, 1888	176-78 (A)
Judicial	March, 1888	79-81
"	Jan., 1891	159 (A)
Public	Oct., 1893	211-222 (B)
"	Nov., 1893	56-70 (A)

2. Proceedings of the Bengal Asiatic Society, May, 1861.
3. Proceedings of the select committee at the council of Fort William.

* * *

पत्र-पत्रिकाएँ

पत्र-पत्रिका का नाम	रूप	स्थान	सन्
1- आजकल	मासिक	दिल्ली	दिसंबर, 1984
2- आनंद कादम्बिनी	"	मिर्जापुर	फाल्गुन सं0 1945 तथा 1907 ई0
3- आलोचना	त्रैमासिक	दिल्ली	1984-85
4- उचित वक्ता	साप्ताहिक	कलकत्ता	1880-1895
5- उदन्त मार्तण्ड	साप्ताहिक	"	1827
6- कविवचन सुधा	"	बनारस	1872-1884
7- कादम्बिनी	मासिक	नई दिल्ली	सितंबर, 1984
8- कुर्मवैदी पत्रिका	पाक्षिक	आगरा	1894-1895
9- छत्तीसगढ़ मित्र	मासिक	बिलासपुर	1900
10- पियूष-प्रवाह	साप्ताहिक	भागलपुर	1884-91
11- बनारस अखबार	साप्ताहिक	बनारस	जनवरी 1852
12- बालाबोधिनी	मासिक	बनारस	1874-75
13- ब्राह्मण	"	कानपुर	1884-90
14- बिहारबंधु	साप्ताहिक	पटना	1874-1883
15- भारतजीवन	साप्ताहिक	बनारस	1884-1903
16- भारतमित्र	"	कलकत्ता	1878
17- भारतीय साहित्य	त्रैमासिक	आगरा	जुलाई, 1956
18- भारत सुदशा प्रवर्तक	साप्ताहिक	फर्रुखाबाद	अगस्त, 1882
19- भारतेन्दु	मासिक	वृन्दावन	अगस्त, 1891
20- माध्यम	मासिक	इलाहाबाद	1964-65
21- मित्र-विलास	साप्ताहिक	लाहौर	1880-81
22- नवनीत	मासिक	बंबई	दिसंबर, 1985

पत्र-पत्रिका का नाम	रूप	स्थान	सन्
23- नागरी प्रचारिणी पत्रिका	त्रैमासिक त्रैमासिक	बनारस	सं॰2007 तथा 1897-1900
24- नागरी नीरद	मासिक	चिर्रापुर	जून, 1894
25- राष्ट्र-भारती	मासिक	पर्वा	अगस्त, 1959
26- विद्याभारत	मासिक	कलकत्ता	1931, 32, 60
27- शुभचिंतक	साप्ताहिक	शाहजहाँपुर	1883-84
28- समय विनोद अल्मोड़ा तुल्यानि समाचार	पाक्षिक	नैनीताल	1876-77
29- सरस्वती	मासिक	इलाहाबाद	1900-1960
30- सारसुधानिधि	साप्ताहिक	कलकत्ता	1879-82
31- साहित्य सरोज	मासिक	मेरठ	जौलाई, 1896
32- हरिश्चन्द्र मैगजीन	मासिक	बनारस	1873-74
33- हरिश्चन्द्र चन्द्रिका	मासिक	बनारस	1875-79
34- हरिश्चन्द्र मोहन चन्द्रिका	•	नाथद्वारा	आषाढ़ संवत् 1937
35- हिन्दी-प्रदीप	मासिक	प्रयाग	1877-1906
36- हिंदी-बंगवासी	साप्ताहिक	कलकत्ता	सितंबर, 1895
37- हिन्दुस्थान	दैनिक	कालाकांकर	1890-97
38- अजिय पत्रिका	मासिक	बाँकीपुर	1897

पत्र-पत्रिकाओं की कुछ फाइलें निम्नलिखित पुस्तकालयों में उपलब्ध हैं:

1- नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

1- बुद्धिप्रकाश 2- हरिश्चन्द्र मैगजीन 3- हिन्दी प्रदीप
4- काशी पत्रिका 5- भारत मित्र 6- सारसुधानिधि
7- मेघप्रकाश 8- आनन्द कादम्बिनी 9- पियूष प्रवाह
10- भारतेन्दु 11- रसिक मित्र 12- रसिक वाटिका ।

2- भारत कला भवन, काशी।

1- हरिश्चन्द्र मैगजीन, कविवचन सुधा, बालाबोधिनी, प्रयाग समाचार, हिन्दुस्थान, आनन्द कादम्बिनी इत्यादि।

3- भारतीय भवन लाइब्रेरी, इलाहाबाद।

1- ब्राह्मण, भारतोद्धारक, सुगृहिणी, हिन्दी-प्रदीप, तीर्थ-प्रकाश, पियूष-प्रवाह।

4- सार्वजनिक पुस्तकालय, मथुरा।

"भारतजीवन"

5- नागरीय पुस्तकालय, अलीगढ़ में बहुत से पुरातन पत्र उपलब्ध हैं।

x:x:x